ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन

लेखक
डॉ० सत्येन्द्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

साहित्य रत्न भंडार
आगरा

पुस्तक का नाम	*	ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन
लेखक	*	डा० सत्येन्द्र
मूल्य	*	दस रुपये
द्वितीय संस्करण	*	१९५७
प्रकाशक	*	साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।
मुद्रक	*	साहित्य-प्रेस, आगरा।

दो शब्द

यह पुस्तक एक मौलिक और नवीन उद्योग है। हिन्दी में लोक-साहित्य विषयक वैज्ञानिक चर्चा और व्यवस्थित अध्ययन का अत्यन्ताभाव है। हिन्दी की विविध बोलियों के लोक-गीतों के तो संग्रह प्रकाशित हुए भी, इनकी भूमिकाओं में इस विषय पर कुछ-कुछ विचार भी व्यक्त किये गये, कहावतों के संग्रह भी प्रस्तुत किये गये, पर समूचे लोक-साहित्य के विविध अङ्गों का विधिवत् सम्पूर्ण अध्ययन नहीं था। यह इस दिशा में प्रथम प्रयोग है। यद्यपि इसका क्षेत्र ब्रज तक ही सीमित है पर 'जो गागर में सो सागर में' से लोक-साहित्य के मूल रूप का भी दर्शन यहाँ मिलता है।

१—इसमें लोक-साहित्य के सभी अङ्गों पर विस्तृत विचार हैं।

२—ब्रज-क्षेत्र के लोक-जीवन की एक झाँकी के साथ जीवन से मिली जुली अभिव्यक्ति का रूप व्यवस्थित अध्ययन के साथ प्रस्तुत किया गया है।

३—लोक-साहित्य के रूपों का वर्गीकरण और उनका साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है।

४—लोकवार्त्ता और तत्सम्बन्धी साहित्य पर संसार भर में हुए उद्योग का एक सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया गया है।

५—यथावश्यक तुलनात्मक प्रणाली से विविध प्रवृत्तियों का विकास और उनका विस्तार सप्रमाण स्पष्ट करने का उद्योग किया गया है।

६—लोक-प्रवृत्तियों के मूल की ओर भी संकेत करने का साधारण प्रयास इसमें है।

इस प्रयत्न का मूल उद्देश्य लोक-अभिव्यक्ति का साहित्यिक मूल्याङ्कन है, फिर भी यथावसर समाज-विज्ञान, नृ-विज्ञान तथा जाति-विज्ञान के तत्त्वों को भी दिखाया गया है।

लेखक ने सभी कोटि के विद्वानों के ग्रन्थों का उपयोग किया है, उनसे उद्धरण भी लिये हैं, पर उसने अपनी मौलिक दृष्टि सदा रखी है। इन ग्रन्थों से उसने प्रमाण ही प्रस्तुत किये हैं।

इस ग्रन्थ में लेखक ने अपनी निम्नलिखित अन्यत्र प्रकाशित रचनाएें भी सम्मिलित करली हैं—

१—ग्रामगीत संकलन प्रणाली—प्रकाशक, ब्रज साहित्य मंडल।

२—ग्राम-साहित्य-संकलन का विवरण—ब्रज साहित्य मंडल।

३—ढोला : एक लोक महाकाव्य—हंस में प्रकाशित।
४—'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' (कुछ विचार)-ब्रज भारती
५—ब्रज की लघु छन्द कहानी— „ „

इस ग्रन्थ के लिये सामग्री संकलन में जिन व्यक्तियों तथा संस्थाओं ने निजी रूप से मेरी सहायता की है, तथा मेरे लिए ही साहित्य-संकलन किया है उनका उल्लेख यथास्थान पुस्तक में हो चुका है।

इस समस्त उद्योग की पृष्ठभूमि में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का सतत् परामर्श विद्यमान रहा है। उनसे अध्ययन की प्रेरणा भी मिलती रही है।

प्रो० हरिहरनाथजी टण्डन द्वारा इस पुस्तक को प्रस्तुत करने और इसके लिए विधिवत् अध्ययन करने का निरन्तर सहयोग और सुझाव मिला है।

बाबू गुलाबराय एम० ए० से भी परामर्श और प्रोत्साहन मिला है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि पर सरसरी दृष्टि डाली और मुझे इस उद्योग के लिये प्रोत्साहित किया। फतहपुर (सीकर) के पुस्तकालय, कलकत्ता की इम्पीरियल लाइब्रेरी, जयपुर की पब्लिक लाइब्रेरी, सैंटजान्स कालेज के पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय, मथुरा के पुरातत्त्व-संग्रहालय के पुस्तकालय तथा आगरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से मुझे समय-समय पर सहायता मिली है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग मेरे ऊपर गुरु-तुल्य कृपा रखते हैं। उन्होंने समय-समय पर जो परामर्श दिये उसका उल्लेख क्या किया जाय ? पर रुग्ण और दुर्बल रहते हुए भी उन्होंने इसके लिए 'परिचय' लिखा, यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है।

मेरे अनन्य हित-चिन्तक, मित्र और मुझे साहित्य-क्षेत्र में निरन्तर प्रवृत्त किये रहने वाले अग्रज सदृश महेन्द्रजी ने अनेक असुविधाओं के रहते हुए भी इस पुस्तक को प्रकाशित कराया।

इन सबके प्रति मैं अपना क्या आभार प्रकट कर सकता हूँ। जिन लेखकों की पुस्तकों से मैंने लाभ उठाया है, उनका उल्लेख पुस्तक में यथास्थान है। मैं इन सबका कृतज्ञ हूँ। —लेखक

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी लोकवार्त्ता-साहित्य के एक रूप—व्रज-भाषा लोक-साहित्य—का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन है। हिन्दी-भाषियों का ध्यान अपने लोक-साहित्य, विशेषतया ग्रामगीतों की ओर, श्री रामनरेश त्रिपाठी ने पहले-पहल आकर्षित किया था। हिन्दी जनता ने कविता-कौमुदी के पाँचवें भाग का हृदय से स्वागत किया और अपने साहित्य के इस नये अक्षय-भण्डार को इस मात्रा में संकलित देखकर उसे आश्चर्य हुआ। त्रिपाठीजी के प्रयास के पहले भी और उसके उपरान्त भी इस मार्ग में अनेक छोटे-मोटे उद्योग होते रहे, किन्तु इस नवीन क्षेत्र के आद्योपान्त पूर्ण अध्ययन का प्रथम श्रेय श्री सत्येन्द्रजी को प्राप्त हुआ।

प्रत्येक देश की संस्कृति तथा साहित्यिक परम्परा के दो भाग होते हैं—ग्रामीण परम्परा तथा नागरिक परम्परा। इन दोनों का सम्बन्ध ऐसा समझिये जैसे दूध और उसके ऊपर की मलाई की तह का। नागरिक संस्कृति और साहित्य जनता की संस्कृति और साहित्य का सर्वोत्कृष्ट सार होता है। दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हुए भी रूप और गुणों में कुछ भिन्न हो जाते हैं। अपने-अपने क्षेत्रों में दोनों ही स्वाभाविक और आवश्यक हैं, किन्तु किसी देश की संस्कृति तथा साहित्य का चित्र तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक दोनों से परिचय नहीं प्राप्त किया जावे। इस दृष्टि से लोकवार्त्ता देश के व्यापक जीवन का एक महत्त्व-पूर्ण पहलू है और उसका अध्ययन सांस्कृतिक और साहित्यिक आनन्द देने के अतिरिक्त अनेक क्षेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

सत्येन्द्रजी ने इस ग्रन्थ के विषय-प्रवेश में लोकवार्त्ता के सिद्धान्तों का परिचय दिया है। हिन्दी में यह अनूठा प्रयत्न है। इसके उपरान्त व्रज-लोक-साहित्य के प्रकारों का वर्णन है। तीसरे अध्याय में व्रजलोक-गीत-साहित्य तथा चौथे अध्याय में व्रजलोक कहानियों का विस्तृत अध्ययन है। ये दो अध्याय ग्रन्थ में सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं। पाँचवें तथा छठवें अध्यायों में व्रज की लघुछन्द कहानी और लोकोक्ति साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और अन्तिम अध्याय में लोक-साहित्य के सम्बन्ध में कुछ फुटकर बातों की चर्चा की गयी है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ के पढ़ने से ब्रजलोक-साहित्य का पूर्ण आलोचनात्मक परिचय पाठक को प्राप्त हो जाता है।

आशा है कि सत्येन्द्रजी का यह सुन्दर और उपयोगी प्रयास पथ-प्रदर्शक स्वरूप सिद्ध होगा और हिन्दी की अन्य प्रमुख बोलियों में सुरक्षित लोकवार्ता-निधि का अध्ययन हिन्दी के अन्य उत्साही विद्यार्थियों द्वारा शीघ्र हो सकेगा। इस प्रकार के समस्त अध्ययनों के पूर्ण हो जाने पर ही हिन्दी में जनता मात्र की लोकवार्ता का पूर्ण इतिहास लिखा जा सकेगा। इस प्रकार हिन्दी की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के लोक-साहित्य के अध्ययनों के प्रस्तुत होने पर विशाल-संस्कृति और साहित्य के जनता से सम्बन्ध रखने वाले पहलू पर प्रकाश पड़ सकेगा। हम भारतीय नागरिक लोग अभी तक केवल मलाई का स्वाद लेते रहे हैं, पूर्ण तृप्ति और स्वाद के लिये मलाई-सहित कटोरा भर दूध होना चाहिये।

श्री सत्येन्द्रजी का प्रस्तुत अध्ययन भारतीय संस्कृति और साहित्य के इस भावी विशाल मन्दिर की नींव की एक सुदृढ़ ईंट है। इन ईंटों के सहारे ही इस संस्कृति-मन्दिर का निर्माण संभव है। इस दृष्टि से मैं योग्य, अनुभवी और परिश्रमी लेखक के इस उपयोगी वैज्ञानिक अध्ययन का हृदय से स्वागत करता हूँ। विश्वास है कि हिन्दी के विद्यार्थी और विद्वान् इस नवीन प्रयास से पूर्ण लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

प्रयाग
श्री कृष्ण जन्माष्टमी, सं० २००५ — धीरेन्द्र वर्मा

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

दूसरा अध्याय

ब्रजलोक साहित्य के प्रकार

तीसरा अध्याय

लोक-गीत-साहित्य का अध्ययन

(अ) जन्म के गीत

चतुर्थ अध्याय

लोक-कहानियाँ

(अ) पूर्व पीठिका

(आ)—हिन्दी में लोकवार्त्ता—कहानी

(इ)—ब्रज की कहानियाँ—विविध रूप

पाँचवाँ अध्याय

लघु-छन्द कहानी

छठा अध्याय

लोकोक्ति साहित्य

सातवाँ अध्याय

उपसंहार

———

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

लोकवार्ता का स्वरूप—उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में लोक-साहित्य के सम्बन्ध में कितने ही विशद उद्योग हुए थे। वेदों के अध्ययन ने तुलनात्मक धर्म, भाषाविज्ञान और तुलनात्मक धर्म-गाथाओं[1] का द्वार खोला था। संस्कृत के हितोपदेश और पंचतंत्र के प्रकाश में आने पर लोक-कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन की ओर ध्यान गया[2]। लोक-साहित्य के रूप और महत्व पर भी पर्याप्त विवाद इस काल में हुआ। गाम्मे महोदय ने प्रबल तर्कों और ओजस्वी शब्दों में यह प्रतिपादन किया था कि लोकवार्ता[3] को विज्ञान का स्थान दिया जाना चाहिए। इसके अध्ययन की प्रणाली भी वैज्ञानिक हो चली थी। अतः उसके निष्कर्षों को सुनिश्चित वैज्ञानिक निष्कर्षों की भाँति ग्रहण करना चाहिए[4]। उस काल में गाम्मे महोदय की स्थापना को विद्वानों ने ग्रहण नहीं किया, फिर भी इतना तो माना ही गया कि आधुनिक मानव के दैहिक और मानसिक निर्माण-तंतुओं के जटिल

१—अभिप्राय है 'माइथालाजी' से।

२—देखिये : 'वर्क्स बाई दि लेट होरेस हेमन विलसन, एम० ए०, एफ० आर० एस०' द्वितीय भाग : निबन्ध छठा : पञ्चतन्त्र का विश्लेषणात्मक विवरण तथा निबन्ध सातवाँ : हिन्दू कथा साहित्य।

३—अभिप्राय : 'फोक-लोर' से है। फोक-लोर के लिए 'लोकवार्ता' शब्द डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, पी-एच० डी०, डी-लिट्० ने खोजा है। उन्हें 'वार्ता' शब्द वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रचलित 'निजीवार्ता' और 'घरूवार्ता' आदि से मिला था।

४—देखिये : 'फोक-लोर जरनल'।

विधान की परीक्षा करने वाला जो नृ-विज्ञान[1] है, उसके विशद-क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान लोकवार्ताओं का भी है[2]। इस युग में भारतीय धर्मगाथाओं और लोकवार्ताओं का गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन हुआ और उससे मानव, उसकी सभ्यता और संस्कृति के मूल रूपों के सम्बन्ध में विविध निष्कर्ष निकाले गये। मानव के देश और जाति से बने भेदों के आच्छादन को वेध कर सबके व्यापक मूल को सिद्ध करने की चेष्टा भी की गयी। लोकवार्ता-शास्त्र में अनुस्यूत तथ्यों की पुष्टि के लिए उस समय या तो वेद आदि लिखित साहित्य था, या लोकवार्ताकारों द्वारा बड़े परिश्रम के उपरान्त एकत्रित की हुई विविध देशों की लोकवार्ताएँ थीं और उनके विविध व्यवहारों और आचारों, रीति-रिवाजों का अध्ययन था। आज तो स्थापत्य और मूर्ति आदि सम्बन्धी पुरातत्व-विभाग की विविध शोधों से ऐसे अकाट्य और प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध हो रहे हैं जिनसे लोकवार्ताओं से प्राप्त कपोल-कल्पना प्रतीत होने वाली घटनाएँ कुछ का कुछ रूप ग्रहण करने लगी हैं और मानव के विविध आचारों की परम्परा का रहस्योद्घाटन भी अद्भुत लगने लगा है।

लोकवार्ता शब्द विशद अर्थ रखता है। इसके अन्तर्गत वह समस्त आचार-विचार की सम्पत्ति आ जाती है, जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसके स्रोत लोक-मानस होते हैं, वे लोक-मानस जिनमें परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना काम नहीं करती होती। लौकिक धार्मिक विश्वास, धर्मगाथाएँ तथा कथाएँ, लौकिक-गाथाएँ तथा कथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ आदि सभी लोकवार्ता के अंग हैं। लोकवार्ता के सम्बन्ध में श्रीकृष्णानन्द गुप्त ने बुन्देलखण्ड के लोकवार्ता-पत्र के निवेदन में लिखा है: 'लोकवार्ता' को अँग्रेजी में फोक्लोर कहते हैं। अथवा यह कहिए कि फोक्लोर के लिए हमने 'लोकवार्ता' शब्द का प्रयोग किया है। फोक्लोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। परन्तु हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती और सुनती

[1]—अभिप्राय 'ऐनथ्रापॉलॉजी' से है।

[2]—देखिए: कैप्टेन आर० सी० टेम्पल की 'लीजेण्ड्स आव दी पंजाब' दूसरे भाग की भूमिका।

अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है। अतएव किसी एक देश की लोकवार्ता को पूरा और विधिवत्-संग्रह किया जाये तो वहाँ के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाएगा।' इसी सम्बन्ध में ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में 'फोकडांसिंग' (लोकनृत्य) निबन्ध में फोक (लोक) की यह व्याख्या दी गयी है। एक आदिम जाति में वे सभी व्यक्ति 'फोक' (लोक) होते हैं, जिनसे वह समुदाय बना है, और शब्द का विशदतम अर्थ लिया जाय तो इसका प्रयोग सभ्य राष्ट्र की समग्र जनसंख्या के लिए भी किया जा सकता है। फिर भी पाश्चात्य प्रकार की सभ्यता की दृष्टि में इस शब्द का साधारण प्रयोग [ऐसे समस्त पदों में जैसे फोकलोर (लोकवार्ता), फोक-म्यूजिक (लोकसंगीत) आदि] संकुचित अर्थ में प्रमुखतया केवल उन्हीं के लिए आता है जो नगर-संस्कृति की धाराओं तथा विधिवत् शिक्षा से बाहर पड़ जाते हैं, जो निरक्षर हैं अथवा कम पढ़े हैं और गाँवों अथवा जनपदों में निवास करते हैं।'

इसी 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में 'फोकलोर' का यह इतिहास दिया हुआ है :

"१८४६ में डबल्यू० जे० थामस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीतिरिवाजों तथा मूढ़ग्राहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा था। शब्दों के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं होते, प्रयोग द्वारा होते हैं और आज लोकवार्ता के क्षेत्र में वह भी आ जाता है जिसे आरम्भ की परिभाषा में जानबूझ कर बाहर रखा गया था, यथा लोकप्रिय कलायें तथा शिल्प, दूसरे शब्दों में, जानपदजन की भौतिक के साथ-साथ बौद्धिक संस्कृति भी। मुख्यतः टेलर, फ्रेजर, तथा अन्य अँग्रेज पद-वैज्ञानिकों के उद्योगों के परिणामस्वरूप, जिन्होंने यूरोपीय जानपदजन के मूढ़-ग्राहों और परम्परागत रीतिरिवाजों की व्याख्या करने के लिए तथा उन्हें समझाने के लिए निम्नस्तर की संस्कृति में मिलने वाले साम्य के उपयोग करने की ओर विशेष ध्यान दिया। अँग्रेजी परम्परा में फोक-

लोर (लोकवार्ता) के क्षेत्र तथा सामाजिक जीवन-विज्ञान के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नहीं की जाती······प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इस फोकलोर (लोकवार्ता) के क्षेत्र को संकुचित अर्थ में सभ्य समाजों में मिलने वाले पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।"

लोकवार्ता के विषय—किन्तु इससे भी अधिक वैज्ञानिक परिभाषा शार्लट सोफिया बर्न ने दी है। उन्होंने भी इसका संक्षिप्त इतिहास दिया है। वह कहती हैं कि लोकवार्ता शब्द, शब्दार्थतः लोक की विद्या (दी लर्निङ्ग आव दी पीपिल)—१८४६ में स्व० श्री० डबल्यू० जे० थॉमस ने पहले प्रयोग में आने वाले 'सार्वजनिक पुरावृत' (पापुलर एण्टिकिटीज़) शब्द के लिए गढ़ा था। यह एक जाति-बोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, मानव-स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथायें, अवदान (लीजैंड), लोक-कहानियाँ, साके (बैलैड), गीत, किम्बदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में हैं। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लेने के समय करता है। जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके जो मछुआ समुद्र पर करता है। पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उसके बनाते समय किया जाता है और उसको उपयोग में लाने वालों के विश्वास। लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान,

तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक सङ्गठन तथा अनुष्ठानों में, अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।"

लोक-साहित्य तथा लोकवार्ता—अतः लोक-साहित्य लोकवार्ता का एक अङ्ग है। किन्तु एक दृष्टि से लोक-साहित्य का केवल एक अङ्ग ही लोकवार्ता[१] के अन्तर्गत आ सकता है। ऐसा भी लोक-साहित्य हो सकता है, नहीं होता ही है, जो लोकवार्ता नहीं माना जा सकता। लोकवार्ता में केवल वही लोकसाहित्य समावेशित होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है। इस लोकवार्ता-साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता जितना उसमें सुरक्षित उन परम्पराओं की दृष्टि से होता है जो नृ-विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कह सकते हैं। इस प्रकार के लोक-साहित्य की व्याख्या करने में जब यह विदित हो कि उनके

---

[१] बर्न की 'हैण्डबुक आफ फोकलोर' नामक पुस्तक के आधार पर (देखो उसका पृष्ठ ४)। लोकवार्ता के विषयों को तीन प्रधान समूहों में बाँटा जा सकता है। प्रत्येक समूह में निम्नलिखित हो सकते हैं :—

१—वे विश्वास और आचरण-अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—

१—पृथ्वी और आकाश से, २—वनस्पति जगत से, ३—पशु जगत से, ४—मानव से, ५—मनुष्य निर्मित वस्तुओं से, ६—आत्मा तथा दूसरे जीवन से, ७—परा-मानवी व्यक्तियों से (जैसे देवताओं, देवियों तथा ऐसे ही अन्यों से) ८—शकुनों-अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाश-वाणियों से, ९—जादू टोनों से, १०—रोगों तथा स्थानों की कला से।

२—रीति-रिवाज—

१—सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ, २—व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, ३—व्यवसाय-धन्धे तथा उद्योग, ४—तिथियाँ, व्रत तथा त्योहार, ५—खेल-कूद तथा मनोरञ्जन।

३—कहानियाँ, गीत तथा कहावतें

१—कहानियाँ (अ) जो सच्ची मान कर कही जाती हैं। (आ) जो मनोरञ्जन के लिए होती हैं, २—गीत, सभी प्रकार के, ३—कहावतें तथा पहेलियाँ, ४—पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

मूल में किसी आधिभौतिक तत्व का प्रतिबिम्ब है, कि आदिम मानव ने सूर्य और अन्धकार के सङ्घर्ष को, अथवा सूर्य और ऊषा के प्रेम को अथवा साहचर्य को ही विविध रूपकों द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है, तो उसका यह रूप धर्मगाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोकसाहित्य का वह अंश जो रूप में प्रकटतः तो होता है कहानी पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो साहित्य-सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट भी है—वह धर्मगाथा कहलाता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन मौखिक परम्परा से प्राप्त कथा तथा गीत-साहित्य भी लोक-साहित्य कहलाता है। धर्मगाथाएँ भी हैं तो लोकसाहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई ये गाथाएँ धार्मिक अभिप्राय से सम्बद्ध हो गयी हैं। अतः लोकसाहित्य के साधारण क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ में तो सहज होता है, उपरान्त अभीष्ट अर्थ की चेतना से सम्बद्ध हो जाता है। रस्किन ने इसकी परिभाषा करते हुये लिखा है :

धर्म-गाथा का रूप—'एक धर्मगाथा अपनी सरलतम परिभाषा में एक कहानी है, जिससे एक अर्थ संबद्ध है, ऐसा अर्थ जो प्रथम प्रकट होने वाले अर्थ से भिन्न हो। ऐसी कहानी में ऐसा कोई अभिप्रेत अर्थ है यह उस कहानी की कुछ उन परिस्थितियों से साधारणतः विदित होता है जो असाधारण होती है, अथवा, शब्द के साधारण अर्थ में, अस्वाभाविक होती है'[1]। इसकी व्याख्या करते हुए रस्किन ने आगे बताया है कि '..........प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण गाथा में तुम्हें ये तीन निर्माण-तत्त्व मिलेंगे—मूलबिंदु तथा दो शाखायें। मूलबिंदु (बीज) होता है किसी प्राकृतिक सत्ता में : सूर्य अथवा आकाश, अथवा मेघ या सागर; उपरान्त उसका पुरुष रूप अवतार, जो एक ऐसा विश्वसनीय तथा इष्ट रूप ग्रहण कर लेता है कि उसके साथ हाथ से हाथ मिलाये आप ऐसे ही घूम फिर सकें जैसे अपने भाई अथवा बहिन के साथ कोई शिशु; और अन्ततः इस रूप-कल्पना की नैतिक सारगर्भिता जो सभी महान् धर्मगाथाओं में शाश्वत तथा

[1]—देखिए 'दी क्वीन आव दी एअर' जान रस्किन लिखित, पृष्ठ २।

उपयोगी भाव से सत्य रूप में प्रतिष्ठित होती है।"[1] किन्तु बर्न ने धर्मगाथा को और भी विस्तृत अर्थ दे दिया है। वे धर्मगाथाओं को 'कारण-निरूपक-कहानी' मानते हैं। इसमें विश्व, उसकी उत्पत्ति, प्रलय, जीवन, मरण, मनुष्य, पशु, जातीय-भेद, व्यवसाय-भेद, धार्मिक उपचार, पैतृक प्रथायें तथा रहस्यमय व्यापारों के कारणों को व्याख्या रहती है। यह कारण प्रायः असम्भव ही होता है, पर जो उन धर्मगाथाओं को मानते हैं, वे उन पर विश्वास भी करते हैं[2]।

साधारण लोक-साहित्य में यद्यपि धर्मगाथा के समान समस्त रूप मिल सकता है पर उसमें उस विशिष्ट अर्थ की अन्तर्व्याप्ति नहीं मिलती जिससे उसका समस्त कथानक मूलबीज के रूप में किसी प्राकृतिक व्यापार का कोई अंग बन सके। अतः लोक-साहित्य का यह धर्मगाथा सम्बन्धी अंश एक पृथक ही अन्वेषण का विषय है, और हमारी प्रस्तुत योजना में धर्मगाथाओं के मूल की शोध पर उतना ध्यान नहीं दिया जायगा, जितना धर्मगाथाओं की उन प्रेरणाओं पर जिन्होंने अन्य लोक-साहित्य की सृष्टि में सहयोग दिया है। लोक-साहित्य का बहुत सा अंश ऐसा भी है जो पारिभाषिक लोकवार्ता के बाहर रहता है। यह वह साहित्य है जिसकी मौखिक परम्परा विशेष पुरानी नहीं है, जिसके निर्माता का काल अथवा समय जाना जा सकता है। जो नए विषयों पर नए उद्रेकों के परिणाम स्वरूप रचा गया है; और रचा गया है बिना किसी संस्कारी चेतना के। वह समस्त साहित्य जो मौखिक रहा है, और है; तथा जिसके निर्माण में अभ्यास अथवा अध्ययन ने कोई हिस्सा नहीं लिया। वही हृदय और मानस की सहज अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक-साहित्य कही जायगी।

जो लोक-साहित्य लोकवार्ता के अन्तर्गत नहीं आता उसमें प्रमुखता ग्राम-साहित्य की रहती है। यों नागरिक लोक-साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इस दृष्टि से हमारे लोक-साहित्य के चार भाग हो सकते हैं।

१ लोकवार्ता साहित्य—	धर्मगाथा साहित्य (१)
	साधारण लोकवार्ता साहित्य (२)

[1]—देखिए वही, पृष्ठ १०

[2] देखिए, 'दी हैण्डबुक आव फोकलोर' लेखिका बर्न अध्याय १६, पृ० २६१

२ लोक-साहित्य—	{	ग्राम साहित्य (३) नागरिक साहित्य (४)

धर्मगाथा-साहित्य की विशेषताओं पर ऊपर भली प्रकार विचार हो चुका है। साधारण लोकवार्त्ता-साहित्य में हमें लोक-वार्ता के सभी गुण मिलते हैं। इसका आरम्भ भी धर्मगाथाओं के साथ ही मानव की शैशवावस्था में हुआ होगा, यह बिल्कुल सम्भव है कि पहले धर्मगाथा का जन्म हुआ हो, तदनन्तर उन गाथाओं में से आदि-मानव की धार्मिक आस्था का अभाव होता गया और वे गाथायें लोक-वार्त्ता में मात्र लोक-साहित्य का रूप ग्रहण करने लगीं।

धर्मगाथा का मूल—धर्मगाथाओं के मूल के सम्बन्ध में अभी तक दो प्रधान मत हैं : एक यह मानता है कि धर्मगाथा सूर्य और अन्धकार के सङ्घर्ष की प्राकृतिक घटनाओं के रूपक पर बनी हैं—पहले आदि-मानव-समूह ने प्रकृति के इन दिव्य व्यापारों को देखा और इन्हें मूर्त रूप में शब्द का अर्थ माना, अथवा इन मूर्त्त विषयों को शब्द दिये। फिर समय पाकर शब्दों में विकार हुआ और उनमें अर्थ-परिवर्त्तन भी होने लगा, इससे प्रकृति-व्यापारवाची शब्द दिव्यता अथवा देवत्व द्योतक हो उठे। उनमें नैतिक सिद्धान्तों का भी समावेश हो गया। धर्मगाथा की उत्पत्ति का मूल शब्दों का रूपालङ्कार की भाँति प्रयोग में निहित है। आगे चलकर रूपक का भाव लुप्त हो गया। वे अवस्थायें भी विस्मृत होगयीं जिनमें होकर इस शब्द का रूपकवत् प्रयोग हुआ था और शब्द 'धर्मगाथा' का आधार बन गया। यथार्थ में धर्मगाथा भाषा का विकार है, जिसमें वे शब्द जो रूपक अथवा विशेषणवत् थे अपनी स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण करने लगते हैं। और यह भूल जाया जाता है कि ये कवि के दिये नाम हैं, जिन्होंने शनैः शनैः देवत्व प्राप्त कर लिया है।[1]

धर्मगाथा के मूल के सम्बन्ध में दूसरा मत यह रहा है कि ये मनुष्य की असभ्य अवस्था में उत्पन्न हुई हैं और इनका सम्बन्ध उस काल के मनुष्यों के कृषिकर्म तथा प्रजनन कर्म से है। कृषिकर्म और प्रजनन कर्म में 'जिन भयों और आशङ्काओं का पद-पद पर उदय

[1] देखो मैक्समूलर के 'लैक्चर्स आन साइंस आव लैंग्वेज', पृष्ठ ११।

होता है, उन्हीं के आधार पर धर्मगाथायें चलीं। अतः धर्मगाथा का मूलविन्दु सूर्य तथा उसके व्यापारों पर निर्भर नहीं करता, वरन् कृषि और काम पर निर्भर करता है। फ्रेजर महोदय इस मत के प्रबल पोषक थे। आजकल मेयर (Meyer) महोदय ने पुनः इस मत की प्रबल युक्तियों से पुष्टि करने की चेष्टा की है।

"आदिम मानव का अध्यात्म जीवन चिन्ता और आशङ्का का तथा यौन-प्रेरणा अथवा काम-चेष्टाओं का जीवन है। यह उनके आचरण के मूल में रहते हैं। मेयर महोदय ने बाइबिल से दृष्टान्त देकर समझाया है कि मनुष्य भय के कारण ही जीवन में बन्धन स्वीकार करता है। आदिम मानव का यह भय मृत्यु का ही भय होता है और यह दुष्ट-प्रेतों अथवा जादू-टोनों की शक्तियों के रूप में उसका पीछा करता है। उन्हें आशङ्का बनी रहती है कि हो सकता है पृथ्वी अथवा ये शस्य-शक्तियाँ समय पर उन्हें उचित सामग्री प्रदान न करें। उनकी इस भयग्रस्त अवस्था में यौन-उद्रेक अथवा उनके 'शरीर का चमत्कार' ही उन्हें कुछ निवृत्ति प्रदान करता है। आदिम मानव का सांस्कृतिक विकास मनुष्यों की यौन-क्रियाओं के ही अनुकूल होता है।"[1]

जिस प्रकार धर्मगाथाओं का उदय हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि पहले वे शब्द जो धर्मगाथाओं में आज पात्र बने हुए हैं किसी प्राकृतिक व्यापार को प्रकट करते थे, फिर उन प्राकृतिक व्यापारों का प्राकृतिक रूप विलुप्त होता गया और धार्मिक कथा का रूप उसने ग्रहण किया, जिसमें उन प्राकृत व्यापारों के विविध शब्दों ने कथा के दिव्य तथा अलौकिक पात्रों का रूप ग्रहण कर लिया। बाद में परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने से, कथाओं की धार्मिक आस्था भी कम हो गयी और वे केवल लोक गाथाएँ होगयीं। लोक गाथाओं में पात्रों के नाम भी लुप्त हो जाते हैं। घटनाएँ और कथा-विधान ही ऐसा रह जाता है जो उन्हें धर्मगाथा से सम्बन्धित रखता है। पात्रों के नाम यदि मिलते भी हैं तो ये नये होते हैं और मूल धर्मगाथाओं के साभिप्राय शब्दों के रूपान्तर नहीं होते। हाँ, कभी-कभी ये रूपान्त-

[1] दिसम्बर १६४३ के Indian Historical Quarterly में प्रकाशित विनयकुमार सरकार के A Study of Meyer's Trilogy of Vegitation Powers and Festivals नामक लेख से।

गत नाम भी इन धर्मगाथाओं में से लोकगाथाओं में चिपके चले जाते हैं। यूरोप की कितनी ही लोकगाथाओं का ज़ियस (Zeus) वेदों का 'द्यौस' है। पहले प्राकृतिक-व्यापार है, फिर देवता हुआ और आर्य ऋषियों ने उसकी स्तुति की। फिर वह धर्मगाथाओं का अलौकिक नायक बन गया; अब उसकी कथा कहने वाला साधारण जन यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि जिस 'ज़ियस' के सम्बन्ध में वह ऐसी रोचक कहानियाँ सुनता है, वह कोई पुरुष रूपधारी व्यक्ति नहीं, केवल एक प्राकृतिक व्यापार है।

किन्तु लायल महोदय ने 'एशियाटिक स्टडीज़ सेकिण्ड सीरीज़' में 'हिस्टरी एण्ड फेबिल' नामक छठे अध्याय में इन दोनों मतों से भिन्न मत प्रकट किया है। वस्तुतः ऊपर दिये हुए दोनों सम्प्रदाय एक ही हैं। दोनों ही यह मानते हैं कि धर्मगाथा का उदय किसी मानवीय घटना से अथवा किसी ऐतिहासिक तत्त्व से नहीं, वह आदिम मानव की उस अवस्था में उदय हुई जब वह मनतः शिशु था और समस्त धर्मगाथा और लोक-कथा-साहित्य या तो दिव्य प्राकृतिक व्यापारों के वर्णनों का रूपक है, या कृषि-उत्पादन और प्रजनन संबंधी भावनाओं को प्रकट करने का। इन दोनों की दृष्टि में गाथाओं के पात्रों का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं है। किन्तु लायल महोदय मानते हैं कि उनके मूल में ऐतिहासिक तथ्य अवश्य विद्यमान होता है।[१]

इस सम्बन्ध में यह लेखक आगे कहता है :

"आख्यान अथवा गाथा में कथा-तत्त्व और कल्पना तत्त्व के साथ ऐतिहासिक तथ्य का भी समावेश होता है। नहीं, कथा और कल्पना का मूल-बिन्दु ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटना होती है। यह लेखक यह मानता है कि धर्मगाथा का जब जन्म हुआ उस समय मनुष्य इतिहास और कल्पना-कथा में अन्तर नहीं कर जानता था। अतः उन कथाओं में जो धर्मगाथाओं के रूप में हमें प्राप्त हुए हैं इतिहास का बिन्दु भी है और लोक-गाथाओं का भी। दोनों का जन्म

[१] लायल (Lyall) महोदय ने लिखा है कि वह कितना ही लघु क्यों न हो; उसी लघु बिन्दु पर कल्पना के पुट से गाथा का रूप खड़ा हुआ है। वे प्राकृतिक व्यापारों के कल्पना प्रसूत पात्र रूप नहीं हैं; तथ्य पर निर्भर हैं। बाद में इतिहास गौण हो गया, कल्पना-कथा प्रधान हो गयी।

साथ-साथ हुआ है, बाद में इतिहास कथा से अलग होता चला गया, और कथा इतिहास से।"

भारतीय आर्यों की धर्मगाथाओं के सम्बन्ध में अभी-अभी एक और मत प्रकट किया गया है। इसके अनुसार वेद श्लेषार्थी हैं। एक ओर वे प्रकृति के व्यापारों का वर्णन करते हैं; पर उन व्यापारों का वर्णन कुछ ऐसा है कि पूर्ण सन्तोष नहीं होता। इससे उनका दूसरा अर्थ देखना पड़ता है। वह दूसरा अर्थ यह है कि वेदों में यह समस्त वर्णन मानव के शरीर के अन्तर्विज्ञान से सम्बन्ध रखता है। वैदिक मंत्र-द्रष्टाओं ने मनुष्य के शरीर विज्ञान का पूर्ण और गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन किया और वेदों की श्रेष्ठ भाषा में उसे प्रकट किया। उदाहरण के लिए इन्द्र मस्तिष्क है, सूर्य चैतन्य है, उषा चैतन्य के उदय होने से पूर्व के शरीर के शासक अचेतन केन्द्र हैं, विष्णु मेरुदण्ड है, पूषन लघु मस्तिष्क है, आदि आदि। यह बिल्कुल नई स्थापनाएँ हैं। इनके सम्बन्ध में निश्चय रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। इस स्थापना के प्रतिपादक वी० जी० रिलि का तो यह कहना है कि इससे वैदिक देवताओं से सम्बन्धित सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं, पर इसकी परीक्षा अपेक्षित है। इस मत से भी धर्मगाथाओं का मूल ऐतिहासिक नहीं रहता, धर्मगाथाओं द्वारा शरीर-विज्ञान को ही रोचक कहानी का रूप दे दिया गया है।[1]

धर्मगाथा-साहित्य के जन्म और उसकी विशेषताओं का इस प्रकार हमें ज्ञान हो गया है।

लोकवार्ता साहित्य का मूल—साधारण लोकवार्ता-साहित्य के सम्बन्ध में दो दृष्टियाँ हो सकती हैं। एक यह साहित्य धर्मगाथा-साहित्य से ही प्रेरणा प्राप्त कर उदय हुआ है। प्रेरणा से भी विशेष यह कहा जा सकता है कि साधारण लोकवार्त्ता-साहित्य का आधार धर्मगाथा साहित्य ही है। जिन कथाओं में धार्मिक आस्था लगी रही उन्हें एक विशेषवर्ग ने विशेष सम्पत्ति की भाँति सुरक्षित कर लिया, उनके आधार पर विशाल महाकाव्य रचे गये। वे समय-विशेष के अनुकूल रूप भी बदलती रहीं—रूप बदलने से अभिप्राय यह है कि

[1] देखिए वी० जी० रिलि, एम० एण्ड एस०, एफ० सी० पी० एस० द्वारा लिखित 'दी वैदिक गाड्स ऐज़ फिगर्स आव बायलाजी'।

लोकवार्त्ता के परम्परा-प्राप्त भण्डार में से कभी कोई सामग्री ग्रहण की कभी कोई। कभी विष्णु को महत्त्व दिया, कभी शिव को, और इस महत्त्व के केन्द्र के आधार पर ही लोकवार्त्ता में प्राप्त सामग्री को नयी व्यवस्था दे दी गयी। यह तो धर्मगाथा के रूप में रहीं। किन्तु समय बीतते-बीतते महत्त्व के बिन्दु बदलते गये, नये भावों के अनुरूप पुरानों को ढालने की चेष्टा की गयी, और नये नामों का भी निर्माण हुआ पुरानों को भूला भी गया। इन्द्र का जो महत्त्व हमें वेद में मिलता है, वह पुराणों में नहीं मिलता। बौद्ध और जैन साहित्य में तो उसका रूप बिल्कुल ही बिगड़ गया है। वरुण का नाम बाद के समय में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, किन्तु वेदों में वह प्रमुख है। यह सब तो धर्मगाथा का ही रूपान्तर है। धर्मगाथाओं के निर्माण अथवा विकास की तीन अवस्थायें मानी जा सकती हैं। आरम्भिक अवस्था में प्राकृतिक व्यापारों और व्यापार-कर्त्ताओं को वह जीवनद्योतक शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करेगा।[1]

किन्तु जीवन-व्यापार से विभूषित प्रकृति के ये तत्व और व्यापार मानवीकरण के आरोप, अथवा रूपक के द्वारा सिद्ध हुए नहीं माने जा सकते। उन व्यापारों का आदि-द्रष्टा प्रवृत्ति के इन व्यापारों को अपनी भाँति ही प्राणियों के व्यापार मानता है। सूर्य, उषा आदि उसके लिए प्राणी ही हैं, अतः उनको वह रूपक अथवा मानवीय आरोप के द्वारा प्रकट नहीं कर रहा। अपने मनोभावों में उस प्रकृति मण्डल को उसने यथार्थतः इसी रूप में देखा है।[2]

इस क्रम से आरम्भिक धर्मगाथाओं का निर्माण हुआ, जो वेद में बिखरी मिलती हैं। माध्यमिक गाथाएँ वे होती हैं जिनमें शब्दों

[1] "For every aspect of the material world have ready some life-giving expression".

—Mythology of the Aryan Nations.

[2] But it would be no personification, and still less would it be an allegory or metaphor. It would be to him a veritable reality which he examined and analysed as little as he reflected on himself. It would be a sentiment and a belief, but in no sense a religion. —Mythology of the Aryan Nations.

के यथार्थ अर्थ और विषय या तो बिल्कुल ही विस्मृत हो जाते हैं या अधिकांश विस्मृत हो जाते हैं और उन विस्मृत कड़ियों को जोड़ने के लिए कल्पित कड़ियाँ बन जाती हैं अथवा बनाली जाती हैं। तीसरी प्रकार की गाथायें भी होती हैं, ये शब्द के बहुअर्थों के कारण अथवा एक ही अर्थवाले विविध शब्दों के श्लेष से उत्पन्न हो जाती हैं।

धर्मगाथाओं और लोक-कथाओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है और ये संभवतः उस समय अपनी धुँधली रूप रेखा तय्यार कर चुकी थीं जबकि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्य जन विभाजन से पूर्व शान्ति पूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे।

लोक-कथा का उद्भव—इस विचार-विमर्श से यह निष्कर्ष निकलता है कि लोक-वार्ता साहित्य की धर्मगाथाओं का उदय जिन उपादानों और व्यापारों से हुआ उन्हीं से साधारण लोकवार्ता साहित्य की लोकगाथाओं और लोक-कथाओं का भी हुआ। धर्म-गाथा और लोक-कथा के उदय की श्रेणियाँ संक्षेप में यों दिखाई जा सकती हैं—

पहली अवस्था—आदि मानव के मानस द्वारा प्रकृति-व्यापारों का दर्शन, उनका नामकरण, और उनमें अपने जैसे व्यापारों का ज्ञान।

दूसरी अवस्था—इस ज्ञान के दो रूप हुए:—एक ज्ञान ने विकसित होकर उन प्रकृति के व्यापारों के वाचक शब्दों के यथार्थ अभिप्राय को अंशतः अथवा पूर्णतः विस्मृत कर दिया, और उन प्रकृतिवाची शब्दों के विषयों को देवत्व और अलौकिकत्व से विभूषित कर दिया। धर्मभावना का, श्रद्धा अथवा भय का सञ्चार कर दिया। ऐसा प्रकृति के उन तत्त्वों और व्यापारों के सम्बन्ध में हुआ जो मनुष्य को अपने प्रत्यक्ष अनुभव से उसके दैनिक कार्य-क्रम में हानि-लाभ पहुँचाते प्रतीत होते थे।

दूसरे ज्ञान ने विकसित होकर प्रकृति के विविध व्यापारों में मिलने वाली शिक्षाओं को

हृदयङ्गम किया—उन प्रकृति के व्यापारों को कथा का रूप दिया, और उनसे उपदेश निकाला।

तीसरी अवस्था—पहला ज्ञान धर्मगाथाओं के रूप में धार्मिक आख्यानों का आधार बना। उन्हें मनीषियों ने अपनाकर और भी अधिक श्रद्धा का भाजन बना दिया। इसमें से महाकाव्यों तथा धर्मगाथाओं के परिपक्व रूप खड़े हुए। यह शिष्ट और विशेष वर्ग की सम्पत्ति होता चला गया। इसका रूप भी स्थिर होता गया।

दूसरे ज्ञान को साधारण लोक ने अपनाया इसमें प्रकृति के व्यापारों की शिक्षायें साधारण कल्पना से विविध रूप ग्रहण करती रहीं, यही साधारण लोकवार्ता हुई। इसमें या तो मनोरञ्जन की प्रधानता रही, या नैतिक शिक्षा की। इस साहित्य में कथा-कहानी के रूप में घटनायें तो सुरक्षित रहीं, पर नामों की रक्षा न हो सकी। इसकी आधार रूप-रेखा तो दृढ़ रही पर ऊपरी रूप में अनेकों परिवर्तन होते गए और रङ्ग भरते गये। यह सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनी।

चौथी अवस्था—मूल लोकवार्ताएँ अपने आदि स्रोत से पृथक होती चली गयीं। वे विविध मानव-समूहों द्वारा विविध भौगोलिक प्रदेशों में ले जायी गयीं। उन प्रदेशों की भूगोल के अनुसार उस कथा के स्थानों का नामकरण हुआ। ये अधिकाधिक फलने-फूलने लगा। उनकी शाखा-प्रशाखायें ऐसा नया रूप ग्रहण करने लगीं कि मूल से वे बिल्कुल असम्बद्ध प्रतीत होने लगीं। अब ये बिल्कुल ही साधारण लौकिक कहानियाँ होगयीं।

पाँचवी अवस्था—ये साधारण लोक-कहानियाँ साधारण जन समुदाय में प्रवाहित हो चलीं और साधारण लोक-मानस ने इनके समान ढाँचे पर बिल्कुल लौकिक और स्थानीय कहानियाँ रच डालीं। ऐसी कहानियों को भी प्रेरणा

मिली जिनका उनकी कहानी से कोई सम्बन्ध ही न रहा।

वैदिक प्रकृति—उदाहरण के लिए—पहली अवस्था में मानव ने उषा को देखा और मुग्ध होकर गा उठा—

We see that thou art good: far shines the lustre, thy beams, the splendours have flown up to heaven Decking thyself, thou makest bare thy bosom, shining in majesty, thou Goddess Morning.

× × × ×

Thy ways are easy on the hills: thou passest Invincible ! Self ! illuminous through waters.
So lofty Goddess with thine ample pathway, Daughter of Heaven bring wealth to give us comfort.

सूर्य के सम्बन्ध में उनके मन में यह धारणा बनी—

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्। [ऋ० १, ११५,

"सूर्य दिव्य (दैवी) तथा ज्योतिष्मती उषा के पीछे-पीछे ऐसे ही जाता है जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के।"

मेघ और वर्षा के व्यापार को देखकर उसने इन्द्र की जो कल्पना की वह तो अद्भुत ही है। उसने कहा—

यो हत्वाहि मरिणात्सप्त सिन्धुन्योगा उदाजपधा वलस्य। [ऋ० २, १२

तथा— यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥ [ऋ० २, १२

"Who found out in the fortieth autumn, Sambara abiding in the hills; who slew that dragon boasting of his might, the sprawling demon He, O men, is Indra." —Tr. Peter Peterson.

उसने अग्नि की प्रशंसा में ये अनुभूतियाँ समर्पित कीं—

"Agni born of sacrifice, three are thy viands, three thine abiding places, three the tongues satis-

fying (the gods); three verily are thy forms, accept. able to the deities, and with them never heedless (of our wishes), be propitious to our praises."

"Divine Agni, knowing all that exists........he have deposited in the whatever are the delusions of the deluding (Rakshasas)."

"The divine Agni is the guide of devout men, as the sun is the regulator of seasons: may he the observer of truth, the slayer of Vritra, the ancient, the omniscient, convey his adorer (safe) over all difficulties" [Rv. III. 2. 8. Tr. by H. H. Wilson.

× × × ×

The heroic Agni is able to encounter host and by him the gods overcome their foes.

When (existing) as an emthryo (in the wood), Agni is called Tanunapat; when he is generated (he is called) the Asura-destroying Narashansa; when he has displayed (his energy) in the material firmament, Matarish wan; and the creation of the wind is in his rapid motion.

× × × ×

Day by day he never slumbers after he is borne from the interior of the (spark) emitting wood. [Rv. III. 2. 17.

बादलों में मेघ के जल को वन्द कर रखने वाला अहि वृत्र है, इन्द्र उसी वृत्र को मार कर वर्षा कराता है। यह इन्द्र सूर्य का ही रूपान्तर है, अग्नि इसका प्रमुख साथी है। तभी वेदों ने अग्नि और इन्द्र की साथ-साथ स्तुति की है—

Over powering is the might of these two: the bright (lightening) is shinig in the hands of Maghvan, as they go together in one chariot for the

(recovery of the) cows, and the destruction of Vritra. [Rv. V. 6. 11. Tr. H. H. Wilson.
उसने देखा अन्धकार और कल्पना की कि यह अन्धकार वर्षों को और प्रभातों को भक्षण किये जाता था। इन्द्र तथा सूर्य ने उन्हें मुक्त किया : "Having slain Vritra, he has liberated many mornings and years (that had been) swallowed up by darkness. [Rv. IV. 2. 9.
उसने कल्पना की कि यह अन्धकारकारिणी रात्रि कोई दुष्प्रवृत्ति छिपाये हुए है, अतः इन्द्र उसे मार डालता है, "Is as much Indra, as thou hast displayed such manly prowess, thou hast slain the woman, the daughter of the sky, when meditating mischief. [Rv. 3. 9.
और उसने उस इन्द्र को उषा के प्रेमी के रूप में चित्रित किया,

"Thou Indra, who art mighty, hast enriched the glorius dawn, the daughter of heaven. वेदों में यही उषा 'सरमा' भी कही जा सकती है। अन्धकार की अधिष्ठात्री ने पणिस का रूप ग्रहण किया है, जो सरमा को फुसला लेना चाहती है। रात्रि उषा के प्रथम प्रकाश को अपने चंगुल में कर लेना चाहती है।

प्रकृति में देवत्व—इस आरम्भ से आगे आदि कवियों ने प्रकृति के इन व्यापारों में शक्ति के दर्शन किये, उनके हृदय आतङ्क और श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठे, उन्होंने उन्हें देव मान लिया, उनके व्यापार जो यथार्थ में प्रकृति-व्यापार थे, देवताओं के अलौकिक कृत्यों की कथा बन गये। अब सूर्य सूर्य नहीं रहा, वह इन्द्र के रूप में एक शक्तिशाली देव हो गया, जिसने वृत्र नाम के अहि—सर्पों के से आकार वाले बादलों का संहार कर डाला और सृष्टि को जला दिया। यह वृत्र दानव हो गया। इसका आकार-प्रकार सर्पों जैसा कल्पित किया गया। इसे मार कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया तो सरमा प्रत्यक्ष हुई [When thou hadst divided the cloud (for the escape of) waters, Sarama appeared before thee.—Rv. iv. 2. 6] इन्द्र उषा को प्रेम करता है, उसे उपहारों से समृद्ध करता है। उषा वृत्र की बन्दिनी थी, इन्द्र ने उसके बन्धनों को नष्ट कर दिया। उषा मुक्त हुई [The terrified ushas descended from the

broken waggon when the (showerer of benefits) had smashed it.] वृत्र-विनाश में इन्द्र का साथ अग्नि ने दिया। अग्नि भी अब देव हो गया, मात्र प्रकृति का एक भूत नहीं रहा। पणि ने सरमा को फुसलाया, उसे इन्द्र से छीन लेना चाहा, पर वह मारी गयी इन्द्र के बाण से। जब पणि सरमा को बहका रही थी इन्द्र के विरुद्ध, तब सरमा ने पणि से कहा था : "I do not know that Indra is to be subdued," "for it is he himself that subdues, you Panis will lie prostrate killed by Indra" और यही होता है। इन्द्र का मित्र अग्नि साधारण देवता नहीं, उसने वृत्र के संहार में इन्द्र का साथ दिया है। वह कभी सोता नहीं, वह सबको कठिनाइयों से बचा कर ले जाता है। वह सबका त्राता है। इस प्रकृति व्यापार का यह धर्मगाथा का पूर्व रूप बनने लगा। समय बीतने पर इन्द्र-अग्नि जैसे सीधे दिव्य पात्रों का स्थान राम-लक्ष्मण[1] अथवा कृष्ण-बलदेव ने ग्रहण किया। वृत्र रावण बना, पणि शूर्पणखा हुई, और परिपक्व धर्मगाथा का पौराणिक रूपान्तर प्रस्तुत हो गया। यह शिष्ट सम्प्रदाय में हुआ, लोक की कल्पना में उपरोक्त आदिकालीन विविध प्रवृति-तत्त्वों की प्राणी रूप कल्पना ने एक अद्भुत कहानी का ढाँचा खड़ा किया, जिसमें न तो इन्द्र-वृत्र का नाम रहा न राम-रावण का।

लोक कहानी में परिणति—इस कहानी का मूल ढाँचा कुछ ऐसा बना : राजकुमार और उसके मित्र घर से चले। उन्होंने एक सुन्दरी की छवि देखी, वह सुन्दरी पानी में रहती थी। वह एक मणिधर सर्प के वश में थी। दोनों ने सर्प को मार डाला और सुन्दरी को प्राप्त किया, एक अन्य राजकुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पड़ी, उसने चतुर दूती भेजी जो धोखा देकर उसे ले गयी पर राजकुमार के मित्र ने पता लगा लिया और वह दूती को धता बता कर उस सुन्दरी को छुड़ा लाया। जब राजकुमार और सुन्दरी के साथ वह मित्र भी घर लौटने लगा तो उसने रात में जग कर पक्षियों की बातों से राजकुमार पर पड़ने वाले संकटों को जान लिया। उसने तीनों संकटों से राज-

[1] जैसा वेदों में अग्नि के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह कभी नहीं सोती वैसे ही लक्ष्मण की लोक-कथा में बताया गया है कि वह बनवास में कभी नहीं सोये।

कुमार की रक्षा की, पर अन्त में राजकुमार हठ पकड़ गया कि बताओ तुम्हें इन संकटों का कैसे ज्ञान हुआ तो मित्र ने सब हाल कहा। वह पत्थर का होगया। तब राजकुमार और सुन्दरी से जो पहला पुत्र उत्पन्न हुआ उसके स्पर्श या रक्त से वह पाषाण पुनः जीवित हो उठा। यह कहानी इन्द्र-उषा-सरमा-अग्नि-पणि की ही लोक-कल्पना में जीवित रहनेवाली आवृत्ति है। अग्नि के तीन रूपों से तीन संकटों की कल्पना हुई है। सब संकटों से अग्नि रक्षा करती है, इससे मित्र द्वारा रक्षा की भावना लोककहानी में मिलती है। पणि दूती है। अग्नि की सामर्थ्य बीत जाने पर वह पाषाणवत् शीतल और जड़ हो जाती है, और वह तभी पुनरुद्दीप्त हो सकती है जब पुनः उद्योग किया जाय। वेदों में अग्नि के आरंभिक रूप को प्रथम उत्पन्न शिशु भी कहा गया है—"He (it is) whom the two sticks have engendered like a new-born babe," Rv. V. 1. 10. और यह भी कहा गया है कि उसके कारण वृद्ध युवा हो जाते हैं। "but he has (again) been born, and they which had become grey-haired are (once more) young. [Rv. V. 1. 2.

यह लोकवार्त्ता विविध दलों के व्यक्तियों के साथ अलग अलग देश में गयी और अपनी उस मौलिक रूप रेखा की रक्षा करते हुए भी विविध देशों में इसने विविध रूप धारण कर लिये, जिन्हें तुलना करने पर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि यह एक ही कहानी है जिसने इतने वेष बदल लिये हैं। जर्मनी में यह फेदफुल जोह्न (Faithful John) के नाम से प्रचलित है, दक्षिण में राम-लक्ष्मण की कहानी का रूप लिया, बङ्गाल में 'फकीरचन्द' बनी, ब्रज में 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' के नाम से चल रही है, और भी इसके कितने ही अवान्तर रूप इधर-उधर के अनेकों प्रदेशों में मिलते हैं।[1]

इस विवरण से यह स्पष्ट होजाता है कि लोकवार्त्ता में हम किसी न किसी रूप में किसी प्राचीन युग को झाँकता देख सकते हैं। वह कहानीकार की मौलिक कल्पना नहीं होती वरन् किसी प्राचीन कल्पना का रूपान्तर होती है, और उसके विविध निर्माण-तन्तुओं में ऐसी अद्भुत असम्भावनाओं का समावेश होता है, कि वे किन्हीं

[1] देखिए ब्रज भारती, वर्ष २, अङ्क ५-६, संवत् २००३ में लेखक की ब्रज की इसी कहानी पर टिप्पणी।

अन्य तत्वों की व्याख्या के द्वारा ही संभावना का रूप ग्रहण कर पाती हैं। इन लोक-वार्त्ताओं के कथा-तत्वों को समझने के लिए उनमें झाँकते हुए रहस्य का उद्‌घाटन करना आवश्यक होता है।

इन लोक-वार्त्ताओं से भिन्न साधारण लोक-साहित्य होता है। इस साहित्य की जड़ें मानव-इतिहास में इतनी गहरी नहीं समायी होतीं। जन-मन इस साहित्य को अपनी अबोध उमङ्गों के कारण समय-समय पर प्रस्तुत करता रहता है, यह उस गरिमा से आवृत्त नहीं रहता जिससे लिखित साहित्य रहता है। इसमें मनुष्य के क्षण-क्षण के जीवन-स्पन्दन उन्मुक्त अवस्था में उद्‌मुदित रहते हैं। इसमें स्थानीय तत्व बहुत प्रबल रहता है। इसे भी दो प्रकार का माना जा सकता है—एक ग्रामीण, दूसरा नागरिक। गाँव और नगर के वातावरण में जो अन्तर है वही इस लोक-साहित्य के ग्रामीण और नागरिक रूप में अन्तर होता है। यों 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटनिका' में 'फोक' की जो परिभाषा[1] दी गयी है उसके अनुसार तो नागरिक प्रभाव से बाहर का ही साहित्य अथवा वार्त्ता लोक-साहित्य अथवा लोकवार्ता मानी जायगी। किन्तु नगर में भी सभ्यता के स्पष्ट दो धरातल हो जाते हैं। एक शिक्षित और शिष्ट-सभ्य वर्ग है जो विशेष रूप से सभ्यता में प्रवाहित होने वाली नयी-नयी फैशनों को ग्रहण कर लेता है, और जो स्वाभाविक जीवन की धारा से दूर पड़ जाता है। दूसरा कम-शिक्षित अथवा अशिक्षित वर्ग है जिस पर धनाभाव अथवा सामाजिक अंकुश प्रबल होने के कारण तथाकथित सभ्यता का कृत्रिम प्रभाव कम पड़ पाता है। उसकी रचना-प्रतिभा जागृत होने पर वह उन बन्धनों को जानती तक नहीं जो बुध-वर्ग ने शास्त्रों के रूप में प्रदान कर दिये हैं, जिनसे संस्कार का एक निश्चित मान और रुचि निर्धारित कर दी गयी हैं—वह शिष्टवर्ग की उन सब सुरुचियों से वंचित अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार अग्रामीण वातावरण में

---

[1] देखिए इसी अध्याय का पृ० ३ In its common application however to civilization of western type it is narrowed down to include only those who are mainly outside the currents of urban culture and systems in education. —Ency. Brit.

जो मौखिक अथवा लिखित उद्गार प्रकट करता है, वह नागरिक लोक साहित्य कहलाता है।

लोक-साहित्य की रचना के रूप—इस साहित्य पर यहाँ तक तो हमने लोक-तत्व की मात्रा के आधार पर विचार किया है। इस साहित्य को रचना के रूप की दृष्टि से और भी कई भागों में बाँटा जा सकता है। ऊपर जिन लोक-तत्वों का उल्लेख हुआ है, वह तो इस साहित्य की सामग्री है, वह सामग्री लोक-कलाकार विविध रूपों में प्रस्तुत करता है, और उन रूपों के कारण वह सामग्री अपना अलग-अलग मूल्य रखने लगती है। साधारणतः हम इस साहित्य को तीन रूपों में पाते हैं। एक—कथा, दूसरा—गीत, तीसरा—कहावतें। लोक कथाओं के तीन बड़े विभेद माने गये हैं:—धर्म-गाथा, लोक-गाथा (अवदान) तथा लोक-कहानी[1]। धर्म-गाथा के संबंध में ऊपर विस्तृत विचार हो चुका है। फिर भी ऐन्साक्लोपीडिया ब्रिटानिका का मत और देख लेना चाहिए। उसमें बताया गया है कि "As distinct from these last myths have a purpose. They are essentially aetiological, or as Mr. Kipling would say "Just-so stories." Their object is to explain (1) cosmic phenomena (e. g. how the earth and sky came to be separated; (2) peculiarities of natural history (e. g. why rain follows the cries or activities of certain birds; (3) the origin of human civilization (e. g. through the beneficient action of a culture hero like Prometheus, or (4) the origin of social or religious custom or the nature and history of objects of worship" यह धर्मगाथा लोक-गाथा (अवदान) के सम्बन्ध में ऐनसाक्लोपीडिया ब्रिटानिका में बताया गया है कि—"Legend may be said to be distorted history. It

[1] लोक-कथाओं के संबंध में 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में यह उल्लेख है :—

"Popular stories fall into three main categories; myths, legends and stories which are told primarily to provide entertainments."

contains a nucleus of historical fact the memories of which have been elaboratad or distorted by accretions derived from myths or from stories of our third kind." लोक-गाथा में ऐतिहासिक बिन्दु अवश्य होता है। यद्यपि लायल महोदय के साथ एकमत होकर धर्मगाथाओं के सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते कि—The divine myths represented no more than a later chapter of the same story, a further development of the fable working upon *true events and persons*[१] किन्तु लोकगाथाओं के अवदानों के सम्बन्ध में यह मत अक्षरशः सत्य माना जा सकता है, अवश्य ही एक संशोधन की आवश्यकता है। 'ऐतिहासिक तथ्य' अथवा 'ऐतिहासिक व्यक्ति' से सदा यही अभिप्राय नहीं माना जा सकता कि वे किसी समय में यथार्थ में हुए ही थे। मानवीय भाव-विकास में बहुधा ऐसा होता है कि जो व्यक्ति और घटनायें बिल्कुल कल्पना के होते हैं, वे समय पाकर ऐतिहासिक मान लिए जाते हैं। इस ऐतिहासिक युग में जयचन्द और पृथ्वीराज का जो सम्बन्ध बताया जाता रहा था वह कितना काल्पनिक सिद्ध हुआ है। दूसरे शब्दों में जो लोक-कल्पना थी वह इतिहास के रूप में मानी गयी। यदि उस कल्पना को अन्य कसौटियों पर कस कर अनैतिहासिक सिद्ध न किया होता तो वह ऐतिहासिक ही मानी जाती। 'ट्रेजेडी आव ब्लैक होल' भी अनेकों विद्वानों की दृष्टि में एक चतुर राजनीतिज्ञ के दिमाग़ की सूझ मात्र है। यद्यपि यह पूर्णरूपेण निश्चय नहीं हो सका है किन्तु किसी भी दिन यह ऐतिहासिक घटना कहानी मात्र सिद्ध हो सकती है। इसी प्रकार राम और कृष्ण के सम्बन्ध में इतिहासकारों में अभी तक मतभेद है। यह बिल्कुल सम्भव है कि ये राम और कृष्ण 'सूर्य' के ही नाम हों। राम तो वैसे भी सूर्यवंशी कहलाते ही हैं—वे सूर्य की परम्परा में हैं। वेदों में सूर्य अथवा वरुण अथवा उषा अथवा इन्द्र का जिस प्रकार वर्णन हुआ है उससे वे शरीरधारी पुरुष भी माने जा सकते हैं—और कालोपरान्त ऐतिहासिक मान लिये जायँ तो आश्चर्य की बात नहीं होगी। यूनानी

[१] अल्फ्रेड लायल की पुस्तक ऐशियाटिक स्टडीज रिलीजन ऐण्ड स्पेशल सेकिण्ड-सीरीज।

'जियस' वैदिक 'द्यौस' ही है, पर यह ऐतिहासिक व्यक्ति की भाँति माना जाने लगा था। अतः ऐसी समस्त गाथायें जो यथार्थ ऐतिहासिक बिन्दु पर खड़ी की गयी हों, अथवा जिनको किसी समय में ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिल गयी हो, उन पर बनी हों, वे लोक-गाथायें (अवदान) कही जायँगी। यह अक्षरशः सत्य है कि "निम्न तथा अपेक्षाकृत अज्ञान में डूबी जातियों में आज भी किसी दुष्ट प्रकृति मनुष्य का प्रेत, उसकी मृत्यु के उपरान्त पूजा जाता है। उसके विषय में बड़ी विलक्षण चमत्कार कथायें चल पड़ती हैं। जो मनुष्य अपने शौर्य, दया, अथवा किसी मानसिक या शारीरिक शक्ति से अपने समय के लोगों पर अपनी गहरी छाप लगा देता है, वही निरक्षरजनों में अवदान का विषय बन जाता है।

किन्तु यह कथन ऐतिहासिक युग में घटने वाली बातों के लिए है, आदिम-मानव को अपनी जाति में उतने आश्चर्य के व्यापार नहीं मिल सकते जितने प्राकृतिक व्यापारों में। पर, इससे स्पष्ट है कि प्राचीन अवदान में इतिहास के ही ध्वंस विस्मृत होने से नहीं बच रहे, वरन् आधुनिक युग के भी पुरुषों के वृत्त अद्भुत रूप में प्रस्तुत हैं। भारत में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जिनमें एक साधारण-सा व्यक्ति किसी असाधारण घटना के कारण मृत्यु के उपरान्त पूज्य बन गया है। कुछ व्यक्ति अपनी असाधारणता के कारण भी पूजे जाते हैं। रेणुका क्षेत्र के पास सरवर सुलतान की मजार है। यह वही सखी-सरवर है जिसकी लोक-गाथा पंजाब में विशेष प्रचलित है और जिनका संग्रह कैप्टेन आर० एस० टेम्पल महोदय ने "दी लीजेण्ड्स आव दी पञ्जाब" में किया है। अपनी उक्त पुस्तक की सं० २ की लोक-गाथा 'सखी सरवर एण्ड दानी जती' के आरम्भ में टेम्पल महोदय ने यह टिप्पणी दी है : "यह बिल्कुल आधुनिक अवदान है, क्योंकि लेखक ने फीरोजपुर जिले के लंदेके गाँव के लम्बरदार से बातें की हैं। यही वह आदमी है जो अपने को उस लड़के का पुत्र बताता है जिसे दानी के लिए सरवर ने मुर्दा से जिन्दा कर दिया था।……सैयद अहमद सखी सरवर, सुलतान लाखदाता, जो साधारणतः सरवर या सखी सरवर कहा जाता है, पञ्जाब का सबसे लोकप्रिय आधुनिक सन्त है। सरवर तेरहवीं शताब्दी में हुआ होगा। इसका मजार सुलमान पर्वत के नीचे डेरागाजीखाँ जिले में सखी

सरवर दर्रे के मुख पर निगाहा में हैं।"

आगरा में 'कुआवाला' पूजा जाता है और अगणित स्त्री और पुरुष 'कुआबारौ मचलि गयौ बगिया में' गाते हुए उसे पूजने जाते हैं। यह तो एक साधारण पुरुष था जो एक स्त्री पर आसक्त होने के कारण कुँए में गिरा दिया गया था, पर आज वह देवता की भाँति पूजा जाता है और उसके सम्बन्ध में कितने ही गीत गाये जाते हैं। मध्यदेश या बुन्देलखण्ड का 'हरदौल' भी ऐसा ही ऐतिहासिक सच्चरित्र व्यक्ति है, जो घर-घर पूजा जाता है। अतः लोक-गाथाएँ प्राचीन वीरों की और सिद्धों की ही नहीं, नये व्यक्तियों की भी हो सकती हैं और उनमें भी कल्पना का पूरा उपयोग हुआ मिल सकता है। टेम्पल महोदय ने इन लोक-गाथाओं (अवदानों) को छः चक्रों में विभाजित किया है। एक चक्र का नाम उन्होंने रखा है रसालू चक्र, इसमें शौर्य के चमत्कारपूर्ण साहसी कार्य मिलते है। दूसरे का नाम 'पाण्डव-चक्र' : इनमें महाभारत के प्रकार की गाथाएँ मिलती हैं। इनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में पौराणिक वृत्त से कर दिया गया है, अथवा पौराणिक गाथा को ही लोक-कलाकार ने अपनी कला का विषय बना लिया है। तीसरा चक्र है शौर्य और सिद्धि से मिलाजुला, जिसमें योद्धा, सिद्धों की कथा मिलती है। चौथा प्रकार सिद्ध-सम्बन्धी अवदानों का, और पाँचवाँ चक्र 'सखी सरवर, के अवदानों का माना गया है। छठा चक्र उन कथाओं का है जो स्थानीय वीरों से सम्बन्ध रखती हैं। किन्तु लोक-पुरुषों अथवा लोक-घटनाओं के सत्य पर बनी हुई ये प्राचीन तथा नवीन गाथायें अपने विषय और टेकनीक के आधार पर और भी चक्रों में बाँटी जा सकती हैं।[1]

---

[1] श्रीमती बर्न ने अवदान के सम्बन्ध में लिखा है : "अवदान वे विवरण हैं जो किसी व्याख्यान करने के लिए नहीं कहे गये। वरन् उन बातों के सीधे-सच्चे वर्णन हैं जिनको घटित हुआ माना जाता है। जैसे जल-प्लावन, कोई प्रवास, कोई विजय, पुल का निर्माण अथवा नगर का निर्माण। उसने लोक-गाथाओं (अवदानों) को दो विभागों में बाँटा है। वीर-कथा तथा साके। जो अवदान किसी पुराण पुरुष के शौर्य की कहानी कहते हैं, वे वीर-कथा (हीरो टेल्स) कही जाती हैं। इन पुराण पुरुषों के अस्तित्व को निर्विवाद मान लिया जाता है। जिन अवदानों में ऐसे पात्रों के जीवन तथा

लोक-कहानी—लोक-कथाओं के तीसरे वर्ग के सम्बन्ध में विशेष इतना ही कहा जा सकता है कि वे कथायें जो उपरोक्त दोनों विभागों की कथाओं से भिन्न हैं और उनसे अतिरिक्त हैं, वे ही साधारण कहानी कहलाती हैं। साधारण लोक-कहानी को भी केवल मनोरञ्जन की सामग्री मानना सम्भवतः पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं होगा। निश्चय ही उनमें से अधिकांश केवल बात कह कर मन बहलाने के लिए ही हैं, किन्तु सभी कहानियाँ मनोरञ्जन के लिए नहीं मानी जा सकतीं। अँगरेजी में कहानियों का जो प्रकार फैबल (Fable) कहलाता है और अपने यहाँ जिसे तन्त्राख्यान या पशु-पक्षियों की कहानियाँ कह सकते हैं वह तो विशेषतः शिक्षा के लिए ही उपयोग में आता रहा है। 'ला फोण्टेन' ने स्पष्ट कह दिया है कि—

"Fables in sooth are not what they appear,
Our moralists are mice and such small deer.
We yawn at sermons, but we gladly turn
To moral tales, and so amused in yarn"

डाक्टर जानसन ने 'लाइफ ऑव गे' में यह परिभाषा दी है—

"A fable or apologue seems to be in its genuine state a narrative in which beings irrational and sometimes inanimate (arbores loquntur, non tantum ferae), are, for the purpose of moral instruction, feigned to act and speak with human interests and passions."

भारत में यह अत्यन्त प्रसिद्ध ही है कि पञ्चतन्त्र की कहानियाँ राजकुमारों को राजनीति सिखाने के लिए कही गयी थीं। ये राजकुमार पढ़ने में मन नहीं लगाते थे, तभी उन्हें ऐसी कहानियों द्वारा ही शिक्षा दी गयी। इन तन्त्राख्यानों में पशु-पक्षियों की कहानियाँ होती हैं और उन कहानियों के द्वारा किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य मिलती है।

यहाँ भी यह बात ध्यान में रखने की है कि तन्त्राख्यान उन आदि आख्यानों से भिन्न हैं जिनमें पशु-पक्षियों की कहानियाँ हैं, पर

शौर्य का विस्तृत वर्णन होता है, जो ऐतिहासिक होते हैं वे अवदान 'साके' कहलाते हैं। पृ० २६२।

उनसे कोई शिक्षा नहीं निकाली गयी। ऐसी पशु-पक्षियों की कहानियाँ जिनका सम्बन्ध 'तन्त्र' अथवा नीति से नहीं भारत में तथा अन्य देशों में पञ्चतन्त्र की रचना से पूर्व भी प्रचलित थीं, ऐसा शोध से निश्चय हो चुका है। वेदों[1] तक में पशु-पक्षियों की कहानी अथवा कहानी में पशु-पक्षी किसी न किसी रूप में आये ही हैं। बौद्ध जातकों में तो पशु-पक्षियों सम्बन्धी कहानियाँ भरी पड़ी हैं, पर उन्हें बहुधा धर्मगाथाओं की सी मान्यता प्राप्त है। उनमें यह धर्मगाथात्व इसलिए नहीं कि उनमें कोई दूसरा अर्थ निहित है, वरन् इसलिये कि उनका आदर धार्मिक-श्रद्धा से होता है। जातकों में पशु-पक्षियों की कहानियों के साथ नीति अथवा उपदेश का सम्बन्ध होने लगा है।

इस प्रकार लोकवार्त्ता के समस्त स्वरूप को हम समझ सके हैं। इस समस्त लोकवार्त्ता में लोक-मानस का जो रूप प्रत्यक्ष होता है इसका साधारण आभास भी हमें मिल चुका है। लार्ड बेकन ने समस्त कहानी का मूल यह मनो-वैज्ञानिक सिद्धान्त बताया है। क्योंकि कार्य-व्यस्त संसार विवेकी आत्मा से घटकर है, अतः कथा से मनुष्य को वह वस्तु प्राप्त होती है, जिससे इतिहास वंचित रखता है और जब मस्तिष्क सारवस्तु का उपभोग नहीं कर सकता तो उसे किसी सीमा तक छायाओं से ही सन्तुष्ट कर देता है। किन्तु यह तो आज की दशा है। मूल में जब लोकवार्त्ताओं का आरंभ हुआ होगा, जब मानव जाति का शैशव होगा, तब मनोरंजक अथवा मनः-संतोष का भाव उनमें नहीं हो सकता। लोकवार्त्ता के मूल निश्चय ही मनुष्य की आदिम अवस्था में हैं।

लोकवार्त्ता में मानव की आदिम स्थिति से आज तक के विकास की विविध मनोभूमियों का हमें पता लग जाता है। लोकवार्त्ता में लोक-मानस जितनी शुद्ध अवस्था में प्रतिबिम्बित होता और सुरक्षित रहता है उतना वह किसी दूसरे माध्यम में नहीं रहता।

लोक-साहित्य की मनोभूमि—यथार्थ में लोक-मानस का प्राचीन रूप प्रकट होता है। आदिम मानव के पास वस्तुओं को समझने का माध्यम उसका अपना ही रूप था। जैसा वह था वैसा ही दूसरों को मानता और समझता था। निश्चय ही वह उनमें प्राण-

[1] Works by the late Horace Hayman Wilson, Vol. IV—Hindu Fiction, P. 84.

प्रतिष्ठा नहीं कर सकता था, वह उनके अस्तित्व में ही विश्वास करता था। भेद-बुद्धि उसके पास नहीं थी कि प्राणों के स्वरूप को समझ सके। वह स्थूल दृष्टि से अपनी कसौटी के द्वारा मानवेतर सृष्टि के व्यापारों और वस्तुओं को ग्रहण करता था। उसका यह बोध एक ही वस्तु के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न होता था। उसके इन्हीं मानसिक अनुभवों को उसकी भाषा व्यक्त करती थी। भाषा का स्वभाव उसके इन्हीं संस्कारों के अनुकूल था। काक्स ने लिखा है—

"उसकी मनोवस्था ने ही उसकी भाषा के स्वभाव का निर्णय किया और वह अवस्था उसमें, अब जैसे बच्चों में, उस भावना को कार्य करते प्रकट करती है जो समस्त बाह्य वस्तुओं को एक ऐसे जीवन से अभिमंडित कर देती है, जो उसके अपने जीवन से भिन्न नहीं होती। अपने दृष्टिपथ में आनेवाले विविध पदार्थों के मूल स्वभाव अथवा गुणों के सम्बन्ध में उसे कोई निश्चित ज्ञान नहीं था। किन्तु वह जीवन-सम्पन्न था, और इसलिए उसकी समझ से शेष समस्त वस्तुओं में भी जीवन होना चाहिए। इसे उन्हें व्यक्तित्वमय करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह स्वयं अपने सम्बन्ध में आत्म चेतना तथा व्यक्तित्व में भेद नहीं जानता था। उसे अपने तथा अन्य किसी के जीवन की अवस्थाओं के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं था, और इसीलिए पृथ्वी तथा आकाश में सभी वस्तुएँ अस्तित्व मात्र के एक ही अस्पष्ट भाव से अभिनिविष्ट थीं। सूर्य, चन्द्र, तारा, वह भूमि जिस पर वह चलता था, बादल, तूफान तथा बिजलियाँ सभी सजीव व्यक्ति थे, क्या वह बिना यह सोचे रह सकता था कि उसकी भांति वे सचेतन व्यक्ति भी थे? उसके शब्दों से ही अनिवार्यतः यह विश्वास प्रकट होगा। उसकी भाषा में ऐसा कोई भी मुहावरा नहीं हो सकता था जिसमें जीवन संबंधी विशेषण का अभाव हो, साथ ही उसमें जीवन के स्वरूप की विभिन्नता अचूक सहज ज्ञान से प्रकट होगी।........भौमिक संसार के प्रत्येक पहलू के लिए वह किसी न किसी जीवनप्रद मुहावरे का प्रयोग करेगा। ये पहलू उसके शब्दों की अपेक्षा कम भिन्न होंगे। एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न समय पर अथवा भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अत्यन्त विषम तथा असमवायी भाव जागृत करेगा।...सूर्य से शोक प्रेरक तथा प्रोत्साहक, दोनों ही प्रकार के भाव उदय होंगे, विजय तथा पराभव संबंधी, परिश्रम तथा असामयिक मृत्यु संबंधी....किंतु

यह व्यक्तित्वारोप नहीं होगा, और न यह रूपक (allegory) ही होगा। यह उसके लिए असंदिग्ध वास्तविकता होगी, जिसकी परीक्षा तथा विश्लेषण उसने उतना ही कम किया है जितना कि अपने ऊपर विचार। यह उसका मनोवेग तथा विश्वास होगा, किंतु किसी भी अर्थ में धर्म नहीं।" —(माइथालाजी आव दि आर्यन नेशन्स, पृष्ठ २२)।

आदिम वृत्तियाँ—फलतः लोकवार्ता से हमें जो सामग्री मिलती है, वह मानव की उस अवस्था की है, जब वह सभ्यता से बहुत दूर था। उसके प्राचीन काल के ये अवशेष अब तक चले आये हैं और वर्तमान सभ्यता की तहों में छिपे हुए पड़े हैं। गाम्म महोदय ने लिखा है कि "सभ्यता की तुलना में लोकवार्ता की यह स्थिति निर्देश करती है कि उसके निर्माण तत्त्व उस मानवीय भाव की अवस्था के अवशेष हैं जो उस अवस्था की अपेक्षा जिसमें वे आज मिलते हैं अधिक पिछड़े हुए हैं, और इसीलिए अधिक प्राचीन हैं।" (एथ्नालाजी इन फोकलोर)। कारण यह है कि सभ्यता के प्रभाव से लोकवार्त्ता का विकास नहीं हो पाता। लोकवार्त्ता के विकास में व्याघात पड़ने लगता है और वह अपनी उसी प्राचीन मनोदशा अथवा स्थिति को यथातथ्य सुरक्षित रखे सभ्य समाज के अन्तर में प्रवाहित होती रहती है। लोकवार्ता में उपलब्ध सामग्री में जो मनोदशा प्रकट होती है, उसी के आधार पर यह निश्चय हो सकता है कि लोकवार्त्ता में जातीय तत्त्व मिलते हैं। इसी आधार पर विद्वानों ने लोकवार्त्ता को 'जाति-विज्ञान' (एथ्नालाजी) का सहायक माना है। जातियों का निर्माण उनकी अपनी भौगोलिक और वातावरण-निर्मित परिस्थितियों में घनिष्ठता-पूर्वक होता है। उनके चारों ओर विस्तृत प्रकृति की प्रतिक्रिया जिस रूप में भी उनके मस्तिष्क में होती है उसी रूप में वे उसको अपने आचार-विचार में ढाल लेते हैं, और वही जब विकास में रुक जाती है तो लोकवार्त्ता का रूप ग्रहण कर लेती है। इसके लिए भारतीय आदिम मनुष्यों के एक वर्ग खोंड के प्रचलित विश्वास को लिया जा सकता है। खोंड लोग अभी कुछ वर्ष पूर्व तक मनुष्य बलि दिया करते थे। इस बलि के यंत्र अब तक कहीं-कहीं दक्षिण भारत के इन लोगों के गाँवों में मिल जाते हैं। यह मनुष्य बलि बूरो तथा तारी नाम के देवी-देवताओं के लिए दिए जाते थे। ये देवता भूमि की उत्पादिका

मातृ-शक्ति के प्रतीक होते हैं। थर्स्टन महोदय ने शोध करके इस बलि के आरम्भ का यह कारण बताया है कि एक भूमि दलदल पड़ी हुई थी, लोगों को बड़ा कष्ट था। अन्न उत्पन्न कैसे हो ? एक बार एक स्त्री उस दलदल के पास एक पेड़ की कोई शाखा तोड़ने गयी। उसका हाथ उस पेड़ के चिरे हुये भाग में दब गया और उससे खून की कितनी ही बूँदें दलदल में गिर पड़ीं। लोगों ने देखा कि जहाँ खून की बूँदें गिरी थीं वह भूमि सूख गयी है और काम के योग्य हो गयी है। इस घटना ने उन्हें यह विश्वास करने के लिए प्रेरित किया कि भूमि मनुष्य के रक्त की बलि चाहती है, और तब उन्होंने बड़ी धूमधाम से इस बलि का आयोजन किया। आज भी इस बलि के सम्बन्ध में कई बातें उस आरम्भ कालीन घटना से मिलती हैं। बलि का स्थान ऐसा ढूँढ़ा जाता है जहाँ भूमि फटी हुई हो, अर्थात् उसका मुँह खुला हुआ हो। बलि के लिए एक चिरा हुआ वृक्ष या लकड़ी का कुन्दा काम में लाया जाता है। और बलि-पात्र को उसकी दो शाखाओं में भींच दिया जाता है (कास्ट्स एंड ट्राइब्स आफ सदर्न इण्डिया)। यह आदिम मनुष्यों का विश्वास लोकवार्ता में अभी तक प्रचलित है और उनकी मनोवस्था का यथार्थ चित्र उपस्थित करता है। यहीं हमें विदित होता है कि मनुष्य बलि का मूल कारण क्या था और क्यों वह प्रचलित हुई ? अब यदि इस बलि का इतिहास देखा जाय तो विदित होगा कि विविध जातियों में संसार भर में यह कुछ न कुछ ऐसे ही रूप में प्रचलित है। पर इसका विकास रुक गया। यह एक जाति की देन थी। दूसरी जाति ने उसे ग्रहण कर उसे अपना जैसा रूप दिया। वेदों में शुनःशेप और वरुण की घटना इस भारतीय आदिम जातियों की मानव-बलि के विरोध में हुई होगी। शुनःशेप की बलि देने के लिए जो तर्क और युक्तियाँ आर्य गणों ने दी हैं और जिस प्रकार शुनःशेष से कहा है कि "हमने तो तुम्हें तुम्हारे पिता से लिया है। दोष तुम्हारे पिता का है," वह सब अनार्य मनुष्य-बलि के अनुष्ठान में भी मिलता है। वेदों में इस प्रकार आदिम मानव-बलि के अनुष्ठान का विरोध है। वेदों में यद्यपि मानव-बलि के विरोध का भाव प्रधान है, फिर भी आदिम मानव के भावों के लक्षण उसमें अवश्य विद्यमान हैं। हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित के स्थान पर शुनःशेप ग्रहण किया जाता है। क्यों ऐसा सम्भव हुआ ? अजीगर्त से क्रय कर लेने पर बिना इस कल्पना के कि

रोहित का ही रूप शुनःशेप है। वरुण का उसकी बलि से ही सन्तुष्ट होने का कोई आधार नहीं है। यहाँ धार्मिक अनुष्ठान में अनुकरणात्मक टोने (इमीटेटिव मैजिक) का रूप विद्यमान है। आदिम मनुष्यों में जहाँ एक यह भाव मिलता है जो ऊपर बताया जा चुका है, कि वह अपने जैसे रूप के अनुरूप ही सृष्टि को समझता है, वहाँ एक भाव यह भी मिलता है जो फ्रेजर महोदय ने स्पष्ट किया है कि वह प्रकृति और परा-प्रकृति में अन्तर नहीं कर पाता :

"अधिक सभ्य जातियों द्वारा प्राकृतिक तथा परा-प्राकृतिक में जो अन्तर साधारणतः किया जाता है, उसे असभ्य (सैवेज) नहीं कर सकता। उसके लिए एक बड़ी सीमा तक विश्व संचालन परा प्राकृतिक प्रतिनिधियों द्वारा होता है अर्थात् उन व्यक्तित्वधारी प्राणियों द्वारा, जो उसके अपने जैसे मनोवेगों तथा प्रेरणाओं के वश कार्य करते हैं, जो उनकी पुकार पर उनकी ही भाँति करुणा से द्रवित होते हैं, उनको ही भाँति आशाओं तथा आशंकाओं से स्पंदित रहते हैं। इस प्रकार उद्भावित विश्व में उसे अपने हितार्थ प्रकृति की गति को अपनी शक्ति से प्रभावित करने की सीमा ही नहीं दीखती।" (दि गोल्डन बाउ, पृ० ६)

आदिम मनोवृत्ति का विकास—इस प्रकार परा-प्रकृति की असीम शक्तियों को अपने द्वारा परिकल्पित तथा सञ्चालित समझने की धारणा उसमें इतनी बद्धमूल हो जाती है कि वह अपने को ही सर्वशक्तिमान समझने लगता है। "यह एक मार्ग है जिससे नर-नारायण (मैन-गाड) का भाव प्राप्त होता है" (वही)। अन्य प्रकार से भी आदिम मानव इस भावभूमि पर पहुँचता है। जहाँ आदिम मनुष्य यह मानता था कि आत्मिक शक्तियों से (अभिप्राय परा-प्राकृतिक से है) जगत परिव्याप्त है, वहाँ वह सहानुभूतिक टोने (सिम्पथेटिक मैजिक) में भी विश्वास करता था। उसका यह विश्वास दो सिद्धान्तों पर निर्भर करता था : १—समान से समान उत्पन्न होता है, दूसरे शब्दों में कार्य कारण के ही अनुरूप होता है। इसी विश्वास के आधार पर मानव यह मानता रहा है कि यदि वह किसी का विशेष रूप से अनुकरण करे तो वह जिस रूप में अनुकरण कर रहा है उसी रूप में अनुकरणेय को करने के लिए विवश कर देगा। इसी सिद्धान्त पर अनुकरणात्मक टोना चलता है। किसी व्यक्ति का पुतला बना

कर उसे मारने का उद्योग इसी का परिणाम है। २—जो वस्तुएँ पहले कभी सम्पर्क में रही हैं, पर अब उनका विच्छेद हो गया है, वे एक दूसरे पर वैसा ही प्रभाव डालती हैं जैसा वे परस्पर सम्पर्क में रहने पर डालतीं। यहाँ पर भी सहानुभूतिक टोने का अस्तित्व है। परस्पर एक अनुल्लंध्य सहानुभूति इन पदार्थों में हो जाती है। फलतः ऐसे विश्वास प्रचलित हैं कि बालक के दूध के दाँत उखड़ने पर चूहे के बिल में डाल देने चाहिये, इससे चूहे के जैसे दाँत निकलें। यह विश्वास केवल भारत में ही नहीं, संसार के कितने ही भागों में है। इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकवार्ता में आदिम मनोवृत्ति का अवशेष आज भी विद्यमान है। उसके रूप का विकास कैसे-कैसे हुआ है, इसको संक्षेप में यहाँ यों दे सकते हैं—

१—आदिम मानव की प्रकृति से सम्पर्क, २—प्रकृति में अपनी ही प्राण-प्रतिष्ठा, ३—प्रकृति में परा-प्रकृति का आरोप, ४—परा-प्रकृति की अपने रूप में परिकल्पना, ५—प्रकृति की परा-प्राकृतिक व्याप्ति के कारण कार्य-कारण और अंश-अंशी की घनिष्ठ प्रभावशीलता।

पहली अवस्था में मानव-प्रकृति का सम्बन्ध उत्पादिका मातृ-शक्ति और प्राकृतिक दिव्य रूपकों की कल्पना को जन्म देगा। दूसरी अवस्था में वह इन तत्वों में अपने जैसे जीवन-व्यापारों के अस्तित्व में विश्वास करता हुआ, प्रकृति के विविध उपादानों को प्राणवान परिकल्पित करेगा। इस परिकल्पना में पूर्व दिव्यता की प्रतिक्रिया परा-प्रकृति का भाव उदय कर देगी। यह प्रकृति के परे किसी कर्तृत्व शक्ति में विश्वास पैदा कर देती है। तब उस परा-प्रकृति की वह अपने अन्दर परिकल्पना करने लगता है। वह अपने में असीम शक्ति मानने लगता है। इस प्रकार प्रकृति, परा-प्रकृति और पुरुष में एक पारस्परिक व्याप्ति का भाव स्थापित हो जाता है। इससे कारण और कार्य के साम्य, तथा अंश-अंशी की प्रेमविषयक घनिष्ठता परिपक्व होती है। इसी में टोने-टोटके का मूल है।

प्रकृति के सम्पर्क से आदिम मानव के मानस में दो तत्त्वों से दो प्रकार की मानसिक स्थिति हो जाती है—वह प्रकृति के उत्पादक व्यापारों को देखता है। पृथ्वी को फोड़कर निकलने वाले हरे और दृढ़ अंकुर उसका ध्यान आकर्षित करते हैं। बड़े-बड़े वृक्ष, अपनी-

अपनी शाखाओं और फलों के साथ पक्षियों के कुटुम्बों को आश्रय दिये हुए, उसमें श्रद्धा का भाव उदय करते हैं। इनके पास वह जाता है, उन्हें देखता है, इनका आन्तरिक रहस्य नहीं समझ पाता। इस तत्त्व से उसका मानस प्रकृति की उत्पादिका-शक्ति को मानने लगता है। उसका अपने मन में स्थित काम-विकार भी शरीर की इन्द्रियों को विशेष तरङ्गित करके, उसकी चेतना में उस व्यापार के प्रति विशेष रहस्य और श्रद्धा को जन्म देता है। इस समस्त निजी-सम्पर्क के जगत में वह प्रकृति-पूजा को प्रतिष्ठित कर देता है। वृक्ष तथा पशु-पक्षियों और मानव के जगत में उसे कोई विभेद और विभाजन करने वाली भित्तियाँ समझ में नहीं आतीं। वह अपने पूर्व उन्हें जगत में विद्यमान देखता है, और उनसे अपनी उत्पत्ति तक मानने लगता है। जिस वृक्ष, पशु तथा पक्षी का उससे निकट और अधिक सम्पर्क होता है, उसी में वह अपने पूर्व-पुरुष की धारणा बना लेता है। वह उसके लिए किसी न किसी रूप में वर्जित भी हो जाता है। दूसरा तत्त्व सौर-मण्डल और आकाश के तत्त्वों और उनके व्यापारों का है। वह सूर्य, चन्द्र, तारा, उषा, सन्ध्या, इन्द्र-धनु, बादल, विद्युत, जल-वर्षा, घन-गर्जन आदि को देखता है, पहले अवाक् होता है, फिर उनके रहस्य को अपनी आदिम बुद्धि से हल करता है। ये व्यापार परा-प्रकृति के भाव को विशेष जागृत करते हैं। वह इन सौर-मण्डल के व्यापारों को समझने के लिये विविध अटकलें लगाता है और उनके व्यापारों की कथाएँ कहता है। उनमें पूजा का भाव भी उदय होता है। प्रकृति के पार्थिव-व्यापार और सौर व्यापारों का वह सम्बन्ध जो उत्पादन की प्रक्रिया का अंश बनता है, पूजा और बलि का इष्ट बन जाता है। इसमें लोक-धर्म, विविध टोने-टोटके, और तन्त्र का मूल सन्निहित है। उत्पादिका-प्रक्रिया के अतिरिक्त आकाश और सौर जगत के व्यापारों में अध्यात्म का मूल विदित होता है। यह दिव्य भावों से देवताओं के अस्तित्त्व का सुझाव करते हैं, उनके व्यापारों की एक परम्परा निर्धारित कर देवताओं की गाथाओं का निर्माण करते हैं। यही गाथाएँ समय पाकर साधारण कहानियों के रूप में चल पड़ती हैं। दिव्य अंश का लोप हो जाता है, साधारण जन का भाव रह जाता है। इसे इन्द्र, अग्नि, उषा, सरमा, वृत्र-पणि की वैदिक कल्पना से लोक-कहानियों के विकास के उदाहरण से समझा जा

सकता है।

पहली दृष्टि में उषा है, सूर्य है। सूर्य उषा का प्रेमी, उसका पीछा करता आता है। रात्रि है, जो उषा को मुक्त नहीं करती, अथवा अपने चंगुल में फाँस रखना चाहती है। दूसरी बार उषा 'सरमा' बन जाती है, सूर इन्द्र हो जाता है। उषा को प्रातःकाल बन्धन में रखने वाले बादल वृत्र बन जाते हैं। अब एक कहानी का पूर्व रूप खड़ा हुआ। इन्द्र उषा को प्रेम करता है, उसे उपहारों से समृद्ध करता है। उषा वृत्र की बन्दिनी थी। इन्द्र ने उसके बन्धनों को नष्ट कर दिया, उषा मुक्त हुई। वृत्र का रूप दानव का रूप हो गया। वह अहि-सर्प बन गया। इन्द्र ने उसे मार डाला और जल को मुक्त कर दिया। वृत्र-विनाश में इन्द्र का साथ अग्नि ने भी दिया। अग्नि भी अब देव हो गया। अन्धकार को पणि का नाम मिला। पणि ने सरमा को फुसलाया, उसे इन्द्र से अपने अधिकार में कर लेना चाहा, पर वह मारी गयी इन्द्र के वाण से।

इन्द्र का मित्र अग्नि वृत्र-संहार में सहयोग देता है। वह कभी सोता नहीं, वह सबको कठिनाइयों से बचाकर ले जाता है। वह सर्वज्ञ है। समय बीतने पर इन्द्र अग्नि जैसे सीधे दिव्यपात्रों का स्थान राम-लक्ष्मण अथवा कृष्ण बलदेव ने ग्रहण किया। यह विशिष्ट समुदाय में हुआ, साधारण लोक इस व्यापार को अपनी साधारण वृत्ति से साधारण कहानी का रूप देने लगा।

अन्य प्रभाव—यह तो लोकवार्त्ता का मूल-मानस है, किन्तु जैसा गोम्मे महोदय मानते हैं लोकवार्त्ता पर नृतत्वों का प्रभाव पड़ता है, और वे लोकवार्त्ता में नयी मानसिक स्थितियों को समाविष्ट कर देते हैं। अतः वर्तमान लोकवार्त्ता में केवल आदिम असंस्कृत मानव का विश्वास और विचार मूलतः तो विद्यमान मिलेगा, पर वह दूसरे तत्वों से भी अनुप्राणित प्रतीत होगा। हमें सर्वत्र ही लोकवार्त्ता में कई मानसिक धरातल मिलते हैं। ब्रज में जन्ति के गीतों में से एक गीत में यह आया है कि एक वरध के मूत्र का हाथ से स्पर्श हो जाने से नन्द गर्भवती हो गयी। यह विश्वास काफी पुराना है। जिस युग में मानव उत्पादन की कार्य-कारण प्रणाली का यथार्थ ज्ञान नहीं रखता था, उस समय इस भाव की कल्पना हुई होगी। एक कहानी में किसी

दानव के प्राणों के अन्यत्र किसी पक्षी में रहने का विश्वास मिलता है। उस पक्षी अथवा मक्खी को मार डालने पर वह दानव भी मर जाता है। एक नायक के प्राण उसकी तलवार में हैं। रक्त में प्राण रहने के विश्वास ने उस कहानी को जन्म दिया होगा जिसमें 'गौरा पारवती' उँगली चीर कर एक बूँद मुँह में डाल कर मृतक को जीवित कर देती हैं। यही रक्त की बूँद आगे चलकर 'अमृत' का नाम पा लेती है। अब उँगली में रक्त की बूँद नहीं अमृत है। रक्त की प्राणप्रदा उत्पादिका शक्ति का विश्वास अत्यन्त प्राचीन है। इस प्रकार विविध काल और जाति के मनोविज्ञान ने लोकवार्त्ता को निरन्तर प्रभावित किया है।

लोकवार्त्ताकार ने अपने विश्वासों के अनुरूप पहले वस्तु को स्थूल रूप में विस्तार से देखा है फिर उसके प्रतीक को ही रखा है। प्रतीक ने प्रसङ्गानुकूल अर्थ बदले हैं और वार्ता का रूप बदल दिया है। अतः लोकवार्त्ता का अध्ययन इतना ही रोचक है जितना कि भाषा-विज्ञान का, वरन् लोकवार्त्ता का अध्ययन उससे भी अधिक रोचक है, क्योंकि यह शुष्क नहीं हो पाता। जन-जीवन की विविध अद्भुत और आश्चर्यजनक बातें सामने आती हैं। लोकवार्त्ता केवल रोचक ही नहीं उपयोगी भी है।

लोकवार्त्ता की प्रतिष्ठा—'जन' की आजतक प्रायः उपेक्षा रही है। उसका यथार्थ परिचय वार्त्ता में ही है। जन-जीवन को सुधारने के लिए आज तक कितने ही आन्दोलन हुए हैं, उनमें जन-जीवन की उपेक्षा तो मिलती ही रही है, अत्याचार भी विशेष रहा है। 'जन' को समझने के लिए लोकवार्त्ता का ज्ञान परमावश्यक है। बिना उसके 'जन' की मानवीय आवश्यकताओं को ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। साधारण जन की समस्याएँ सामाजिक निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। यही नहीं समाज के मूल-तत्वों का ऐतिहासिक मूल्याङ्कन बिना लोकवार्त्ता के असम्भव है। अब तक इतिहास की प्रगति बाह्य-जीवन के स्थूल घटनाचक्र को लेकर हुई। अब इतिहास मानव के आन्तरिक निर्माण की कहानी होने जा रही है। अब लोकवार्त्ता ही उन शक्तियों का संघर्ष प्रकट करेगा जिनसे वह अन्तर्निर्माण हुआ है।

फ्रेजर महोदय ने बताया है कि—Yet of the benefactors whom we are bound thankfully to commemorate, many, perhaps most, were savages. For when all is said and done our resemblances to the savage are still far more numerous than our differences from him, and what we have in common with him, and deliberately retain as true and useful, we owe to our savage forefathers who slowly acquired by experieence and transmitted to us by inheritance those seemingly fundamental ideas which we are apt to regard as original and intuitive. (The Golden Bough, P. 449)

सामाजिक संविधान और रीति-रिवाजों की जटिल रूपरेखा का स्पष्टीकरण लोकवार्त्ता से ही हो सकता है। सभ्यताओं के विविध सङ्घर्ष कैसा प्रभाव जन-जीवन पर डालते हैं यह भी इसी से प्रतीत हो सकता है। लोकवार्त्ता का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है और किसी सीमा तक जातीय लक्षणों से युक्त रहता है जिससे स्थूल ऐतिहासिक संकुचित सीमाओं के वैविध्य में से मानव के ऐक्य का रहस्य झाँकता मिलता है। समाज का आन्तरिक विधान जिन तीलियों पर बना है उनकी मौलिक व्याख्या लोकवार्त्ता के पास ही है। इस प्रकार लोकवार्त्ता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विज्ञान माना जा सकता है।

इस क्षेत्र के अग्रणी—फलतः लोकवार्त्ता विज्ञान और लोकवार्त्ता साहित्य का अध्ययन एक उपयोगी कार्य है। विविध सभ्यताओं, संस्कृतियों और समाज-निर्माण के धरातलों का यथार्थ निर्णय इस विज्ञान के द्वारा हो सकता है। तभी आज देश-विदेश में इस 'विज्ञान' की ओर अधिकाधिक दृष्टि जा रही है और अधिकाधिक इस पर अध्ययन और मनन हो रहा है। पर लोकवार्ता पर आधुनिक काल में ही ध्यान दिया गया हो ऐसी बात नहीं है। पाश्चात्य-जगत में लोक-जीवन और उसकी अभिव्यक्तियों की ओर सत्रहवीं शताब्दी में ही आकर्षण हुआ था। जोह्न औब्रे (John Aubrey) ने १६८७ में 'रिमेन्स ऑव जैंटिलिस्मे एण्ड जुडाइजम' पर जो नोट लिखे थे और जो 'करोलाइन एण्टिक्वेरियन' (The Caroline

Antiqarion) में १८८१ में छपे थे, वे यहूदियों तथा अन्य साधारण जन की लोकवार्त्ता से सम्बन्धित थे। विशप पीरी (Perey) ने १८ वीं शती में 'रेलिक्स आव एन्श्येण्ट इंगलिश पोइट्री' में लोकगीतों को ही स्थान दिया था। १६ वीं शती के पूर्व भाग में सर वाल्टर स्काट के प्रभाव से लोक-गीत और काव्यों में रुचि अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। १७७७ में जोहन ब्राण्ड की 'आवजर्वेशन आन दी पोपुलर एण्टिक्विटीज आव दि ब्रिटिश आइल्स' प्रकाशित हुई, १८२५ में होन की 'ऐव्री डे बुक' और १८२६ में 'ईयर बुक' भी। इसमें भी लोक-वार्त्ता सम्बन्धी साहित्य था। किन्तु इस दिशा में दो जर्मन बन्धुओं का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये हैं ग्रिम बन्धु, इनकी 'किण्डर अण्ड हउसमॉर्खे' १८१२ में तथा 'तेउत्स्के माइथालोजी' १८३५ में निकली। इनके इन उद्योगों से लोकवार्त्ता सम्बन्धी प्रयत्नों को वैज्ञानिक धरातल मिला। इन्होंने लोकवार्त्ता, कहानियों और लोक-विश्वासों तथा मूढ़ ग्राहों के अध्ययन का आधार वैज्ञानिक ही नहीं बनाया, वरन् तत्सम्बन्धी समस्याओं को संकुचित स्थानीय दृष्टि से न देखकर उदार और विस्तृत दृष्टि से देखा। इस दृष्टि से ग्रिम बन्धुओं का लोकवार्त्ता में बहुत महत्त्व है। वे प्रथम व्यक्ति माने जा सकते हैं जिन्होंने इसको वैज्ञानिक रूप दिया। इस उद्योग के उपरान्त लोकवार्त्ता के अध्ययन की ओर बहुत प्रवृत्ति बढ़ी। संस्कृत का आविष्कार हो चुका था। वेदों को प्राचीनतम साहित्य माना जाने लगा था। इसी वैदिक आधार पर लोकवार्त्ता के अध्ययन का वैज्ञानिक अनुसन्धान किया गया। इस अध्ययन-प्रणाली का सबसे अधिक पोषण मैक्समूलर ने किया था। वैदिक वार्त्ता की दृष्टि से विविध लोकवार्त्ताओं के अध्ययन की प्रणाली भाषा-विज्ञान पर ही विशेष निर्भर करती थी।[1] विद्वानों ने सिद्ध किया है कि वे भाषा-वैज्ञानिक मौलिक निष्कर्ष भ्रामक थे और उनसे वार्त्ता के मूल का उचित अनुसन्धान नहीं हो सकता था। तब इस क्षेत्र में ई० बी० टेलर अवतीर्ण हुए और उनके पश्चात् सर जेम्स फ्रेजर[2]। फ्रेजर महोदय ने अपने 'दी गोल्डन बो' के पहले

[1] इस सम्बन्ध में मैक्समूलर के ग्रन्थों के अतिरिक्त रेव० सर जी० डबल्यू० काक्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी 'दी माइथालाजी आव आर्यन नेशन्स' १८७० में प्रकाशित हुई।

[2] ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका।

संस्करण की भूमिका में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि "डा० ई० वी० टेलर के ग्रन्थों को पढ़ने से ही मुझमें समाज के प्राक् इतिहास में रुचि जागृत हुई थी और उनके ग्रन्थों ने ही मेरे मानस-चक्षुओं के समक्ष वह लोक प्रस्तुत कर दिया था जिसका मैं स्वप्न भी नहीं देखता था।" पर फ्रेजर महोदय ने साथ ही लोकवार्त्ता के दो और स्तम्भों का उल्लेख भी किया है। एक है मन्नहार्ट और दूसरे हैं डबल्यू० रावर्टसन स्मिथ। 'मन्नहार्ट' ने तो इस शास्त्र और विज्ञान के लिए अपना जीवन ही अर्पित कर दिया था। उन्होंने जो कुछ लिखा था वह सब उनके जीवन-काल में प्रकाशित नहीं हुआ। उनके लिखे सब अप्रकाशित ग्रन्थ बर्लिन के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जमा कर दिये गये थे। १८७५ और १८७७ में दो छोटी-छोटी रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं। फ्रेजर ने 'मन्नहार्ट' की कृतज्ञता स्वीकार की है। पर डब्लू० रावर्टसन स्मिथ की बहुत प्रशंसा की है। इन्हीं स्मिथ महोदय के प्रभाव से फ्रेजर महोदय ने लोकवार्त्ता के विधिवत् अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त की। इसी प्रेरणा का परिणाम था लोकवार्त्ता का महान ग्रन्थ 'दी गोल्डन बो', जो तीन भागों में १८९० में प्रकाशित हुआ। इसी भूमिका में स्पष्ट शब्द में फ्रेजर महोदय ने लिखा है—

"अतः आर्यों के आदिम धर्म के अनुसन्धान का कार्य या तो खेतिहरों (Peasantry) के मूढ़ग्राहों, विश्वासों और रीति-रिवाजों से आरम्भ होना चाहिए, या उनका उपयोग करते हुए निरन्तर उसका संशोधन और नियन्त्रण होते रहना चाहिए। जीवित प्रथाओं की साक्षियों के समक्ष पूर्वकालीन धर्म के विषय में प्राचीन ग्रन्थों की साक्षी का विशेष महत्त्व नहीं है।"[1] फ्रेजर महोदय की दृष्टि में ग्रन्थ-साहित्य विचार-प्रवृत्ति को इतनी तीव्र गति प्रदान कर देता है कि वह जन के मौखिक साधन से प्रचारित मन और विश्वासों को बहुत पीछे छोड़ जाता है। इन लोकवार्त्ताओं के आरम्भिक विचारकों ने अपने से पूर्व की प्रणाली को बदल दिया। अब लोकवार्त्ता की व्याख्या के लिए वेदों की ओर देखने की आवश्यकता नहीं रह गयी। लोकवार्त्ता के मूल का अनुसन्धान अशिक्षितों, असभ्यों और हबशियों के आचार-विचारों और उनकी प्राक् ऐतिहासिक परिस्थितियों और आवश्यताओं में किया जाने लगा। इस प्रकार अनुसन्धान की दिशा

[1] गोल्डन बो, प्रथम संस्करण की भूमिका।

बदली। फिर भी पर्याप्त सङ्घर्ष दोनों मतों में रहा। इस समय तक सभी क्षेत्रों में लोकवार्त्ताओं का सङ्कलन करने का उद्योग हो उठा था। फ्रेजर ने सभी प्रमुख देशों के निम्नस्तर के आचारों, विश्वासों, मूढ़ग्राहों का संग्रह करके उनकी तुलना के आधार पर गहरे निष्कर्षों की स्थापना की है। फ्रेजर महोदय के उद्योगों के फलस्वरूप लोकवार्त्ताशास्त्रियों की दृष्टि आर्य-क्षेत्र से बाहर भी गयी और विशेष विस्तृत हुई। ऐंड्र लैंग ने इस विचार को और भी अधिक फैलाया। अब तक साधारण जन में धर्म के जो रूप मूढ़ग्राह आदि के रूप में मिलते थे वे 'आर्य धर्म' के अवशेष माने जाते थे। अब यह विदित हुआ कि संसार भर के आदिम मनुष्य जातियों में वे सर्वत्र विद्यमान हैं। तब यह शोध करने की ओर प्रवृत्ति हुई कि इन सब का मूल क्या एक स्थान से है। यह समझा जाने लगा कि अलग-अलग ही सबने सामूहिक मनोविज्ञान की दृष्टि से एकसे भावों को जन्म दिया। इस सम्बन्ध में प्रायः तीन सिद्धान्त प्रस्तुत हुए—

१—अटलाण्टिस नामक महाद्वीप से, जो अब नष्ट हो चुका है, एक सभ्यता चली, और ये सब उसी एक सभ्यता के अवशेष हैं।

२—मिश्र की छठी पीढ़ी से इनका आरम्भ हुआ।

३—ये लोकों द्वारा सामूहिक निर्माण है। इस मत को फ्रांस के विद्वानों से विशेष पुष्टि मिली। दुरखीम (Durkheim) और उसके शिष्यों ने लोकवार्ता को 'सामूहिक मनोविज्ञान' के सिद्धान्त से सिद्ध करना चाहा। आजकल यह माना जाने लगा है कि लोकवार्ता की उपलब्ध समस्त सामग्री में जो अवशेष मिलते हैं, वे सभी समान रूप से प्राचीन महत्त्व के नहीं हैं। बहुत कुछ अत्यन्त प्राचीन हैं, तो बहुत कुछ नया भी है। यह अवस्था लोकवार्ता की हमें पाश्चात्य क्षेत्र में मिलती है। इसको हम कई स्थितियों में से विकसित होता पाते हैं।

१—संग्रह की स्थिति—विविध क्षेत्रों में उन्हीं क्षेत्रों की वार्ताएँ संग्रह की गयीं।

२—स्थानीय दृष्टि से ही उनका अध्ययन।

३—लोकवार्ता का वैदिक दृष्टि से अध्ययन, आर्यजाति के धर्म तक सीमित। इस स्थिति में लोकवार्ता माइथालाजी रही,

उसका साधन भाषा-विज्ञान मात्र था।

४—लोकवार्ता का वैज्ञानिक निरूपण और उसकी वैदिक आधार से च्युति। अब वह धर्म और माइथालाजी की व्याख्या न रही, समस्त जन-जीवन और उसकी प्राक् ऐतिहासिक परम्परा का शोध बन गयी। इस स्थिति में लोकवर्ता की परीक्षा के साधन नृ-विज्ञान और समाज-की योग्यतम सामग्री थी।

भारत में लोकवार्ता-क्षेत्र में कार्य—जिस युग में यह समस्त लोकवार्ता सम्बन्धी उद्योग आरम्भ और विकसित हुआ, वह विदेशों से भारत का घनिष्ठ सम्पर्क बढ़ने का भी युग था। संस्कृत का आविष्कार पाश्चात्य क्षेत्र के लिए हो चुका था, भारत में अँग्रेजों के प्रभुत्व की जड़ जम चुकी थी। इन्हीं पाश्चात्य विद्वानों ने पहले भारत की लोकवार्ता पर दृष्टिपात किया। टाड महोदय को सबसे पहले लोक-वार्ता संग्राहकों में स्थान दिया जा सकता है। इन्होंने 'एनाल्स एण्ड ऐंटिकटीज़ आव राजस्थान' में राजस्थान के इतिहास की जितनी सामग्री एकत्रित की है, उतनी ही लोकवार्ता भी। प्रचलित विश्वासों और रीति-रिवाजों का उल्लेख उसमें हुआ है। आर० सी० टेम्पल महोदय ने 'लीजेण्ड्स आव दी पञ्जाब' में लिखा है कि—"किन्तु गत ५० वर्षों में—अर्थात् जब से कि टाड ने अब तक प्रामाणिक माना जाने वाला ग्रन्थ राजस्थान पर लिखा—स्लेवों के गीतों और लोक-वार्ताओं का वृहत् अनुलेखन लेखकों के बाद लेखकों ने कर डाला है। रूसी, पोली, श्वेत, क्रोशीय सर्वों, मोरावी, वेंडी, रूथेनी तथा अन्यों पर पूरा पूरा काम हुआ है। भारत में, किम्बहुना, जहाँ के शासक अपनी ऊँची बुद्धि पर, अपने भेजे हुए प्रतिनिधियों की ऊँची शिक्षा पर तथा शासन के ऊँचे लक्ष्यों पर गर्व करते हैं, वहाँ यह कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है।" टेम्पल महोदय का कहना यथार्थ ही था। १८८४ तक जितना काम भारत से बाहर के देशों में लोकवार्ता के क्षेत्र में हो चुका था, उतना भारत में नहीं हुआ था। यथार्थ में इस दिशा में इन्हीं टेम्पल महोदय के उद्योग से विशेष प्रगति हुई। १८६६ में इन्होंने रेवेरेंड एस० हिस्लप के लेखों का प्रकाशन किया। हिस्लप के लेख मध्यभारत की आदिम जातियों के सम्बन्ध में थे। इन्हीं में कहानी उसके मूल के साथ दी गयी थी। हिस्लप महोदय का अनुकरण भी

नहीं हो सका और वह उद्योग लोकप्रिय भी नहीं हुआ। इस लेखक की लेखन-शैली विशेष विद्वतापूर्ण थी, वह रोचक न हो सकी। १८६८ में मिस फ्रेयर की 'ओल्ड डैकन डेज' नाम से कहानियों का एक छोटा सा रोचक संग्रह निकला। १८७१ में डाल्टन ने 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बैंगाल' प्रकाशित की। डैमण्ट ने पुरातत्व और इतिहास के सुप्रसिद्ध पत्र 'इण्डियन ऐंटिक्वेरी' में बंगाल की लोककथाओं को प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। १८८३ में रेवरेन्ड लालबिहारी दे की 'फोक टेल्स ऑव बैंगाल' निकली। १८८४ में रिचर्ड टेम्पल महोदय की 'लीजेण्ड्स ऑव दी पञ्जाब' तीन भागों में प्रकाशित हुई। १८८५ में श्रीमती एफ० ए० स्टील के सहयोग से टैम्पल महोदय ने 'वाइड अवेक स्टोरीज' नाम से कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया। नरेश शास्त्री ने 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' में जो कहानियाँ छपवाई थीं उनका संग्रह भी 'फोकलोर इन सदर्न इण्डिया' नाम से प्रकाशित हुआ। सन् १८६० में डब्ल्यू क्रुक ने 'नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज़' नाम का पत्र प्रकाशित किया था। कुछ वर्षों बाद रेवरेंड ए० कैम्बल तथा रेवरेंड जे० एच० नोलीज ने संथालों और काश्मीर की कहानियों का संग्रह करने में हाथ लगाया। आर० एस० मुकर्जी की 'इण्डियन फोकलोर', श्रीमती ड्रकौर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स', रेवरेंड सी० स्विनर्टन की 'रोमाण्टिक टेल्स फ्रोम पञ्जाब' नाम के ग्रंथों ने लोकवार्ता की महत्व-पूर्ण सामग्री दी। १६०६ में जी० एच० बोम्पस ने रेवेरेंड ओ० बौडिङ्ग द्वारा संकलित संथाली कहानियों का अनुवाद प्रकाशित कराया। एम० कुलक की 'बङ्गाली हाउस होल्ड टेल्स' तथा शोभनादेवी की 'ओरिएण्ट पर्ल्स' भी महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। पार्थर का 'विलेज फोक-टेल्स ऑव सीलोन' (तीन भाग) अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पेंजर द्वारा संपादित टॉनी के कथा-सार-सागर का लोकवार्ता में एक महत्व-पूर्ण स्थान है। कथाशास्त्र का यह एक अनुपम ग्रन्थ है। शरतचन्द्र राय भारत के प्रतिष्ठित नृ-शास्त्र वेताओं में हैं। उनके ग्रंथों में भी कुछ कहानियों का समावेश हुआ है। ग्रियर्सन के नृ-अध्ययनों में भी एक दो कहानियाँ आगयी हैं। रामास्वामी राजू का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने १०० भारतीय कहानियों का संग्रह भेंट किया है जो 'इण्डियन फैबिल्स' के नाम से ज्ञात है। जी० आर० सुब्राह्मिया पंतालु की 'फोकलोर ऑव दि तेलगूज' में साहित्यिकता विशेष है। 'मॉरिस

ब्लुमफील्ड, नार्मन ब्राउन, रूथ नार्टन, एम० बी० एमेन्यू जैसे अमरीकन विद्वानों का नाम भी उल्लेखनीय है, इन्होंने लोक-कथाओं के अध्ययन की एक नितान्त नवीन प्रणाली स्थापित की है।[1]

हिन्दी और उसकी बोलियों में—आजकल इस दिशा के सर्वश्रेष्ठ नृविज्ञान-वेत्ता डा० वैरियर एलविन हैं, जिनके गीत और कहानियों के कई रोचक संग्रह हाल ही में प्रकाशित हुए हैं। यहाँ तक उन उद्योगों का वर्णन हुआ है जो अँग्रेजी माध्यम से हुए हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि ये ही भारत में लोकवार्त्ता के यथार्थ अग्रणी और प्रवर्त्तक हैं। इनके दिशा निर्देश से ही भारत के अन्य भागों में भी इस दिशा में प्रयत्न आरम्भ हुए। किन्तु ये तो कहानियों के संग्रहकारों के ही नाम हैं। लोकवार्ता के अन्तर्गत लोकगीतों का भी संग्रह हुआ। इस दिशा में सी० ई० गोवर का नाम नहीं भूला जा सकता। उन्होंने 'फोक सांग्स आव सदर्न इण्डिया' नाम का संग्रह १८७२ में प्रकाशित कराया। १८८२ में तोरूदत्त ने 'एंशयन्ट वैलेड्स ऐण्ड लीजेण्ड्स आव हिन्दुस्तान' प्रकाशित कराया। उनका भी नाम उल्लेखनीय है। वस्तुतः टेम्पल महोदय की 'लीजेन्ड्स आफ दी पंजाब' भी गीत-संग्रह ही है। अब इनके निर्देश से अथवा आवश्यकता अनुभव करके जो विविध उद्योग हुए उन पर दृष्टि डाल लेने की आवश्यकता है। बँगला में क्षितिमोहनसेन की 'दारामणि' उल्लेखनीय है। मैमनसिंह गीतिका भी बँगला का ही संग्रह है। गुजराती के झवेरचन्द मेघाणी की 'रढियाली रात, ३ भाग', रणजीतराव मेहता की 'लोकगीत', नर्मदाशङ्कर लालशङ्कर की 'नागर स्त्रियों माँ गवाता गीत', पञ्जाबी में सन्तराम के पञ्जाबी गीत, मारवाड़ी में मदनलाल वैश्य की मारवाड़ी गीतमाला, निहालचन्द वर्मा की मारवाड़ी गीत, खेताराम माली की मारवाड़ी गीत संग्रह, ताराचन्द ओझा की मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह उल्लेखनीय हैं। पञ्जाब ने तो देवेन्द्र सत्यार्थी जैसा लोकवार्त्ता संग्रहकार प्रदान किया है। इसने भारत भर में घूम-घूमकर बड़े अध्यवसाय से अमूल्य लोकवार्ता की सामग्री एकत्रित की है। सैंट निहालसिंह की दृष्टि लोकवार्ता पर पत्रकार की दृष्टि से ही गयी है, वह विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। हिन्दी में इस उद्योग का श्रीगणेश

[1]—देखिए, 'फोकटेल्स आव महाकौशल' की भूमिका तथा लोकवार्ता वर्ष २ अङ्क १ (जनवरी) में उस भूमिका के आधार पर हिन्दी लेख।

मन्नन द्विवेदीजी ने 'सरवरिया' नाम की पुस्तिका से किया। सन्तराम जी के 'पञ्जाब लोकगीत' भी हिन्दी में सरस्वती द्वारा प्रकाश में आये। इन्होंने पं० रामनरेश त्रिपाठीजी को प्रोत्साहित किया। उन्होंने इस दिशा में घोर परिश्रम करके 'कविता-कौमुदी' पाँचवे भाग में ग्रामगीतों का सङ्कलन प्रस्तुत किया। उन्होंने यह बात स्पष्ट लिख दी है कि 'हिन्दी में इस रूप में मेरा यह पहला ही प्रयत्न है। इसलिये मुझे स्वयं अपना मार्ग-प्रदर्शक बनना पड़ा है। गीत-संग्रह का काम प्रारम्भ करने के पहले मैंने केवल स्व० मन्नन द्विवेदी की 'सरवरिया' नाम की पुस्तिका देखी थी। पर इस पुस्तिका में मुझे उल्लेख-योग्य कोई सहायता नहीं मिली। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और मेरे सहृदय मित्र लाला सीताराम बी० ए० से मैंने सुना था कि न्यसफील्ड साहब ने गीतों का एक संग्रह किया था, पर उसका अब पता नहीं है। कुछ अन्य अंग्रेजों ने भी यह काम किया है। पर उनकी कोई छपी पुस्तक मेरे देखने में नहीं आयी। इण्डियन ऐण्टीक्वैरी की पुरानी जिल्दों में ग्रामगीतों (Folk-songs) और गीत-कथाओं Folk-lores पर बहुत से लेख निकले हैं। पर मैंने उनमें से एक गीत भी अपनी पुस्तक में नहीं लिया।' इस प्रकार त्रिपाठीजी इस दिशा में हिन्दी के अग्रणी हैं। इधर इस दिशा में हिन्दी में अच्छा कार्य हो उठा है। राजस्थान की ओर सूर्यकरणजी पारीक, ठा० रामसिंह, श्री नरोतम स्वामी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पिछले दो व्यक्तियों ने 'राजस्थान के लोकगीतों' का अच्छा संग्रह प्रकाशित किया है। प्रो० कन्हैया लाल सहल को भी इधर विशेष रूचि है। नरोत्तम स्वामी आदि के उद्योग से बीकानेर राज्य से 'राजस्थान' पत्रिका अंग्रेजी के इण्डियन ऐंटिक्वैरी के आदर्श पर निकल रही है जिसमें पुरातत्व के साथ लोकवार्ता को भी स्थान दिया जाता है। मिथिला में रामइकबालसिंह 'राकेश' भी लोकवार्ता में व्रती हो गये हैं। उनके इस सम्बन्ध में विविध लेख— तथा 'विशाल-भारत' में प्रकाशित हुए हैं। 'श्यामाचरण दुबे' के छत्तीसगढ़ी लोकगीत प्रकाशित हुए हैं। भोजपुरी लोकगीतों का भी एक संग्रह हो चुका है। बुन्देलखण्ड में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के अभियान के पश्चात् जो स्थानीय साहित्यिक जागृति हुई उसके परिणाम स्वरूप चन्द्रभानु शर्मा, रामस्वरूप योगी, शिवसहाय चतुर्वेदी आदि अच्छे लोकवार्ता संग्रहकार सामने आये हैं। श्रीकृष्णानन्द गुप्तजी ने तो अँग्रेजी

'फोकलोर मैगज़ीन' के आदर्श पर 'लोकवार्ता' नाम की त्रैमासिक पत्रिका भी हिन्दी में निकालने का सफल आयोजन कर डाला है। इसको आज एक वर्ष तो पूरा हो गया है। इन्हें डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा प्रसिद्ध भारतीय नृविज्ञान वेत्ता डा० वैरियर ऐलविन का सहयोग भी प्राप्त है। 'ईसुरी के फाग' नाम की पुस्तक भी 'लोकवार्ता' परिषद् की ओर से गुप्तजी ने प्रकाशित करायी है। ये सभी उद्योग अत्यन्त श्लाघ्य हैं और लोकवार्ता के अध्ययन क्षेत्र को विस्तृत करने वाले हैं। इनमें यथार्थतः वैज्ञानिक उद्योग कम हुए हैं। ब्रजक्षेत्र में ब्रज-साहित्य-मण्डल ने लेखक की प्रेरणा और परामर्श से इस दिशा में वृहत सामूहिक उद्योग किया है। और इस पुस्तक में मण्डल के इस उद्योग का पूरा उपयोग किया गया है। इस प्रकार आज हम देखते हैं कि हिन्दी की विविध बोलियों में लोकवार्ता संग्रह का कार्य हो रहा है। हम राजस्थानी, बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, ब्रज, मेरठी आदि सभी बोलियों को हिन्दी की बोलियाँ मानते हैं।[1] इन सभी बोलियों में संग्रह का कार्य होने लगा है। इनका उल्लेख संक्षेप में ऊपर हो चुका है। जब इन सब बोलियों के लोकवार्ता साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो स्थानीय भेदों के अन्तर में विद्यमान सांस्कृतिक ऐक्य का अच्छा रूप प्रस्तुत होता है। यों तो लोकवार्ता का साम्य हमें संसार के विविध भागों में मिलता है, जिससे संसार भर के मानवीय ऐक्य का पता चलता है। किन्तु हिन्दी के क्षेत्र की लोकवार्ताओं का साम्य परस्पर में विशेष है।[2]

[1] मेरठ की कहावतें ना० प्र० पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं। बनारसी बोली पर भी एक अच्छा निबन्ध उक्त पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

[2] इस प्रबन्ध के प्रकाशित होने के उपरान्त लोक-साहित्य के अध्ययन को बहुत प्रोत्साहन मिला है। कितने ही विद्वानों ने इस क्षेत्र को लगन से अपनाया और अपने अध्ययन और अध्यवसाय से युक्त कितनी ही कृतियाँ हिन्दी में प्रस्तुत की हैं। ऐसे कुछ विद्वानों के नाम ये हैं--राहुल सांकृत्यायन, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, डा० उदयनारायण तिवारी, डा० अम्बाप्रसाद सुमन, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री रामनारायन उपाध्याय, श्री उमेशचन्द्र, श्री शिवपूजनसहाय, डा० दशरथ ओझा, श्री कृष्णदास, सीता बी. ए., दमयंती एम. ए., लीला प्रभाकर, नारायण सिंह भाटी, खेताराम माली, मदनलाल वैश्य, निहालचन्द वर्मा, ताराचन्द ओझा, जगदीश सिंह गहलोत, श्याम परमार, लक्ष्मी लाल जोशी, रतन लाल मेहता, मेनारिया, पं० गणेशदत्त इन्द्र, डबल्यू के० आर्चर, संकटाप्रसाद दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, नन्दलाल चत्ता, आदर्श कुमारी, यशपाल, लखन प्रताप उरगेश, विद्यावती कोकिल, गणपति स्वामी, श्री चन्द्र जैन, कोमल कोठारी, चन्द्रभान रावत। साथ ही कई संस्थाओं ने विशेषरूप से इसे लेकर कार्य किया है। भारतीय आकाशवाणी ने भी इस दिशा में नये आयोजन किये हैं।

दूसरा अध्याय

ब्रजलोक साहित्य के प्रकार

ब्रज—हमने यहाँ तक लोकवार्त्ता और लोक-साहित्य के साधारण मर्म को समझने की चेष्टा की है। किन्तु हमारा विषय तो ब्रज की लोक-वार्त्ता का लोक-साहित्य सम्बन्धी विभाग है। यहाँ हम बहुत संक्षेप में ब्रज और उसकी सीमा तथा उसके महत्व पर विचार करके आगे बढ़ेंगे।

"ब्रज का संस्कृत तत्सम रूप व्रज है।" एक लेख में लिखते हुए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने बताया है कि यह शब्द संस्कृत धातु 'व्रज' 'जाना' से बना है। व्रज का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता (जैसे ऋग्वेद मंत्र २, सू० ३८, मं० ८, मं० ५, सू० ३५, मं० ४, मं० १० सू० ४, मं० २, इत्यादि) में मिलता है परन्तु वह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। संहिताओं तथा इतिहास ग्रन्थ, रामायण, महाभारत तक में यह शब्द देशवाचक नहीं हो पाया था।

हरिवंशादि पौराणिक साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग मथुरा के निकटस्थ नंद के व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ में ही हुआ है। हिन्दी साहित्य में आकर ब्रज शब्द पहले पहल मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। किन्तु इस प्रदेश की भाषा के अर्थ में यह शब्द हिन्दी साहित्य में भी बहुत बाद में आया। धार्मिक दृष्टि से ब्रजमण्डल मथुरा जिले तक ही सीमित है। किन्तु ब्रज की बोली मथुरा के चारों ओर दूर-दूर तक बोली जाती है।[1] इस प्रदेश के 'ब्रज' कहे जाने के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती सर हेनरी ऐम०

[1]—'नाम माहात्म्य' श्री ब्रजांक अगस्त १६४०, ब्रजकथा लेख, डा० धीरेन्द्र वर्मा.

ईलियट, के० सी० बी० ने दी है कि "ब्रज मथुरा के चारों ओर चौरासी कोस है। जब महादेव[1] श्रीकृष्ण की गायें चुराकर ले गये तो लीलामय भगवान ने नयी गायें बनालीं और वे ठीक इसी सीमा में चरती फिरीं—"[2] तभी "व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रजः"—यह ब्रज कहलाने लगा।

ब्रज की सीमा के सम्बन्ध में ग्राउस महोदय[3] तथा ईलियट महोदय[4] ने एक प्रचलित दोहा उद्धृत किया है :

"इत बरहद उत सोनहद उत सूरसेन कौ गाँव"
विर्ज[5] चौरासी कोस में मथुरा मंदिल[6] माँह"

एक ओर सीमा है 'बर' अलीगढ़ जिले का एक गाँव बरहद। अलीगढ़ को 'कोर' भी कहते हैं। जिसका अर्थ है ब्रज का किनारा।[7] किन्तु 'कोर' से 'कोल' शब्द विशेष प्रचलित हैं। दूसरी ओर सोन नदी जो डा० गुप्ता के अनुसार गुड़गाँव जिले की कोई बरसाती नदी है।[8] सूरसेन का गाँव शौरीपुर (बटेश्वर) है। यह किंवदंती से भी माना जाता है कि बटेश्वर सूरसेन का गाँव है। और कुछ ग्रंथों में भी उल्लेख है।[9] 'सूरजपुर' नाम से 'आगरा गजेटियर' में उल्लेख है। डा० गुप्त ने बटेश्वर तक ब्रज की सीमा ले जाने में इसलिए आपत्ति की है कि एक तो इनका नाम गजेटियर में 'सूरजपुर' दिया हुआ है।

---

[1]—महादेव शायद भूल से लिखा गया है। भागवत में ब्रह्मा है।

[2]—'मैमोयर्स ऑन दी हिस्ट्री, फोकलोर, डिस्ट्रिब्यूशन आव दी रेसेज आव दी नार्थ वैस्टर्न प्राविंशेज़ आव इंडिया'—लेखक सर हेनरी ऐम० ईलियट के० सी० बी०, संपादक तथा संशोधक तथा पुनःक्रम-स्थापक जोन बीम्स

[3]—मथुरा मैमोयर

[4]—देखो नं० २ पाद-टिप्पणी

[5]—ब्रज

[6]—मण्डल

[7-8].—देखिये डा० दीनदयाल गुप्त की थीसिस 'अष्टछाप'

[9]—कविवर भगवानदास की 'वृन्दावन-खंड' काव्य-रचना में उल्लेख है :

'घाट बटेश्वर सो लगि आई। रजक देखि तहि लीन्ह उठाई ॥
सूरजसेन, नृपति कर गाँऊँ। ता महँ रहत कंस भा नाऊँ ॥

'ब्रज भारती' अङ्क ७, ८, ९

दूसरे इससे ब्रज-मण्डल का आकार बेडौल हो जाता है। 'सूरजपुर' की उक्ति विशेष महत्त्व नहीं रखती। इसे 'सौरपुर' परमर्दिदेव के शिलालेख में कहा गया है।[1] सौर 'सूर' का अपत्य वाचक है। बेडौल यह 'भागवत' कार के समय में भी था क्योंकि जैसा ईलियट महोदय ने बताया है भागवत में ब्रज को सिंघाड़े के आकार का माना गया है। नयी प्रचलित किंवदन्ती में उसके तीन ही कोने बताये गये हैं।[2] ग्राउस महोदय ने नारायण भट्ट का यह श्लोक भी उद्धृत किया है—

'पूर्वं हास्यवनं नीथ पश्चिमस्योपहारिकं,
दक्षिणं जन्हु संज्ञाकं भुवनाख्य तस्योत्तरे।

इसके अनुसार पूर्व सीमा हास्यबन (वर्त्तमान हसायन) बरहद का बन है, दक्षिण में जन्हु बन सूरसेन का गाँव बटेश्वर है। उत्तर में भुवनबन या भूपण बन शेरगढ़ के पास है। पश्चिम का उपहार बन सोन नदी के किनारे गुड़गाँव जिले में।[3] यथार्थ में यह सब सीमा निर्धारण उस काल में हुआ था जब ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज या शूरसेन प्रदेश अपना प्रादेशिक अस्तित्व खो चुका था, और ब्रज मथुरा का ही सिमिट कर पर्यायवाची हो गया था। ब्रज अर्थात् शूरसेन प्रदेश के सम्बन्ध में चीनी यात्री ह्वेनत्साङ्ग के आधार पर कनिंघम महोदय ने यह निर्धारित किया है कि—

"सातवीं शताब्दी में मथुरा का प्रसिद्ध नगर एक विशाल राज्य की राजधानी था, जो परिधि में ५००० ली अथवा ८३३ मील बताया गया है। यदि यह अनुमान ठीक है तो प्रान्त में न केवल वैराट और अतरौली के जिलों का ही समस्त प्रदेश सम्मिलित होगा, वरन् इससे भी विशाल क्षेत्र आगरा से परे नरवर तक और श्यौपुरी तक दक्षिण में, सिन्ध नदी तक पूर्व में, इन सीमाओं के भीतर प्रान्त की परिधि सीधी नाप से ६५० मील है, अथवा सड़क की नाप से ७५० मील से ऊपर है। इसमें भरतपुर, खिरावली तथा धौलपुर की छोटी रियासतों और ग्वालियर राज्य के उत्तरार्द्ध के साथ मथुरा का जिला सम्मिलित है।

1—'ब्रज भारती' अङ्क ७–८–९

2—ईलियट की हिस्ट्री आदि

3—डॉ० गुप्त की थीसिस, प्रथम अध्याय।

पूर्व में इसकी सीमा पर जिझौती राज्य होगा, दक्षिण पर मालवा जो दोनों ही हुएनत्सॉग ने पृथक् राज्य बताये हैं।[1]

ब्रज की इस सीमा से उसकी भाषा का क्षेत्र प्रायः ठीक बैठ जाता है। 'चौरासीकोस' का इतना महत्त्व भौगोलिक दृष्टि से नहीं है, जितना धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से है। 'चौरासी' शब्द का आध्यात्मिक उपयोग चौरासी लाख योनि से ही नहीं अन्य कारणों से भी है। वैष्णव संप्रदाय में इसका विशेष महत्त्व है जो हरिरायजी के भाव-प्रकाश[2] में विशेष स्पष्ट हुआ है। ब्रज और मथुरा समान सीमावाले हुए और फिर मथुरा में ही सीमित हो गये। आज ब्रज नाम का कोई जनपद अपनी निश्चित सीमाओं के साथ कहीं मान्य नहीं है। डा० गुप्त ने ब्रज-मण्डल में 'मण्डल' शब्द पर विशेष निर्भर-करके 'मण्डल' का अर्थ गोलाकार किया है, साथ ही मथुरा को केन्द्र मान कर चौरासी कोस के व्यास के एक परिधि खींच दी है। उसे ही उन्होंने ब्रज-मण्डल मान लिया है। किन्तु मण्डल शब्द से 'वृत्त' का ही बोध नहीं होता, यह शब्द प्रदेश अथवा क्षेत्रवाचक भी है।

यह ब्रज-प्रदेश ही भारत का मध्यदेश है, जिसको मनु ने अत्यन्त भाग्यशाली बताया है। भारतीय आर्य-सभ्यता और संस्कृति का यह प्रधान केन्द्र रहा है। अनेकों ललितकलाओं का उदय इस प्रदेश में हुआ। शौरसेनी भाषा का आरम्भकाल से ही भारत की भाषाओं में ऊँचा स्थान रहा है। "कीथ महोदय ने" 'संस्कृत ड्रामा' नाम की पुस्तक में लिखा है :

"एक और महत्त्वपूर्ण बात है जिससे कृष्ण-सम्प्रदाय के महत्त्व की पुष्टि होती है। नाटक की साधारण गद्यभाषा शौरसेनी प्राकृत है और इससे हम केवल इसी सम्भावना पर पहुँचते हैं कि ऐसा इसलिए है कि यह उन लोगों की भाषा थी जिनमें पहले पहल नाटकों को सुनिश्चित रूप प्राप्त हुआ। एक बार इसकी स्थापना हुई कि, हम निश्चिन्त होकर मान सकते हैं कि यह प्रयोग जहाँ-जहाँ नाटक फैलेगा वहीं जायगा। ब्रजभाषा के टिकाऊपन की आधुनिक साक्षी हमारे सामने है, यह भाषा शौरसेनी के पुराने घर में मुसलमानी आक्रमण के बाद कृष्ण सम्प्रदाय के पुनरोदय की भाषा है; और कृष्णभक्ति की

[1] कनिंघम : ऐश्येंट ज्यागरफी आफ इंडिया।

[2] हरिराय : प्राचीनवार्त्ता-रहस्य—प्रथम भाग : भावप्रकाश।

भाषा के रूप में अपने प्राकृतिक क्षेत्र से भी बाहर यह विद्यमान है।[1]

इस कथन से शौरसेनी ही नहीं ब्रजभाषा का महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। ब्रजभाषा तो मध्यकाल में राष्ट्रभाषा का स्थान ग्रहण किये हुए थी। राष्ट्रभाषा की दृष्टि से ही हम इसे साहित्य-भाषा मान सकते हैं, और यह हिन्दी के समस्त विशाल-क्षेत्र की काव्य-भाषा बनी हुई थी। बंगाल में भी कृष्ण-काव्य के साथ 'ब्रज-बुली' ने गहरा स्थान बना लिया था। लोकवार्ता-साहित्य पर दृष्टि डालते समय हमें ब्रज-भाषा के इस राष्ट्रीय रूप पर दृष्टि डालने की आवश्यकता नहीं है। लोकवार्ता तो किसी भाषा के घर में ही मिलती है। इसके लिए जैसा डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने ऊपर उद्धृत लेख में बताया है, आज मथुरा जिला ही ब्रज का पर्यायवाची रह गया है। कुछ लोगों का विचार है कि बटेश्वर शूरसेन का गाँव था, वहाँ की भाषा ही प्रामाणिक ब्रजभाषा है।[2] किन्तु यह अभी एक विचार-मात्र है, और यहाँ हमें भाषा पर उतना विचार नहीं करना है। ब्रज के प्रायः जितने भी प्रामाणिक साहित्यकार हुए हैं, उन्होंने ब्रज-संस्कृति और भाषा दोनों के लिए मथुरा और उसके आसपास के प्रदेश से ही प्रेरणा प्राप्त की है। सांस्कृतिक दृष्टि से मथुरा-प्रदेश ब्रज का केन्द्र है। लोक-वार्ता-साहित्य जो मथुरा में मिलेगा वही ब्रज की लोकवार्ता की रीढ़ माना जायगा।

मथुरा—मथुरा जिले के उत्तर में जिला गुड़गाँव और जिला अलीगढ़ के भाग हैं। पूर्व में जिला अलीगढ़ और एटा, दक्षिण में आगरा और पश्चिम में राज्य भरतपुर और जिला गुड़गाँव का कुछ भाग है। इसका क्षेत्रफल १४४५ वर्गमील के लगभग है। इसमें चार तहसीलें हैं : मथुरा, माँट, छाता, सादाबाद। तहसील मथुरा में २३० गाँव हैं, सादाबाद में २२६, छाता में १७६ तथा माँट में २६८ गाँव हैं। पहले तहसील जलेसर मथुरा में था, अब वह एटा जिले में सम्मिलित कर दिया गया है, और सादाबाद मथुरा में जोड़ दिया गया है। माँट और महावन की दो तहसीलें मिलाकर एक करदी गई हैं। इस जिले की जनसंख्या..............है। इस प्रदेश की विज्ञान की दृष्टि से आधुनिक काल में कोई परीक्षा नहीं की गयी। साधारणतः जातियों के

[1] कीथ : दी संस्कृत ड्रामा।

[2] ब्रज भारती : पोद्दार अङ्क।

ब्यौरे मिल जाते हैं। ईलियट महोदय भारत के सर्वप्रथम नृ-तत्त्ववेत्ता हो गये हैं, जैसा वेरियर ऐलविन के उल्लेख से विशेषतः सिद्ध होता है। इन महोदय ने अपनी पुस्तक में, जिसका प्रसङ्ग ऊपर आ चुका है, लगभग १८३६ ई० में युक्तप्रान्त के जन-प्रकारों पर लिखा था। उसमें मथुरा के जाति-तत्त्वों पर भी कुछ प्रकाश डाला गया था। क्रुक महोदय ने भी जातियों का विवरण दिया था। साधारणतः निम्नलिखित जातियाँ यहाँ मिलती हैं: १—बाछल—सोमवंशी राजपूतों की एक शाखा, २—भंगी (महतर), इनमें से जो हिन्दू हैं वे लाल गुरु की पूजा करते हैं।[1] ३—भटनागर, ४—बढ़ई, ५—चौबे, ६—चमार, ७—धाकरे, राजपूतों की एक जाति, ८—धीमर, ९—ढेढ़, १०—धोबी, ११—डोम, १२—घोसी, १३—गोला (जाट, गड़रिया, गूजर, गोला, इन चारों का हेला मेला), १४—गोलापूरव, १५—गौड़, १६—गूजर, १७—गौड़ ब्राह्मण, १८—गौड़ कायथ, १९—गौरुआ (राजपूतों की निम्नश्रेणी की जाति), २०—गड़रिया, २१—जादों, २२—जाईस (सूर्यवंशी राजपूतों की एक जाति), २३—जाट, २४—जसावर अथवा जसावन (राजपूतों की एक जाति), २५—काछी, २६—कनौजिया, २७—तैलंग, २८—गौतम, २९—कछवाहा, ३०—कसभरा, ३१—खत्री, ३२—चौहान, ३३—गहलौत, ३४—कोली, ३५—नट, ३६—नाथ। इस प्रकार यह देश प्रधानतः हिन्दू जनसंख्या का प्रदेश है। मुसलमान तो यत्किंचित कहीं-कहीं छिटके हुए मिलते हैं। इसी प्रदेश के लोकवार्ता-साहित्य को इस अध्ययन का विषय बनाया गया है।

मथुरा में लोक-साहित्य सङ्कलन—मथुरा में फैला हुआ लोक-साहित्य विविध और विचित्र है। अब तक यथाविधि इसका संग्रह नहीं किया जा सका था। इस लेखक ने ही सर्वप्रथम सन् १९३०-३२ के बीच नागरी-प्रचारिणी-सभा आगरा की ओर से हस्तलिखित पुस्तकों की खोज कराते हुए कुछ लोक-साहित्य का संग्रह कराया था। वह प्रयत्न वहीं रुक गया। तब इसी ने मथुरा की हिन्दी-साहित्य-परिषद् को प्रेरित कर एक 'ग्राम-गीत-संग्रह-समिति' का निर्माण कराया

[1] यह लालगुरु, ईलियट के अनुसार राक्षस अरोणाकरन का नाम है (मेमोयर्स ऑव हिस्ट्री आदि) पर टेम्पल महोदय के अनुसार यह शब्द 'लाल गुरु' से अधिक उपयुक्त 'लाल भेख' लाल भिक्षु है और 'बाल्मीकि' का बोधक है। भंगियों के कुर्सी नामों में इन बाल्मीकि का नाम आता है।

इस समिति ने कुछ उद्योग किया। पहले मथुरा की जिला-शिक्षा-समिति के पास पहुँचकर उनसे यह प्रार्थना की गयी कि वे अपनी ओर से गाँव की पाठशालाओं के अध्यापकों से ग्राम-गीतों का संग्रह करायें। वे अपनी ओर से यह कार्य कराने में असमर्थ थे। तब परिषद् की उक्त समिति की ओर से एक पत्र अध्यापकों के नाम लिख कर उसे शिक्षा-समिति के सामने रखा गया। उनसे प्रार्थना की गयी कि वे उक्त पत्र को अपने निवेदन के साथ गाँवों के अध्यापकों के पास भेजने की कृपा करें। यह भार उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह पत्र विविध अध्यापकों के पास भेजा गया। इस पत्र से भी विशेष लाभ नहीं हुआ। हाँ, उस 'ग्राम-गीत-संग्रह समिति' में श्री लक्ष्मीदेवी यादविका एक अध्यापिका सदस्य थीं। उन्होंने उत्साह से एक छोटा-सा गीतों का संग्रह 'परिषद्' को दिया था। यह १९३७ की बात है। इधर इन पंक्तियों का लेखक स्वयं भी इस कार्य को अपने ढङ्ग से करा रहा था। उसकी स्वर्गीया धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिला देवी ने इस कार्य में विशेष सहयोग दिया। ग्राम-सुधार-विभाग के एक इन्सपेक्टर साहित्य-रत्न ज्ञानेन्द्रजी ने भी गाँवों से कुछ सङ्कलन भेजे। इसी समय के लगभग श्री देवेन्द्र सत्यार्थी मथुरा आये और कुछ समय यहाँ मथुरा में रहकर तथा गाँवों में घूम-फिर कर उन्होंने कई सौ गीत एकत्रित किये। परिषद् के तथा मेरे संग्रह से भी उन्होंने कुछ सामग्री ली। मैंने अपना संग्रह मथुरा के 'चम्पा अग्रवाल कालेज' के बालचरों से भी कराया। किन्तु यह समस्त उद्योग भी ऊपरी सतह का ही हुआ। ब्रज-साहित्य-मण्डल की स्थापना के उपरान्त जब उसका कार्य सन्-४४-४५ में विशेष गति से हुआ तो मैंने उसके मन्त्री महोदय का ध्यान ग्राम-साहित्व की ओर आकर्षित किया। प्रचार-विभाग को यह कार्य सौंपा गया। सौभाग्य से प्रचार-विभाग के मन्त्री उस समय श्री सिद्धेश्वरनाथजी श्रीवास्तव थे, जो इसी जिले में सब डिप्टी इन्सपेक्टर ऑव स्कूल्स थे। मेरे परामर्श से उन्होंने ग्राम-साहित्य के सङ्कलन-पत्र तैयार कराके गाँवों में भिजवाया। मण्डल ने गाँवों में अपने केन्द्र भी स्थापित किये थे और विविध गाँवों में अध्यापकगण भी थे। उन्होंने उद्योगपूर्वक वे सङ्कलन-पत्र भरकर भेजे। उस सङ्कलन-पत्र की रूप-रेखा यह थी :

[साहित्य विभाग

ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा

ग्राम-साहित्य-सङ्कलन-पत्र

१—सङ्कलन-कर्ता का नाम..
पूरा पता...
२—जाति व वर्ण...
३—आयु.......................................
४—सङ्कलित वस्तु का नाम...
५—स्थान जहाँ वह प्रचलित है.......................................
६—जाति जिसमें विशेष रूप से प्रचलित है...............................
७—विशेष अवसर जिन पर प्रचलित है..................................
८—स्त्री या पुरुष समाज जिसमें प्रचलित है................................
९—प्राप्ति साधन...
१०—निर्माता का नाम...
११—संक्षिप्त परिचय..
१२—प्राप्ति-तिथि...
१३—विशेष सूचना..

१—इसके पीछे के पृष्ठ पर सङ्कलित ग्रामगीत, कहानी, चुटकुले, मुहावरे, कहावत तथा विशेष ग्रामीण शब्द लिखे जा सकते हैं।

२—गीतों में जन्म, विवाह, अन्य संस्कार, व्रत, त्यौहार, यात्रा, ऋतु, चक्की, कूआ, हल, भिखारी, मन्दिर, झूलों के तथा बच्चों के सुलाने व खिलाने आदि सभी के गीत सम्मिलित हो सकते हैं।

३—सङ्कलन में भाषा के प्रचलित ज्ञान की ओर विशेष ध्यान दिया जावे। उसे अपनी ओर से शुद्ध करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

यह तो उस फार्म का पहला रूप था। बाद में इसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन और कर दिये गये। पहले सङ्कलन से यह विदित हुआ था कि इस उद्योग में जितनी गहराई की आवश्यकता है, उतनी गहराई और व्यापकता नहीं आयी है। फलतः सङ्कलन कर्त्ताओं की सहायता के लिए मण्डल के द्वारा एक 'सङ्कलन-प्रणाली' पर छोटी पुस्तिका लिखकर भिजवायी गयी। वह इस प्रकार थी।

एक-दो-तीन

१—ग्राम-साहित्य में युगों से चले आने वाले ग्रामीण मानव का हृदय सुरक्षित

है। उसके संकलन में एक पवित्र सावधानी की आवश्यकता है।

२—ग्राम-साहित्य के सङ्कलन कर्त्ता की दृष्टि में ग्रामीणों की वाणी से उद्-गरित होने वाला कोई भी भाव घृण्य अथवा अश्लील नहीं प्रतीत होना चाहिए। मानवीय सहानुभूति और सहृदयता रखते हुए साहित्य-सङ्कलन करना उचित है।

३—संकलन करते समय जो भाग संकलनकर्त्ता को स्वयं समझ न पड़े, और जिसके सम्बन्ध में ग्रामवासी भी कोई सन्तोषजनक समाधान न दे सकें, उसे विशेष सावधानी से लिपिबद्ध करने की आवश्यकता है। उसमें किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण रहस्य के निहित होने की सम्भावना है।

ग्राम-साहित्य क्या—

गाँव के मनुष्यों का मौखिक उद्‌गार साहित्य है। जो कुछ भी वे मुख से कहते हैं, यदि वे

१—उसे अपने बड़े-बूढ़ों से कई पीढ़ियों से सुनते चले आये हैं;

२—उसका उपयोग मनोरञ्जन या शिक्षा, या ज्ञान वर्द्धन के लिए करते आये हैं या करते हैं:

३—उसके गाँव-निवासी ने ही रचा है, और बहुत अधिक गाँव में तथा पास-पड़ौस में प्रचलित हो गया है।

४—गाँव वालों के किसी संस्कार, त्यौहार या पूजा से सम्बन्धित हैं।

५—गाँव वालों के खेलों से सम्बन्धित है।

६—गाँव वालों के किसी विश्वास या अन्ध-विश्वास से सम्बन्धित है।

तो वह सब ग्राम-साहित्य है। उसका सङ्कलन अवश्य कर लेना चाहिए।

ग्राम-साहित्य के प्रकार—

यों तो ग्राम-साहित्य के अनेकों प्रकार हो सकते हैं। पर, यहाँ विशेष प्रकारों का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। इससे सङ्कलन-कर्त्ताओं को संकेत मिल जायगा, जिससे वह ऐसे प्रकार को भी ग्रहण कर सकेंगे जिसका उल्लेख यहाँ नहीं हो सका है।

१ ग्राम कहानी—ग्राम कहानी कई प्रकार की हो सकती हैं—

अ-साधारण मनोरञ्जक कहानी—राजा-रानी की, या पशु-पक्षियों की, या जादू-टोने की, या परी देवताओं की आदि।

आ-जाति-विषयक कहानी—जिसमें किसी जाति-विशेष को लेकर कहानी कही गयी हो—जैसे 'एक जाट औ जाट' या 'एक कोरिया अपनी

ससुरारि कूँ चलो' या 'एक काइथ ओ बु कबऊँ भगवती नाँइ करतो' आदि। इन कहानियों में वे सभी कहानियाँ शामिल होंगी। जिनमें किसी जाति की दूसरी जाति से ऊँचाई प्रकट की गयी हो, या जाति की विशेषता सूचित की गयी हो। जैसे नाई का छप्पनियाँपन, काइथ का काँइयाँपन, बनियाँ का पोचपन, जाट का भुच्चपन या और कोई ऐसी ही बात।

इ—धर्म-विषयक—जिसमें एक धर्म को दूसरे से बढ़ कर दिखाया गया हो, या किसी धार्मिक देवता का कोई करतब दिखाया गया हो। जैसे एक कहानी में गौरा-पारवती की उदारता दिखाई गयी है।

ई—त्यौहार-विषयक कहानी—ऐसी कहानियाँ जो त्यौहार के मूल पर प्रकाश डालती हैं।

ऐसी कहानियाँ जो त्यौहारों की पूजा प्रणाली का अङ्ग हैं। जैसे कहीं-कहीं 'अनन्त चौदस' पर अनन्त की पूजा कहानी सुनने के बाद होती है। ये कहानियाँ बहुधा स्त्रियों के ही लिए होती हैं। ऐसे ही करवा चौथ या अहोई आठें आदि की कहानियाँ तथा कार्तिक स्नान की कहानियाँ हैं।

उ—अन्धविश्वास या विश्वास सम्बन्धी कहानियाँ जैसे—

१—गिलहरी की पीठ पर तीन धारियाँ क्यों हैं?

२—गोवर्द्धन पर्वत कहाँ से आया?

३—किसी-किसी घर में बड़ियाँ क्यों नहीं तोड़ी जातीं?

४—सती वगैरह की आन की कहानी।

५—गीदड़ क्यों रोते हैं?

६—कौए ने अमरौती कैसे खाई?

ऊ—कहावत व्याख्या सम्बन्धी कहानी—जैसे "आइजारी सुख नींदरिया, तेरी भोर कटेगी मूँड़रिया" की व्याख्या में।

ए—पद्य-बद्ध अथवा पद्ययुक्त कहानियाँ—जैसे कौए की "ठूँठ चञ्चा देइ नाँय मैं चब्बूँ का।"

ग्राम-साहित्य के प्रकार—

२—ग्राम-गीत—ग्राम-गीत जिस अवसर पर गाये जाते हैं उनके अनुसार वे कई प्रकार के हो सकते हैं।

१—सावन के गीत या झूले के गीत—ये गीत वर्षा ऋतु में झूले पर या कभी-कभी साधारणतः गाये जाते हैं।

२—न्यौरते की गीत—क्वार के नौदुर्गाओं में प्रतिदिन जिस समय बालिकाएँ

न्यौरता खेलती हैं उस समय गाये जाते हैं।

३—देवी के गीत, माता के गीत, शीतला के गीत, बाबू के गीत, कूआवारे के गीत।

४—तीर्थ-पर्व-स्नानादि के गीत, जैसे गङ्गा यात्रा या कातिक स्नान के गीत।

५—होली तथा अन्य त्यौहारों के गीत, जैसे दिवाली पर 'स्याहू' के गीत या दौज के गीत।

६—टेसू के गीत, झाँझी के गीत तथा चट्टों के गीत।

७—जात के गीत।

८—संस्कारों के गीत—जनेऊ, विवाह, जन्ति आदि।

९—खेल के गीत आदि।

१०—चक्की के समय के गीत।

११—विविध वर्गों के गीत, जैसे सँपेरों के, भोपाओं के, सरमनियों के, नटों के भगतों के, देवी मनाने के।

१२—विविध जातियों के गीत—धोबियों के, कुम्हारों के।

१३—इतिवृत्तात्मक-आल्हा, ढोला, साके।

१४—रसिया, कड़खे, ख्याल, जिकड़ी।

३—खेल साहित्य—ऐसे समस्त खेल जिनमें मौखिक किसी पद्य आदि का प्रयोग किया जाय जैसे—बच्चों के कई खेल यथा—

आटे-बाटे—

आटे-बाटे दही चटाके। बरफूले बङ्गाली फूले,॥

बाबा लाये तोरईं। भूंजि खाईं भोरईं॥ आदि॥

[इन खेलों में खेल के रूप का भी सङ्कलनकर्त्ता को पूरा-पूरा विवरण देना चाहिए। केवल प्रयुक्त पद्य-मात्र से काम नहीं चलेगा।]

४—पहेलियाँ जैसे—

"पीरी पोखरि पीरेइ अंडा,

बेगि बताइ नँइ देतू डंडा।"

५—कहावतें—ऐसी सभी कहावतें जिनका (१) मूल रूप से गाँव में ही किसी घटना के सम्बन्ध से निर्माण हुआ हो। [ऐसी कहावतों के साथ उन घटनाओं का भी पता लगाकर उल्लेख कर दिया जाय तो अच्छा रहेगा] (२) मूल निर्माण गाँव से सम्बन्धित नहीं पर गाँव वाले उसका प्रयोग अवश्य करते हैं यथा—

"करि करि होमु पादि गयीं दुर्गं"

६—चुटकुले—

७—विविध शब्द समूह—जैसे खेती सम्बन्धी, बर्तन बनाने आदि से सम्बन्ध रखने वाले। ऐसे प्रत्येक शब्द को एक पूरे विवरण के साथ देना चाहिये, जिससे उसका रूप स्पष्ट हो जाय।

शक्कर बनाने का यन्त्र

अ—गन्ने की चक्की

२६५—गन्ने की चक्की 'कोल्ह' (Kolh) या कोल्हू (Kolhu) प्रान्त भर में कहलाता है। यूरोपियन फर्मों द्वारा प्रचलित की गई पेटेंट चक्कियाँ 'कल' कहलाती हैं।

२६८—चक्की की नींव के खोखले काठ का हिस्सा-यही साधारणतः **कोल्ह** या **कोल्हू** कहलाता है। वह छेद जिसमें पेरने के लिए गन्ने रखे जाते हैं, गंगा के उत्तर में पश्चिम की ओर **'खान'** कहलाता है या चंपारन में **'घर'** या पूर्व में **कुंड** या **कूंड़**, शाहाबाद में यह हंडा या हंडोलवा कहलाता है। दक्षिण मुंगेर में यह **हांढ़ा** है और अन्यत्र गंगा के दक्षिण में **हुण्ढा** या **हुण्डा**। किनारे के चारों ओर इसके सिरे पर मिट्टी की एक मेंड़ लगादी जाती है, जिससे गन्ने के टुकड़े न गिर सकें यह **पींड** कहलाता है। इस काठ के चारों ओर इसे फट जाने से बचाने के लिए जो लोहे का घेरा कस दिया जाता है वह **'बन'** होता है, यह तिरहुत में **मत्तर** तथा दक्षिणी भागलपुर में मड़रो कहलाता है।

८—प्रकृति-विज्ञान पर्यवेक्षण उक्तियां—उदाहरणार्थः—

पूख पुनर्वस बोइए धान। असलेखा कोदो परमान॥
मघा मसीना दीजिये पेल। फिर दीजिए परहल में ठेल॥

९—विशेषोक्तियाँ: जैसे—'दम्मदार, बेड़ा पार'

१०—स्वांग आदि।

इनके अतिरिक्त, भी और अनेक प्रकार हो सकते हैं, जिन्हें ग्राम साहित्य का संकलन-कर्त्ता अपनी बुद्धि और उद्योग से प्राप्त कर सकता है।

ग्राम-साहित्य कहाँ ढूंढ़ा जाय ?

ग्राम-साहित्य किस प्रकार संकलित किया जाय ?

घर के बृद्ध और वृद्धाओं के पास। गाँव में शायद ही कोई घर ऐसा हो जिसके बड़े-बूढ़ों को कोई न कोई कहानी याद न हो।

स्त्रियों के द्वारा विविध संस्कारों के गीत तथा कहानियाँ सहज ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

२—गाँव की चौपालों और अगिहानों पर बहुधा कहानियाँ सुनने को मिल सकती हैं। यहाँ पर गाँव के ज्ञानी पुरुष एकत्रित हो जाते हैं, उनसे विविध बातें पूछी जा सकती हैं।

३—गाँव के ज्ञानी और विशेषज्ञ से। प्रायः प्रत्येक गाँव में एक न एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसमें कहानी सुनाने की विशेष कला होती है। इसे बहुत अधिक और पुरानी कहानियाँ याद रहती हैं।

४—गाँव के ओझे, सयाने, भोपे, मुखिया तथा पुरोहित साधारणतः ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें गावों की रीति-नीति सम्बन्धी बातों का ज्ञान रहता है।

५—भिखारियों के रूप में भी कुछ व्यक्ति गाँवों में आते हैं और वे इकतारा, डमरू, बीन, चिकाड़ा, डफ आदि पर गीत गाकर भीख माँगते हैं। इनसे बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है।

६—कुछ विशेष प्रकार के गीतों के विशेषज्ञ होते हैं। वे कभी कभी किसी गाँव में आ निकलते हैं। और वहाँ समाज एकत्र कर गीत से उसका मनोरञ्जन करते हैं। जैसे आल्हा गाने वाले अल्हैत, ढोला गाने वाले ढोलइया।

७—साधारण कहावतें, चुटुकले, पहेलियाँ आदि तो गाँव में चाहे जब, चाहे जिसके द्वारा सुनीं जा सकती हैं।

८—विशेष त्यौहारों और संस्कारों के अवसर पर विविध व्यक्तियों द्वारा साहित्य निसृत होता रहता है।

ग्राम-साहित्य कैसे प्राप्त किया जाय ?—इस सम्बन्ध में 'दी लीजेंड्स आव दी पंजाब' के संकलनकर्त्ता कैप्टन आर० सी० टेम्पल का उद्धरण दिया जाता है :

"यह कहना प्रर्याप्त होगा कि अपने गायक (Bard) को पकड़ने के लिए अग्रसर होने का मेरा ढंग निम्नलिखित रहा है :—मैं उत्सवों में, मेलों में तथा शादियों और स्वाँगों और मन्दिरों में सम्मिलित हुआ हूं। यथार्थ यह है कि प्रत्येक ऐसी जगह में गया हूँ जहाँ किसी गायक के आने की सम्भावना हो सकती थी, और उन गायकों को ऐसे फुसलाया कि वे मेरे निजी लाभ के लिए भी गावें। मेरे सामने ऐसे मामले भी हैं जिनमें ऐसे अवसरों पर झगड़े उठ खड़े हुए हैं और उनसे उस गायक का पता लगा है जो उस अवसर पर पौरोहित्य कर रहा था, और तब उसे मेरे लिए गाने को प्रेरित किया जा

सका है, और कभी-कभी स्वाँग खेलने वाले पढ़े लिखे मनुष्यों को स्वाँगों की उनकी निजी हस्तलिखित प्रति मुझे देखने देने के लिये प्रेरित किया जा सका है। जब कभी केवल गर्मी की ऋतु में में घूमने वाले जोगी, मीरासी, भराइन (Bharain) तथा ऐसे ही लोगों से गलियों और सड़कों पर मिला हूँ तब उन्हें रोक कर यथासमय उनसे जो कुछ वे जानते थे सब उगलवा लिया है। कभी-कभी देशी राजाओं और सरदारों के दूतों और प्रतिनिधियों से मिलने और बातचीत करने का भी मौका मिला है—ये वे लोग हैं जो अपने स्वार्थ व लाभ के लिए कुछ भी करने को सदा तत्पर रहते हैं—उन्हें इस सम्बन्ध में संकेत मात्र कर देने से एकाधिक ग्राम-गीत मुझे प्राप्त हुए हैं। अन्त में व्यक्तिगत भेंट तथा पत्र-व्यवहार, सफेद और काले सभी प्रकार के ऐसे व्यक्तियों से, जो सहायता कर सकते थे, लाभदायक सिद्ध हुआ है और बहुत सी सामग्री इस प्रकार मुझे प्राप्त हुई है…"

अतः ग्राम-साहित्य के संकलनकर्त्ता को चाहिए कि—

१—वह निस्संकोच गाँव के प्रत्येक उत्सव, मेले, त्यौहार, पूजा, संस्कार आदि में गाँववालों की भाँति ही सम्मिलित हो।

२—प्रत्येक अवसर पर सूक्ष्म निरीक्षण और पर्यवेक्षण का उपयोग करे, प्रत्येक विधि-विधान को समझे और नोट करता जाय।

३—वहाँ जो बात समझ में न आये उसे जानकार लोगों से भली प्रकार समझ ले।

४—जिससे भी उसे किसी प्रकार का साहित्य प्राप्त हो सकता है, उसका विश्वास-पात्र बने।

५—ऐसे लोगों को किसी न किसी नशे का चस्का रहता है। उन्हें नशा-पत्ता करा देने पर वे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक आपकी इच्छापूर्ति कर सकते हैं।

६—कभी-कभी किसी व्यक्ति को कुछ दाम भी देने पड़ सकते हैं। ब्रज-साहित्य-मण्डल से ये दाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

७—ग्राम-गीत संग्रह करने वाले को ऐसे लोगों का विशेष अध्ययन करने की आवश्यकता है जो ओछी जाति के कहे जाते हैं।

८—गाँवों में विद्यार्थियों में मौखिक कहानी प्रतियोगिता या बालचरों में कैम्प फायर में थोड़े ही प्रोत्साहन से अनेकों कहानियाँ मिल सकती हैं।

ग्राम-साहित्य कैसे लिपिवद्ध किया जाय ?— उपरोक्त विधियों से जब कहानी कहनेवाला या गायक आपको मिल गया तो अब यथार्थ

कार्य आता है, उस मौखिक साहित्य को लिपिबद्ध करना। इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

१—कहानी कहने वाला या गायक अपने स्वाभाविक ढङ्ग से निरन्तर अपनी कहानी या गीत कहता चला जाय, और उसी गति से वह लिपिबद्ध कर लिया जाय तो सबसे श्रेष्ठ फल मिलेगा। यदि यह सम्भव न हो तो कहानी कहने वाले या गायक को यह समझा दिया जाय कि वह धीरे धीरे कहे।

२—जैसे जैसे वह कहे उसे लिपिबद्ध करते चले जाना चाहिये। यदि कोई ऐसा स्थल आये जो आपकी समझ में न आये तो बीच में मत टोकिये, कोई चिह्न लगाकर आगे लिखते चले जाइये। जब वह गीत या कहानी समाप्त हो जाय तब उन शङ्काओं का समाधान उससे कर लीजिये। यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप हर दशा में वही लिखें जो कहानी कहने वाला लिखा रहा है, वह चाहे कितना ही असम्भव और ऊटपटांग क्यों न हो!

३—कहानीकार तथा गायक से कहानी या गीत में आने वाले शब्दों, पात्रों तथा स्थानों के सम्बन्ध में, तथा कहानी कब और क्यों बनी, या उसका क्या उपयोग है—इन बातों के सम्बन्ध में भी प्रश्न करके उसकी व्याख्याएँ भी हाशिये में लिख लेनी चाहियें।

४—जब कहानी कही जा चुके और लिखी जा चुके तो कहानी कहने वाले या गाने वाले को उसे पढ़कर फिर सुना देना चाहिये तथा भूलों का संशोधन कर लेना चाहिये।

५—सबसे अधिक ध्यान देने की बात है यह कि कहानी या गीत ठीक उस बोली में लिपिबद्ध होना चाहिये जिसमें कि कहानी कहने वाला बोल रहा है, और वह जिस ढङ्ग से बोल रहा है उसी ढङ्ग से लिखी जानी चाहिये। वह यदि 'नखलऊ' कहता है तो यही लिखना होगा अपनी ओर से उसे 'लखनऊ' नहीं करना होगा।

६—इस सम्बन्ध में स्वरों पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये—सभी स्वरों का उच्चारण सब स्थानों पर एकसा नहीं होता। उदाहरणार्थ—'एक राजा ओ, एक् राजा ओ, इक राजा ओ, एकु राजा ओ—यहाँ पर 'एक' के विविध उच्चारण दिये गये हैं। बोलने वाला जैसा उच्चारण करे वैसा ही लिखा जाना चाहिये।

७—यदि ऐसा अवकाश या सुविधा न मिले कि आप अक्षरशः उसे उपरोक्त ढङ्ग से लिख सके तो आखिर के दर्जे उसे अपने शब्दों में ही लिख डालें।

कुछ अन्य आवश्यक बातें—

अन्य आवश्यक बातों में से पहली बात यह है कि मण्डल की ओर से इस कार्य के लिए जो फार्म दिये गये हैं उनमें लिखी प्रत्येक बात का ठीक ठीक ब्यौरा दिया जाना चाहिये।

कहानी या गीत कहने वाले का नाम व पता। गाँव का नाम देना अत्यन्त आवश्यक है।[1]

कहानी किसी विशेष अवसर के लिए है तो उस अवसर का ब्यौरा।

कहानी में आने वाले विशेष शब्दों की व्याख्या।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि जिन अवसरों पर गीत या कहानियाँ कही जाती हैं, उन पर यदि किसी प्रकार के चित्र बनाये जाते हों, तो उन चित्रों की प्रतिलिपि और यदि कोई मिट्टी की मूर्ति या अन्य कुछ रखा जाता हो तो उसका भी वर्णन दिया जाय।

तीसरी बात यह है कि जिस गाँव से गीत या सङ्कलन किये जायँ उसका भी परिचय दिया जाय जिसमें निम्न लिखित बातों के सम्बन्ध मे गाँव से या अन्यत्र प्रचलित मतों का उल्लेख कर दिया जाय—

१—गाँव का नाम वैसा क्यों रखा गया ?

२—गाँव का इतिहास—उसे कब, किसने, क्यों स्थापित किया ?

३—गाँव में बसने वाली विविधि जातियाँ, उनके नाम, वे कहाँ से आकर और कब बसीं ?

४—गाँव में पुजने वाले विविध देवी देवता, उनके नाम तथा उनका परिचय और पूजा-प्रणाली।

अन्तिम—

इस रूपरेखा से इस कार्य का महत्त्व भी स्पष्ट हो गया होगा। यह कार्य अत्यन्त ही आवश्यक है। अभी तक का हमारी सभ्यता का समस्त अध्ययन बिल्कुल ऊपरी अध्ययन है। मानव के कल्याण के लिए उसका यथार्थ अध्ययन इसी प्रणाली से हो सकता है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस महत्त्वशाली कार्य में अपना पूरा सहयोग दें और पूरी सावधानी से इस कार्य को सम्पादित करें।

[1] कहानी कहने वाले की उम्र, जाति तथा व्यवसाय भी देना चाहिए। कहानी जिस दिन लिखी गयी वह तारीख और सन् भा देने आवश्यक है।

इस प्रकार मंडल के द्वारा बहुत-सी सामग्री एकत्रित हुई है। जिसको दो भागों में सम्पादित कराके प्रकाशित कराने की चेष्टा की जा रही है।[1] इस विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रज में ग्राम-साहित्य के सङ्कलन का जो कार्य किया जा रहा है, वह वैज्ञानिक प्रणाली पर है, फिर भी इस दिशा में केवल कागजी निर्देशों से काम नहीं चलता, मूल्यवान सामग्री पाने के लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता रहती है। यह विशेष योग्यता मैंने अपने एक विद्यार्थी श्री 'चन्द्रभान' 'राधे राधे' को कराने की चेष्टा की। वह निश्चय ही महत्त्व पूर्ण सामग्री संग्रह कर सका। अभी तक ब्रज की लोक-सामग्री पर ध्यान नहीं दिया गया। पं० रामनरेश त्रिपाठीजी की 'कविता-कौमुदी' में भी 'ब्रज' के गीत नहीं आ सके हैं और कोई संग्रह ग्राम-गीतों का हिन्दी में प्रकाशित हुआ नहीं—मैथिली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी आदि के लोकगीतों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उसमें ब्रज से कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। यों कहीं-कहीं लेखों में सत्यार्थी जी, सन्त निहालसिंहजी आदि ने ब्रज-गीतों का उल्लेख किया है। 'जयाजीप्रताप' में मेरा लेख 'लोकमानस के कमल' ब्रज के कहानी और गीत की ग्राम्य कला के सौन्दर्य को स्पष्ट करने वाला हिन्दी में ब्रजलोक साहित्य सम्बन्धी पहला लेख है। इस पुस्तक को लिखने का सङ्कल्प करने से भी कई वर्ष पूर्व मैंने और भी कई एक लेख लोक-साहित्य पर लिखे थे। अब आज इस समस्त सामग्री पर विधिवत् विचार किया जा सकता है।

किसी भी प्रदेश के लोक-साहित्य पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो उसमें हमें वैविध्य मिलता है। पहले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि बर्न ने लोकवार्ता को तीन बड़े समूहों में बाँटकर उनमें से एक में लोक-साहित्य का उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है :

३—कहानियाँ, गीत तथा कहावतें :

१—कहानियाँ—(क) वे जो सच्ची मानकर कही जाती हैं।
(ख) जो मनोरञ्जन के लिए कही जाती हैं।

२—गीत तथा गाथाएँ (Ballads)

[1] एक भाग का एक हिस्सा 'ब्रज की लोक कहानियाँ' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

३—कहावतें तथा बुझौवल।
४—तुकबन्दी, कहावतें तथा स्थानीय उक्तियाँ।[1]

बर्न का यह वर्गीकरण लोक-साहित्य की साधारण रूप-रेखा प्रस्तुत कर देता है, किन्तु किसी स्थान के लोक-साहित्य पर विचार करने के लिए यह अपर्याप्त है : यह अपर्याप्त इसलिए नहीं है कि इसमें से कुछ छूट गया है, वरन् इसलिए है कि यह विस्तृत विवेचन में सहायक नहीं हो सकता।

सङ्कलन का विवरण—ब्रज में से अब तक जो सामग्री उपरोक्त उद्योगों से प्राप्त हुई है, उसमें से ब्रज-साहित्य-मण्डल की सामग्री और क्षेत्र पर पहले विस्तार से कुछ प्रकाश डाल लें। उससे एक ओर जो लोक-साहित्य के रूप ऊपर आये हैं, वे स्पष्ट हो जायँगे दूसरी ओर क्षेत्र का ज्ञान हो जायगा।

निम्नलिखित गाँवों में यह सङ्कलन कार्य हुआ है—

१—जाव, २—खरौट, ३—कोसी, ४—बठैन, ५—हाथिया, ६—बरचावली, ७—गिडोह, ८—खैरार, ९—मीतरौल, १०—नन्दगाँव, ११—गाँगवान, १२—राधाकुण्ड, १३—सिहाना, १४—बरसाना, १५—छाता, १६—अकबरपुर, १७—रनवारी, १८—नौगावाँ, १९—चौमुहा, २०—करहला, २१—ओछटा, २२—तूमौला, २३—पसौली।

इन २३ गाँवों में से पसौली, राधाकुण्ड मथुरा के हैं। एक दो गाँव दूसरी तहसीलों के भी हैं। फिर भी प्रधान भाग छाता तहसील के ही गाँवों का है। सङ्कलन का उद्योग किस गाँव में कितना हुआ, यह जान लेना भी आवश्यक है—इससे यह विदित हो जायगा कि किस गाँव में से विशेष सामग्री आयी है। लोक-साहित्य की सामग्री के स्वभाव को परखने में इस तत्त्व को—स्थानीय तत्त्व को बहुत सावधानी से देखने का उद्योग करना होता है। किस स्थान से कितने सङ्कलन-फार्म भरे गये उनका ब्यौरा इस प्रकार है—

१—पसौली से ४८,	२—राधाकुण्ड से १२	३—ओछटा से १३
४—जाव से ३	५—सिहाना से २	६—तूमौला से १९
७—खरौट से १४	८—छाता से १३	९—गिडोह से २

[1] बर्न : हैंडबुक ऑव फोकलोर : पृष्ठ ४

१०—कोसी से २०	११—नौगावाँ से १	१२—खैरार से १
१३—बठैन से ३	१४—बरसाना से ४	१५—नन्दगाँव से २
१६—हाथिया से ४	१७—सौंख से १	१८—मगोर्रा से १
१९—गांगवान से १	२०—करहला से १	२१—फैंचरी से १
२२—बरचावली से २	२३—चौमुहा से १	

पसौली से उक्त सङ्कलन-फार्मों के अतिरिक्त श्री ज्योतिराम यादव ने ७९ गीतों का संग्रह भेजा है। इसी प्रकार अकबरपुर से पातीरामजी ने सुन्दर अक्षरों में ९८ गीतों का संग्रह दो पुस्तकों में और १० चुटकुलों का संग्रह अलग एक पुस्तक रूप में भेजा है।

इस समस्त सामग्री में ४८१ गीत हैं, ६७४ मुहावरे-कहावतें और पहेलियाँ, ४० कहानी तथा चुटकुले, और शब्द तथा शब्दार्थ सम्बन्धी फार्म प्राय: ५ हैं। ये ऊपरी गिनती है। इनमें से प्राय: कुछ गीत, कुछ मुहावरे, कहावतें कई बार आये हैं, उन्हें निकाल देने पर भी उपरोक्त संख्या में २५-३० का ही अन्तर मिलेगा। गीतों में तो दो-चार ही दुहराये गये हैं। मुहावरे, कहावतें तथा पहेलियों में बहुतों की कई बार आवृत्ति हुई है। यह निर्विवाद है कि जिन मुहावरों या पहेलियों की कई बार आवत्ति हुई है, वे जन-समाज में विशेष विस्तृत क्षेत्र में काम में लाये जाते हैं, इसलिए कई केन्द्रों से उनका उल्लेख हुआ है। ऐसी लोकोक्तियाँ ये हैं—

१—आम खाने कै पेड़ गिननें।

२—आपु मरी तौ मरी मेरे हीरामनि कूँ लै मरी।

३—आए कनागत आई आस।
बाँमन ऊलें नौ नौ बाँस॥

४—आधी में संसार सपत्ती अपने चोला में।

५—ऊँट की नारि लम्बीऐ तौ का काटिबेकूँ ऐं।

६—उतर गई लोई तौ कहा करैगो कोई।
पाठान्तर—ओढ़ि लई लोई।

७—कातिकबारौ फैलि रह्यौ ऐ।

८—कहैं खेत की सुनैं खरिहान की।

९—एकई बेलि के तूँमरा ऐं।

१०—अँबा नाँय बिगरयौ खदानौं ई बिगरि गयौ ऐ।

११—कोई देवी के गावै कोई बराई के।

पाठा० (कोई होरी के गावैं कोई दिवारी के)

१२—कहैं ते कुम्हार गधा पै नायँ चढ़ै।

१३—करकैंटा की चोट बिटौरा पै।

१४—खानौ खाइकें न्हानौं, जिही जाट कौ बानौ।

१५—नकटा नाऊ। सब ते अगाऊ।

१६—गाय न बाछी। नींद आवै आछी।

१७—गिनें न गूथैं। मैं दूल्हा की मौसी।

१८—गधा ते पार नायँ बस्यावै गधइया के कान ऐंठें।

१९—घोड़ा चहिए बिआगी कूँ, फिरतौसौ अइयो।

२०—गुनि घटि गए गाजर खायें ते।
बल बगद्यौ बालि चबाऐं ते॥

२१—जाकौ बनिया यार। ताकूँ नहिं बैरी दरकार।

२२—दाति के दाँत नाँय देखे जाँत।

२३—ईंनी नाँय बुनाई, घस्यौ बतावै सूत।

२४—तेली के तीनौं मरौ ऊपर ते टूटौ लाठ।

२५—हमही हैगए काने तौ कौन के कहैं पखाने।

२६—हिरननु में मट्ठौ कोई नायँ।

२७—जेठ कौ, सो पेट कौ।

२८—गोबर गिरैगौ तौ कछु लैकें ही उठैगौ।

सङ्कलित ब्रज गीत—

जितने भी गीत एकत्रित हुए हैं उनमें निम्नलिखित प्रकार विशेष उल्लेखनीय हैं—

१—गीत—संस्कार, तीर्थयात्रा आदि से सन्बन्धित।

२—सावन के गीत—मल्हार।

३—रसिया तथा होली।

४—भजन—जिसमें आर्यसमाजी तर्ज के, जिकड़ी के तथा साधारण भजन सम्मिलित हैं।

५—खेलों के गीत जिनमें टेसू के, झाँझी के तथा चट्टा सम्बन्धी हैं।

६—परसोकला—जिसमें ग्रामीण अनुभव या चुटीले उद्गार छोटे छन्द में हैं।

७—पटका—किसी विशेष व्यक्ति या गाँव के सम्बन्ध कोई आलोचना या वर्णन।

८—ख्याल।

इन गीतों में लगभग पोने दोसौ रसिया हैं। इनमें होली भी सम्मिलित हैं। होली साधारणतः राग का विषय है। विदित ऐसा होता है कि ध्रुवपद में पहले होली गायी जाती होगी। फिर उसमें लौकिक प्रवृत्ति के अनुसार हेर-फेर कर रसिया बना लिया गया। यही कारण है कि सूरदास में जो होली विविध रागों में पदों में मिलती है वही अब प्रायः समस्त रसिया के ढर्रे में ढल गयी है।

आईने अकबरी में संगीत के अध्याय में जहाँ यह बताया है कि गीत दो प्रकार के होते है। एक मार्ग (ऊँची शैली के), दूसरे देशी; वहाँ देशी में यह बताया है कि देशी गीत वे हैं जो विशेष स्थलों में प्रचलित हों जैसे आगरा, ग्वालियर, बारी तथा पास के प्रदेशों में 'ध्रुपद'। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने नायक बक्सू, मच्छू और भानु की सहायता से एक लोक-प्रिय शैली चलाई।" हो सकता है यह किम्वदन्ती रसिया के जन्म की ओर ही संकेत करती हो। फिर भी यह विषय अभी अधिकारियों द्वारा विचार करने का है। हाँ यह बात ध्यान देने की है कि आइने-अकबरी के सुप्रसिद्ध लेखक अबुल-फजल ने ध्रुपद की परिभाषा में बतलाया है कि इसमें चार तालयुक्त चरण होते हैं, जिनमें शब्दों या शब्दांशों की कोई छन्द-शास्त्र सम्बन्धी मात्रा का विचार नहीं रखा जाता।[१] इनका विषय प्रेम रहता था।

रसिया में जो उत्ताल गति और उमंग होती है, उससे यह बड़ी तीव्र गति से प्राचीन लोक-गीतों को हटाता जा रहा है और स्वयं अपना स्थान बनाता जा रहा है। कुछ नगण्य रसियों को छोड़ कर जिनमें ज्ञान और नीति का वर्णन है, शेष सभी शृङ्गार रस के हैं। इनमें भी सबसे अधिक राधा-कृष्ण से सम्बन्ध रखते है। इसमें भी विशेष द्रष्टव्य यह है कि प्रायः सभी रसिया नये हैं और उनमें रसिया के रचयिताओं की छाप है। जिन रसिया निर्माताओं की छाप है, उनके नाम ये हैं—

[१] Dhrupad consists of four rhythmical lines without any definite prosodial length of words or syllables. [Ain-i-Akbari translated by H. S. Jarrett]

१—घासीराम ।
२—कृष्णलाल पीतम ।
❀३—गोविन्द प्रभु ।
❀४—कालिदास ।
५—फूलसिंह ।
६—प्यारे बुद्धू
❀७—कबीर
८—रालानन्द
९—जगदेव
१०—शंकर
११—शिवराम
❀१२—चन्द्रसखी
१३—गङ्गादास (पसौली वासी)
❀१४—सूरश्याम
१५—सालिगराम
१६—तेजपाल
१७—हुक्मसिंह
१८—गोपी रघुवर
१९—प्रेम रसिक
❀२०—वृन्दावन हित
❀२१—परमानन्द
❀२२—आनन्द घन
२३—मुकुन्द
❀२४—लछीराम
२५—जयकृष्ण
२६—जोती
२७—अजदूलह
२८—हितअनूप
❀२९—मीरा
❀३०—नन्ददास
❀३१—कृष्णदास
३२—माधौजन
३३—उदैराम धुज
३४—सोटाराय
३५—खिच्चो खुन्नो
३६—रामसरनि
३७—लछमन अलगेसावारौ
३८—वासुदेव करहला वासी
३९—झम्मनलाल
४०—तेजसिंह

इनमें से पुष्पांकित १२ कवि साहित्य के प्रसिद्ध महारथी हैं। इनके नाम से अंकित गीत सभी इनके हैं, इसमें सन्देह है। कितने ही पद ऐसे भी हो सकते हैं जो यथार्थ में किसी प्रसिद्ध कवि के हैं पर उनके रूप में हेर-फेर कर दिया गया है। इसका एक उदाहरण बहुत स्पष्ट है। मीरां का एक प्रसिद्ध पद है:—

"मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरौ न कोऊ।"

इस पद ने लोक-गायकों के हाथ में यह रूप धारण कर लिया है:—

"भजरे मन राम नाम दूसरौ ना कोई।
तेरौ दूसरो न कोई।
सन्तन ढोरैं बैठि बैठि लोक लज्जा खोई,
तैंने लोक लज्जा खोई।

अरे आँसू जल सींच सींच प्रेमबेलि बोई,
रे प्रेमबेलि बोई।
हाँ तात मात बाप पुत्र मेरौ सब कोई,
औरु जाके सिर मोर मुकुट मेरौ पति ओई,
हाँ मेरो पति ओई
मैं आई थी भगत जान रे जग कूँ देखि मोही,
औरु मेरे मन बसि (गो) गोपाल होनी होइ सो होई
रे भजरे मन राम नाम दूसरौ ना कोई।"

लोक-मानस ने अजान में ही इसमें अपनी बुद्धि के सहारे विस्मृत स्थलों को सुधार कर पद को एक रूप दे दिया है, 'मीराँ' का नाम भी नहीं रह गया।

साहित्य में प्रसिद्ध कवियों को अलग करके भी २८ के लगभग ऐसे कवि रह जाते हैं, जो गाँव के कवि हैं। इन कवियों में भी 'घासीराम' को भाषा पर और ग्रामीण भावों पर जितना अधिकार है दूसरे को नहीं। ये घासीरामजी गोवर्द्धन वासी हैं।

इन गीतों में घासीराम के अतिरिक्त गंगादास का थोड़ा सा परिचय और आया है। गंगादासजी पसौली के निवासी हैं।

रसिया तथा होली के साथ ही वे भजन हैं जो आर्यसमाजी तर्ज पर हैं, अथवा जिकड़ी के हैं, या ख्याल हैं। आगरा और मथुरा में जो कलगी-तुर्रा के ख्याल मिलते हैं, उन ख्यालों का संग्रह नहीं हुआ है। वे गाँवों में टिकने की चीज भी नहीं, इसलिए केवल एक या दो टुकड़ियाँ समस्त सङ्कलन में उस प्रकार के ख्याल की मिलती हैं। रसिया के उपरान्त जो दूसरी अत्यन्त प्रिय प्रणाली है वह जिकड़ी के भजनों की है। रसिया ग्रामीण मुक्तक हैं तो जिकड़ी ग्रामीण प्रबन्ध-काव्य। इस प्रबन्ध-काव्य का बहुत प्रचार है, और इसकी रचना ओज और उत्तेजना के भाव से पूर्ण होती है। बहुधा महाभारत से कथाएँ ली जाती हैं। ऐसा एक सुन्दर भजन 'कीचक-वध' का है। मुक्तक 'रसिया' में भी प्रबन्ध-कल्पना का नितान्त अभाव नहीं है। चन्द्रावली छलने के रसियों में रसिया के रस के साथ प्रबन्ध-शैली का भी आनन्द आता है। कृष्ण-कथा के छोटे-छोटे खण्ड रसिया के रस में सिक्त होकर मनोरम हो गये हैं :—

'हँसि कें माँगै चन्द्रावली हमारी दै देउ आरसी।'

इन गीतों के उपरान्त 'सामन के गीत' या मल्हार हैं। राधा और कृष्ण के झूलने का ही वर्णन विशेष है। एक गीत में 'निहालदे' का भी नाम आया है। ढोरा-मारू सम्बन्धी दो गीत भी सामन के गीतों में सम्मिलित होंगे। ये सामन में ही विशेष गाये जाते हैं। इनका विषय मारू का विरह है। सामन के गीत वर्षा की नन्हीं-नन्हीं फुहारों की भाँति स्त्रियों की कोमल करुणा से भीगे हुए हैं। उनमें स्वाभाविक उल्लास भी है। ये गीत ब्रज में अन्य भाषाओं की भाँति बहुत मार्मिक और उच्च कोटि के हैं।

यही दशा उन गीतों की है जो परम्परा से चले आये हैं, और किसी संस्कार विशेष से सम्बद्ध हो जाने के कारण सगुन-अपसगुन के भय से किसी सीमा तक बचे रह गये हैं। यही यथार्थ लोक-गीत हैं।

ग्राम-गीत और लोक-गीत—श्रीकृष्णानन्द गुप्त ने 'लोक-वार्ता' में एक लोक-गाथा पर टिप्पणी देते हुए लिखा है :—

"लोकगाथाओं को ग्राम-गीतों की संज्ञा देना और इनके अन्दर कवित्व और उच्च भावों की खोज का प्रयत्न करना बड़ा गलत है। यह चेष्टा निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी है। ग्राम-गीत प्रायः छोटे हैं, और रचना-काल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते हैं। किन्तु लोक-गाथाओं की परम्परा पुरानी होती है। लोक-वार्ता के अध्ययन की दृष्टि से ऐसी लोक-गाथाएँ ही महत्वपूर्ण मानी जानी चाहिये जो सर्वसाधारण में मुखाग्र प्रचलित हों और जिनकी रचना अपने आप ही खेतों और खलिहानों पर हुई हो।"

ग्राम-गीत छोटा हो नहीं बड़ा भी हो सकता है। जिकड़ी के भजन ग्राम्य-गीत हैं, बहुत लम्बे होते हैं। ये आधुनिक बने हुए हैं, और नई-नई मण्डलियाँ नये-नये गीत बनाती हैं, पर लोक-गाथा से ये भिन्न हैं। लोकगाथाकार बड़े से बड़े कथानक को अपने ग्राम की सहज भूमि के अनुकूल बना डालता है। वे उसके जैसे हो जाते हैं और ग्रामगीत का निर्माता अपने ज्ञान के आधार पर उनका व्यक्तित्व और उनका वही प्रसिद्ध रूप रखता है। यह अन्तर यहाँ इसी सङ्कलन के दो गीतों की तुलना से हो सकता है। यह अकबरपुर के स्कूल से सङ्कलित हुआ है :—

खेलत रूप सरूप रानी के दोऊ बालिका,
जुरिमिलि बालकु खेलु बनायौ रामा, आइ गये लछिमन राम
रानी के दोऊ बालिका

माँजि धोय लोटा भरि लाये रामा, पानी तौ पीऔ भगमान
रानी के दोऊ बालिका
तिहारे हात जलु नाहिं पीमें बालिका, जाति बताऔ माई बापु
रानी के दोऊ बालिका
मात हमारी सीताजी कहियत रामा, पिता की सुधि नाँहिं
रानी के दोऊ बालिका
वा सीता कूँ हमें रे दिखाइयौ रामा, कहाँ रे बसति तिहारी माय
रानी के दोऊ बालिका
ठाड़ी सीता केस सुखावै रामा, आइ रहे लछिमन राम
रानी के दोऊ बालिका
अपने री केशनि ढकिलै री माता रामा, आइ रहे लछिमन राम
रानी के दोऊ बालिका
फटि जाय धरती समाय जाय सीता रामा, जौमँत दियौ बनवास
रानी के दोऊ बालिका
फटि गई धरती समाइ गई सीया रामा, केस रामजी के हात
रानी के दोऊ बालिका

लव-कुश के युद्ध का, राम के आतङ्क का, उनके वैभव का, यहाँ कहीं भी पता नहीं। बटोहियों की भाँति लछिमन-राम उधर आ निकले हैं। लव-कुश खेल रहे हैं। वे उनके लिए भली प्रकार माँज कर लोटा पानी लाये हैं। राम विना जाति पूछे पानी नहीं पीयेंगे। लड़के माता का नाम तो सीता बता देते हैं पिता को क्या जानें ? तब राम सीता को देखने चल देते हैं। सीता खड़ी बाल सुखा रही है। जैसे राम का आना सुनती हैं, पृथ्वी में समा जाना चाहती हैं। पृथ्वी फट जाती है। सीता उसमें सचमुच समा जाती हैं, राम उन्हें पकड़ने दौड़ते हैं, बाल ही हाथ में आते हैं।

साहित्य में जिस रूप में राम से लव-कुश का मिलन बताया गया है, उसकी यहाँ छाया भी नहीं। यह गीत निश्चय ही लोक-गाथा माना जायगा। इसकी तुलना में यह भजन है :—

तोरयौ तोरयौ है धनुष सिरीराम, बचनु पूरौ कीयौ।
देस देस के राजा आए बैठे सभा मँझारि,
एक एक नें जोरु लगायौ, गए हैं भूप सबु हारि

जोर भारी अरे कीयौ।

वोर बिना धरती मैं जानी, नाँय कोई वीर रह्यौ
भूप सहस दस हातु लगायौ तिल भरि नाहिं टरयौ।
लगाइ बलु सबरौ दीयौ।
तड़कि भड़कि कें लछिमन बोल्यौ कहा बकवादु कीयौ
तोरूँ तेरौ धनुष उठाइ लऊँ धरती, न्यों करि ज्वाबु दीयौ
रोसु भारी अरे कीयौ।
जनक राय नें बिना विचारें कैसी बात कही
जो छत्री रनते नाँय डरिहै कैसें जाँति सही।
राम ने बरजि दीयौ—

यह गाँव में बना हुआ गीत तो है, पर वह स्वाभाविकता नहीं है। राम-लक्ष्मण रचना करने वाले से दूर हैं। साहित्य का ऋण भी यहाँ स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। तुलसीदास की शब्दावली कहीं कहीं बोल उठी है :—

'वीर विहीन मही मैं जानी' और
'भूप सहस दस एकहि बारा।'
लगे उठावन टरहिं न टारा।'

की गूँज उक्त गीत में असंदिग्ध है।

इन गीतों में राधा-कृष्ण अथवा चन्द्रावली की अथवा ज्ञान-वैराग्य की ही बातें नहीं हैं, सामयिक हलचलों को भी नहीं भुलाया गया है। जरमन की लड़ाई का उल्लेख है, जिसमें बहू सास से कहती है, जेठजी को भेजदो, देवर को भेजदो, पति को मत भेजो। युद्ध में गये हुए पति के विरह में एक स्त्री कहती है :—

मेरौ बालम रण में
मोर मचावत शोर।
मेरो साजन लड़ि रह्यौ जङ्ग
पपहिया क्यों मोइ करि रह्यौ तङ्ग

× × ×

है रन केसरी मेरी साजन
रण को बाँधि लयौ है कौंकन

× × ×

जर्मन कूँ मात खवावै
मेरौ साजन लौटि घर आवै
× × ×
अरे जापानी आँधी पूरब उठी
झकझोर—

इसी कवि के साथ राष्ट्रीय ग्रामीण कवि कहता है :—

री भैंना मेरी, भारत में फिरङ्गी
डांकू धँसि परे

एक अन्य कवि पिछले युद्ध को और भारत की अवस्था को इन शब्दों में रखता है—

लीजो खबरि जगत के स्वामी,
मेरी नाव पड़ी मँझधार।
जर्मन में जब भई लड़ाई,
अँगरेजों की अलवत होती हार।
भारत ने जब मदद दई,
रँगरूट की भरमार।
बाकी एवज गवरमेण्ट ने,
दीनी हमें लताड़।
चलि करिकें जलयान-
बाग में कीन्हे अत्याचार।
बिन बूझें बिन खबर हमारी
भरि दिये कारागार।
फाँसी दैकें हने हमारे भगतसिंह सरदार—आदि

इसी प्रकार इस युद्धकाल में कण्ट्रोल आदि से पूर्व और बाद की दशा का बड़ा कौतूहल-वर्द्धक और यथातथ्य वर्णन भी दो-तीन गीतों में हुआ है। ऐसी प्रवृत्ति कोसी की ओर विशेष है।

संस्कारों और धार्मिक गीतों में बधाये और विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत हैं। धार्मिक गीतों में ब्रज की यात्रा के गीत विशेष हैं। इन गीतों में एक विशेषता यह है कि ये प्रायः सम्बन्धित तो गङ्गा-यात्रा से हैं पर आगे चल कर इनमें ब्रज के स्थानों का उल्लेख हो उठता है। राम-भरत सम्बन्धी गीत ने वृन्दावन-गोकुल को समा लिया है—

उदाहरणार्थ--

बिन्द्राबन में करीरे तपस्या रामा,
मथुरा जी में अरे फल पाये।
उठि मिलि लेउ राम भरत आये री, भरत आये।
हरे हरे गोबर अँगन लिपाये रामा,
गजमोतिन चौक पुरत आये री, पुरत आये।
उठि मिलि लेउ राम भरत आये री, भरत आये।
बँइयाँ पसारि मिलेरी चारयौ भइया रामा,
नैंनन नीर झरत आये री, झरत आये।

परसोकले चुटकुले---इन गीतों के संग्रह में परसोकलों का संग्रह एक अनोखी चीज है। इसमें ग्राम में प्रचलित अनुभवों को सार रूप में दिया गया है। कुआ चलाने वालों के गीत में आने वाले परसोकले तो विशेषतः काव्यमय और कोई-कोई नीतिमय हैं। अन्य परसोकलों में खेती और वर्षा तथा पशुओं आदि के सम्बन्ध में याद रखने योग्य अनुभव दिये हुए हैं। ये परसोकले बहुत पुराने हैं। युक्त-प्रान्त के समाज, जाति, रीति-नीति, व्यवस्था, धर्म आदि विषयों पर जो लोक गाथाएँ संग्रह की गयी हैं, उनमें उनके अँगरेज लेखकों ने इस संग्रह में आये कई परसोकलों का तो उल्लेख किया है, पर कई नये हैं। और ग्राम निवासियों के शताब्दियों के अनुभवों का निचोड़ इनमें है। ये खेत-क्यार तथा पशुओं के सम्बन्ध में यथोचित मार्ग-दर्शन करने में गुरु-मंत्र का काम देते हैं। इस गीत-संपत्ति की इस नाप-जोख के उपरान्त कहानियों और चुटकुलों के सम्बन्ध में भी दो बातें कहनी हैं। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, इनका संग्रह बहुत कम किया गया है। प्रस्तुत संकलन में कहानियों और चुटकुलों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। चुटकुलों से तो कितनी ही प्रचलित कहावतों का स्पष्टीकरण हो जाता है। संभवतः ये चुटकुले उन कहावतों का मूलस्रोत ही होंगे।

एक लोकोक्ति है, 'गाम तौ जरौ पर तमासौ खूब देख्यौ'—लोकोक्ति का अर्थ तो अब साधारण रूप में होने लगा है। जिसको जहाँ यह लगती दीखती है, वह कह देता है। पर एक चुटकुला है; जो इसके लिए रोचक लगेगा—

"मीतरौल एक गाम है। बामें एक दिना फौज ने पड़ाव डारयौ। फौज के संग तोपखानोंऊ़ओ। गाम के मानिख बाकौ तमासौ देखिबे चले आए। फौज बारे ते बोले—"जि कहाएँ ?" फौजीन् नें कही कै जि तोपएँ। गाँमबारे बोले जिनते कहा होतु ऐ। फौजबारे नें कही—इनन्नें चलाइकैं लड़ाई लड़ी जाति ऐ। गाँमबारे बोले-इनन्नें चलाइकें हमारे साँमई दिखाऔ। फौजी बोले-गाँमु जरि जाइगौ। गाँमु बारे जाइ हँसी समझे और बोले हमें तो चलाइ कै दिखाइ ई दै। गाँम भलेंई जरि जाय। फौजन्नें भौत नाँहीं करी परि गामबारे नांय माने। तब फौजन्नें तोप चलाइ दई, तौ गाम जरि गयौ। तौ बा गाम के आदमी बोले—गाँम तौ जरौ परि तमासौ खूब देखौ।"

इसी प्रकार कई चुटकुले हैं। केवल मनोरंजक चुटकुले भी हैं। कहानियों का सम्बन्ध जाट, नाई, ठाकुर बनिया आदि जातियों से है। इन कहानियों के द्वारा मनोरञ्जन तो होगा ही, ग्रामीणों की कहानी रचने की प्रतिभा भी प्रतीत होगी, और जातीय विशेषताओं का परिज्ञान होगा। ये कहानियाँ स्थानीय कहानियाँ हैं।

इस प्रकार एक विशेष क्षेत्र से सामग्री आयी। किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य उद्योगों से अन्य विविध स्थानों से भी सामग्री का उपयोग यहाँ किया गया है। इनमें से मथुरा ही से प्राप्त होने वाली सामग्री में विविध संस्कारों के गीत और मल्हारें (सावन के गीत) हैं। तहसील सादाबाद के एक गाँव से विविध अन्य गीत मिले हैं। रसमई से यादविकाजी का संग्रह मिला है, इसमें भी विविध संस्कारों के गीतों का प्राधान्य है। लोहवन से जो गीत मिले हैं और कहानियाँ चुटकुले भी, वे बहुत गहराई तक के हैं। महाबन, बल्देव की दिशा से भी अच्छी सामग्री मिली है। इस समस्त सामग्री को संकलित करके हमने मथुरा के गाँवों में परीक्षा करायी। इस प्रकार मथुरा के प्रायः समस्त लोक-साहित्य का प्रतिनिधित्व हो गया है। इस समस्त सामग्री का अब सविधि वर्गीकरण किया जा सकता है। इस समस्त साहित्य को हम पहले दो बड़े भागों में बाँट सकते हैं: १–परम्परित, २–रचित। परम्परित साहित्य वह है जो परम्परा से चला आया है, जिसके रचयिता का पता नहीं है। रचित साहित्य वह है जिसके रचयिता का नाम ज्ञात है। परम्परित पर प्राचीनता की छाप रहती है। 'रचित' प्रायः नवीन होता है। परम्परित को पहले दो प्रकारों में बाँट सकते

हैं, गद्य तथा पद्य[1]। ये भी दो-दो भागों में बाँटे जा सकते हैं : १—स्त्री-समाज-प्रचलित, २—पुरुष-समाज प्रचलित। स्त्री-समाज प्रचलित गद्य में सबसे प्रधान स्थान त्यौहार-व्रत-कथाओं का है। भारतीय समाज में बहुधा धर्म के अनुष्ठान का भार स्त्री-समाज पर आ पड़ता है। धार्मिक अनुष्ठानों में हमें दो धाराएँ स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। एक शास्त्रीय अथवा कर्तृत्व से सम्बन्धित, यह बहुधा पुरुषों के आधीन रहती है। दूसरी लौकिक अथवा श्रोतृत्व से सम्बन्धित, यही प्रायः स्त्रियों के लिए होती है। इसी अन्तर से हम देखते हैं कि अनुष्ठान में पुरुष यज्ञ करता है, मन्त्रोच्चार करता है, पूजा करता है किन्तु स्त्री व्रत करके व्रत की कथा या कहानी सुनती है। यथार्थ में पूजा भी स्त्री का धर्म नहीं, व्रत ही उसका प्रधान धर्म है। स्त्रियों में जो पूजा दिखाई पड़ती है वह या तो पुरुषों के प्रमाद से आयी है, या व्रत को सविधि करने का माध्यम अथवा सहारा है। यही कारण है कि धार्मिक अनुष्ठान सम्बन्धी प्रायः समस्त लोक-साहित्य स्त्रियों में ही प्रचलित है, पुरुषों में नहीं। स्त्रियों के गद्य-साहित्य में, अतः, व्रत-कहानियों का प्राधान्य है। ये कहानियाँ उनके धर्म का अङ्ग हैं। कोई भी व्रत विना कहानी सुने पूर्ण हुआ नहीं माना जा सकता। ये कहानियाँ धार्मिक श्रद्धा से सुनी जाती हैं। यह तो सुनने का लोक-साहित्य है। स्त्रियों के पास 'सुनाने' का भी लोक-साहित्य होता है। यह साहित्य प्रायः बच्चों को सुनाने का होता है। इन कहानियों में मनोरञ्जन का भाव ही प्रमुख रहता है। कभी-कभी इस 'सुनाने के साहित्य' में किसी विश्वास आदि की व्याख्या भी हो सकती है। पर यथार्थ यह है कि यह 'सुनाने का साहित्य' जितना स्त्रियों का है, उतना ही पुरुषों का। दोनों ही इसे समान रूप से काम में ला सकते है। हाँ यह स्त्री-वर्ग में ही विशेष प्रचलित मिलता है, और स्त्रियाँ ही इसे बहुधा कहती हैं। इसका कारण स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य-क्षेत्र का भेद हो सकता है। बच्चों का खिलाना, उनका मन बहलाना बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के ही सिर रहता है, अतः उन्हें ही ये कहानियाँ याद रखनी पड़ती हैं।

पुरुषों के गद्य-साहित्य में प्रायः चार दृष्टियाँ मिलती हैं, इसे चार प्रकार का माना जा सकता है। १—मनोरञ्जक अथवा मनबह-

[1] पद्य से यहाँ अभिप्राय उस समस्त रचना से है जो गद्य नहीं—वह चाहे गेय हो अथवा मात्र पाठ्य हो।

लाव का, २—शिक्षा अथवा उपदेश का, ३—व्याख्या का और ४—वाणी विलास का। इन चारों उद्देश्यों से मिलने वाले साहित्य का रूप या तो कहानियों का हो सकता है (बहुधा कहानियों का ही होता है) या 'चुटकुलों' का। 'वाणी-विलास' कहावतों के रूप में प्रकट होता है, चुटकुले भी अत्यन्त छोटी, विशेष अवसर पर फबती हुई कहानियाँ ही मानी जा सकती हैं, यद्यपि दोनों का विधान एकसा नहीं होता।

कहानियों का वर्गीकरण—कहानियों को विषय की दृष्टि से हम कई विभागों में बाँट सकते हैं क्योंकि विषय के कई अङ्ग होते हैं : एक तो होता है उद्देश्य, उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, पर वह कथा कहने वाले का उद्देश्य है। एक उद्देश्य कथा के कथानक का भी हो सकता है। कथा का उद्देश्य हो सकता है मनोरञ्जन का, पर कथाकार का उद्देश्य हो सकता है आपको अलौकिक घटनाओं में से ले चलना, अथवा किसी की चतुराई प्रदर्शित करना। कथानक के उद्देश्य से ही कहानी का स्वभाव बनता है : स्वभाव की दृष्टि से ये कहानियाँ अलौकिक हो सकती हैं। इनमें लोक में न मिलने वाली बातों का समावेश मिलता है। इस लोक से उनका सम्बन्ध नहीं होता, अन्य किसी लोक में वे हमें ले जाती हैं। जैसे जैनियों की अनेकों लोककथायें जिनमें हम विद्याधरों के दिव्य-लोक में विचरण करते हैं[1]। ये कहानियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनमें इसी लोक में अन्य लोकों के प्राणी विचरण करें और ऐसे कृत्य करें जो दिव्य और विलक्षण हों। इन कहानियों का उद्देश्य धार्मिक भी है, पर कथानक में केवल धार्मिक भावना प्रधान नहीं रहती। (पृष्ठ ८४ पर देखिए)

साधारणतः स्थूल दृष्टि से कहानियों को हम आठ बड़े भागों में बाँटते हैं : १—गाथाएँ, २—पशु-पक्षी सम्बन्धी अथवा पंचतन्त्रीय, ३—परी की कहानियाँ, ४—विक्रम की कहानियाँ (Adventures) ५—बुझौवल संबंधी, ६—निरीक्षण गर्भित कहानियाँ, ७—साधु-पीरों की कहानियाँ (Hageological) और ८—कारण-निदर्शक कहानियाँ (Acteological)

---

[1] यथा जे० जे० मेयर (J. J. Meyer) की 'Hindu Tales' में संग्रहीत कहानियाँ हैं; अथवा 'कथासरित्सागर' में।

गाथाओं के अन्तर्गत वे सभी कहानियाँ आ जाती हैं जो उपरोक्त वर्गीकरण में संख्या १ से ४ तक की हैं। पशु-पक्षियों की तथा पञ्चतन्त्रीय: ये दो प्रकार की होती हैं: एक साभिप्राय, जिनसे कोई न कोई शिक्षा निकलती है; दूसरी वे जिनसे कोई शिक्षा नहीं निकलती। परी की कहानी के कई वर्ग हो सकते हैं: १—वे जो यथार्थ में परियों से, अप्सराओं से, दिव्य कन्याओं से, विद्याधारियों से सम्बन्धित हैं: जैसे 'वेजान नगर' की कहानी। वेजान नगर की रानी एक अप्सरा थी जिसे तँबोली के लड़के ने बड़े उद्योग से प्राप्त किया था। दूसरी वे जिनमें दाने (दानव) रहते हैं। तीसरी वे जिनमें डाहिनें आती हैं। जादू-चमत्कारों की कहानियाँ भी इसी के अन्तर्गत होंगी। विक्रम या पराक्रम की कहानी में किसी वीर नायक का चरित्र दिखाया जाता है। इसके भी दो प्रकार हो सकते हैं: एक इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान), दूसरा अनैतिहासिक पुरूषाश्रित। ऐतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियों में 'वीर-विक्रमाजीत' की कहानियाँ प्रधान मानी जा सकती हैं। अनैतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियों में किसी भी राजा के लड़के या अन्य व्यक्ति की कहानी आ सकती है।

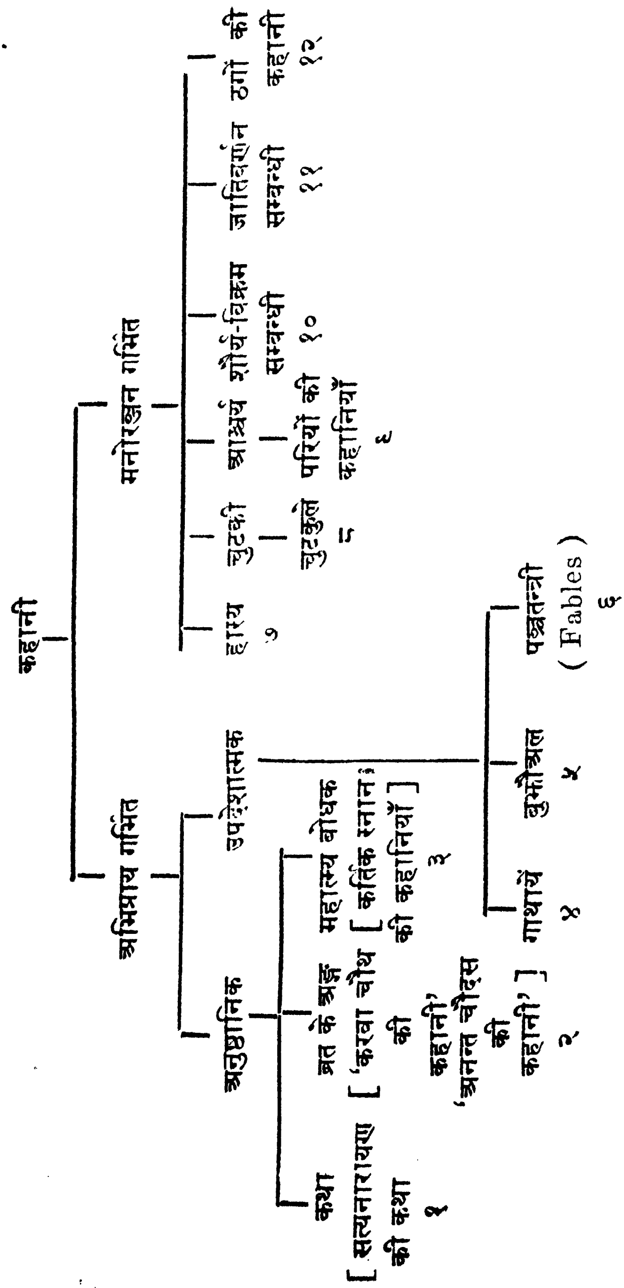
बुजौवल-कहानियाँ भी दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जिन में कुछ समस्याओं अथवा नीति की बातों को सुलझाने तथा परीक्षण करने का उद्योग होता है। दूसरी वे जिनमें समस्यायें या पहेलियाँ शर्त्त के रूप में आती हैं, जिन्हें हल कर देने पर अभीप्सित वस्तु मिल जाती है।

निरीक्षण-कहानियों में किसी के स्वभाव, धर्म आदि के सम्बन्ध में जो ज्ञान हुआ है, वह रहता है। ये कहानियाँ ही प्रायः चुटकुलों का रूप ग्रहण कर लेती हैं। विविध जातियों से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ इसी के अन्तर्गत आयेंगी।

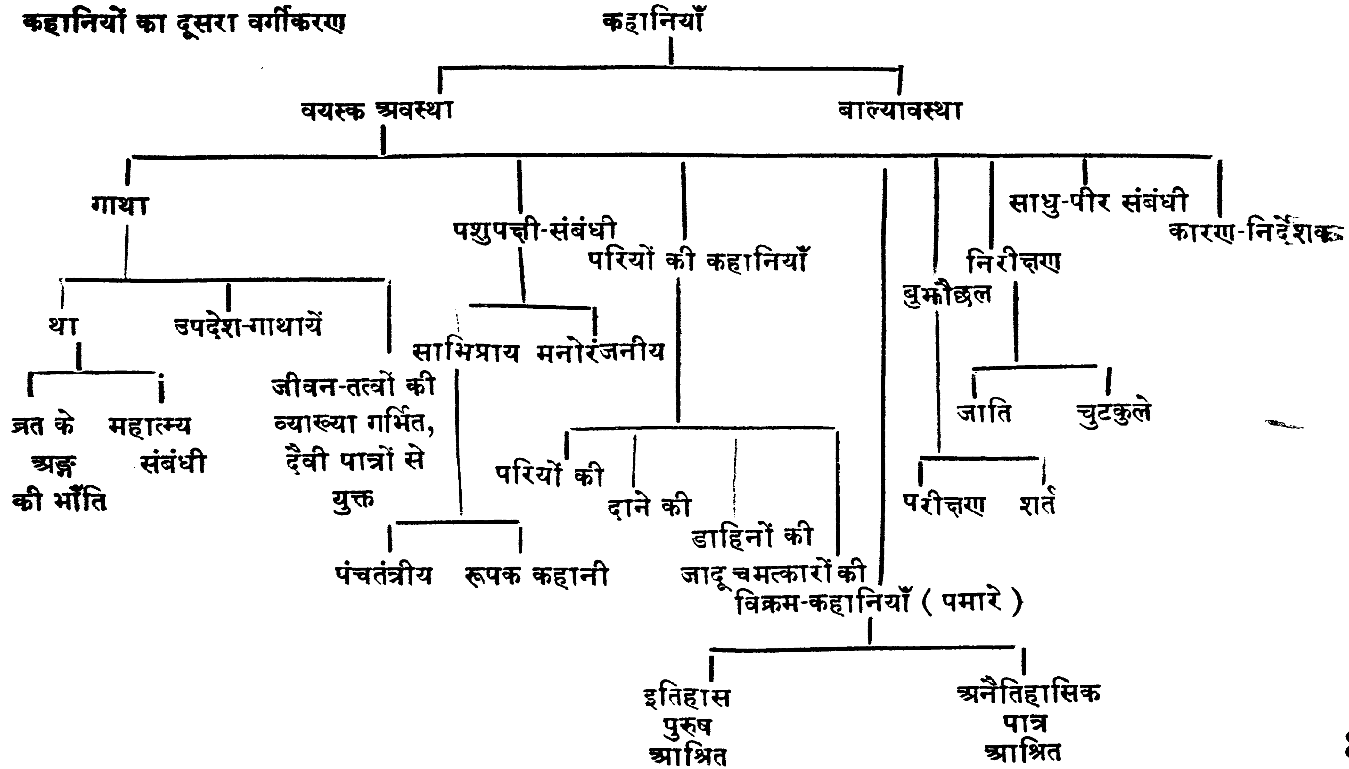
साधु-पीरों की कहानियों में पहुँचे हुए साधुओं, सिद्धों तथा पीरों की कहानियाँ होती हैं। इनमें साधु-पीरों के द्वारा सङ्कट-निवारण करने अथवा पुत्र-धन आदि प्रदान करने के चमत्कारों का उल्लेख रहता है।

कारण-निर्देशक कहानियाँ वे हैं जिनमें किसी व्यापार का कारण प्रकट किया जाता है।

अतः कहानियों का हम निम्न वर्गीकरण कर सकते हैं—


कहानी
अभिप्राय गर्भित
मनोरञ्जन गर्भित
आनुष्ठानिक
उपदेशात्मक
कथा [सत्यनारायण की कथा १
व्रत के अङ्ग ['करवा चौथ की कहानी' 'अनन्त चौदस की कहानी'] २
महात्म्य बोधक [कार्तिक स्नान की कहानियाँ] ३
गाथायें ४
बुझौअल ५
पञ्चतन्त्री (Fables) ६
हास्य ७
चुटकी
चुटकुले ८
आश्चर्य
परियों की कहानियाँ ९
शौर्य-विक्रम सम्बन्धी १०
जातिवर्णन सम्बन्धी ११
ठगों की कहानी १२

कहानियों का दूसरा वर्गीकरण



कहानियों की भूमि तथा प्रकार—उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त एक और वर्ग भी कहानियों का है। इन्हें बाल-कहानियाँ कह सकते हैं—ये कहानियाँ उपरोक्त वर्ग से भिन्न प्रकार की होती हैं। उपरोक्त वर्ग की सभी कहानियों की भूमि को मनुष्य की तीन वृत्तियों में बाँट सकते हैं। १—विश्वास प्रतिपादक वृत्ति, २—आश्चर्य उद्दीपक वृत्ति, ३—समाधानकारक वृत्ति। ये तीनों वृत्तियाँ विकसित अवस्था में ही विशेष प्रतिफलित होती हैं। किन्तु अबोध बाल-मानस की वृत्तियाँ इन वृत्तियों को संतुष्ट करने वाली कहानियों को सह नहीं सकतीं। उनका अपना छोटा संसार है, वे उसी से घनिष्ठ परिचय रखना चाहते हैं, और उसी जगत की वस्तुओं से साहचर्य और जीवन-संपर्क तथा रस प्राप्त करना चाहते हैं। बाल-मनोवृत्ति की कहानियों में संक्षिप्त कथानक, परिचित पदार्थ, उनकी दुहरावट, उनके स्वभाव का चित्रण और कौतूहल आदि बातें मिलेंगी। इन कहानियों में संगीतात्मक (Rythms) (संगीत नहीं) का पुट विशेष रहता है। इस दृष्टि से हम कहानियों को निम्न वृत्त से समझ सकते हैं : (पृष्ठ ८७ पर देखिए)

इन समस्त कहानियों को हम व्यक्ति की दृष्टि से न विभाजित कर कहानियों की वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से भी बाँट सकते हैं। इस दृष्टि से ये तीन विशद विभागों में बँट सकती हैं। १–गाथाएँ (माइथ), २–वीर गाथाएँ अथवा अवदान (लीजेण्ड), ३–कहानियाँ (स्टोरीज)।

लोकगाथायें चार प्रकार की हो सकती हैं। विश्व-निर्माण की व्याख्या करने वाली, (२) प्रकृति के इतिहास की विशेषताओं की व्याख्या करने वाली, (३) मानवी सभ्यता के मूल की व्याख्या करने वाली। (४) समाज तथा धर्म-प्रथाओं के मूल अथवा पूजा के इष्ट के स्वभाव तथा इतिहास की व्याख्या करने वाली।

ये सभी प्रकार की लोक कहानियाँ किसी न किसी रूप में व्रज में भी मिल ही जाती हैं। इस प्रकार यह मौखिक गद्य साहित्य का विवेचन हुआ। गद्य में 'रचित' की परीक्षा कठिन है। क्योंकि रचित गद्य-लोक साहित्य मिलता ही नहीं।

गीत-साहित्य—मौखिक पद्य लोक-साहित्य को हम पहले दो भागों में बाँट सकते हैं। एक गीत, दूसरे अगीत। अगीत साहित्य

गीतों का वर्गीकरण—

- पुरुषों के
  - साधारण
    - ग्रामीण
      - प्रबंध
        - व्यक्ति द्वारा
          - ढोला
          - आल्हा
          - हीरराँझा
          - नरसी का भात
        - समूह द्वारा
          - जिकड़ी
          - पँवारे
          - साके
      - मुक्तक
        - सोरठ
        - समादी भजन
        - रजपूती होली
        - साड़के
        - रागिनी
        - रसिया
        - ख्यालि आदि
    - नागरिक
      - ख्याल स्वांग
      - भगत
    - जातियों के
  - अनुष्ठानों के
    - व्यक्ति द्वारा
      - जाहरपीर
    - सम्मिलित
      - देवी की भेंट, ब्याहुले
      - ज्वालाजी का जुभक आदि
  - माँगने वालों के
    - सरमन (विस्नोई)
    - भैंरों (भोपों के)
  - खेल के
  - बच्चों के माँगने के
  - पेशेवर के
    - टेसू के
    - चट्टा के

बहुधा कहानियों को कहने के एक ढंग का रूप ही ग्रहण कर लेता है–कुछ पहेलियाँ, कुछ 'क्रमानुबद्ध पद्य कहानियाँ' (Drolls), परसोकले, खु'सि, अनमिल्ले, गड़गड्ड, ये कुछ प्रकार ब्रज में इस विभाग के मुख्यतः मिलते हैं। गीत-साहित्य अनन्त और अटूट है। (पृष्ठ ७६ पर देखिए)

पुरुषों के गीतों में ढोला, पँभारे, साके, हीर-राँझा, होली, रसिया. भजन (जिकड़ी, समादी, धुनिक,) जाहरपीर, नरसी, आदि हैं। जिकड़ी, समादी भजन, रसिया, होली, स्वाँग तथा भगत 'रचित' होते हैं।

स्थानीय कहावतें—ऊपर प्रायः समस्त लोक-गीतों का वर्गीकरण हो चुका है। केवल एक विशद विभाग रह गया है—वह है 'कहावतों' का। सभी लोक-साहित्य कहावतों का अखण्ड-भण्डार होता है। पद-पद पर बात-बात के लिए कोई न कोई चुभती उक्ति कहावतों के रूप में सुनने को मिलती हैं। ये कहावतें दो प्रकार की कही जा सकती हैं; १ सामान्य, २ स्थानीय। सामान्य कहावतें प्रायः सर्वत्र प्रचलित हैं। स्थानीय कहावतें ग्राम-विशेष में ग्रामीण घटनाओं अथवा आवश्यकताओं के आधार पर बन जाती हैं, और प्रायः वहीं प्रचलित रहती हैं। आगे चलकर यह संभव नहीं होगा कि मथुरा जिले के समस्त गाँवों की अपनी स्थानीय कहावतों पर विचार कर सकें, इतना अवकास नहीं है। अतः स्थानीय कहावतों की रूप-रेखा समझने के लिए उदाहरण स्वरूप 'लोहबन' की कुछ कहावतें यहाँ दिये देते हैं—

(१) टकसार बाहर।
(२) लज्जावारी देना।
(३) सीजी की दुकान।
(४) अलखराम कौ जनेऊ, कहूँ दुल्लर कहूँ तिल्लर।
(५) राई-राई नोंन-नोंन करना।
(६) खूब बाँटु बैठ्यौ।
(७) केदार कंकन बाँधना।

इनकी व्याख्या करते हुए एक-एक कहावत को क्रमशः स्पष्ट किया जायगा;

१—इस गाँव में वैश्यों का एक कुटुम्ब है। उसमें सभी बालक और वृद्ध गौर वर्ण के हैं। स्त्रियाँ भी गौर वर्ण की ही हैं। उसमें एक लड़का पैदा हुआ। जिसका रंग काले और नीले रंग का मिला हुआ था। अब उसकी उम्र लगभग २५ वर्ष की है। उससे सब लोग मजाक में 'टकसार बाहर' कहते हैं। यह 'टकसार बाहर' जाली रुपयों के लिये प्रयुक्त हुआ करता था। अब यह कहावत का रूप धारण करता है। जो अपने कुल की परम्परागत मर्यादाओं से बाहर कोई कार्य-करता है उसी कार्य को और कार्यकर्ता को टकसार बाहर कह देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कहावत का जन्म लोहबन में लगभग १९३५ में हुआ था। यह स्थानीय कहावत यह सिद्ध करती है कि कभी कभी साधारण कहावत भी किसी विशेष स्थान में अपने साधारण अर्थ के अतिरिक्त स्थानीय रंग अधिक ग्रहण करके स्थानीय बन जाती है।

२—लज्जा एक गरीब आदमी है। पागल सा, बिल्कुल गँवार जिसे गाँव में 'गँवार चालीस सेरा' कहा करते हैं। उसका यह स्वभाव है कि वह कहीं जाय तो सदा अप्रासंगिक बातें कहता है। बात हो रही हैं दिल्ली की तो वह छेड़ेगा कराँची की। इस प्रकार की बातों को गाँवों में 'मारै घौंटू फूटै आँख' कहावत द्वारा अभिहित किया जाता है। लज्जा की इस प्रवृत्ति का अब कहावत के रूप में नाम करण होने लगा है। अब, जहाँ कहीं किसी आदमी को अप्रासंगिक बात कहते देखते हैं तो उससे कहा जाता है कि 'तू तौ लज्जावारी दै रह्यौ ऐ': लज्जा के स्वभाव को लक्ष्य करके 'लज्जावारी देना' कहावत हो गयी है। गाँव में इस कहावत का प्रचार सबसे अधिक है।

३—सीजी की कोई दुकान नहीं है। सुनते हैं उसके पुरखों ने भी कभी कोई दुकान नहीं की। एक और बात है। यदि कोई सीजी से पूछे कि सीजी तेरे यहाँ कोई चीज है तो वह चिढ़ जाता है, गाली देने लगता है और मारने को दौड़ता है। इसी को लेकर एक और कहावत बनी। कोई आदमी नितान्त मूढ़ हो तो उससे बहुधा कह दिया करते हैं कि 'रे तेरौ तौ दिमाग सीजी की दुकान है।' इसका अभिप्राय है जैसे सीजी की दुकान में कुछ नहीं मिलता, वैसे ही उसके मस्तिष्क में कुछ नहीं।

४—लगभग संवत् १८६४ की बात है। अलखराम नाम के

एक महात्मा इस गाँव में आया करते थे। उनके विषय में आज भी बड़ी बड़ी विचित्र बातें कही जाती हैं। वे भैंसा पर सवारी करते थे। वे जो कुछ मुँह से कह देते थे वही हो जाता था। वे इतने मस्त-मौला थे कि उनकी थाली में कुत्ते भी खाया करते थे और साथ ही साथ वे भी खाते रहते थे। उनका जनेऊ एक विशेषता रखता था। यदि कहीं से टूट जाता था तो वहीं गाँठ लगा देते थे। इसलिये वह किसी जगह दोलर रहता था, तो कहीं तीन लर हो जाती थीं और कहीं चार लरों का हो जाता था। तब से कोई आदमी मस्ती में बेढंगा कार्य करे तो इसी कहावत का प्रयोग कर देते हैं। 'अलख-राम कौ जनेऊ, कहूँ दोलर कहूँ तिल्लर'।

५—वर्षा जब हो जाती है तब बालक एक खेल किया करते हैं जिसे 'घरोंदे का खेल' कहते हैं। घरोंदे को गाँव के बच्चे 'घरुआ' अथवा 'घरुआ पतुआ' कहा करते हैं। जब यह बन जाता है तब उसके ऊपर थोड़ी सी मिट्टी डाल कर पोले पोले हाथों से रोरते हैं, और कहते जाते हैं 'राई-राई पाइजा नोंन-नोंन खोइजा' अथवा 'राई-राई पाइजा, नोंन बिखरिजा।' बच्चों की इसी बात को लेकर एक कहावत निर्मित हो गई है। किसी घटना या किसी के कार्य का जब गाँव वाले विश्लेषण करते हैं तब उसे 'राई-राई, नोंन-नोंन' करना कहते हैं। 'नीर-क्षीर' का यह पर्याय हो सकता है। इसका अभिप्राय तत्त्व और छूँछ को अलग-अलग करना है।

६—इस कहावत के इतिहास की मैंने खोज की किन्तु कोई विशेष इतिहास नहीं मिला। इसका अर्थ यह है कि अचानक कोई लाभ हो जाय, अचानक कोई दावत आ जाय या अचानक कोई जिजमान आ जाइ तो कहते हैं कि 'खूब बाँटु बैठ्यौ' प्रतीत ऐसा होता है कि साझे के खेत में अप्रत्याशित अधिक लाभ होगया होगा. फलतः उस साझीदार को भी उसकी आशा के विरुद्ध बाँट में 'बटाई में' बहुत सा अन्न मिला होगा। उसी ने कहा होगा 'खूब बाँटु बैठ्यौ' और तबसे यह कहावत बनकर प्रचलित है। इसी को यह भी कहते हैं 'खूब तक लगी' या 'मार दियौ हाथु।' इसका अब तो नहीं, पर पहले बहुत प्रचार हो चुका है।

७—केदार-कंकन के विषय में एक कहानी कही जाती है। उसमें एक बिल्ली की चालाकी है। सूक्ष्म में वह कहानी इस प्रकार है :

'एक बिल्ली ने मक्खन के एक मटके में अपना मुँह दे दिया। उसने निकालने की बहुत कोशिश की किन्तु असफल रही। अन्त में उसने वह मटका तो तोड़ दिया किन्तु उसकी घाँघरी उसकी गर्दन में पड़ी ही रह गई। भूखी तो वह थी ही। वह वहाँ से चली।

रास्ते में एक मुर्गा मिला। उसने पूछा कि मौसी कहाँ जा रही हो। बिल्ली ने कहा कि बेटा अब में भगतिन हो गई हूँ। तीर्थ-ब्रत करने जा रही हूँ। मुर्गे ने फिर पूछा 'और तेरे गले में यह क्या है ?' बिल्ली ने कहा 'यह केदार-कंकन है।' मुर्गा ने कहा 'मैं भी चलूँ।' बिल्ली ने कहा 'बेटा! चल। तेरी राजी।'

यह कह कर मुर्गा उसके साथ चल दिया। रास्ते में मौका पाकर उसे वह खा गई। तभी से 'केदार-कंकन' कहावत बन गयी। जब कोई बुरा आदमी अच्छी बातें करे तो कह देते हैं कि आज तो 'केदार कंकन' बाँधि आया है। केदार-कंकन की यह कहावत स्थानीय नहीं है। यह संस्कृत में प्रचलित है। ऊपर दी हुई कहानी से जैसा प्रकट है, यह इसी कहानी के आधार पर पहले संस्कृत में प्रचलित हुई है। किन्तु ब्रज में यह इस रूप में अन्यत्र प्रचलित नहीं।

कहावत का भण्डार अन्य प्रकार के लोक-साहित्य से भी अधिक है। पद-पद पर अगणित कहावतें हमें मिलती हैं। उनके प्रकार भी कितने ही होते हैं। यथार्थतः ऊपर जिन परसोकलों, पटकों का उल्लेख हुआ है, उन्हें भी 'कहावत' के अन्तर्गत ही मानना उचित होगा। पहेलियाँ भी इसी का भेद है। अनमिल्ला, खुंसि, गहगड्ड आदि भी रूप और अभिप्राय के कारण कहावत का ही भेद हैं। वे सभी 'लोकोक्ति' के बड़े नाम से भी पुकारे जा सकते हैं। 'लोकोक्तियाँ' मानवी ज्ञान का सार हैं, ये मर्म को स्पर्श करती हैं, और थोड़े में ही बहुत कह देने की 'सूत्र प्रणाली' को साधारण लोक में बनाये हुए हैं। इसमें नीति तो होती ही है[1]। ग्रामीण दर्शन भी इसमें होता है[2]। यही नहीं इन्हीं में ग्रामीणों का ज्ञान का भण्डार भरा रहता है। पशु-कृषि सम्बन्धी अनेकों प्रामाणिक तथ्य और सूचनाऐं इनके द्वारा ही गाँवों के निवासी पीढ़ी दर पीढ़ी देते चले आते हैं। 'अनमिल्ला' जैसा रूप मनोरंजन तथा व्यंग के लिए भी गढ़ लिया गया है। डा० वासुदेवशरणजी

[1] डा० वासुदेवशरण "राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह" की भूमिका।

[2] श्री कृष्णानन्द गुप्त 'कहावतें' 'लोकवार्ता पत्रक सं० ३'

का मत है कि 'लोकोक्तियाँ' सूत्रों की शैली पर हैं। 'सूत्र-शैली' उपनिषद युग के पश्चात् बुद्धि-प्रवृत्ति के विशेष जागरित होने के समय प्रचलित हुई। बुद्धि के पुजारी आर्य चाणक्य का चाणक्य-सूत्र प्रसिद्ध है। उसमें दिये सूत्रों में अनेकों सूत्र कहावत अथवा लोकोक्ति के जैसे ही हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि उपनिषदों के उपरान्त सूत्र-काल में ही संभवतः कहावतों और लोकोक्तियों का विशेष उत्कर्ष हुआ। यह वह प्रकार है जो लोक की उक्ति तो है ही, साहित्य का भी अंग बना, और साहित्य में भी सम्मान का भागी बना।

खेल में वाणी-विलास—यह तो लोक-साहित्य के साहित्य-रूपों की रूपरेखा हुई। पर गाँवों में कुछ और भी मिलता है, जिसे ठीक-ठीक साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती, पर जिसे उससे बाहर किस कोटि में स्थान मिले यह भी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह है 'खेलों' में प्रयुक्त 'वाणी-विलास। यथार्थ में कुछ खेल ही वाणी-विलास के खेल कहे जा सकते हैं। ये खेल दो प्रकार के माने जा सकते हैं—एक बड़ों के, दूसरे शिशुओं के।

बड़ों के हमें तीन खेल विशेषतः विदित हैं जिनमें वाणी-विलास का उपयोग होता है। एक तो बड़ा खेल है—कबड्डी। दूसरा है—कोड़ा जमालशाही। एक तीसरा है "चील-झपट्टा"।

'कबड्डी' में दो दल हो जाते हैं। मैदान के बीच में एक फाली, या पाली निश्चित हो जाती है। क्रम से एक दल का कोई एक व्यक्ति दूसरे दल में कबड्डी देने जाता है। उसे प्रतिद्विन्द्वियों की पाली में उस समय तक कुछ न कुछ मुँह से उच्चारण करते रहना पड़ता है, जिस समय तक कि उसकी साँस न टूटे। जब तक साँस नहीं टूटती, वह जिसे छू देगा वह मर जायगा, अर्थात् खेल के क्षेत्र से अलग हो जायगा। साँस टूट जाने पर यदि कोई प्रतिद्वन्द्वी उसे छू देगा तो वह मर जायगा। इस खेल में उच्चारण करने के लिए कभी तो एक शब्द ही पर्याप्त होता है जैसे 'कबड्डी, कबड्डी·······' इसी को खिलाड़ी कहता चला जायगा। या 'डू डू······' कहता रहेगा। यह 'डू डू' 'भड्डू' का लघु है। 'भड्डू' कबड्डी का ही दूसरा नाम है। किन्तु इसके साथ ही कभी और भी कुछ कहता रहता है: जैसे 'कबड्डी तीन ताला हनूमान ललकारा' या 'चल कबड्डी आल ताल, लड़ने वाले हो हुशियार'। जब कोई मर जाता है तो यह कहके कबड्डी दी जाती है—

'मरे को मर जाने दे,
घी की चुपड़ी खाने दे'।

अथवा

मेरौ यारु मरिगौ, कोई लकड़ी न दे,
चंदन कौ पेड़ कोई काटन न देइ।

इसी प्रकार अन्य अनेक शब्दावलियाँ, कभी सार्थक कभी निरर्थक, कबड्डी देते समय उपयोग में लाई जाती हैं—'भड्डू भड़कि जाऊँ, तीनौंन कुटकि जाऊँ', 'कबड्डी तीन तारे, हनुमान ललकारे, बेटा तोई से पछारे।'

'कोड़ा जमालशाही' खेल भी बड़ा रोचक है। लड़के एक गोल बना कर बैठ जाते हैं। एक कोड़ा बना लिया जाता है। एक लड़का कोड़ा लेकर गोल के बाहर लड़कों की पीठ के पीछे-पीछे घूमता है, और किसी भी लड़के के पीछे उस कोड़े को ऐसी सावधानी से रखता है कि उस लड़के को पता न चले। वह लड़का चक्कर काट कर यदि फिर उसी लड़के के पास आ जाय, और तब तक भी उस लड़के को कोड़े का पता न चले तो उसमें कोड़े पड़ते हैं और उसे उठकर चक्कर लगाकर फिर अपने स्थान पर आ बैठना पड़ता है। यदि उसने पता लगा लिया तो कोड़ा लेकर वह उठ खड़ा होता है, और कोड़ा रखने वाले का पीछा करता है, वह भाग कर उस लड़के के रिक्त स्थान पर आ बैठता है। यदि इससे पूर्व ही वह कोड़ेवाले लड़के के हाथ आ जाता है तो वह उसमें कोड़े झाड़ देता है। इस खेल में वैसे तो कोई मौखिक उद्‌गार आते नहीं, पर यदि कोई लड़का पीछे की ओर देखने लगता है तो कहा जाता है:—

"कोड़ा जमालशाही,
पीछे देखै मारखाई'।

'चील-झपट्टा' में भी ऐसा बहुत मौखिक कथन नहीं है। कभी-कभी खिलाड़ी एक उक्ति कह देता है। इस खेल में एक लड़का तो बैठ जाता है, एक रस्सी का एक छोर वह पकड़ लेता है। उसी रस्सी का दूसरा छोर दूसरा लड़का पकड़ लेता है। अन्य लड़के चारों ओर से झपट-झपट कर लड़के के पास आते हैं और उसके सिर में चपत मारते हैं दूसरा लड़का इन्हें छूता है। यानी उस लड़के की रक्षा करता है। इसी खेल को खेलते-खेलते कभी-कभी लड़के कहते हैं—

काहू के मूँड़ पै चिल मद्‌रा,
कौआ पादै तऊ न उड़ा
मैं पादूँ तौ झट्ट उड़ा।

यह उक्ति कभी-कभी अनायास ही किसी आदमी के सिर पर कोई चीज ऐसे चुपके से रख देने पर भी कि उसे पता न चले, कही जाती है। यह कह कर लड़के का उपहास किया जाता है। लिरिया और भेड़ खेल में जो लड़का लिरिया बनता है, वह कहता है—

'आधी राति गड़रिया डोलै
मेरी भेड़न नें कोई न ले,
तेरी नगरी सोवै कै जागै'—भेड़ें चुप हो जाती हैं। वह उन्हें उठा ले जाता है। किन्तु इनसे भी रोचक छन्द-खेल शिशुओं के होते हैं।

शिशुओं के छन्द-खेल—दो वर्ष और पाँच वर्ष के बीच के बालक की शिक्षा का, उसके मनोरञ्जन का, उसके समय को व्यस्त बनाने का एकमात्र साधन खेल ही होता है। इस अवस्था में दौड़-धूप के खेलों से भी अधिक उपयोगी ऐसे अन्तरङ्गी खेल होते हैं, जिनमें बालक को रोने से बन्द करने या उसके भटकते मन को एकाग्र करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। इन खेलों को लोक-मेधा अपनी आवश्यकतानुसार निर्माण करती है। यहाँ ब्रज से प्राप्त कुछ गीतों का उल्लेख कर देना उचित होगा।

एक खेल है 'आटे-बाटे'—

शिशु का खिलाने वाला उसका एक हाथ अपने हाथ की हथेली पर, उसकी भी हथेली ऊपर करके रख लेता है। अपने दूसरे हाथ से उस बालक के हाथ पर ताली बजाता हुआ वह कहता जाता है:

आटे-बाटे
दही चटाके
बरफूले बङ्गाली फूले
बाबा लाये तोरईं
भूँजि खाईं भोरईं

इसका पाठान्तर यह है:

आटे-बाटे
चना-चबाटे

कूकरियन के कान कटाये
वर फूले बङ्गाले फूले
सामन मास करेला फूले
बाबाजी को ऊला चून
कौआ खोंट मारि गओ।

इसको उच्चारण करके वह उसके हाथ की छिंगुनी उँगली पकड़ कर कहता है : 'यह चाचा की', दूसरी को कहता है : 'यह भइया की' इसी प्रकार उँगलियों को पकड़ पकड़ कर उन्हें उस बालक के घर के किसी न किसी सदस्य के लिए बताता है। जब अँगूठा पकड़ता है तो कहता है 'यह बिलइया या गाय का खूँटा।' खूँटे पर गाय नहीं है। बिलइया उसे ढूँढने चलती है। दो उँगलियों को बालक की बाँह पर पोरों के सहारे वह चलाता हुआ बालक की काँख तक ले जाता है। साथ ही साथ यह कहता जाता है।

चली बिलइया
हिन्न बिड़ार्त्त
मूसे खात
चली बिलइया
हिन्न बिड़ार्त्त
मूसे खात
काऊ ऐ गइया पाई होइ तो दीजौ वीर।

यहीं काँख में अनायास ही उँगली से वह बालक को गुदगुदाता हुआ कहता है—"पाइ गई, पाइ गई, पाइ गई,।" बालक खिलखिला कर हँस पड़ता है।

दूसरा खेल है—'अटकन-बटकन'—

खेलने वाले बालक अपने सामने जमीन पर अपने दोनों हाथों की उँगली और अँगूठे के पोरों पर खड़ा कर लेते हैं। खिलाने वाला उन हाथों को क्रमशः अपने हाथ से धीरे-धीरे छूता जाता है और कहता जाता है।

अटकन-बटकन
दही-चटकन
बाबा लाये सात कटोरी
एक कटोरी फूटी

मामा की बहू रूठी[१]
काए बात पै रूठी
दूध दही पै रूठी
दूध दही बहुतेरौ
वाकौ म्हौं खायवे कूँ टेढ़ौ—
चींटी लेगौ कै चींटा।

कोई बालक कहता है चींटी कोई चींटा। जो चींटी कहता है, खिलाने वाला उसे हलके से नौंच लेता है। जो चींटा कहता है, उसे जोर से नौंच लिया जाता है। तब वह कहता है—'सो जाओ' सोजाओ'। सब बालक मुँह नीचा करके जमीन पर झुक जाते हैं, सोने का बहाना करते हैं तब उन सबको जगाया जाता है—
"उठो भाई उठो, तुम्हारे चाचा आए हैं, तुम्हारे लिए मिठाई लाए हैं।"

जो जल्दी उठ पड़ता है, वह भंगी माना जाता है। फिर उनको परोसा जाता है: 'जि लेउ बरफी, जि जलेबी' आदि-आदि। जो भंगी हो जाता है उसे परसते समय गन्दी चीजों का नाम लिया जाता है। परस जाने पर सब बालक तो प्रसन्न हो काल्पनिक खाना खाते हैं, और भंगी बना बालक चिढ़ उठता है।

एक तीसरा खेल 'धपरी-धपरा' भी इस दूसरे से मिलता जुलता है:—

सब बालक जमीन पर एक दूसरे के हाथ पर हाथ रख लेते हैं। हथेलियाँ सबकी नीचे की ओर होती हैं। खिलाने वाला उन सबके हाथों के ऊपर अपना हाथ मारता हुआ कहता जाता है:

'धपरी के धपरा, फोरि मारे (खाए) खपरा
मियाँ बुलाए
चमकत आए
पकरि बिल्ली कौ कान

सब बालक दोनों ओर दोनों हाथों से अपने साथियों के कान पकड़ लेते हैं और एक स्वर में कहते हैं:

'चेंऊ मेंऊ, चेंऊ मेंऊ, चेंऊ मेंऊ'

और झूमते जाते हैं। फिर सब सो जाते हैं। तब उन्हें जगाया जाता

[१] यह तथा आगे की पंक्तियाँ टेसू के गीत में भी आती हैं। उनमें 'मामा' के स्थान पर 'टेसू' होता है।

है। जो जल्दी बोल पड़ता है या उठ बैठता है, वह भंगी बना दिया जाता है। तब दावत होती है। सबको थालियाँ परसी जाती हैं असल धात की, भंगी को परसी जाती है आक के पत्ते की। सबको दूध-दही परसा जाता है असल भैंस या गाय का; भंगी को परसा जाता है असल सूअरिआ के दूध का। इसी प्रकार सब सामग्री का नाम लेकर परसते हैं। अन्त में जूठन भी भंगी पर फेंक दी जाती है, और सब कहते हैं : 'भंगी की पातर भिनिन् भिनिन्'।

एक चौथा खेल है : 'चुन-चुन मूँगा'

एक घेरे में खेलने वाले बालक बैठ जाते हैं। सब मुट्ठी बाँध कर हाथ बाहर निकाल देते हैं। एक बालक हाथ में कङ्कड़ी या कोई चीज लेकर हर एक की मुट्ठी पर अपनी मुट्ठी रखता जाता है और कहता जाता है :

चुन चुन मूँगा
भात कनूँगा
कोठी में पुरानौं मूँगा

और चुपचाप एक की मुट्ठी में वह कङ्करी डाल देता है। तब सब अन्दाज से चोर को बताते हैं। यदि चोर पकड़ लिया जाता है, वह झुक जाता है, और एक कहता है बोल पंसेरी लेगा कि सेर। जैसा भी वह बताता है, वैसा ही उसकी पीठ में एक मुक्का मार दिया जाता है। पंसेरी माँगने पर बहुत जोर का मुक्का दिया जाता है, सेर माँगने पर हलका।

एक पाँचवाँ खेल सन्ध्या के समय बालक आपस में खेलते हैं :

एक रेतीले स्थान पर बैठकर अपना हाथ रेत पर इस प्रकार फेरते जाते हैं, मानों उस रेतको रोर रहे हों—और वह कहते जाते हैं :

दिन डूबौ लाल बदरियन में (कें)
डुको लुढ़कि रहीं नरियन में
डुकरा ढूँढै गरियन में—[भदावरा]

एक छठा खेल है "बाबा आम देउ"

खेलनेवाले बालक एक के ऊपर एक मुट्ठी बाँधकर तराऊपर रखते जाते हैं। अब जिसकी मुट्ठियाँ सबसे ऊपर रहती हैं, वह पहले कहता है :

'बाबा-बाबा आम देउ'

खिलानेवाला कहता है : "आम हैं सरकार के"
बालक— "हम भी हैं दरबार के"
खिलानेवाला— "अच्छा तो, एक आम ले लो"
बालक—यह आम तो खट्टा है।
खिलानेवाला—अच्छा दूसरा ले लो।

बालक अपनी दोनों मुट्ठियों को आम की तरह चूसता हुआ कहता जाता है : "हमारे दोऊ मीठे", "हमारे दोऊ मीठे।" इसी प्रकार यह खेल चलता रहता है।

आम के स्थान पर पंखे भी कर लिए जाते हैं। बालिश्त खोल कर एक के ऊपर एक रखते चले जाते हैं। फिर माँगते हैं—

"बाबा बाबा पंखा देउ"
"पंखे हैं सरकार के"
"हम भी हैं दरबार के"
"अच्छा एक लेलो"
"इससे हवा नहीं आती"
"अच्छा एक और लेलो"
"हमारे दोनों अच्छे", "हमारे दोनों अच्छे।"

ब्रज में पंखों के स्थान पर 'बीजना' शब्द का प्रयोग होता है।

एक सातवाँ खेल है, 'मछली मछली कितना पानी'—

पहले खेलनेवालों का एक समूह गोल घेरे में खड़ा हो जाता है। एक लड़का बीच केन्द्र में खड़ा होता है। सब लड़के उससे पूछते हैं।

हरा समुंदर गोपीचन्दर
मछली मछली कित्ता पानी ?

केन्द्रवाला लड़का अपने हाथों को पैरों के टखने तक लगा कर कहता है, इत्ता पानी। फिर ऊपर के ढङ्ग में पूछा जाता है अब कित्ता पानी। धीरे-धीरे वह चोटी तक पानी बताता है। तब सब उससे दूर चले जाते हैं। समुद्र की जो सीमा मान ली जाती है उसमें होकर जो निकलेगा उसे मछली बना लड़का छूएगा[१]। जो छू जायेगा यह मछली बनेगा। खेल फिर इसी प्रकार आरम्भ होगा।

---

[१] लड़के मछली या मगर से पूछते हैं। "मगर-मगर तेरी नदी नहांय।" "मगर-मगर तेरी नदी नहांय" ऐसा कहते-कहते वे उसकी सीमा में घुसते हैं तभी वह छूने का उद्योग करता है।

एक आठवाँ खेल संवादयुक्त है।

एक बालक जमीन पर हथेली इस प्रकार फेरता है, मानो कुछ ढूँढ रहा हो। एक दूसरा या खिलानेवाला पूछता है—

"बुढ़िया या डुको का ढूँढति ऐ?"
"सुई"
"सुई कौ का करैगी?"
"कोथरी सीऊँगी"
"कोथरी कौ का करैगी"
"रुपया धरूँगी"
"रुपय्यनु कौ का करैगी?"
"भैंसि लुंगी"
"भैंसि कौ का करैगी?"
"दूध पीउँगी"
"दूध कें नाम मूत पीलै"

बुढ़िया बननेवाला बालक उसे मारने भागता है।

एक नवाँ खेल शिशु को पैरों पर झुलाने का है। झुलाने वाला सिकोड़ कर और दोनों पैरों को जोड़ कर उस पर बालक को पैरों के आसन पर बिठा लेता है। उसे झुलाता हुआ कहता जाता है।

"झूझू के पामू के
अटरियन के बटरियन के
नींम बिटिया नींम चालीं
नींम ते निबोरी लाई
काची काची आपु कूँ
पाकी पाकी जेठ कूँ
जेठु गयौ चोरी
लायौ सात कटोरी
एक कटोरी फूटी
सासुल की टाँग टूटी
आरे में स्याँपु
टिपारे में बीछू
डुकरिया बासन कूसन सम्हारि
राजा की भींति आंमत्यै"—अथवा

झूझू के
पाऊँ के
[1]लकनीं लकनीं भाड़ में
लका सोने के किवाड़ में
[लक्का सोने की सारि में]
बुढ़िया अपनौ सामान उठइयो
[डुकरिया अपने वासन भाँड़े उठइयो]
राजा की भींति गित्तिऐ—अररररधम्म

झुलाने वाला पैर ऊपर उठाकर नीचे गिरा देता है। तब बुढ़िया कहती है—

ए पूत मेरौ चकला रै गयौ
ए पूत मेरो वेलन रैह गयौ।

एक दसवाँ खेल बहुत छोटे बच्चों को बहलाने का है। चन्दा को दिखाकर कहते हैं :

"चन्दा मामा ऊल के फूल के
भरी छबरिया फूल के[2]
आप खामें थारी में
हमें खिलामें प्याली में"

एक ग्यारहवाँ खेल है 'ककरी मुँदरिया' का।

खेलनेवाले एक घेरा बनाकर अपनी मुट्ठियाँ पोली करके जमीन पर बैठ जाते हैं। उनमें से एक अपनी मुट्ठी में कङ्करी लेकर हर एक लड़के की मुट्ठी के ऊपर रखता जाता है और कहता जाता है :

"ककीरी[3] मुँदरिया
ककरई चोर
जो पावै सो
लै उड़ि जाय"—और चुपचाप किसी की मुट्ठी में वह कंकरी डाल देता है। जिसकी मुट्ठी में कङ्कड़ी डाली जाती है, वह उसे लेकर भाग जाता है, शेष उसे पकड़ने दौड़ते हैं।

---

[1] पाठ भेद—पान पचासी के, सरवर तेरी हाँड़ी के, राजा की छान कैसे उठी ? (यह कह कर पैर उठाये जाते हैं)—कैसे गिरी अररर धम्म।

[2] भरी छबरिया ढूल के।

[3] ककरी=कङ्कड़ी।

एक बारहवाँ खेल छोटे बच्चों को बहलाने का और है।

कञ्जरों से झुनझुना खरीद कर, उसे बजाते हुए बच्चे को गोद में खिलाने वाला कहता जाता है।

१—"लला खिलोना लेउ रे,
कोई कंजर भूखे जाँय जी।"

२—लाला कौन कौ,
दमड़ी के नौंन कौ।

एक तेरहवाँ खेल है "गाय गुप्प"—

बच्चे को पास बुलाकर, उसके नीचे का होंठ एक हाथ से पकड़ कर उससे कहते हैं, कहो 'गाय'

बच्चा कहता है 'गाय'

'गाय का बच्चा'

'गाय का बच्चा'

'गाय गुड़ खाय'

'गाय'....कहने के बाद जैसे ही बच्चा गुड़ कहता है कि उसका होंठ ऊपर के होंठ से लगा देते हैं, फलतः 'गुड़' न बोलकर बच्चा 'गुप्प' कह जाता है।

नया लोक-साहित्य—बालकों के खेलों के वाणी-विलास के इस संक्षिप्त परिचय के साथ अधिकांशतः उसी लोक-साहित्य की रूप-रेखा देखी गयी है जो परम्परित है, जिसके रचयिताओं का पता नहीं है। किन्तु गांवों में ऐसा भी प्रचलित साहित्य है जो गाँव के प्रसिद्ध कवि ने लिखा है, और वह आज बड़े मान के साथ गाया जाता है। ऐसे सभी गीत प्रायः पुरुष समाज में ही गाये जाते हैं, और वे ये हैं:—जिकड़ी के भजन, रसिया, होली, समादी भजन आदि। ये नये-नये विषयों पर तथा नयी-नयी चाल पर बनाये जाते हैं। इनके भारी-भारी दङ्गल होते हैं। 'ढोला' भी बनाकर गाया जाता है। पर ढोला की वस्तु प्रायः बँधी हुई है, उसमें ढोला रचयिता केवल वर्णन विस्तार में ही अपना विशेष कौशल दिखा सकता है। 'ख्याल' भी बनाकर गाये जाते हैं। इनमें नागरिक रुचि की झलक आ जाती है, एक विशेष बंदिश और अलंकारिकता की ओर ध्यान इसमें विशेष रहता है, नफासत और नाजुक बयानी का दामन थामे ये 'ख्याल' लिखे जाते हैं। 'स्वाँग' या 'भगत' भी रची जाती हैं। स्वाँग या भगत जनता

का रङ्गमञ्च है। इस रङ्गमञ्च पर जन-अभिनय कौशल, नृत्य कौशल, सङ्गीत कौशल, सभी का प्रदर्शन हो जाता है। यह बड़ा शक्तिशाली रङ्गमञ्च है। गाँवों के लाखों मनुष्य इसे देखने के लिए एकत्रित हो जाते हैं। स्वाँग या भगत की दो तर्जें ब्रज में प्रचलित हैं। एक आगरा की, दूसरी हाथरस की। आगरा की भगत या (स्वाँग) गुरू से शिष्यों को मिलती है। इसलिए यह एक परम्परा पर अवलंबित है। यह भगत ऊँची पाड़ का मनोहर रङ्गमञ्च बनाकर खेली जाती है। पाड़ का यह रङ्गमञ्च नाट्यशास्त्र में वर्णित रङ्गमञ्च का स्मरण दिलाता है। यह चतुष्कोण बनता है। बीच में स्थान खाली रहता है, और चारों ओर पाड़ों की पार्श्ववीथिकायें बनायी जाती हैं। पूरब-पश्चिम कुछ चौड़े मञ्च रहते हैं और इन पर ही पात्रों के बैठने का यथानुरूप प्रबन्ध रहता है।

ऐसा प्रसिद्ध है कि शाहगंज में ड्यौढ़ियों में एक विषम ब्रह्म-नरायनलाल पुरविया रहते थे, उन्होंने यह आगरे की चाल का स्वाँग या भगत चलाई।। इन स्वाँगों में कहीं ऐसा आता भी है—

"..........चौरासी की साल।
नये तर्ज का स्वाँग कथा विषम ब्रह्मनरायनलाल।"

इनके बाद 'हींगनखाँ' उस्ताद का नाम आता है। उनके बाद 'हन्नामल' का नाम आता है।

हाथरस के स्वाँग पेशेवर स्वांग हैं, और प्रायः नौटंकी भी कहे जाते हैं। ये स्वांग 'नत्थामल' के विशेष प्रसिद्ध हैं। नत्थामल का स्वांग होता भी बड़ा अच्छा था। उसके ये स्वांग तो छप भी गये हैं। इनकी तर्ज वही दोहों, चौबोलों तथा अन्य चलते छन्दों की है, जैसे बहरे तवील, कहरवा आदि की, जो उन स्वांगों की है जिनको कैप्टन आर० सी० टेम्पल महोदय ने 'लीजेण्ड्स ऑव दी पंजाब' में संग्रह किया है। मथुरा में नत्थामल की शैली ही विशेष प्रचलित है। 'ख्याल' तथा 'भगत' या 'स्वांग' ब्रजभाषा में नहीं होते खड़ी बोली में होते हैं, पर ब्रज-भाषा से प्रभावित अवश्य होते हैं।

इस रचित साहित्य के निर्माताओं में कुछ नाम विशेष उल्लेखनीय हैं:—जंगलिया, मदारी, गड़पति, मोहरसिंह, सनेहीराम, नरायन, घासीराम, खिच्चोखुन्नो, गङ्गादास, पसौलीवासी आदि। इनमें से मदारी और सनेहीराम का व्यक्तित्व इन सबसे निराला

था। मदारी तो ढोला का आरम्भकर्त्ता माना जाता है। सनेहीराम की वाणी सिद्ध मानी जाती है। इन दोनों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है, जिससे लोक-प्रतिभा के विकास का कुछ मर्म प्रकट हो। ये परिचय सुनकर दिये जा रहे हैं। ये उन्हीं स्थानों से लिए गये हैं, जहाँ ये रहते थे और जहाँ इनके वंशज अथवा वंशजों के परिचित आज भी विद्यमान हैं।

मदारी की वंशावली इस प्रकार ज्ञात हुई है :—

मदारी
|
कूढ़े
|
बूचा — तुल्ला

फिर इसके पश्चात् उसके वंश में कोई नहीं बचा। जहाँ आज मदारी का घर बताया जाता है वहाँ तीन घर बन चुके हैं। मदारी का कोई भी नाम लेवा पानी देवा नहीं बचा किन्तु यशःशरीर से वह आज भी जीवित है। ढोला के गायक और श्रोताओं के साथ उसका नाम भी अमर हो जायगा। मदारी का चेला सवाई था। सवाई को मरे लगभग पचास वर्ष हुए। उसके कुटुम्बी जन बतलाते हैं कि वह ६० वर्ष की उम्र में मरा था। यह भी कहा जाता है कि सवाई ने बुड्ढे मदारी से ढोला सीखा था। इस प्रकार सवाई का जन्म भी मदारी के सामने ही हुआ था। इस प्रकार हिसाब लगाने से मदारी का युग आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व होगा।

बहुत से लोग गढ़पती को ढोले का आदि प्रवर्तक मानते हैं। सं० १६६६ वि० में गढ़पती जीवित था और गंगा के इस पार और उस पार उसका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता था। उसके ढोले के परिमार्जन और परिष्कार को देखकर, विशदता और व्यवस्था को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह ढोले का आदि रूप नहीं है। फिर मदारी की प्राप्त हुई कुछ पहरियों से तुलना करने पर तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। मदारी के ढोले के 'आखर' साधारण और ग्रामों के प्राचीन प्रचलित शब्दों में है। इसके अतिरिक्त ग्राम के आचार-शास्त्र और

और अनुभव के वाक्य मदारी में भले ही प्रयुक्त मिल जाँय किन्तु संस्कृत की स्मृतियाँ और शास्त्रों की छाया मदारी के काव्य में हमें नहीं मिलती किन्तु गढ़पती के ढोले में इसका स्पष्ट पुट है। आधुनिकता चमके विना थोड़े ही रह सकती है। उपमा-अलङ्कार भी गढ़पती में विशेष परिमार्जित हैं। तुकान्तता अधिक स्पष्ट और शुद्ध है। मदारी को तुकान्तता कहीं कहीं हास्यास्पद भी होगयी है। मदारी की शिष्य परम्परा कुछ ऐसी है—

मदारी
|
सवाई
|
ब्रजलाल — गिरवर — लछिमन

सुनते हैं ब्रजलाल और गिरवर के समय में आकर गढ़पती ने मदारी के बनाए हुए कुछ आखर सीखे थे और उन्हें ही वह विस्तृत और विशद् रूप उसने दिया जो आज चिकाड़े पर गाया जाता है।

चिकाड़ा एक बाजा है। उसकी भी कुछ चर्चा कर दी जाय। मदारी के समय में 'कनटेका' ढोला गाया जाता था। मदारी ने किसी बाजे के साथ अपना ढोला नहीं गाया। अपने दोनों हाथ कानों पर रख कर शान्ति से सरस्वती मनाई जाती थी और फिर ढोला आरम्भ कर दिया जाता था। चिकाड़े का आविष्कार अन्धकार में है। किसने इसका आविष्कार किया ज्ञात नहीं। मदारी की शिष्य-परम्परा में जो ऊपर दी गई है, चिकाड़ा हाथ में भी नहीं लिया गया। कुछ का कहना है कि 'बाटी' के दुलैया ने चिकाड़े पर पहलेपहल ढोला गाया था। किन्तु मदारी ने किसी बाजे को नहीं अपनाया था। यही कारण है कि मदारी के काव्य में तुक का और उक्ति का चमत्कार तो मिलता है किन्तु सङ्गीत गायन के तत्वों का उसमें अभाव है। एक और परिणाम हुआ। जैसा मैंने अपने एक 'ढोला : एक लोक महा-काव्य'[1] में यह स्थापना की है कि इसके बीच-बीच में अन्य तर्जें भी आ मिलती हैं। उदाहरणार्थ नल के विवाह के अवसर पर ढोले वाला अवसर पाकर ज्यौंनार गाने लगता है, गारी गाने लगता है, कहीं मल्हार का पुट आ जाता है, 'निहालदे' का। इसका

[1] हंस नवम्बर १६४६

समावेश मदारी के ढोले में नहीं होता। उसमें और कोई राग-रागिनी बीच में नहीं आती। कारण चिकाड़े का भवना है। चिकाड़े का आविष्कार ढोला के इतिहास में एक अपना अलग महत्व रखता है। इसे अधिकतर ढोलेवाला अपने ही हाथ से बजाता है। जो दुलैया अपने आप चिकाड़ा नहीं बजा सकता वह ढोला अच्छी तरह जम कर नहीं गा सकता। इसका आविष्कार गढ़पति से तो पहले ही हो चुका था। गढ़पति ने इसी की सहायता से अनेक राग-रागनियों का समावेश ढोला काव्य में कर दिया। चिकाड़ा सारङ्गी के वंश का ज्ञात होता है। किन्तु सारङ्गी के समान वैज्ञानिक और सूक्ष्म वह नहीं होता। उसमें तीन चार तार होते हैं। किन्तु तार सारङ्गी के से नहीं होते। प्रत्येक तार बहुत से बालों का होता है और बाल एक सूत्र में गुंथे हुए होते हैं, अलग-अलग नहीं होते। तीन खूटियाँ होती हैं जो तारों को शिथिल और तङ्ग करने के लिए होती हैं। दुलैया जहाँ जैसा अवसर देखता है तारों को ढीला-कड़ा करता है। तारों के ऊपर के सिरे को दबा देने से ध्वनि के उतार-चढ़ाव प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार चिकाड़े को काम में लाया जाता है। चिकाड़े के बजाने का जो गज होता है उसमें 'छम्म-छम्म' ध्वनि करने वाली पंसुरी लगी होती है जो वस्तुतः नृत्य में पैजनी की ताल का स्थानापन्न हैं और संगीत के साथ नृत्य की आवश्यकता की पूर्ति करती है। किन्तु मदारी ने इसका उपयोग नहीं किया था। अतः ढोले के विकास के साथ यह आरम्भ से नहीं है। आज बिना चिकाड़े के कोई भी दुलैया ढोला नहीं गाता।

दूसरा तत्व 'सुरैया' का है। सुरैया का इतिहास चिकाड़े से प्राचीन लगता है। सुरैया मदारी के साथ भी रहता था। एक नहीं कई सुरैया उसके साथ रहते थे। अंग्रेजी बाजे में एक निरर्थक ध्वनि निकालने वाला बाजा होता है जिसका राग की लय से कुछ सम्बन्ध नहीं किन्तु फिर भी उसकी निरर्थक ध्वनि अंग्रेजी बाजे के लिए आवश्यक है। वैसे ही कुछ-कुछ रूप सुरैया का है। स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में भी यह तत्व विद्यमान रहता है किन्तु एक विचित्र रूप में रहता है। एक आगे गानेवाली स्त्री होती है उसके साथ अनेक स्त्रियाँ 'एंएं' ही करती रहती हैं जिससे गानेवाली स्त्रियों को आवाज को अधिक विस्तार और अनवरतता मिल जाती है। ज्यौनार के समय

ब्रज में ऐसे भी गीत गाये जाते हैं जिनमें स्त्रियों के दो वर्ग हो जाते हैं। एक वर्ग गाता है, दूसरा केवल 'अस्तोवचन' कह देता है। वह भी एक प्रकार से सुरैया का ही एक रूप है। हम अन्य लोक-गीतों के सुरैयों पर विचार नहीं करते किन्तु ढोला में सुरैया पर विचार करना विकास-क्रम के लिए आवश्यक है। मदारी के समय में सुरैया का कार्य साधारण था। वह गायक की पंक्ति के अन्तिम अक्षर में विराजते स्वर को खींच ले जाता था और गायक जो आगे की पंक्ति गाता था उससे जोड़ लेता था। इस प्रकार एक-एक पंक्ति के बीच में सुरैया एकसूत्रता बनाए रखता था क्योंकि महाकाव्य में एकसूत्रता रहना आवश्यक है। सूक्ष्म व्यापारों का भी वर्णन अपेक्षित है, इसलिए ढोला में प्रत्येक साधारण से साधारण घटना का उल्लेख हमें मिलता है। फलतः ढोला इतना विस्तृत और वृहद् हो गया है। यह लिखा-पढ़ा जाने वाला महाकाव्य नहीं, गाया जाने वाला महाकाव्य है। अतः गाने में भी एकसूत्रता रहना, अनवरतता रहना ढुलैये को आवश्यक लगी, अतः उसने सुरैये का आविष्कार किया। मदारी के समय के सुरैये का यही एक काम था। एक लाभ सुरैये से और भी होता था। श्रोताओं को बातचीत करने का अवसर नहीं मिलता था और ध्वनि परिवर्द्धित होकर सर्वत्र श्रव्य हो जाती थी। फिर सुरैया में धीरे-धीरे विकास होता गया। स्वर पकड़ने के लिए अन्तिम दो-चार शब्दों को भी सुरैया लेने लगा। फिर यह हुआ कि आधी पंक्ति ढुलैया अकेला गाता था और आधी पंक्ति को सुरैया-ढुलैया दोनों मिलकर गाने लगे। फिर अधिक व्यवस्था लाने के लिए प्रत्येक पंक्ति के अन्त में सुरैया 'हरी-हरी' जोड़ देता था। जिससे प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'ई' स्वर ही होता था। फिर आगे चल कर और भी विकास हुआ। जैसे महाकाव्य और नाटकों में अन्तर्प्रसङ्ग होते हैं उसी प्रकार सुरैया भी अपने लिए प्रधान कथा के अतिरिक्त अन्य एक छोटी सी कथा को पद्यबद्ध कर लेता था और ढुलैया की एक पंक्ति फिर उसकी एक पंक्ति इस क्रम से ढोला गाया जाने लगा। आज सुरैया विकास करता-करता ढुलैये के समान महत्त्वपूर्ण हो गया है। किन्तु मदारी के समय में यह रूप सुरैये का नहीं हो पाया था। इस विकास-क्रम को दृष्टि में रखते हुये भी यदि मदारी पर दृष्टि डाली जाय तो वह इस इतिहास का आदि पुरुष ही दीखता है।

मदारी जाति का ब्राह्मण था। मथुरा जिले में मथुरा से दो मील पर अवस्थित लोहवन का वह निवासी था। वह नगरकोट वाली देवी का 'भगत' था। शाक्तों से सम्बन्ध रखने वाली जाति जो आज कल ब्रज में बसी है वह जुलाहे कोली हैं। विना उनके साथ जाये देवी की यात्रा सफल नहीं होती। देवी में गाँव वालों का विश्वास दृढ़ करना कोलियों का कार्य है। इन कोली-पण्डों के साथ-साथ मदारी ने आठ बार नगरकोट की यात्रा की थी। आज की सी यात्रा की सुविधाएँ उस समय प्राप्त नहीं थी। रेगिस्तानी मार्ग होने के कारण यात्रा कठिन थी। इससे यात्रियों का गाँव वालों से विशेष सम्पर्क भी होता था। मदारी, सुनते हैं, देवी से हर बार यही वरदान माँगता था कि वह कुछ ऐसा रच दे कि सब लोग गावें। आगे चलकर उसकी मनोकामना पूरी हुई। आज भी बहुधा ढोला गाने वाले उसकी वन्दना सरस्वती मनाने के साथ करते हैं।

राजपूताने में ढोला-मारू की कहानी लोक प्रिय है। उस कहानी को सम्भवतः साधारण रूप में मदारी ने नगरकोट की यात्रा के समय सुना था। उस कहानी को गेय रूप में ही सुना हो—यह भी सम्भव है। उसी कहानी को लेकर मदारी ने ब्रज में 'ढोले' का बीज वपन किया। मदारी ने इसी कहानी को ३६० पहरियों में रखा। मदारी की बनाई हुई तो केवल यही ३६० पहरियाँ हैं। इनमें से आज केवल १२५ के लगभग प्राप्य हैं। प्राप्त भी एक अनोखे ढङ्ग से हुई हैं। एक ८० वर्ष का बुड्ढा मृत्यु-शैया पर पड़ा था। उसके और मृत्यु के बीच में केवल आठ दिन की दूरी थी। इस दूरी को वह जीर्ण-काय पंजर हाँफ-काँप कर पूरी कर रहा था। उसे मदारी का बनाया हुआ सारा ढोला याद था। किन्तु नोट लेने वाला तनिक देर से पहुँचा। बहुत कहने सुनने पर उसने ढोला लिखवाना शुरू किया। ६ दिन तक वह ढोला लिखवाने के योग्य रहा फिर वह ढोला न गा सका। उसके ऊपर ढोले का यहाँ तक रंग जम गया था कि मरने के समय तक वह ढोला गाते-गाते रो तक पड़ता था। वह चला गया और ढोले का एक सूत्र वह हमारे हाथ में दे गया। वे ३६० पहरियाँ ही ढोले का आदि हैं।

आज उसी कहानी में नल-पुराण जोड़ दिया गया है जैसे बकरी के गले में ऊँट बाँध दिया गया हो। ढोला को नल का बेटा मान लिया है। मारू को नल की पुत्र-वधू। अतः नल की कहानी के साथ

जैसे बहुत से सूत्र आकर मिल गए उसी प्रकार ढोला-मारू की कहानी भी आ मिली। राजपूताने की यह कहानी ब्रज में आकर नल की कहानी की लोक प्रियता के सम्मुख अपना अस्तित्व नहीं रख सकी और नल-चरित्र में ही अपने को खो बैठी। इस प्रकार आज जो महाकाव्य ढोला मिलता है उसमें प्रधानता राजपूताने की नहीं वरन् नल के पौराणिक व्यक्तित्व और उसी के नाम के साथ चिपकी हुई अनेक लोक-तत्त्व पूर्ण गाथाओं की है। शुद्धतम ढोला मदारी ने बनाया था जो वस्तुतः एक खण्डकाव्य था। नाम तो उसका ढोला ही रख दिया गया क्योंकि मदारी ने ढोले को बहुत लोकप्रिय बना दिया। जिन ढुलैयों ने नल-चरित्र को अपनाया उन्होंने ढोला-मारू की कहानी का छाड़ देने की चेष्टा नहीं की। वरन् उसे उसमें अन्तर्भूत कर लिया। इस प्रकार ढोले का आज का भव्य महल खड़ा हुआ।

मदारी ने पहले सूआ-सँदेसे की रचना की। सूआ मारू द्वारा भेजा हुआ आता है और ढोला को प्रेम-पत्र देता है। उस प्रेम-पत्र को पाकर ढोला की आँखें खुलती हैं। रेवा अब तक ढोला को शराब के नशे में चूर रखती थी और उसे मारू की सुधि नहीं आने देती थी। रेवा को त्याग करने की इच्छा अब प्रबल हुई। उसने राजा बुध (जो बुध भाटी के नाम से मदारी के ढोले में है) की मारवाड़ को जाने का संकल्प कर लिया। घोड़ा आदि सभी सवारी अपनी-अपनी असमर्थता दिखाती हैं। फिर एक करहा (ऊँट) तैयार हो जाता है। उस ऊँट का बड़ा भारी शृङ्गार किया गया। रेवा ने उस ऊँट को लँगड़ा भी कर दिया किन्तु वह ढोला को राजा बुध की राजधानी में ले पहुँचा। वहाँ जाकर उसने राजा बुध के बगीचे में डेरा डाले। मालिन उस संदेसे को लेकर मारू के महलों में पहुँची और सारा हाल बता दिया। मारू ने पहले अपनी नायँन भेजी। नायँन के हाथ का उसने पानी नहीं पिया क्योंकि गङ्गाराम तोते ने उसे सारी बात बता दी थी। फिर मारू ने अपनी बहिन कारू भेजी। उसका भी यही हाल हुआ। इसी प्रकार एक दो बार और परीक्षा लेकर मारू आई और अपने पति को कच्चे धागे से पानी खींचकर पानी पिला गई। इतने अंश का नाम मदारी ने 'बाग का ढोला' रखा था।

फिर राजा बुध को इस बात की सूचना मिली उसके यहाँ सेद्मल्ल जैसलमेर का एक बनिया रहा करता था। उसने राजा को

बहकाया। राजा ने भी उसका विश्वास कर लिया। मोती नामक एक बनिया के साथ एक बड़ी फौज देकर ढोला को पकड़ने के लिए भेजा। ढोला उस समय सो रहा था। सूआ उसे जगाता है फिर युद्ध होता है। मोती बनिया हार मान कर भाग जाता है। इस प्रकार राजा को विश्वास हो जाता है कि यह ढोला ही है। वह बुलाया जाता है। राजा के दरबारी यह निश्चय करते हैं कि इसे दरवाजे में होकर निकाला जाय। सारे नगर निवासी और मारू को उसके काल का पता था। सब त्राहि-त्राहि करने लगे हैं। मारू ने दान पुण्य किया किसी प्रकार ढोला दरवाजे में होकर निकला। दरवाजा गिरा। करहे का पिछला अङ्ग दब भी गया। तब गौना हुआ और ढोला-मारू गढ़-नरवर को लौटे।

अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि मदारी ने गौना करके ढोला-मारू को घर जाकर सुख मनाते नहीं दिखाया। कहानी को दुखान्त कर दिया है। यहाँ उन दोनों के मरने का एक प्रसंग और जुड़ा हुआ है। राजा नल ने एक बार एक तालाब बनवाया था। उस पर पहरा बिठा दिया था कि वह राज-ताल है; उसमें कोई और आदमी न नहाने पाये। एक दिन एक साधू आता है और तालाब में नहा लेता है। नौकर उसे राजा के पास पकड़ कर ले जाते हैं। राजा उसे शूली का दंड देता है। शूली उस साधू की करामात से टेढ़ी पड़ जाती है। इस प्रकार वह बच जाता है। साधू के शाप से तालाब का पानी सूख जाता है और महादेव का दरवाजा बन्द हो जाता है। नल के बहुत प्रार्थना करने पर साधू उससे कहता है कि इसमें तेरे बेटा-बधू समा जाँयगे, तब उनकी बलि से इसमें पानी हो जायगा और दरवाजा खुल जायगा। मारू को इस बात का पता चल जाता है। वह तालाब में जा बैठती है और ढोला को भी अपने पास बुला लेती है। दमयन्ती के समझाने पर भी वे नहीं मानते। वे समा जाते हैं और पानी हो जाता है।

यही कहानी है जिसे मदारी ने आरम्भ में ढोला का रूप दिया था। फिर सुनते हैं कि उसने नल-दमयन्ती का विवाह, इन्द्र से वाद, औखा तथा औखा से मुक्ति का ढोला भी बाद में बनाया था। इन कहानियों का मदारी का बनाया हुआ कोई भी अंश आज प्राप्त

नहीं होता फिर भी यह सम्भव है कि उसने इनको भी ढोले का रूप दिया हो और आगे चल कर ऐसा हुआ हो कि नल और ढोला की कहानियों का मिश्रित रूप खड़ा करके उसे महाकाव्य बना दिया गया हो। यह कथा भाग है जो मदारी ने बनाया[1]। दूसरे हम प्रसिद्ध लोक-गीत रचयिता सनेहीराम का वृत्त लेते हैं।

सनेहीराम—सनेहीराम के सभी भजनों के अन्त में यह पंक्ति आती है—'माँट हू के वासी जस गामत सनेही राम। माँट मथुरा जिले की तहसील है। यहाँ सनेहीरामजी का जन्म हुआ था। उनमें परम्परागत भावुकता और स्नेह था। इस भावुकता का एक बीज उनके पौत्र 'नरायन' में जम गया है। उन्होंने भी गाया, सुन्दर गाया।

सनेहीरामजी के घर खेती होती थी। किसान भी बड़े नहीं थे। अथक परिश्रम के बाद जीवन-निर्वाह होता था। खेती का कार्य उनके बहुत से समय को ले लेता था। किन्तु प्रतिभा को छिपाना तो मृत्यु होता है। प्रतिभा उन्मुक्त-नृत्य को मचलती है।

इस घरेलू कार्य के अतिरिक्त एक और कार्य था, प्रतिदिन जमुनाजी को पार करके वृन्दावन में बाँकेबिहारी के दर्शन करने जाया करते थे। इससे जो अवकाश मिलता था वही लौकिकता और अलौकिकता को जोड़ने की कड़ी थी, यही कुछ गुनगुनाने का समय था। घर वालों के रोष की चिन्ता न करके वे दो ही कार्य करते थे; बिहारीजी के दर्शन करने जाना और काव्य-रचना करना। वस्तुतः तो बिहारीजी के दर्शन का भाव ही काव्य बन गया था। काव्य ने सनेहीराम को पलायनवादी नहीं बना दिया था।

इनके विषय में अनेक चमत्कारपूर्ण बातें गाँव के लोग, सत्य होने का बार-बार विश्वास दिलाते हुए, कहते हैं। एक दिन घर के काम-काज से निवृत होने में इन्हें देर हो गयी। जाड़े की रात थी। मल्लाह जाकर सो गया था। कहते हैं तब स्वयं बाँकेबिहारी आए और नाव में बैठा कर जमुनाजी पार करायी। वृन्दावन पहुँच कर दर्शन किए। लौट कर मल्लाह से ज्ञात हुआ कि उसने उन्हें पार नहीं उतारा था। एक बार मन्दिर बन्द हो गया था। सनेहीराम द्वार पर पड़े रहे। अर्द्धरात्रि में बिहारी जी स्वयं प्रसाद लाए और दर्शन देकर अन्तर्ध्यान हो गए। 'जाकर जापर सत्य सनेहू' के आधार पर

[1] देखिए इसी पुस्तक का तृतीय अध्याय : प्रबन्ध गीत।

और आज की बुद्धिवादी विचार-धारा से इन घटनाओं का सत्य-और झूँठ बताना यहाँ अप्रासंगिक होगा। इनसे एक यह निष्कर्ष प्राप्त करके ही हम आगे चलते हैं कि सनेहीरामजी के इष्टदेव बिहारीजी थे। एक और चमत्कारक बात कही जाती है। एक बार दुर्भिक्ष पड़ा। पानी न बरसने से मनुष्य और पशु विकल हो गए। गाँववालों ने उनसे कहा: 'जौ तू ऐसौ ई भगतु ऐ तौ मेह न बरसाइ दे।' सनेहीरामजी भगवान के कानों तक पहुँचने वाला एक भजन गाने लगे :—

ब्रज कूँ आइकें बचाऔ महाराज।
बूढ़े भए, कै नींद सताई, कै कहूँ अटके काज?
तुमनु कही कि ब्रज छोड़िकें कहूँ न जाउँ।
खाई है सौगंध बाबा नन्द हू कौ लैकें नाउँ॥
कैसें सुधि भूले दिन बहुत भए हू नाँय, जी।
एक मेह डारि, सब लोगनु लगाई आस॥
फेरि बूँद नाँय आई सामन में सूखी घास।
पानीं नाहिं पैदा और गैया हू मरति प्यास॥
सूखन लागे नाज—

कहते हैं इस भजन की समाप्ति पर वर्षा होने लगी थी। बहुत से वृद्ध लोग इसे आँखों देखी बात बताते हैं। उनका कहना है: 'आँखिन देखी पर्सराम। कबहुँ न झूँठी होइ।'

थोड़े समय में भी सनेहीराम जी बहुत कथ सके; यह उनकी प्रतिभा की महानता थी। भाषा-ज्ञान नहीं के बराबर होते हुए भी उनकी भाषा सरल, सरस और सुन्दर है। लोक-भाषा के स्तर से भाषा कुछ उठी हुई अवश्य है। पर सनेहीराम समस्त ग्रामीणों को अपने साथ लेकर इस स्तर पर चढ़े हैं। सनेहीराम जी अनजान में ही लोक-भाषा और लोक-रुचि का परिष्कार-परिमार्जन कर गए। उन्होंने भजन की अपनी एक अलग शैली चलाई। उनसे पहले ऐसे भजनों का अस्तित्व नहीं मिलता। उनके पश्चात् उस शैली को अनेकों ने अपनाया। बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा से उनकी एक पुस्तक : सनेहलीला प्रकाशित भी हुई। उसकी शैली गाँवों में प्रचलित बारहमासे की शैली है। इस प्रकार छंद-शैली में उन्होंने परम्परित सूत्र को भी पकड़ा और उन्होंने अपनी भी एक देन दी।

इनके काव्य का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से कृष्णकाव्य से है। भाव-

लीलाओं की स्फुट रेखाएँ भागवत से ली गई हैं। रंग भरने में उनकी मौलिक प्रतिभा ही दीखती है। उस रंग भरने में उनकी अपनी निश्चल सरल वैयक्तिकता की स्पष्ट छाप है। उक्तियाँ उनके अपने चमत्कार की द्योतक हैं। लोक-हृदय को छूने की क्षमता उनमें है। इसका प्रमाण उनकी ब्रज व्यापी प्रियता है। गाँव-वालों की इनमें जो श्रद्धा-आस्था है, उसे देख कर तो यह विश्वास जमने लगता है कि सनेहीरामजी व्यासजी के लोक-सुलभ संस्करण हैं। लोक-प्रियता की दृष्टि से उनका काव्य ब्रज में अद्वितीय है।

इनके भजनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे श्रीकृष्ण, दाऊजी और यमुनाजी में विशेष आस्था रखते थे। दाऊजी की मान्यता गाँवों में श्रीकृष्ण से किसी प्रकार कम नहीं है। इसीसे सनेहीराम जी कहते हैं:—

"हमारें दाऊजी के नाम कौ आधार।
नाम अनन्त, अन्त नाँइ बल कौ धारें भुम्र कौ भार।"

दाऊजी 'शेष' जी के अवतार माने गये हैं: अतः 'धारें भुम्र कौ भार' कहा गया है। वल्लभकुल सम्प्रदाय में श्री यमुनाजी की मान्यता श्रीकृष्ण-प्रिया के रूप में है। सनेहीरामजी पतित-तारिणी यमुनाजी के गीत गाते हैं:—

'तेरौ दरस मोय भावै, श्री यमुना मैया!
शीतल नीर, पाप कूँ पावक, अघ कूँ हाल जरावै।'

फिर कृष्ण-लीलाओं का गाना तो सनेहीरामजी का मुख्य धर्म ही था। माखनलीला, माटी खाने की लीला, रासलीला आदि पर तन्मयता से लिखे हुए भजन प्रत्येक गाँव में, विशेष अवसरों पर ढोलक, मँजीरा और खटतारों पर गाये जाते हैं। कृष्णजी के शृङ्गार का वर्णन देखिए, कितना अनूठा है:

पीले होट, मन्द हास, गलें परी गुञ्जमाल।
कोटि काम लाजै तन, सामरौ लगै तमाल॥

❀ ❀ ❀

चीकने, मुछारे और कारे घुँघरारे केस,
मधुप समाज लगै; अधर अरुन भेष
गोल गोल हैं कपोल, देखत कटें कलेस॥

आदि आदि।

ब्रज के वृक्षों का वर्णन हरिऔधजी ने 'प्रिय-प्रवास' में किया है। आप ऐसे वृक्षों की भी गिनती गिना गये हैं, जो ब्रज की भौगोलिक परिस्थितियों में नहीं पनप सकते। पर सनेहीरामजी तो उन्हीं वृक्षों को लिखेंगे जो उनके रात-दिन के देखे हैं :

प्रथम लतान सोभा, चित दैकें सुनो तात।
पीपर, पसेंदू, केसू, ठाड़े जामें बर पाँत।
ठाड़े ऐं करील, रूख सेंगर कूँ सब खाँत जी।
डूँगर, खड़ियारन ते हींसिया लपेटा खाय।
रेमजा, थमूर सो, सिहोरेन कूँ देखौ जाय।
जुही खिलै अपुढारी।

संयोग-सुख विभोर वातावरण में प्रकृति-वर्णन देखिए :

कोई कोई बेरिया, अमरबेलि छाइ रही।
कारे मुख वारी सो विरमि सुख पाइ रही।
पकत लिसोरे जब, खूब छबि छाइ रही जी।
प्रात के समैया जा से, कोकिल करत सोर।
भाँति भाँति पंछी बोलें, चित्त हू में लागें चोर। (आदि)

यह सनेहीराम जी के जीवन-चरित्र और उनके काव्य पर एक तैरती हुई दृष्टि है। इसी प्रकार के न जाने कितने लोक-कवि आज ग्रामों की जनता के हृदय में बसे हैं और उनका काव्य ग्रामीणों के कंठ में लहरें ले रहा है। और यहाँ उन सबका परिचय देना संभव नहीं। यह शोध का एक पृथक विषय है।

परम्परित और रचित ब्रज-लोक साहित्य और साहित्यकारों के इस सिंहावलोकन से ब्रज की सम्पन्नता का पता चलता है। सूर तथा अन्य अष्टछाप के कवियों, स्वामी हरिदास, हितहरिवंश, व्यास आदि की रचनाओं ने आज का ब्रजमानस आच्छादित कर रखा है, फिर भी उसका अपनत्व बना हुआ है। उसके मूल्य को हम आगे चल कर ही जान सकेंगे।

लोक-गीत साहित्य का अध्ययन

तीसरा अध्याय

(अ) जन्म के गीत

लोक गीतों का स्वभाव——ब्रज के लोक-गीतों को हम उनके उद्देश्यों के आधार पर दो भागों में बाँट सकते हैं। एक अनुष्ठान—आचार सम्बन्धी, दूसरे मनोरञ्जन सम्बन्धी। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि मनुष्य ने लोकाचार और व्यवहार तथा अनुष्ठानों में गीतों को इतना महत्त्व कब से और क्यों देना आरम्भ किया। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'गीत' किसी भी संस्कार या आचार के आज प्रधान अङ्ग बन गये हैं। भारत में सोलह संस्कारों से जीवन को संस्कृत करने का आदेश तथा आदर्श रहा है। इन सोलह संस्कारों में से तीन संस्कार सबसे प्रमुख हैं: १—जन्म, २—विवाह, ३—मृत्यु। मनुष्य-जीवन की ये तीन महान घटनायें हैं, जिनके द्वारा साधारण क्रम का व्यतिक्रम प्रदर्शित होता है। इन तीनों प्रधान संस्कारों से शेष तेरह संस्कार मूलतः भिन्न भूमि रखते हैं। चूड़ाकर्म, उपनयन, कर्णछेदन आदि संस्कार किसी प्राकृतिक संघटना से सम्बन्ध नहीं रखते। जन्म, विवाह तथा मृत्यु जीवन की अवतारणा से प्रकृत सम्बन्ध रखते हैं। ये प्रकृति के अपने चक्र के अङ्ग हैं। इनमें से प्रथम दो साधारणतः[1] आनन्द और प्रसन्नता के अवसर हैं और अन्तिम शोक का। प्रकृति प्रजनन-क्रिया की समृद्धि के लिए सदा उत्सुक रहती है, जिससे उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहे। यही कारण है कि समस्त सृष्टि में प्रजनन क्रिया के लिए सौन्दर्य और आकर्षण का एक प्रदर्शन होता रहता है। फलतः मानव, वह चाहे भारतीय हो अथवा अभारतीय, इन तीन घटनाओं की ओर विशेष आकर्षित होगा और प्रभावित होगा। यही

[1] साधारणतः इसलिए कि कहीं-कहीं 'जन्म' पर शोक किया जाता है और मृत्यु पर हर्ष। उदाहरण के लिए ब्रह्मा और चीन की सीमा पर 'मचीना' नामक नगर में वहाँ के निवासी पुत्र जन्म पर शोक मनाते हैं क्योंकि वे धर्मतः यह मानते हैं कि एक जीव बन्धन में पड़ गया। और मृत्यु पर प्रसन्न होते हैं कि जीव बन्धन मुक्त हो गया!

कारण है कि हमें संस्कारों में प्रायः पहले ही दो विषयों पर विशेष गीत प्राप्त हैं। मृत्यु पर भी गीतों का अभाव नहीं है, पर वे बहुत कम हैं और वैसे ही कम महत्त्व के भी हैं। मथुरा की चतुर्वेदी स्त्रियों में भी मृत्यु पर गाकर ही रोने की प्रथा है।

प्रत्येक संस्कार के हमें दो रूप स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। एक पौरोहित्य सम्बन्धी और दूसरा लौकिक। पौरोहित्य रूप वह है जो किसी पुरोहित के द्वारा मन्त्र आदि के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। लौकिक वह है जिसे लोकाचार के आधार पर किया जाता है और जिसका उल्लेख किसी स्मृति में नहीं मिलता, और न उसके सम्पादन कराने के लिए किसी पुरोहित की आवश्यकता है। इसे बहुधा स्त्रियाँ ही कर लेती हैं। यह लोकाचार ही विशेषतः गीतों से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध रहता है। यह सम्बद्धता भी हमें दो प्रकार की मिलती है: एक आनुष्ठानिक, दूसरी औपचारिक। अनुष्ठान के गीत वे हैं जिनके लिए कोई स्मार्त व्यवहार निश्चित नहीं होता और जिसका समस्त कार्य स्त्रियाँ गीतों के साथ करती हैं। ये गीत इस आचार के लिए उसी प्रकार अनिवार्य और सगुन के समझे जाते हैं, जितने कि दूसरे प्रकार के कार्यों के लिए मन्त्रोच्चारण। इन गीतों के साथ वार्ता का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए विवाह में रत-जगे के गीत। औपचारिक गीत केवल माङ्गलिक मूल्य रखते हैं और बहुधा किसी स्मार्त आचार के साथ गाये जाते हैं। आनुष्ठानिक गीतों की जन्म और विवाह दोनों ही संस्कारों में बहुलता रहता है।

जन्म के संस्कार—ब्रज में जन्म के समय के आचारों का लम्बा अनुष्ठान होता है। गर्भाधान से नौ महीनों तक की सम्पूर्ण अवधि भी जन्म के संस्कार के अन्तर्गत आ जाती है। इस बीच में शास्त्रों की दृष्टि से गर्भाधान के उपरान्त 'पुंसवन' संस्कार ही होता है। यह संस्कार लोकाचार में इस नाम से विख्यात नहीं। लोका-चार में यह 'साध' पूजने का अवसर माना जाता है, और भी प्रतीक में इसे 'चौक' कहते हैं। पति और पत्नी चौक पर बैठाये जाते हैं। यह संस्कार सातवें महीने में होता है। जन्म के 'सोहर' गीतों में से एक गीत में इन नौ महीनों में गर्भिणी की जो दशा होती है उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

'पहलौ महीना जब लागिए, बाकौ फूलु गह्यौ फलु लागिए'

ए बाइ दूजौ महीना जब लागिए,
राजे तीजौ महीना जब लागिए, बाकौ खीर खाँड़ मन आइए,
× × × ×
अब राजे चौथौ महीना जब लागिए
ए बाइ पँचयौ महीना जब लागिए
ए बाकूँ कोल के आम मँगाइए
× ×
राजे छटयौ महीना जब लागिए
ए बाइ सतयो महीना जब लागिए
ए हूँ अपबिस अपबिस साधु पुजाऊँ × ×
राजे अठयौ महीना जब लागिए
ए मैं अपबिस अपबिस महल झराऊँ
ए बाइ नौयौं महीना जब लागिए
ए मैं अपबिस अपबिस दाई बुलाऊँ, तो हुरिल जनाऊँ ....

एक दूसरे गीत में बताया गया है कि पहले दूसरे महीने में 'बाकौ थुकथुकियन मन लागौ', तीसरे चौथे महीने में खीर खाँड़ को मन चला, पाँचवे छठे में खुरचन पेड़े को मन लगा, सातवें-आठवे में आम के रस को मन किया। इस प्रकार नौ महीने होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के उत्पन्न होने पर सोभर[1] सोहर अथवा सोहिले होने लगे। जच्चा को पीने के लिए पानी औटाकर और कई औषधियाँ मिलाकर दिया जाता है। यह पानी एक 'चरु' अथवा मिट्टी के घड़े मे औटाया जाता है। एक घड़ा मँगा कर उसे गोबर से चीता जाता है; उस पर गोबर से स्वस्तिक तथा कुछ चक्र बना दिये जाते है। यह समस्त क्रिया 'चरुआ रखने की क्रिया' कही जाती है। चरुए को चित्रित करना, तथा उसमें औषधियाँ डाल कर पानी भरवा कर आग पर रखने का समस्त कार्य सासु को करना होता है। इस कार्य के लिए सासु को नेग मिलता है। इसी समय कौरों पर साँतिये[2] भी गोबर से ही रखे जाते हैं। साँतिये रखने का कार्य ननद का होता है, उसे भी इसका नेग मिलता है। इन कार्यों के सम्पन्न होजाने पर लोक-प्रथानुसार कहीं छठवें दिन, कहीं किसी

[1] सोभर वह गृह कहलाता है जिसमें जच्चा रहती है। प्रसूतिका गृह के उपलक्ष्य में गाये जाने वाले गीत 'सोभर' कहलाते हैं।

[2] स्वस्तिक।

123070

अन्य दिन गृह-शुचि और स्नान का संस्कार होता है। यह साधारणतः ब्रज में 'छठी' के नाम से पुकारा जाता है। इस दिन जच्चा-बच्चा स्नान करते हैं, समस्त घर लीप पोत कर साफ किया जाता है। अब और लोग भी जच्चा बच्चा के पास आ जा सकते हैं। इससे पूर्व जच्चा के पास जाने से छूत लगती है, और अपवित्रता होती है। इसी दिन संध्या को तीर साधने का संस्कार होता है। चौक पर बच्चे के साथ माँ बैठती है तो अन्य मंगल-आचारों के साथ देवर को बुलाया जाता है। वह तीर साधता है। यह तीर सींक का बना होता है। इस कार्य का नेग देवर को भी मिलता है। इन संस्कारों के उपरान्त कुआँ पूजने का संस्कार होता है, फिर नामकरण संस्कार जिसे साधारण भाषा में 'दष्टौन' कहते हैं। यह साधारणतः दसवें दिन होता है। इस दिन पुरोहित आकर यज्ञ आदि कराता है और ग्रह-नक्षत्र शोधकर नाम रखता है। इसमें स्त्री और पुरुष को गाँठ जोड़कर बैठाया जाता है। यह 'तगा बँधाने' का संस्कार भी कहलाता है। इसी दिन स्त्री के मायके से भेंट आती है, जिसमें कपड़े-लत्ते, मिठाई, आभूषण और धन होता है। यह 'पछ' या 'छोछक' कहलाती है। इस प्रकार ब्रज में जन्म की धूमधाम समाप्त होती है।

जैसा ऊपर के विवरण से विदित होता है, इसमें केवल 'नामकरण' के अवसर पर ही पौरोहित्य-संस्कार होता है, शेष समस्त आचार घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के द्वारा ही होते हैं। अतः इन सबमें आचारों के साथ गीतों का घनिष्ठ सम्बन्ध मिलता है। इन गीतों के प्रकारों को हम निम्न तालिका से भली प्रकार समझ सकते हैं—

वै तथा सोभर—वै के गीत ठीक उस समय गाये जाते हैं, जब बच्चा पैदा होता है। इनमें यही भाव मुख्य होता है कि 'वै' रिक्त हो तो कुम्हार के जाय, भरी हमारे यहाँ आये। 'वै' 'विधि' का द्योतक है, या विधि की शक्ति का। 'वैमाता' शब्द ब्रज में बहुत प्रचलित है। मेरठ की ओर यह 'वीमाना' कहा जाता है। यह मातृकाओं का द्योतक है जो बालक के साथ उसकी देखरेख के लिए रहती हैं। कुम्हार तो प्रजापति विधाता है ही।

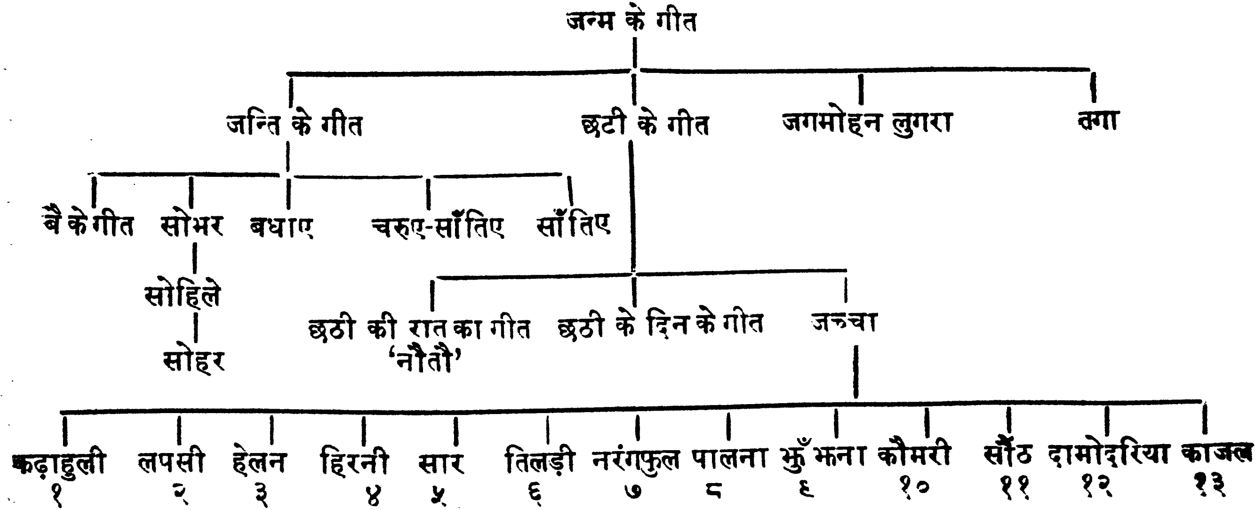
जन्म के गीतों में सोभर के गीत या सोहिले प्रधान हैं। इन गीतों में कई भावनाओं का प्रकाश हुआ है। कुछ गीत तो ऐसे हैं जिन में पुत्र की कामना तथा उसके लिए कुछ उद्योग आदि का उल्लेख है।

कुछ गीत ऐसे हैं जिनमें यदि कामना पूर्ण हो जाय और पुत्र उत्पन्न हो जाय तो क्या किसे दिया जायगा इससे सम्बन्धित हैं। ये दो प्रकार के हैं—एक में तो प्रायः सभी नेगों का उल्लेख है, दूसरे में 'ननद' की बदन का। ननद और भावज के पारस्परिक भावों को प्रकट करने वाले इस अवसर पर कितने ही गीत गाये जाते हैं। कुछ ऐसे हैं जिनमें प्रसव-पीड़ा का वर्णन है, वह पीड़ा कोई बटाले, यह भाव विशेष आया है। पुत्र उत्पन्न होने पर जो आनन्द होता है उसका उल्लेख भी कुछ गीतों में हुआ है। कुछ में पुत्रों के उत्पन्न होने के समय की बधाइयाँ हैं, कुछ में आगे कुँवर के सम्बन्ध में कामनाएँ हैं। इस प्रकार इन सोहिलों को यों विभाजित कर सकते हैं—

सोहिले
- कामना
- पीड़ा
- प्रसव
- नेग
  - विविध
  - नन्द
- जच्चा के नखरे
- आनन्द
- बधाए
- अभिलाषा
- दार्शनिक

ये समस्त गीत भी दो बड़े प्रकारों में बाँटे जा सकते हैं : एक स्फुट, दूसरे प्रबन्ध। प्रबन्ध-गीतों में किसी न किसी प्रकार की कथा-गीत प्रवृत्ति मिलती है। वह कथा-प्रवृत्ति वर्णन-क्रम-बद्धता का रूप ले लें चाहे कथानक का! स्फुट में निश्चय ही वह सौन्दर्य नहीं आ पाता जो प्रबन्ध में आया है।

पुत्र-कामना के दो गीत महत्त्वपूर्ण हैं। एक में गंगा माँ से वरदान माँगा गया है। यथार्थ में वरदान माँगा नहीं गया, माँगा गया है गंगा में डूबने के लिए एक स्थान, एक लहर। एक स्त्री कोख के दुख से दुखी है, उसके पुत्र नहीं होता, वह डूब मरना चाहती है। गंगाजी उसे आशीर्वाद देती हैं कि जा तुझे पुत्र होगा। पर वह इतनी उतावली है कि घर लौट कर तुरन्त ही बढ़ई से काठ का बालक बनवा लेती है और चाहती है कि कोई इसी में प्राण डाल दे। पर, प्रकृति-क्रम से ६-१० महीने बाद ही बालक होता है। नन्द और सासु उसे


जन्म के गीत
जन्ति के गीत
छटी के गीत
जगमोहन लुगरा
ढगा
बै के गीत
सोभर
बधाए
चरुए-साँतिए
साँतिए
सोहिले
सोहर
छठी की रात का गीत
'नौतौ'
छठी के दिन के गीत
जच्चा
कढ़ाहुली
१
लपसी
२
हेलन
३
हिरनी
४
सार
५
तिलड़ी
६
नरंगफुल
७
पालना
८
झुँझना
९
कौमरी
१०
सौंठ
११
दामोदरिया
१२
काजल
१३

पूर्वी

९

मोरे पिछवरवाँ बढ़इया वेगि ही चलि आवहु हो।
बढ़ई गढ़ि देहू काठे के बलकवा मैं जिया बुझावउँ—
मन समुझावउँ हो।

१०

काठे का बालक गढ़ि दिहलैं अँगने धरी दिहलई हो॥
बाबुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ मैं बँझिनि कहावउँ हो।

११

दैव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउ, हो।
रानी वढ़ई के गढ़ल होरिलवा रोअन नाहीं जानइ हो॥

पूर्वी गीत यहीं समाप्त हो जाता है और दुःखान्त रहकर राजा-रानी के पापों का इस युग में भी प्रायश्चित करता है, पर ब्रज के गीत में यह काठ का बालक केवल मनोवृत्ति की एक अवस्था को सूचित करता है, मात्र संचारी की भाँति आया है। वह चाहती है कि उस काठ के बालक[1] में प्राण पड़ जायँ, पर नौ दस माह बाद बालक उसके हो जाता है। ब्रज का गीत आगे बढ़ता है—

राजे जे नौ, जे दस माँस वीते गरभ के, तो होरिल सबद सुनाइये।
राजे सासु बहू कहि बोलें, ननद भाभी बोलै, ननद भाभी बोलै।
घे हरि जच्चा कहि बोलें, तौ छतियाँ जुड़ि गई।
सुनि सुनि रे मेरे दिवर छतारी, तौ बंसी बजाओ, मुरली बजाओ॥
भैया ऐ लाओ जगाय तौ देखें मेरौ सोहिलौ।

---

[1] काठ का बालक बनाकर उसमें प्राणों की कामना करना आदिम मनोभावों और विश्वासों के अनुकूल प्रतीत होता है। लोकवार्त्ता के विद्वान इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि भारत में ही नहीं संसार भर में बाह्य-साम्य टोटके के रूप में काम में आता है, अच्छे काम के लिए भी और बुरे काम के लिए भी। किसी का 'पूतरा' निकालना उसके लिये अशुभ माना गया है। कपड़े या चून के पुतले के अङ्ग अङ्ग में सुइयाँ चुभाकर अपने शत्रु को मारने का अनुष्ठान कितनी ही जगहों में होता है। यह काठ का बालक बनाकर उसमें प्राणों की चाह ब्रज के गीत में उसी बाह्य-साम्य के प्राचीन विश्वास और टोटके की ओर संकेत करती प्रतीत होती है। अतः यह काठ का बालक ब्रज के गीत में अधिक उपयुक्त ढङ्ग से नियोजित हुआ है। पूर्वी गीत में वह इस रूप में नहीं।

बाजन लागे बाजे ; घुरन लागे नबल निसान ॥
धनि धनि गंगे तोय धन्निऐं तुमने बढ़ायौ मेरौ मान ॥

ब्रज का गीत इस प्रकार बाह्यतः भले ही दो तन्तुओं का बना प्रतीत हो, पर अन्ततः वह एक ही है। उसमें गंगा में डूबने की दुःखद भावना, गंगा का वरदान, पर स्त्री की उतावली, फिर पुत्र-जन्म, सास ननद तथा पति के भावों में परिवर्त्तन और गंगा को धन्यवाद ये सब बड़े स्वाभाविक रूप में आते हैं, और गीत को सुन्दर और सुखान्त बना देते हैं। गीत यों कुछ लम्बा हो गया है, पर अपने विधान में पूर्ण और प्रभावोत्पादक है।

दूसरा गीत राजा दशरथ और उनकी रानियों से सम्बन्धित है। चौकी पर राजा दशरथ बैठे हैं, नीचे कौशिल्या। कौशिल्या कहती हैं कि हमें पुत्र रूपी संपत्ति चाहिए, अयोध्या के पण्डितों को बुलवाइए, वे भाग्य पढ़ें। पण्डितों ने कहा—

"चिट्ठी होइ तौ जाइ बाँचि सुनाऊँ, करमु मोपै ना बँचै ॥
कूआ रे होइ जाइ पाटूँ समुद्र मो पै ना पटै ॥"

तात्पर्य यह था कि भाग्य में कुछ नहीं लिखा। फिर माली बुलवाये गये, उन्होंने औषधि दी। वह पहले कौशिल्या ने, फिर सुमित्रा ने पीली। सिल धोकर कैकेई ने पीली। कौशिल्या के राम हुए, सुमित्रा के लक्ष्मण, कैकेई के चरत-भरत। राजा दशरथ थैली लुटाने लगे, तो कैकेई भीतर से बोलीं "राजा थोड़ा थोड़ा धन बाँटो, ये बालक तो वन को जायँगे।" किसी ने कैकेयी को टोक कर कहा—ऐसे शब्द मत कहो, यह तो आनन्द का क्षण है।

इस गीत का, दशरथ-कौशिल्या के वंशहीन होने का भाव तो पूर्वी कई गीतों में है किन्तु माली के औषधि देने का भाव नहीं है। पूर्वी गीत में तो दशरथ-कौशिल्या तपस्या करने लगते हैं। उन्हें तपस्वी या जोगी मिलता है वही 'भभूत' दे देता है।[1] इन गीतों में सुमित्रा और कैकेयी के नाम नहीं आते, न लक्ष्मण तथा चरत-भरत के पैदा होने का उल्लेख होता है। केवल 'राम' के जन्म की बात रहती है। और दशरथ-कौशिल्या ही आते हैं। पूर्वी गीत में राम के उत्पन्न होने पर पण्डितों को बुलाया जाता है, वे राम के वन जाने की भविष्य-बाणी करते हैं। राजा दशरथ दुखी होकर महल में जा सोते हैं। और

[1] वही, गीत, ७, पृष्ठ १६। गीत ६, पृष्ठ १४।

जब कौशिल्या प्रसन्न होकर धन लुटाती है, कैकेयी नहीं राजा ही कौशल्या को रोकते हैं—

"बाउर हो रानी कौशिल्या किन बउराई।
रानी धीरे-धीरे पटवा लुटावउ राम बन जइहीं ॥२५॥

पर कौशल्या कहती है, इससे क्या ? राम भले ही बन चले जायँ, मेरा बाँझपन तो मिट गया।

इन कामना-गीतों में कामना मूल में ही विद्यमान है, वैसे तो कामना, उद्योग और फल-प्राप्ति तथा आनन्द सभी भावनाएँ इनमें आयी हैं। किन्तु ये सभी उस मूल-कामना की भावना से ही ओत-प्रोत हैं। ये गीत पुत्र-जन्म होने के उपरान्त ही गाये जाते हैं। अतः पुत्र का जन्म तो इनमें प्राप्त-फल के रूप में होना ही चाहिए। यही तो वह घटना है, जिसके लिए 'कामना' की गयी है।

एक और मनोवैज्ञानिक बात इन गीतों में दिखाई पड़ती है। ये गीत इतने पुत्र की लालसा से प्रेरित नहीं जितने वन्ध्यात्व के कलङ्क से निवृत्त होने की प्रेरणा से। यह वन्ध्यात्व की विगर्हणा इतनी ब्रज के गीतों में तीव्र नहीं जितनी पूर्वी गीतों में।

प्रसव-पीड़ा के दो गीत उल्लेखनीय हैं। एक में प्रसव-पीड़ा से पीड़ित सास, जिठानी, द्यौरानी, नन्द और देवर से कहती है कि हमारी पीर बाँटलो—सास को हँसुला, जिठानी को बाजूबन्द, द्यौरानी को आरसी, ननद को कंकण, देवर को अँगूठी का प्रलोभन देती है। फिर पुत्र जन्म हुआ, पीड़ा मिट गयी, तो जच्चा कहती है कि यह तो ईश्वर की कृपा से हुआ है "मेरौ लल्ला रामनें दीयौ", तुम में से किसी ने इसमें क्या किया है ? अतः मेरे दिये आभूषण लौटा जाओ—

तैंने सासु कहा कीयौ, मेरौ लल्ला राम नें दीयौ।।
फेरिजा मेरौ हँसला हजारी ॥

दूसरे गीत में प्रसव-पीड़ा-पीड़िता पाँच पान, पाँच बीड़े, पाँच सुपारी ननद को दिलवाकर अपने पति को बुलवाती है। पति आते हैं, दुखी पत्नी को हृदय से लगाते हैं, पत्नी कहती है कि यह जो गाँठ बँध गई है, उसे खोलो। 'राजे बाँधति किनहूँ न जानी, राजे खुलत जग जानीए।' यह जो पीड़ा हो रही है उसे बाँटो। पति कहता है कि—

गोरी, छप्परु होइ उठाऊँ, जने दस लाऊँ, भैया दस लाऊँ।
गोरी जे करतार गठरिया, सखिन बिच खोलौ,
जाय रामु छुड़ावैं, जाय कृष्ण छुड़ावैं।

पेट के बालक से कहा जाता है कि तेरी माँ बहुत दुखी है, तुम शीघ्र जन्म लो। बालक कहता है कि मैं जन्म कैसे लूँ—मिट्टी के कूँड़े में मुझे स्नान कराओगे। झटोले में सुलाओगे, फटी गुदड़ी बिछाओगे, छोरा कहके पुकारोगे। तब उसे यह आश्वासन दिया जाता है—

सौने के कुड़िल न्हवाऊँ, सूत के पलिका सुलाऊँ।
राजे पीताम्बर बिछाऊँ, ललन कहि बोलें, हुरिल कहि बोलें॥

अन्त में यह महात्म्य-पद है—

जो जा जच्चाऐ गावै, गाइ सुनावै
जच्चाऐ रिझावै, बच्चाऐ सुनावै
कटें जनम के पाप, संपति सुख पावै; गोद लै खिलावै।

ऐसे ही एक पूर्वी गीत की भूमिका तो कुछ भिन्न है, पर भाव साम्य है। उस गीत[1] में पहले तो ऊँचे भवन पर दृष्टि जाती है। पीड़ा के कारण राम की परम सुन्दरी स्त्री न बाल बाँधती है, न सिर सँवारती है, भूमि पर लोट रही है। वह दासी को पति के पास भेजती है। वे पाँसे खेल रहे हैं, पाँसों को फेंक कर वे रानी के पास पहुँचे और पूछते हैं—

कहै रे धन वेदन हो
मुड़ मोर बहुत धमाकै अरे कड़िहर सालइ हो।
राजा मुअलिउँ कमूरिया की पीर तो दाई बोलावहु हो।६
तुम राजा बइठौ गोड़वरियाँ हम मुड़वरियाँ हो।
राजा पहर पहर पीर आवै दुनौं जन अँगइब हो।७
छानी जो होत त छवउतिउ, मरद बोलवतिउ हो।
रानी वेदन का बाँधल मोटरिया कले कल छूटहिं
त छोरहिं नरायन हो॥८

ब्रज और पूर्वी गीतों में छान अथवा छप्पर उठाना या छवाना तथा उसके लिए जन अथवा मरद लाना तथा गठरी अथवा मोटरी, और उसका कृष्ण अथवा नारायण की कृपा से ही खुलना पूर्ण साम्य रखते हैं।

[1] कविता-कौमुदी, ग्रामगीत सोहर २१, पृ० ४०।

पीड़ा से निस्तार होने और प्रसव होने से सम्बन्धित एक गीत इस प्रकार है—

अलबेले कुँमर तैंनें बिरदि उठाई
सासु ननद बाकी ओली टोली मारें
कुत्ता बिलैया कैं टूँकु न डारयौ,
अब कैसें होइ निस्तारौ,
अलबेले कुँमर तैंनें बिरदि उठाई।
'सासु ननद' सौं बोल जो बोले,
अब कैसें होइ निस्तारौ
अलबेले कुँमर तैंनें बिरदि उठाई।
'बहिनि भानजी' कौ मानु न राख्यौ,
अब कैसे होइ निस्तारौ
अलबेले कुँमर तैंनें बिरदि उठाई।
अबऊ ध्यान धरौ हरिजू कौ,
जब तिहारौ होइ निस्तारौ
अलबेले कुँमर तैंनें बिरदि उठाई।
जे नौ जे दस माँस बाके हुरिल
सबद सुनाय है गौ निस्तारौ।
अलबेले कुँमर तैंनें बिरदि उठाई।

यह गीत कुछ भिन्न मनोवृत्ति को प्रकट करता है। ऊपर के गीतों में भगवान अथवा नारायण का कहीं-कहीं उल्लेख हुआ, पर धार्मिक-भावना का पुट विशेष नहीं। पाप-पुण्य और उसके फल के जैसी कोई बात उनमें नहीं। इस गीत में इस ओर ही विशेष आग्रह है। कुत्ते-बिल्ली को टूँक नहीं डाले, सास-ननद से बोल बोले, बहिन-भानजी का सम्मान नहीं किया, ये पुण्य कार्य नहीं किये जो इस समय आड़े आते; यदि पुण्य नहीं हैं तो हरि का ध्यान ही निस्तार कर सकता है। यह सब धार्मिक-भावना इस गीत में है। इस धार्मिक-भावना का भी सम्बन्ध किसी धर्म-शास्त्र के विधान से नहीं है। 'कुत्ते-बिल्ली' को अन्न डालना 'पञ्चमहायज्ञों' में से 'बलिवैश्य' यज्ञ के अन्तर्गत आ सकता है। पर यहाँ उस शास्त्रोक्त दृष्टि की ओर संकेत नहीं प्रतीत होता। यह शुद्ध लौकिक सहृदयता से सम्बन्धित है।

प्रसव के दो गीत कई दृष्टियों से ध्यान देने योग्य हैं। एक गीत

जिठानी धौरानी के प्रसव का है। जिठानी के बच्चा होने को है। देवरानी को जाना है, पर बिना बुलाए नहीं जायगी। यह सास और ननद के बुलाने पर भी नहीं गयी। जेठ के आने पर वह गयी। 'सासु कूँ डारयौ पीढुला, ननद कूँ डारयौ मूढ़िला।

"राजे धौरानी कूँ पचरङ्ग-पलंगु......" पर जिठानी ने ललन छिपा लिया। अब धौरानी के बच्चा हुआ। जिठानी भी आदर से बुलाई गईं, स्वयं देवर लिवाने गये तब आईं। उनका भी, सास-ननद से अधिक पचरङ्ग पलङ्ग बिछा कर आदर किया गया। देवरानी ने कहा जिठानीजी आपने तो ललन दुबका लिए थे, मेरे ललन को तो लुढ़का दीजिए। सबको दिखाइये मैं तो तुम्हें इसे गोद दे दूँगी, शायद तुम्हारा ही हो कर जी उठे—

"जीजी लट छोड़ि लागूँगी पाँय, ललन दुँगी गोद में
जीजी तुमनें तौ लीए ऐं छिपाइ, तिहारौई है कें जी परै"

इस गीत में एक दृष्टव्य बात तो नीम के वृक्ष की भूमिका की है। "जेठ के अँगना निबरिया, सो झिलिरमिलिर करै।" इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में "राजे दिवर के अँगना निबरिया सो झलर मलर करै।" मिलता है। यह इन गीतों में एक नवीन संविधान है। नीम के साथ (चिरैया) चिड़िया को भी लोक-कवि नहीं भूला।

"जेठ के अँगना निवरिया सो झिलिरमिलिर करै
जेठ की नारि गरभ ते सो कुनुर-कुनुर करै
सो चिरैया चुहुँक चुहुँक करै।"

'लट छोड़ि लागुँगी पाँय' में श्रद्धा-समन्वित शिष्टाचार का रूप है।

किन्तु दूसरा गीत और भी अधिक महत्व का है। उसका कुछ अंश ऊपर आ चुका है। इसमें गर्भ के नौ महिनों में होने वाली विविध मनोवस्थाओं का भी प्रसंगवश वर्णन हुआ है, किन्तु विशेषतः उसके कथानक का मूल-केन्द्र महत्व पूर्ण है। कथानक का मूल-केन्द्र है—

"राजे मूत्यौ ओ बरध बिजार
तौ ननदुलि हाथ पखारिए
राजे हात पखारत लाग्यौ ऐ दोसु—

यह केन्द्र-विन्दु पहली दृष्टि में अश्लील प्रतीत होता है; फिर भी यह भी लोकाचार में एक अनिवार्य स्थान रखता है; और कोई न

कोई विशेष महत्त्व रखता है। साधारणतः तो इसमें हमें 'नृ-विज्ञान' की दृष्टि से भी कुछ उपयोगी सामग्री मिल जाती है। बिजार के मूत्र में हाथ पखारने से दोष लगने का विश्वास इसमें प्रकट हुआ है। यह विश्वास नृ-विज्ञान की दृष्टि में किस जाति और काल विशेष से सम्बन्धित है, इस पर तो आगे विचार किया जायगा यहाँ तो उसकी ओर संकेत करके गीत की एक विशेषता की स्थापना करनी है। वह गीत यहाँ पूरा उद्धृत कर देना ठीक होगा—

आयौ जेठ असाढ़ राजे ननद भवज पानी नीकरीं,
राजे मूत्यौ ऐ बरध बिजार राजे ननदुलि हाथ पखारिए
हाथ पखारत लाग्यौ ऐ दोसु, अब कहा कीजै मेरी भावजी
पहलौ महीना जब लागिए ब्याकौ फूलु गह्यौ फलु लागिए
अब कहा कीजै मेरी भावजी।
ए ब्याइ दूजौ महीना जब लागिए
राजे तीजौ महीना जब लागिए, बाकौ खीर खाँड़ मन आइए
मैं अपुबिस अपुबिस खीर रँधाइए
लज्जा राखूँ ननद की।
अब राछे चौथौ महीना जब लागिए
ए बाइ पँचयौ महीना जब लागिए
ए बाकूँ कोल के आम मँगाइए
ए मैं अपुबिस आम मँगाइए, मन जो राखूँ ननद कौ।
राजे छटयौ महीना जब लागिए
ए बाइ सतयौ महीना जब लागिए
ए हूँ अपुबिस अपुबिस साध पुजाऊँ,[१] तौ लज्जा राखूँ ननद की।
राजे अठयौ महीना जब लागिए
ए मैं अपुबिस अपुबिस महल झराऊँ, लज्जा राखूँ ननद की।
ए बाइ नौयौं महीना जब लागिए
ए मैं अपुबिस अपुबिस दाई बुलाऊँ, तौ हुरिल जनाऊँ ननद कौ।
वाकी दाई देहरि आइए, बाकें गाय कौ बच्छा है परयौ
बाहिर ते आए पतुरिया नाह
गोरी हमरी बहिन कहाँ गई।

---

[१] गर्भाधान से सातवें महीने में 'साध' पुजाये जाते हैं। इसमें चना और मूंग की घोमरी बाँटी जाती हैं। गीत गाये जाते हैं। गर्भवती चौक पर बैठती है।

राजे तिहारी बहिन की दूखें आँख लैरे भतीजे पे सोइरहीं।
राजे आयौ ऐ जेठ असाढ़, राजे हरसारे ने हल रे सम्हारिए
राजे बोली ऐ गोरी धन आइ, सुनि सुनिरे मेरे समरथ साहिबा
राजे बछरा ऐ गारी न दीजिए, बछरा तौ लागै तिहारौ भानजौ
गोरी तिहारौ तौ काटूँगो मूँड़, राजे जाकौ अरथ बताइए
राजे काएकूँ काटौगे मूँड़, लज्जा राखी तिहारी बहिन की।
राजे मूत्यौ ओ बरध बिजार तौ ननदुलि हाथ पखारिए
राजे हाथ पखारत लाग्यौ ऐ दोसु, तौ लज्जा राखी तिहारी बहिन की
गोरी तेरौ ऊँ असल गुलाम लज्जा राखी मेरी बहिन की।

प्रसव हो जाने के उपरान्त विविध अन्य आचार होते हैं और उनके साथ नेगों का प्रश्न उठता है। पर नेगों से पहले भी 'बदन' आती है। आरम्भ में ही ननद भाभी में बातें हुई हैं, ननद ने यह भविष्यवाणी की है कि लड़का होगा। भाभी प्रसन्न होकर ननद को कोई आभूषण देने का वचन देती है। पुत्र ही होता है और ननद भावज से बदी हुई वस्तु—आभूषण के लिए झगड़ती है। यह भाव कई गीतों में है। एक गीत में तो भावज अपने सपने का वृत्तान्त ननद को सुनाती है।

"अरी बीबी सपनों जु देख्यौ राति,
मालिन लाई गलहार।
अँगना मैं भैयाजी ठाड़े।

ननद कहती है तुम्हारे पुत्र होगा। "जौ बीबी मेरे होगौ नँद-लाल, तुमें दूँगी गलहारु"। समय पर बालक होता है। भावज ढोल बजाने वाले से कहती है, धीरे-धीरे ढोल बजाओ, कहीं ननदी न सुन लें। किन्तु ननद सुन ही लेती है। आती है, गलहार माँगती है। भावज कहती है :—

"लाली जे हरवा मेरे बाप कौ, तिहारे बिरन गढ़ायौ सोई लेउ।"

इससे रुष्ट होकर ननद कहती है—

पूत जनन्ती भावजी, जनियौ नौ दस धीअ,
मेरे बिरन कें चलत दुहेरी सीर, चलियो इकहरी सीर।

यह अभिशाप सुनते ही भावज ननद को लौटाती है और गले का हार दे देती है। प्रसन्न होकर ननद अब आशीर्वाद देती है—

धीश्र जनन्ती भावजी ! जनियौ नौ दस पूत,
मेरे बिरन कें चलति इकहरी सीर, चलिश्रौ चौहरी सीर।

दूसरे गीत में ननद से वचन बद्ध भावज अत्यन्त कठोर व्यवहार करती है। वह क्रुद्ध होकर कहती है---

भाजि भाजि ज्यौंते जारी ननदिया
छोंड़ौं छिनारि कौ घाँघरौ
श्रौरु छिनारि की श्रोढ़ना।

किन्तु तभी भाई श्राकर बहिन को तो श्राश्वासन देता है श्रौर स्त्री से कहता है, तुही यहाँ से निकल जा, हमारी बहिन से क्यों श्रटकी ?

एक गीत में अपने भाई के पुत्र होने का संवाद सुन कर ननद विना बुलाये ही श्रा पहुँचती है। पिता श्रौर भाई तो स्वागत करते हैं किन्तु सोभर में से भावज पूछती है कि—

'किन्नें ननद बुलाई'

ननद एक रात ठहर जाना चाहती है, भावज का रुख कठोर है—

तोय बाँधूँ तेरे लरिकन बाँधूँ, श्रौर छिनरी कौ भैया
एक रुपैया कौ रस्सा मँगाऊँ श्रौर अधेली कौ खूँटा।

पर ननद इन सबको भी लेकर चलनी बनी। भाभी के पूछने पर किसी ने उसे सूचना दी है—

'हाँ हाँ बहिना हमनें देखी, खूँटा लटकतु जाय।

इस गीत की टेक है "अबई मेरें को सुनरा कें जाय"।

ननद-भावज---इन्हीं गीतों में ननद-भावज के मलिन व्यवहार का अन्तर-प्रान्तीय गीत श्राता है। इसमें भावज सीता से ननद कहती है कि रावण का चित्र बनाश्रो। सीता बहुत श्राग्रह करने पर चित्र बना देती है। ननद राम को वह चित्र दिखा देती है। राम, लक्ष्मण के साथ उसे वन में भेज देते हैं। वहाँ उसका रोना सुनकर तपस्वी श्रा जाते हैं। वे उसे अभय श्रौर श्राश्वासन देते हैं। ब्रज का गीत यहाँ समाप्त हो जाता है। पर बुन्देलखण्डी[1] श्रौर पूर्वी[2] गीत इससे भी श्रागे की कहानी का उल्लेख करते हैं।

[1] देखिये लोकवार्त्ता वर्ष १ श्रङ्क २।

[2] देखिये क० कौ० ग्रा० गीत पृष्ठ ८३।

"लवकुश हुए, रोचन अयोध्या में दशरथ और लक्ष्मण के पास भेजा गया। लक्ष्मण के माथे पर रोचन देखकर राम ने पूछा कि ऐसे प्रसन्न क्यों हो? सीता के लवकुश होने के संवाद से राम को बड़ी प्रसन्नता हुई। पूर्वी गीत में लक्ष्मण सीता को बुलाने के लिये गये हैं किन्तु सीता ने जाना अस्वीकार कर दिया है, गीत समाप्त हो जाता है। बुन्देलखण्डी गीत भी प्रायः यहीं समाप्त हो जाता है, पर पूर्वी गीत में जैसे लक्ष्मण सीधे सीता के पास पहुँच गये हैं, वैसे बुन्देलखण्डी गीत में नहीं पहुँचे। उन्हें पहले लवकुश धनुषबाण से खेलते मिले हैं। उनसे पूछा है कि उनके माता-पिता कौन हैं। वे पिता का नाम छोड़ शेष सब का नाम बता देते हैं। तब लक्ष्मण सीताजी के पास जाते हैं। तीनों गीतों का आरम्भ भी भिन्न है—

ब्रज

राजे ननद भवज दोउ बैठिए।
भामी कैसी सुरति देखी 'रामनु'

बुन्देली

आम अमिलिया की नन्हीं नन्हीं पत्तियाँ
निबिया की शीतल छाँह
वहि तरें बइठी ननद भौजाई
चालें लागी रावन की बात।

पूर्वी

ननद भौजाई दूनौं पानी गई
अरे पानी गई।
भौजी जौन रवन तुम्हें हरिलेइग उरेहि दिखावहु।

ब्रज का भी यह गीत सोहर है, जन्ति का गीत है। पूर्वी गीत भी सोहर है। किन्तु बुन्देली के सम्बन्ध में कोई ऐसी सूचना नहीं दी गई। यही सम्भावना है कि बुन्देली गीत भी सोहर गीत होगा।

इन तीनों गीतों की सामग्री का विश्लेषण अलग-अलग इस प्रकार हो सकता है—

ब्रज

१—ननद भाभी बैठी हैं।
२—भाभी गर्भवती है।
३—ननद कहती है रावण का चित्र खींचो।

४—वह तुम्हारे भाई का बैरी है, वह सुन पायेंगे तो निकाल देंगे।

बुन्देली

१—ननद भाभी आम के पेड़ की छाया में बैठी हैं।

२— × ×

३—तुम्हारे देश में रावण बनता है, तुम उसे बनाओ

४—ननद यदि तुम घर न कहो तो खींच दूँ।

पूर्वी

१—ननद भाभी पानी के लिए गयीं

२— × ×

३—जो रावण तुम्हें हर ले गया उसका चित्र बनाओ

४—जैसा ब्रज में।

ब्रज

५. नन्द ने हठ की, सीता ने पूरा रावण चित्रित कर दिया।

६. भावज को ननद ने अन्यत्र भेज दिया, राम को चित्र दिखाया।

७. लक्ष्मण जाओ, सीता को बन में मारो और नेत्र निकाल लाओ।

८. सीता लक्ष्मण के साथ गईं, बन में प्यास लग आई, एक पेड़ के नीचे लेट गयीं।

९. लक्ष्मण ने दोने में पानी पेड़ पर टांग दिया, और चले गये, तब पानी की बूँद टपक कर सीता के मुख पर पड़ी, वह जग पड़ी।

१०. सीता रोई, एक बाबाजी निकले और कहा हमीं नन्दलाल का जन्म करायगे।

× × × ×

बुन्देली

५. ननद ने शपथ खाई कि वह न कहेगी, गाय का गोबर मँगाया, दो हाथ लिखे दो पाँव, बत्तीस दाँत, माथा नहीं लिख पायी।

६. राम-लक्ष्मण खाना खाने बैठे तो ननद राने लगी और शिकायत की कि तुम्हारे जन्म के बैरी का चित्र सीता ने खींचा है।

७. राम ने लक्ष्मण से कहा सीता को बाहर निकाल आओ।

८. जैसा ब्रज में

९. जैसा ब्रज में

१०. जैसा ब्रज में
११. सीता के लव कुश हुए।
१२. वन का नाऊ दशरथ को तथा लक्ष्मण को रोचन देने गया।
१३. राम ने पूछा कि लक्ष्मण यह रोचना क्यों लाया है। भाभी के लवकुश हुए हैं।
१४. लक्ष्मण देखते हैं, लवकुश धनुषबाण से खेल रहे हैं।
१५. तुम किनके नाती पोते हो? दशरथ के नाती, लक्ष्मण के भतीजे, माता सीता के पुत्र, पिता का नाम नहीं जानते।
१६. माँ अंचल काढ़ो, तुम्हारे कंत आ रहे हैं।
१७. मैं ऐसे कंत को नहीं देखूँगी।
१८. भाभी अयोध्या चलो।
१९. अयोध्या नहीं चलूँगी, पृथ्वी में समा जाऊँगी।

पूर्वी

५. ननद की शपथ पर ओवरी में लिपाकर चित्र बनाया, हाथ बनाये, पैर बनाये, नेत्र बनाये।
६. जैसा बुन्देली में।
७. जैसा बुन्देलखण्डी में।
८. जैसा ब्रज में।
९. लक्ष्मण दोना टाँग कर चले गये। सीता सोकर उठीं।
१०. जैसा ब्रज में।
११. सीता के पुत्र हुआ।
१२. जैसा बुन्देली में
१२. अ—राजा दशरथ, कौशल्या, लक्ष्मण ने नाई को भेंट दी।
१३. राम सागर पर दाँतुन कर रहे थे, लक्ष्मण यह टीका कैसे लगा है? भाभी के पुत्र हुए हैं। हे लक्ष्मण जाओ अपनी भाभी को ले आओ।
१४. लक्ष्मण भाभी के पास पहुँचे भाभी अयोध्या चलो।
१५. लक्ष्मण लौट जाओ हम घर नहीं चलेंगे।

× × × ×

ब्रज में सोभर के गीत से भिन्न एक दूसरा गीत है जिसमें उपरोक्त गीत से आगे का वह वृत्त जो बुन्देली में मिलता है आता है[१]।

[१] देखिए दूसरा अध्याय।

राम-लक्ष्मण को लव-कुश खेलते मिलते हैं। वे राम-लक्ष्मण को देखकर पानी लाते हैं। राम पूछते हैं, अपनी जात बताओ। बिना जात जाने पानी कैसे पीयें। कौन तुम्हारे माँ बाप हैं? उन्होंने कहा कि हमारी माता का नाम सीता है। पिता का नाम नहीं जानते। राम ने कहा चलो तुम्हारी माँ को देखें। सीता केश सुखा रही हैं। लड़कों ने कहा राम आ रहे हैं घूँघट निकाल लो। सीता ने राम को आते देखा, वे पृथ्वी में समा-गयीं। त्रिपाठीजी ने ग्रामगीतों में इसी विषय से सम्बन्धित और भी दो-तीन गीत दिये हैं[1]। इनमें से एक तो सीता का वन में दुःख कि सोने का छुरा कहाँ मिलेगा, तपस्विनियों का आकर उसे आश्वासन देना, अयोध्या में दशरथ कौशल्या तथा लक्ष्मण के पास रोचन भेजना—लक्ष्मण से राम को पता चलना कि सीता के पुत्र हुआ है—गुरु वशिष्ठ का सीता को लेने जाना—सीता का कहना है कि हे गुरु, आपकी आज्ञा नहीं टाल सकती अतः दस कदम अयोध्या की ओर चलूँगी। पर अयोध्या नहीं जाऊँगी और फाटक पर ही पृथ्वी में समा जाऊँगी। दूसरे में माघ की नौमी को राम ने यज्ञ रचा है, बिना सीता के सूना लगता है—गुरु सीता को लेने जाते हैं—पत्तों का दोना बनाकर गुरुजी को अर्घ्य देती है—गुरुजी उसकी प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि तुमने राम को भुला दिया है—वह राम के व्यवहार को दुहराती है—मैं अयोध्या नहीं आऊँगी, आपकी आज्ञा नहीं टाल सकती अतः दो कदम अयोध्या की ओर चल लूँगी। तब राम स्वयं गये—गुल्लीडण्डा खेलते दो बालक मिले उन्होंने परिचय में कहा—

बाप के नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो
हम राजा जनक के हैं नतिया सीता के दुलरुआ हो।

राम रोने लगे—कदम के नीचे सीता बैठी बाल सुखा रही थीं, सीता ने पीछे फिर कर देखा, राम खड़े हैं। राम ने कहा कि मन की ग्लानि दूर करदो, पर सीता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। पृथ्वी में समा गयी।

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों हिन्दी प्रदेशों में गीत की मूल-कथा प्रायः ज्यों की त्यों प्रचलित है; और यह समस्त गीत जन्म के संस्कारों से गहरा सम्बन्ध रखता है।

[1] देखिए क० कौ०, ग्रा० गी० सोहर ५१ पृ० ६४ तथा सोहर २४ पृ० ४५

नेग के गीत—अब साधारण नेग के गीत आते हैं। इनमें जच्चा की अनुदारता तथा उदारता दोनों के चित्र हैं। एक में तो जच्चा अपनी ससुराल की न तो दाई से काम करायेगी, न सासु से, न ननद से, न जिठानी से; वह समस्त कार्यों के लिए अपने पीहर से दाई, माँ, बहिन, भाभी, काकी को बुला लेना चाहती है—वह स्पष्ट कहती है—

'मैं अलबेली ढोला घरु न लुटाइ दऊँगी'

दूसरे में वह कहती है कि दाई आवे तो बुला लेना और उसे नेग भी दे देना, पर यदि वह झगड़ा करे तो धक्के देकर घर से निकाल कर सो जाना। यही वह सासु आदि के लिए कहती है। इन गीतों में प्राय: उस समय के आचारों का उल्लेख हो गया है; जैसे दाई तो जनाने के लिए, सास चरुए रखने को, ननद साँतिए रखने को, जिठानी पलँग बिछाने को, आती है। कहीं-कहीं जिठानी का कार्य पीपल पीसने का बताया गया है। प्रत्येक कार्य नेग या दक्षिणा से होता है।

एक गीत जच्चा के नखरों का भी है। इसमें व्याज-स्तुति और व्याज-निन्दा का मिश्रण हुआ है—

जच्चा मेरी भोरी भारी रे।
स्याँपै मारि बगल में सोवै, बीछू धरि सिरहाने
जच्चा मेरी मच्छर ते डरपी रे।

इसी प्रकार—

चारि चरस पानी के पीए, नौ बोतल सरबत की पी गई
जच्चा मेरी पीनौं न जानै री।

इसी प्रकार न जच्चा खाना जानती है, न किसी से झगड़ना जानती है। आनन्द-बधाए का तो यह अवसर ही होता है। आनन्द से कौशल्या फूली नहीं समाती, किसी को कुछ बाँटती हैं, किसी को कुछ। बधाई देने के लिए ससुर, जेठ, लाला, ननदेऊ आते हैं। जच्चा कहती है कि यदि मैं जानती कि ये लोग आयेंगे तो आँगन आदि लीप कर समुचित तय्यारी कर लेती।

इसी आनन्द में अभिलाषा का भी स्थान है। वह दिन कब होगा जब वह बालक चलना-फिरना आरम्भ करेगा। बाबा, दादा कहने लगेगा, पढ़ने जाने लगेगा।

यह है जन्ति के गीतों की सामग्री, विषय और स्वरूप।

इसी में साँतिये रखने का गीत अलग है, पर वह ननद भवज की बदन या वचन-बद्धता के गीतों से साम्य रखता है। हाँ छठी के दिन के गोबर के साँतिये कौरे पर रखे जाते हैं। उसका एक गीत यह है—

धरती के दरबार नौहबति बाजि रही ऐ।
बाजि रही ऐ घनघोरि।
फूलि रही ऐ फुलवारि, चंपा मौरि रही ऐ
मारुअरौ महकि रह्यौ ऐ
माता के दरबार नौहबति बाजि रही ऐ
बाजि रही ऐ घनघोरि
फूलि रही ऐ फुलवारि, चम्पा मौरि रही ऐ
सेढ़ मसानी के दरबार नौहबति बाजि रही ऐ
बाजि रही ऐ घनघोरि,
फूलि रही ऐ फुलवारि, चम्पा मौरि रही ऐ
मारुअरौ महकि रह्यौ ऐ।

इसमें धरित्री, माता, सेढ़ और मसानी के यहाँ प्रसन्नता होने का उल्लेख हुआ है। ये सभी प्रमुख देवियाँ हैं, इनका सम्बन्ध प्रजनन से है।

छठी——जन्ति के गीतों का एक अलग समूह 'छठी' के गीतों के नाम से होता है। पुत्र उत्पन्न होने के छठे दिन बाद या उससे पूर्व जैसा लोकाचार हो अथवा शुभ मुहूर्त निकले, जच्चा और बच्चा को स्नान कराया जाता है। सोभर समाप्त हो जाती है। इस दिन भी अनेकों गीत गाये जाते हैं। छठी से पहली रात को 'नोता' गाया जाता है।

"गोरी आजु छठी की ऐ राति कहौ तौ किसे नौति आऊँ"

इसमें पूछने वाला पति माना गया है। वह कहता है, अयोध्या में हमारी माता कौशल्या है, कहो तो उन्हें 'नौति' आऊँ. जच्चा इस सुझाव पर अत्यन्त क्रुद्ध होती है और कहती है, मेरी माँ को निमन्त्रण दो। पति फिर अपनी बहिन को निमन्त्रण देने का सुझाव रखता है, स्त्री उसका विरोध करके अपनी बहिन को न्यौता देने की बात कहती है। इस निमन्त्रण के उपरान्त के गीतों में 'दामोदरिया',

'कढ़ाहुली', 'लपसी', 'पालना', 'झुंझुना', 'कठुला', 'काजल' तथा 'नरंगफल' आदि कई गीत हैं। इन गीतों में जच्चा और बच्चा के लिए प्रायः जो जो कार्य किये जाते हैं उनका विवरण रहता है और उसके सहारे बच्चे की ननसाल का उपहास भी हो जाता है। गालियाँ भी इन गीतों में हैं। एक गीत में वीभत्स भाव है। 'लपसी' में लक्ष्मण 'लपसी' के धोखे में 'मल' खा लेते हैं, ननद 'गोबर का चोथ', फिर चबकते फिरते हैं। स्पष्ट विदित होता है कि इन गीतों में जो भाव व्यक्त हुए हैं उन्हें दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक भाव है, मनोरञ्जन के साथ तत्सम्बन्धी क्रियाओं का स्मरण और सम्पादन। जन्म सम्बन्धी सभी कार्यों को एक विशेष महत्त्व दिया जाता है, वे सभी माङ्गलिक और धार्मिक समझे जाते हैं, अतः जो कार्य भी होता है, उसका उल्लेख करते हुए, उस कार्य को करते समय कोई न कोई गीत गाया जाता है। ऐसे गीतों में मनोरञ्जन, उपहास तथा गाली का भी उपयोग होता है। दूसरी श्रेणी में वे गीत रखे जाने चाहिए जिनमें भीतर कहीं 'टोटके' का भाव छिपा हुआ हो। मेरी दृष्टि में 'लपसी' में 'वीभत्स' भाव का समावेश किसी न किसी टोटके के भाव से हुआ है। अन्यथा किसी अन्य मनोवैज्ञानिक आधार पर उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। छठी के अधिकांश गीत गिनती गिनाते हैं— जैसे 'पालना' में पालना झुलाने, झुंझुना में झुंझुना खिलाने अथवा देने, मामा, माँई, नाना, नानी, बूआ, फूफा, मौसी आदि आती हैं, ताई, चाची आती हैं और पालना झुलाती हैं, या झुंझना देती हैं। इसी प्रकार 'कठुला' पहनाने आती हैं। कुछ गीत सांस्कारिक भी होते हैं—जैसे एक गीत यह है।

छठी पुजन्तर बहू आईं सीता
छठी पुजन्तर बहू आई उर्मिला
छठीऐ पुजन्तर कहा फलु माँगैं
अनु माँगैं धनु माँगैं, अपने पुरुखन को राज माँगैं
बारौ झंडूला गोद माँगै।

२२—इन गीतों में से एक नरंगफल गीत कथा-प्रधान है। यह गीत यों आरम्भ होता है :—

'जे नौ जे दस मास राजे, राजकुमरि गरभ-ते
नरंगफलु माँगिए।'

पुरुष पूछता है कि इसका पेड़ किस दिशा में है, और उसमें कहाँ फल लगता है। "पूरब में उसका पेड़ है, फुनगी पर फल लगता है।" "उस फल का लाना तो कठिन है। वहाँ एक लाख दीपक जलते हैं, सवा लाख कुत्ते रहते हैं, एक लाख पहरेदार, सवा लाख रखवारे रहते हैं।" "नरंगफल नहीं आया तो विष खाकर मर जाऊँगी।" आखिर पुरुष को नरंगफल लेने के लिए घोड़े पर सवार होकर चलना पड़ा। घर में चिन्ता हो रही है। माता राम मनाती है, तथा सूर्य की मानता करती है। बहिन भी इसी प्रकार मानता करती है। ये दोनों कहती हैं—"मेरी कब की बैरिन भई बहुग्र! भाभी बेटा! बिरन चोरी गए।"

स्त्री स्वयं मानता कर रही है :

"राजे सेज चढ़ंती ओ धनिया
सो राम मनामें सुरजु मनामें
मेरी कबकी बैरिन भई कोखि,
बलम चोरी गए"—

वह अपनी 'कोख' को दोष देती है जिसके लिए नरंगफल मँगाना पड़ा। राजा नरंगफल के पास पहुँचे, घोड़ा खोल दिया, एक लाख दीपक बुझ गये, सवा लाख कुत्ते सोगये और एक लाख पहरेदार तथा सवा लाख रखवाले भी सो गये। राजा घोड़े की पीठ पर चढ़ कर पेड़ पर चढ़ गये, फल तोड़कर जेब में रख लिया। फल तोड़ने के शब्द से कुत्ते जग गये, दीपक जल गये, पहरेदार और रखवाले उठकर आगये। किंचित युद्ध भी हुआ, पर वे पकड़े गए और जेल में डाल दिए गये। हाकिम ने पूछा कैसे आये? नरंगफल की थाँग कैसे लगी? हाकिम ने कहा यदि तुम्हारी स्त्री गर्भिणी है तो दो चार फल ले जाओ। गर्भिणी स्त्रियों के लिए कोई रोक नहीं है। वह वहाँ से चले और नरंगफल लाकर स्त्री को दिया, और उसने वह फल सासु तथा ननद को दिखाया। ननद ने कहा कि जल्दी खालो तुम्हारे लाल होंगे।

यथार्थ में छठी के गीतों को छठी के दिन ही गाने का कोई विशेष नियम नहीं है। जन्म के दिन के गीतों के अतिरिक्त छठी के दिन तक ये कभी गाये जा सकते हैं। यही कारण है कि इनमें से नरंगफल जैसा गीत यथार्थ 'कामना' गीत में रुचि-पूजा का गीत है।

गर्भवती स्त्री की रुचि को पूरा करना आवश्यक है, वह कितनी ही कठिनाई से क्यों न पूरी की जाय। नरंगफल में उसी की ओर संकेत है।

जब छठी के गीत समाप्त हो जाते हैं और गीत गाने वाली स्त्रियाँ जाने लगती हैं तब यह गीत गाती हैं :—

"सोओौ के जागौ हुरिल के बाबा, ताऊ, गामनहारी राजे घर चलीं"
गामन हारीन के लहँगा लुगरा लेउ उतारि करौ हुरिल की गड़तनी।
नए नए देउ पहराय, पुरानेन की करि लेउ गड़तनी
गामन हारीन देउ तमोल, गोद भरौ तिल चामरी"

जगमोहन-लुगरा—जन्म के सातवें दिन अथवा छठी के बाद ननद जब बच्चे के लिए कुर्त्ता-टोपी लाती है तो एक और सुन्दर गीत गाया जाता है। यह 'जगमोहन लुगरा' कहलाता है। यह माना जाता है कि 'जगमोहन' नाम की साड़ी अथवा 'फरिया' और 'लुगरा' नाम का लहँगा। रुक्मिणी के पितु-गृह में ही था, अन्यत्र कहीं नहीं था। इसी के सम्बन्ध का प्रबन्धात्मक गीत इस अवसर पर गया जाता है। रुक्मिणी के माता-पिता ने रुक्मिणी के पुत्र होने की प्रसन्नता में यह 'जगमोहन लुगरा' रुक्मिणी के पास भेज दिया है। रुक्मिणी ने ननद को वचन दिया था कि मेरे पुत्र हुआ तो वह 'जगमोहन लुगरा' तुम्हें दे दूँगी किन्तु अब देने के अवसर पर रुक्मिणी मुकर रही है। आखिर भाई के बीच में पड़ने पर भाभी ननद को वह पहना-उढ़ा देती है। ननद आशीर्वाद देती है।

इस गीत को विस्तार के साथ यहाँ उद्धृत कर देना ठीक होगा—

जगमोहन-लुगरा

राजे ननद भवज दोनों बैठिए
राजे रुकिमिनि नौ-दस माँस गरभ ते
राजे ननदुलि बात चलाइए :
'राजे जौ तिहारें होंइ नँदलाल, जगमोहन लुगरा दीजिए।'
'बीबी जो मेरें होंइ नँदलाल, जगमोहन लुगरा दीजिए।'
राजे ननद चली ऐं अपने सासुरें,
बाके होरिलु सबदु सुनाइए।
'जगमोहन लुगरा माँगिए,
राजे कैसें बचाऊँ अपने प्रान, ननदुलि ते छिपाइए।'

राजे घुरि गए तबल निसान, गमन लागे सोहिले ।
'राजे नौआ के ऐ लेउ बुलाय लुचन लैकें भेजिए।
राजे जाऔ, मेरी मांइ कहौ समझाय,
रुकिमिनि नें जाए हीरालाल ।'
राजे इक बनु नाँखि दूजौ बनु नाख्यौ,
तीजे बन पहुँचे ऐं जाइ, रुकिमिनी के बबुल कें ।
भरी रे कचहरी बबुलजी की बैठिए ।
राजे बिरनजी बैठे उनके पास ।
राजे नौआ के नें लुचन दिखाइए ।
बाके बाबुल खुसी रही उर छाय ।
बिरन ब्वाके सुनि रहे ।
'राजे हाती बँधे ऐं हथसार, जरद अंबारी दीजिए ।'
'राजे घोड़ी बँधी ऐं घुड़सार,
अच्छौ सौ जीनु धराय, झाँझन पहिराइए ।
नौआ के ऐ देउ चढ़ाय ।'
राजे भरी रे कचहरी बाबुल उठि चले
राजे छोटे बिरन उनके साथ, महलनु जाइ पहुँचिए ।
राजे कही ऐ माय समुझाय। भावज उनकी सुनि रहीं ।
'राजे रुकिमिनि जाए नँदलाल, बधाई लैकें आईए ।
राजे षटरस भोजनु बनाय, तौ सोरन थार लगाइए ।'
'राजे तोडर देउ पहिराय, तौ लाऔ पाँचौ कापड़े ।
धेबते के सोहिले ।
करहु भोजनु रुचिमान, बिदा करि दीजिए ।'
'राजे जगमोंहन लुगरा ओ लाउ, नाऊ ऐ धरि दीजिए ।
राजे लै जाउ बगल दबाइ, काऊ न दिखाइए ।
राजे बीच में बसति ऐं सुहद्रा तौ उनें न दिखाइए ।'

[२]

राजे इक बन नाँखि दुजौ बन नाखिए ।
राजे तीजे बन आइ मँझारे सुहद्रा के महल में
राजे पूछति पीहर की बात "कहा लै आइए ।"
'राजे बजि रहे तबल निसान, गवत छोड़े सोहिले ।
राजे हम तौ लुचन लैकें भेजे रुकिमिनी के बबुलकें ।

राजे तुमकूँ बधाए लैकैं आए, किस्न लैबे आइए।"
"राजे सोने के तोडर लाउ, नाऊ ऐ पहिराइए।
राजे साल-दुसाला ओ लाउ, नाऊ ऐ पहिराइए।
राजे उढ़ाऊँ भतीजे के सोहिले।
राजे षटरस भोजन बनाय नाऊ ऐ जिमाइए।
नौआ के भोजन करिबे कूँ आउ तौ आसन बिछाइए।
नौआ के जिह कहा बगल तिहारी ? तौ जाइ दिखाइए।"
"लाली, नहन्ना, उस्तराएँ पेटी, तौ जाइ कहा देखिए।"
"नौआ के हमते दगा मति खेलै गाम कौ ऐ नाऊ,
तेरी बगल जगमोहन लुगरा दबि रहे, तौ हमते छिपाइए।
राजे चौं न दिखाइए ?
नौआ के चलूँगी तिहारे ई साथ बदनि पूरी है गई।"
"लाली तुम तौ बावरी गमारि मेरे संग मति चलौ।
तिहारे बिरन तौ आमें लैनहार, अदरु करि जाइए।
लाली बिना रे बुलाए मति जाओ, अदरु नाएँ होय।"
राजे रुकिमिनी कौ डोला ऐ साथ, नाऊ के संग चलि दई।
राजे एक बनु नाँखि दुजा बनु नाँखिए।
राजे तीजे बन पहुँची है आइ बबुलजी के महल में।
राजे बिरन जो बैठे चटसार, देखि भैना हँसि दए।
"भैना देखि भतीजे कौ सोहिलौ भाजति तुम आइए।"
राजे महलन भावज सुनि रहीं,
"राजे हथियन में बड़ौ हाती, जरद ऐ अम्बारी,
राजे अरजुन नन्देऊ, बैठि जाउ, ननद सुख पाइए।
राजे घोड़ियन में बड़ौ घोड़िला,
राजे चन्दा सुरज से मेरे भानजे, जा चढ़ि जाइए,
ननद सुख पाइए।
राजे बकुचिन में बड़ी चूँदरी,
राजे जाइ ननदिया ऐ देउ, ओढ़ि घर जाइए।
राजे गहनेन में बड़ौ हाँसुला,
सो जाइ ननदिया ऐ दीजिए। जाइ पहरि घर जाउ।
"भाभी ! हथिया बँधे बहुतेरे, घुड़िल घुड़सार में।
भाभी ! बदनि बदी ऐ साई देउ, जगमोहनु लुगरा दीजिए।

भाभी, चुंदरी तौ मेरे बहुत ऐं, सो हँसुला तौ मेरें बहु घने।
भाभी, बदनि बदी सोइ देउ, जगमोहन लुगरा दीजिए।"
"लाली जे लुगरा ना देउं कुमरजी के सोहिले।
लाली भेज्यौ ऐ जनम दिखामनि माय, मजलसिया बाबुल मोलु दै।
लै आयौ री मेरौ तरकसु बेदी बीर,
राजे अपनी भवज कौ ऐ साहिबा।
राजे जाइ नांइ दुंगी, ओढ़ूं तौ अपने चौक पै।
लाली, को तिहारे गए लेंनहार, को तौ छेता धरि गये ?"
भाभी ना कोई गए लेनहार, नायें छेता धरि गए।
भाभी हमरे बबुल की अथैयां इनें देखिबे आइए।
भाभी हमारी माय की रसोइया, इनें देखन आइए।"
"भाभी हमरे बिरन घर सोहिलौ, सुनि कै घर आइए।"
"लाली, लौटि बगदि घर जाउ, तौ फेरि मति आइए।"
राजे नैननु भरि लाईं नीरु, तौ हिलकिनु रोइये।
"भाभी हमरे बबुल के ऐं देस, जनम भुम्मि मेरी रहीं।
भाभी तुम न जमन देउ आजु, लौटि घर जाइए।"
"लाली बैठी ऐं तन मन मारि नैननु जल छाइए।
राजे बाहिर ते आए, मा के जाए, बिरन आए महल में।
"राजे हमरी बहिन कैसें अनमनी ?"
राजे भीतर ते बोली रुकिमिनी, बहिन तिहारी रूठिए।
"राजे लाओ जगमोहन लुगरा मोल, बहिन कूँ दीजिए।"
"रुकिमिनि, जो कहूँ बिकते जे मोल तौ हाल जु लाइए।
चाहें आमें लाख-द्वै लाख खरीदि कें लाइए।
बहिन लै पहिराइये।
रुकिमिनि जुरि रही, पटना की पेंठ माँ तौ रे हम जाइए।
भैना लाइ दऊँ दखिनी सौ चीर, बाइ ओढ़ि घर जाइये।
राजे ब्वाऊ ऐ बहिन नायें लैंति, हठीली हठि परि रही।
रुकिमिनि ! जौ तुम बहिन न देउ, जाँइ हम पेंठ कूँ,
गोरी करें दोसरौ ब्याहु, सौति तुम पर लाइए।
रुकिमिनि ! करहु सोलहौ सिंगार निकरि पीहर जाइए।
रुकिमिनि ! धनियाँ गहुत लाऊँ ब्याहि बहिन नायें पाइये।
रुकिमिनि ! निकरि बाहर तुम जाओ, डुलिया तौ ठाढ़ी द्वार पै।

"लाली ! बगदौ, बगदि घर आउ, जगमोहन लुगरा पहरिये ।
लाली । पहरि ओढ़ि घर जाउ, तौ मुख भरि असीस जु दीजिये ।"
"भाभी ! अमरु रहें तिहारी चुरियाँ, अमरु तिहारे बीछिया ।
भाभी ! जीऔ तिहारे कुमरु कन्हैया ।
कुमरु तिहारे चौक में, खेलें तिहारे आँगन में ।"

इस गीत का प्रबन्ध-विधान जन्ति के उन गीतों के जैसा है जिसमें ननद-भौजाई की बदन का उल्लेख है । किञ्चित तुलना से यह विदित होता है कि उन गीतों की मूल-प्रेरणा सम्भवतः इस गीत से ली गयी है क्योंकि इसमें वे सब भाव जो उपरोक्त गीतों में अलग-अलग आये हैं, इसमें एक प्रबन्ध में गुँथे हुए हैं । इसमें निम्न बातें हैं—

१—ननद-भावज बैठी हैं । उनमें बदन हो जाती है । भावज कहती है कि यदि मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें 'जगमोहन-लुगरा' दूँगी ।

[उपरोक्त गीतों में प्रायः 'गलहर' का उल्लेख हुआ है ।]

ननद अपनी ससुराल गयी ।

२—रुक्मिणी के पुत्र हुआ, उसने पिता के यहाँ रोचन भिजवाया । पिता और भाई ने नाई का सत्कार किया और जगमोहन लुगरा दिया और यह हिदायत करदी कि मार्ग में 'सुभद्रा' को मत दिखाना ।

३—नाई सुभद्रा के गया । वहाँ भी सत्कार हुआ । वहाँ नाई ने कहा कि तुम्हारे भाई कृष्ण तुम्हें लिवाने आयेंगे उनके साथ जाना । सुभद्रा ने नाई के बगल में 'जगमोहन लुगरा' देख लिया, वह नाई के साथ ही चल पड़ी ।

४—भावज ननद को हाथी, घोड़े, चूँदरी देने को कहती है । ननद कहती है, इनमें से कुछ नहीं लूँगी, जो बदन बदी थी वही दो ।

[यह भाव भी ऊपर जन्ति के कई गीतों में मिलता है]

५—भाभी कहती है, वह तो मेरे मायके से आया है, भाई लाया है, मैं चौक पर पहनूँगी ।

[ऊपर के गीतों में आभूषणों का उल्लेख है, अतः भावज उन्हें मा-बाप द्वारा गढ़ाया बताती है]

६—वह और भी अधिक क्रुद्ध होकर कहती है, तुम्हें किसने बुलाया था।

[ऊपर के गीतों में कहीं कहीं तो यह गीत धमकी के रूप में परिणत हो जाता है।]

७—ननद कहती है यह मेरे पिता का देश है, जन्म भूमि है। आज तुम मुझे यहाँ ठहरने भी नहीं देती, बहिन दुखी है।

[यह भाव भी जन्ति के गीतों में आया है।]

८—भाई आये। रुक्मिणी कहती है, खरीदकर ले आओ और बहिन को दो। पर यह 'जगमोहन लुगरा' बाजार में बिकता कहाँ है। तो बहिन तुम्हें एक अच्छा दक्षिणी चीर ही लादूँ, पर ननद हठ पर दृढ़ है।

[ननद की हठ का उल्लेख उन गीतों में भी है।]

६—तब भाई रुक्मिणी पर क्रुद्ध होता है कि दो अपना 'जगमोहन लुगरा' नहीं तो मैं दूसरा ब्याह करा लूँगा। तुम निकलो यहाँ से अपने घर जाओ, मैं स्त्रियाँ तो बहुत ला सकता हूँ पर बहिन नहीं मिल सकती।

[भाई का क्रोध तो ऊपर के गीतों में भी कहीं कहीं आया है। जच्चा को घर से निकालने की धमकी भी है, पर वह तर्क नहीं है जो स्त्री और बहिन के मूल्य को आँकता है।]

१०—भावज ननद को आदर से बुलाकर 'जगमोहन लुगरा' देती है और आशीर्वाद चाहती है।

११—ननद आशीर्वाद देती है।

जन्म के आचारों में अन्तिम नामकरण संस्कार का दिन होता है, इस दिन तगा बाँधा जाता है, इसे 'दष्टौन' भी कहते हैं। यह प्रायः दसवें दिन होता है, यों शुभ मुहूर्त और लोकाचार के भेद से और किसी दिन भी हो सकता है। इस दिन जच्चा के भाई तथा पिता के यहाँ से 'छोछक' भी जाती है। इस अवसर के गीतों में स्त्री अपने पति या भाई से कुछ माँगती हुई दिखायी गई है। एक गीत में पति इस प्रकार उत्तर देता है।

"ए धन पीअरो[१] बिरन पैते माँगि, हमपै मति माँगिए,
खिचरी भवज पैऊ माँगि, लडुअरे माय पै ते माँगिए"

[१] पीअरो—पीले वस्त्र को कहते हैं, इसे "पौमचा" ब्रज में कहते हैं, यह पीला

एक दूसरे गीत में भाई और पिता, भावज और माता यह उत्तर देते हैं—

"बेटी नित उठि जनमौगी पूत, कहाँ ते लाऊँ लाडुए
बीवी नित उठि जनमौगी पूत, कहाँ ते लाऊँ पीअरौ
बेटी नित उठि जनमौगी पूत, कहाँ ते लाऊँ खीचरी
भैंना नित उठि जनमौगी पूत, कहाँ ते लाऊँ पीअरौ,"

पर वे सब ऐसा कहते हुए भी उसकी इच्छा को पूर्ण करते हैं, एक गीत में भाई बहिन से पूछता है कि तुम्हारे लिए चुँदरी कहाँ से लाऊँ, कहाँ रँगाऊँ।

जन्म सम्बन्धी संस्कारों और उनसे सम्बन्धित गीतों का यह एक सूक्ष्म दिग्दर्शन है।

(आ) विवाह के गीत

विवाह के संस्कार—जन्म के उपरान्त विवाह संस्कार ही सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। जैसा जन्म के संस्कार में था वैसा ही विवाह संस्कार में कुछ आचार वैदिक अथवा शास्त्रोक्त प्रणाली से पुरोहित और पण्डित द्वारा कराये जाते हैं और लौकिक आचारों की संख्या वैदिक आचारों से कहीं अधिक होती है। वैदिक आचार को धुरी माना जा सकता है, उस धुरी के चारों ओर लोकाचारों का घना ताना-बाना पुरा हुआ है। लोकाचारों में ही लोकवार्त्ता और लोक-गीत के दर्शन होते हैं।

विवाह-संस्कार का बीजारोपण 'पक्की' से होता है। पक्की होजाने के उपरान्त सगाई होती है। लड़कीवाला कुछ भेंट नाई तथा ब्राह्मण के हाथ भेजता है। चौक पर बैठकर 'लड़का' उसे ग्रहण करता है। 'बीड़ा-बताशों' का बुलाया लगता है। जो सम्बन्धी वहाँ आते हैं, उन्हें सगाई चढ़ जाने पर पान के बीड़े तथा बताशे बाँटे जाते हैं। सगाई भी यथार्थ में वचन-बद्धता का ही दूसरा रूप है। यथार्थ वैवा-

वस्त्र शुभ माना जाता है और बच्चा होने पर इसे पहना जाता है। यह पीला वस्त्र पहनने का रिवाज केवल ब्रज में ही नहीं, अन्यत्र भी है। इसे मारवाड़ में 'पिलो' कहते हैं, वहाँ भी 'पिलो' के गीत प्रचलित हैं, पूर्व में भी पीले वस्त्र का उल्लेख है। "बाबा मोर गइन बजज घर जोड़वा लै आइन, माई मोरि पियरो रँगावें बीरन लैकें आवें। क. कौ. ग्राम गीत, सोहर ५७, पृष्ठ १०५।

हिक मङ्गल-कार्यों का आरम्भ 'पीली चिट्ठी' से होता है। कन्या-पक्ष से पीली-चिट्ठी आती है, उसमें यह सूचना होती है कि विवाह की तिथि अमुक निश्चित हुई है, लगुन अमुक दिन आयेगी। पीली चिट्ठी चले जाने के उपरान्त बूआ तथा बहिनों को निमन्त्रण भेजे जाते हैं। उन्हें लगुन से पूर्व अवश्य ही घर आजाना चाहिए। निश्चित तिथि को लग्न-पत्रिका आती है। वह विधिवत् लड़के के हाथ पर रखी जाती है। उधर वह पत्रिका लड़की के हाथ पर रखी जाकर तब लड़के के यहाँ आती है। उस पत्रिका के साथ धन तथा अन्य द्रव्य भेंट-स्वरूप आता है। लग्न-पत्रिका में यह निर्देश रहता है कि किस दिन किस मुहूर्त में भाँवरें पड़ेंगी, तथा कितने तेल हैं। लग्न आजाने के उपरान्त भात माँगा जाता है। बहिन अपने भाई को भात के लिए नौंतने जाती है।

जिस दिन से तेल और हल्दी चढ़नी होती है, उससे पहली रात्रि को रतजगा होता है। रतजगे की रात्रि को कितने ही अनुष्ठान स्त्रियों द्वारा होते हैं। प्रातः सूर्योदय से पूर्व गीत गाये जाते हैं। इसी दिन पहला तेल चढ़ता है। इस प्रकार शुभ मुहूर्त्त में गीत-मङ्गल के साथ-साथ लग्न-पत्रिका में कन्या-पक्ष का पण्डित जितने तेलों का विधान करता है, उतने तेल वर पर चढ़ाये जाते हैं। तेल चढ़ाने वाली स्त्रियाँ ही होती हैं। वे 'गौन्नैं' (गौरनें) कहलाती हैं। तेल समस्त शरीर में नहीं मला जाता। इस प्रकार तो उबटन के साथ हल्दी ही चढ़ती है। कई गौन्नैं होती हैं। वे दूर्वा लेकर उसे तेल में डुबाकर, सीधे हाथ से बाँये और बाँये से सीधे पैरों को, फिर घुटनों को फिर सिर को स्पर्श करती हैं। तेल चढ़ जाने के उपरान्त 'आरता' होता है। यह क्रम बराबर चलता रहता है। रतजगे के पश्चात् वाले दिन तेल चढ़ने के साथ ही वर के कंकण भी बाँध दिया जाता है। कंकण बहुधा ऊन के वस्त्र में एक लोहे का छल्ला, हल्दी, सुपाड़ी और न जाने क्या क्या बाँध कर तय्यार किया जाता है। उसमें बहुत कसकर कई गाँठें लगायी जाती हैं। इस दिन के बाद वर को घर से बाहर जाने की छुट्टी नहीं रहती, उसके हाथ में कोई न कोई लोहे का अस्त्र दे दिया जाता है, यह उसे हर दम साथ रखना पड़ता है। उसे नमक खाने का निषेध हो जाता है। मीठी पूड़ियाँ हीं उसे खाने को मिलती हैं। तेल चढ़ने के उपरान्त उसे माँ चौके के एक कौने में ले जाती

है, वहाँ चुपचाप उसे दो हँड़ियों में उझकाया जाता है। इसे 'कोहबर' (कारे) दिखाना कहते हैं। एक दिन कुम्हार का चाक पूजने जाते हैं, एक दिन घूरा पूजा जाता है। घूरे पर जाकर कई 'खीकरियाँ' दाब दी जाती हैं, उन्हें तकुआ से एक बार में ही वर को वेध देना पड़ता है। बरात जाने से एक दिन पूर्व 'माँडवा' होता है। जमीन में एक छोटा सा गड्ढा खोदकर उसमें कुछ पैसे हल्दी सुपाड़ी आदि डालकर एक बाँस गाढ़ा जाता है, जिसके ऊपर आम आदि के पत्ते बाँध दिये जाते हैं। उसी के पास कलश रखा रहता है। इस कलश की स्थापना लगुन के दिन ही हो जाती है। माँडवे के दिन वर-पक्ष के घर विशाल भोज होता है। इसी दिन वर का मामा भात लेकर आता है। वह भात में बहुत से वस्त्र तथा भेंट लाता है। ये वस्त्र वर के प्रायः समस्त कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियों को पहनाये जाते हैं। वह चाहे एक 'चीर' (टुकड़े) के ही रूप में हो, या रूमाल के रूप में। पर सबसे पहले 'माँडवे' को चीर पहनाया जाता है। यह भात हल्दी के छींटे देकर दिया जाता है। लग्न-पत्रिका स्वीकार हो जाने के बाद से भात देने के समय से पूर्व तक वर का मामा घर में नहीं जा सकता। वह भात लेकर जब आता है, पहले उसके द्वार पर उसकी बहिन आदि के द्वारा उसका स्वागत होता है, तब वह भीतर भात चढ़ाता है। सबसे अन्त में वह बहिन को वस्त्र पहनाता है, और उससे मिलता है। इस अवसर पर एक-दूसरे की न्यौछावरें भी होती हैं। इसके उपरान्त शुभ मुहूर्त्त में वर को स्नानादि कराके दुलहा बनाया जाता है। जब मौहर और वस्त्र पहनकर दुलहा तैयार हो जाता है तो वह 'निकरौसी' के लिए चलता है। निकरौसी में प्रायः सभी स्त्रियाँ वर के पीछे हाथ में सींक लेकर जाती हैं। प्रायः समस्त गाँव की परिक्रमा लगायी जाती है, तब एक कुँए पर जाकर वर की माँ कुँए में पैर लटका कर कुँए में गिर जाने का अभिनय करती है। वर उसका हाथ पकड़कर माँ से कहता है "माँ, मैं तेरे लिए बहू लाऊँगा" तब माँ कुँए पर से उतरती है। तीन सरइयाँ जिनमें कुछ भरा होता है, और जो ढकी होती हैं, दुलहा के सामने रख दी जाती हैं, उसे समझा दिया जाता है कि उन पर पैर रखकर उन्हें फोड़ता हुआ वह आगे चला जाय, फिर पीछे मुड़कर घर की ओर न देखे। इस प्रकार घर से वर को बिदा कर दिया

जाता है। बरात कन्या के गाँव में पहुँचती है। वहाँ गाँव से बाहर खेत में दुलहा के पिता आदि को कन्या-पक्ष के प्रमुख भेंट देते हैं। तब बरात 'जनमासे' में पहुँचती है। वहाँ सबके पैर धुलाये जाते हैं, और शरबत पिलाया जाता है। कहीं-कहीं इसके उपरान्त बरौनियाँ जाता है। बरौनियाँ की कन्या के द्वार पर बड़ी पिटाई होती है। बरौनियाँ हो जाने पर 'वारौठी' के लिए बरात सजधज से चलती है। कन्या के द्वार पर पहुँचकर कहीं-कहीं वर पहले 'तोरण' मारता है, कहीं-कहीं वर पहुँचता है तो द्वार पर उसका स्वागत होता है। इसे द्वाराचार भी कहते हैं। यहाँ दो कलश, दो लोटे, दो नारियल, थाल में कुछ रुपये, कुछ आभूषण, कुछ वस्त्र दिये जाते हैं। इसी समय कन्या छिप कर वर पर 'लाई' फेंकती है, चावल तथा जौ फेंके जाते हैं। वारौठी के बाद छोटी बारौठी होती है। इसमें दुलहा अकेला नाई आदि के साथ द्वार पर पहुँचता है। द्वार पर कन्या-पक्ष से सम्बन्धित स्त्रियाँ वर का टीका करती हैं, उनका परिचय दिया जाता है, तथा भेंट मिलती है। सास दूल्हे को बड़े स्नेह से भीतर ले जाती है। इसके उपरान्त वह प्रधान संस्कार आता है, जिसे 'भाँवरें' कहते हैं। यह सभी प्रायः पंडितों के द्वारा शास्त्रीय-विधान से सम्पन्न होता है। पर इसके समाप्त होते ही लोक-वार्ता की प्रतिनिधि स्त्रियाँ भी अपने अनुष्ठानों से निरस्त नहीं हो बैठतीं। भावरें हो जाने पर दुलहा और दुलहिन को भीतर एक कोने में ले जाया जाता है। वहाँ उन्हें 'कोहवर' दिखाया जाता है, फिर 'घीयाबाती' या 'दूधाबाती' होती है। लड़की के हाथ से बताशे लड़के के हाथ पर, लड़के के हाथ से लड़की के हाथ पर, इसी प्रकार बताशों को उठाते-धरते हैं। अन्त में लड़के को बताशे खाने को बाध्य किया जाता है। दूधाबाती का भी नेग लड़के को मिलता है। इसके उपरान्त लड़का लौट जाता है। दूसरे दिन भोज तथा उसका निमन्त्रण आदि का समारोह होता है। तब 'पलकाचार' होता है। पलकाचार में थाल में रुपये रखे जाते हैं। पलँग तथा अन्य विविध बर्त्तन तथा सामान जो वर को देने होते हैं दिये जाते हैं। कन्या का छोटा भाई पानी तथा जौ लेकर पलँग के चारों ओर घूमता है। इसे जौ बोना कहते हैं। तब बरात विदा हो जाती है। घर पर बड़े समारोह से वर वधू का स्वागत होता है। शुभ मुहूर्त में दोनों द्वार पर पहुँचते हैं, भीतर उन्हें गोद में ले-लेकर

नाचा जाता है। दूसरे दिन लड़के-लड़की (वर-वधू) के साथ सब स्त्रियाँ मौहर सिराने किसी नियत स्थान पर जाती हैं। लौटते समय वधू को वर की पीठ में सांटियाँ मारने का आदेश दिया जाता है। घर आकर माँडवे की पूजा भातई के द्वारा कराई जाती है और माँडवा उखाड़ दिया जाता है। इस प्रकार विवाह-प्रकरण समाप्त होता है। प्रायः दस दिन 'कन्या' अपनी ससुराल में रहती है। एक दिन उसे कुटुम्बियों के प्रत्येक घर पर थापे लगाने के लिए ले जाया जाता है। वधू के पिता 'दसईं' भेजते हैं। इसमें बहुत सी मिठाई तथा वस्त्र आदि आते हैं। 'दसईं' चल जाने पर 'वधू' दसईं लाने वालों के साथ अपने घर लौट जाती है। यदि वर-वधू बड़ी उम्र के होते हैं तो इसी बीच में 'सुहागरात' भी हो जाती है। यदि छोटे हुए तो गौने के उपरान्त सुहागरात होती है। 'सुहागरात' से पूर्व 'लाला बाबू', बूढ़े बाबू' की पूजा होती है। बेसन-भात बनाया जाता है। इस समस्त अनुष्ठान को क्रमशः यों दिया जा सकता है :

१—सगाई

१—वर पर उबटन किया जाता है। लड़की पर भी होता है।
२—चौक पूरा जाता है। एक कलश रखा जाता है।
३—लड़का भीतर अपनी मा के पास से एक पस जौ भर कर लाता है। लाकर चौक पर डाल देता है।
४—सगाई का सामान लड़का ले जा कर अपनी मा की गोद में रख देता है।
५—मा उसे कुछ खिला देती है।

२—पीली चिट्ठी

पीली चिट्ठी में लग्न पत्रिका की तिथि की सूचना रहती है।

३—लगुन

कन्या-पक्ष—

१—लगुन के दिन लड़की को सात-सात हरी चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं।
२—सिर धुलाया जाता है। आभूषण सब उतार लिए जाते हैं। केवल नथ रहने दी जाती है। बरात विदा होते समय बाल तक खुले ही रहते हैं।

३—नाई लड़की से एक पसों जौ भरवा कर गोद में उठा कर लाता है।

४—लगुन लिखी जाती है। लिख कर लड़की की गोद में रख-दी जाती है। वह कजैतिन की गोद में ला कर रखती है। लगुन-पत्रिका में ७ सुपाड़ी, हरी दूब, ५ हरदी की गाँठ और चामर रखे जाते हैं।

५—कजैतिन फिर सब पैसों से न्योंछावर करती हैं।

६—कुछ खिला कर उसका सिर हिला दिया जाता है।

७—उसी दिन से मंगलाचार होते है।

वर पक्ष—

१—लड़के का उबटना होता है।

२—सिवा चूड़ी पहनने के सब नेग लड़की पक्ष जैसे ही होते हैं।

३—तेल चढ़ने, रतजगा, हरदहात, भामर आदि सब का कार्य क्रम लगुन-पत्रिका में होता है। उसी प्रकार कार्य आरम्भ कर दिया जाता है।

४—भात-न्योंतना

१—बहिन बहनोई भात-न्योंतने जाते हैं।

२—एक भेली, तिल-चामरी, एक रुपया जाता है।

३—इस सामान को लेकर बहिन चलती है।

४—यह गीत गाया जाता है—

बीर बहिनि चली एं बीर के
भेलीनु बरध लदाइ,
राजा भातई।
जब रे बहिनि घर ते चली
औरुभले भले सगुन बिचारि,
राजा भातई।
जब रे बहिन बागन गई
सूखे बाग हरियाँय,
राजा भातई।
जब रे बहिन तालन गई
और सूखे ताल हिलोरे लेंइ;
जब रे बहिनि सीमन गई

हरी हरी दूब हरयाँय;
जब रे बहिनि ड्यौढ़ीनु गई
कुत्ता उठे ऐं घुघसाइ।
तूतौ री भावज ओछे घरा की
भावज तुमनें जड़ी ऐं किवार
छोटौ भतीजौ अचपलौ
झटपट खोली ऐं किवार।
बीर बिरन अटरिया चढ़ि गये
कौनें खोली ऐं किवार ?
जौ तूरी कुल की भावजी
ननद ते मिलनु संजोइ,
राजा भातई।
बीबी ! हियरा मेरो ना लरजै
और नैननु आवै न नीरु।
जौ तू री कुल की भावजी
ननद कूँ पिढुला तौ डारि।
बीबी ! गाम के बढ़ई भजि गये
औरु पेड़नु उखटा खाइ।
जौ तूरी कुल की भावजी
ननद कूँ पुरियाँ सिकाइ।
बीबी ! घी की कुप्पी उठि गई
गेहूँन रतुआ लगि गयौ।
जौ तू री कुल की भावजी
लोटा पानी तौ देउ पिलाइ।
बीबी ! गाम के धीमर भाजिए
कूअन काई लगि गई।
जौ तू री कुल की भावजी
मेरे बीरन देइ बताइ
धमकि अटरिया चढ़ि गई
सुनि सुनि रे मेरे समरथ साहिबा
और भैनि निरासी जाइ।
जा दिन भैनि तुम कहाँ गई

जीजा ने बोले मोते बोल।
भइया।देस पहराओ
और बड़ेनु पहराइये
और जीजा कूँ लँगोटी मति देउ,
चौक निरासे छोड़िये।
सुनि सुनि री मेरी मा की जाई भैनि
तुम रे उलटि घर जाउ
हम पहरामें तुमें भात।
भैना कब कौ री तेरौ माढ़यौ
औरु कबकौ रच्यौ बिबाहु।
भैया इकदसिया कौ एं माढ़यौ
और द्वै दसिया कौ ब्याहु।

५—फिर भातई के यहाँ बहिन पहुँचती है।

६—भातई के घर से स्त्रियाँ कलश लेकर गाती हुई स्वागत को निकलती हैं।

७—गीत गाया जाता है—बहिन गाती है

भातु देवा मेरौ बिरनु अओलनौ
लहरि लहरि गांडर करें और समद हिलोरे लेइ
मेरे बाबुल के हथिया झूमने
भातु देवा मेरौ बिरनु अओलनौ
झूमिंगे जमाई दरबार
बिरन अओलने एं देउ छोड़ि
भानज कौ रचौ बिबाहु

८—न्योंत कर लौटती हैं गीत गाते गाते

४—हरद हात (तई)

१—चौक पूरा जाता है।

२—छोटी चक्की उस चौक पर रखी जाती है।

३—पाँच गाँठ हल्दी की, थोड़े से उरद लिए जाते हैं।

४—पाँच स्त्रियों के हाथ में कलाया बाँधा जाता है। उन्हें 'हतलागू' कहते हैं।

५—पाँच सेर गेहूँ रखे जाते हैं।

६—पाँच सूपों में कलाए बाँधे जाते है।

७—चक्की पर रख कर पाँचों हृतलगू एक एक हल्दी की गाँठ फोड़ती हैं।

८—हल्दी से चक्की पर पाँच सँतिये काढ़े जाते हैं।

९—पाँचों 'हृतलगू' पाँच पाँच पसौं उर्द चाकी से दलती हैं।

१०—पाँचों 'हृतलगू' एक एक सूप लेकर गेहुँओं के पाँच-पाँच सूप फटकती हैं।[१]

११—दो दो 'हृतलगू' मिलकर पसौं भरकर एक कोरे मल्ले में पाँच-पाँच पसौं उर्द की दाल रखती हैं।

१२—एक मटके में इसी प्रकार गेहूँ रख दिए जाते हैं।

१३—पाँचों हृतलगू उस छोटी चाकी को उठा कर 'पारस' (कोठार) में रख आती हैं।

यह चाकी वहाँ से तब उठायी जाती है जब 'पारस' का काम समाप्त हो जाता है।

५—रतजगा[२]

१—कोरी जेहरि भरी जाती है[३]

२—'हरद हात' वाले गेहूँ पीसे जाते हैं।

३—उसी चून को कठौती[४] में रख लिया जाता है।

४—उस चून में एक गुड़ की डरी, एक तेल की बूँद[५] डाल दी जाती है।

५—उस चून को सब कुटुम्ब की स्त्रियाँ कुरेदती जाती हैं और गीत गाती जाती हैं। इस कृत्य का एक खास नाम 'किनक पुकारिबौ' है[६]। यह गीत गाया जाता है "फलाने (नाम लिया जाता है) की बाल बहौरिया आइकें कनक पुकारीएँ।"

१—ये सब क्रियायें 'ब्याह रोरने' के नाम से विख्यात हैं।

२—कहीं-कहीं ऐसा विदित होता है कि हरद-हात और रतजगा, जो तई भी कहलाता है, मिला दिये जाते हैं।

३—कहीं-कहीं खदान पूजी जाती है, या पीली मिट्टी ही पूजते हैं।

४—यह नाँद भी हो सकती है।

५—तेल की मलरिया तेलिन लाती है। वह भी पूजकर ली जाती है। इसे 'टेई' पूजना कहते हैं।

६—कहीं-कहीं 'हरदहात' के दिन का गेहूँ किराने का काम तई के दिन होता है। हृथलगू पांच सूपों में पांच पांच मुट्ठी गेहूँ किराती हैं।

६—चमारी[1] पाँच कंडा[2] लाती है। गीत गाकर इन कंडों को देने आती हैं। इस कृत्य का नाम 'छई' है।

७—कंडों को कजैतिन गोद में लेती हैं।

८—कई स्त्रियों को, साथ लेकर उन कंडों को गोद में लिए हुए और किसी छप्पर में से कुछ फूँस खींच कर फिर आधि-व्याधियों सब का आवाहन करती हैं। जैसे—

अ—आँधी आ
आ—मेह आ
इ—दई आ
ई—देवता आ आदि आदि।

इस समय पाँच गीत गाये जाते हैं। जिनमें से दो का प्रकार यहाँ दिया जाता है।

१—"अऊत बाबा तुमऊँ बड़े हौ आजु हमारें नौंते हो" इस प्रकार सब को निमन्त्रण दिया जाता है। मक्खी मच्छर तक बुलाए जाते हैं। हवा में हाथ उठा उठा मुट्ठी भर भर कर गोद में डालते जाते हैं।

२—"एरी मइया जा धरती पै भाई को बड़ौ
एरी मइया जा धरती पै भाई द्वै बड़े एक धरती एक मेह" इसी प्रकार जोड़ों में नाम ले ले कर गीत गाया जाता है।

इस प्रकार सारी आधि-व्याधियों को आवाहन करती हैं।

९—इन आधि-व्याधियों को कल्पित रूप से गोद में भर कर ले आती हैं।

१०—फिर दो सरैया[3] ली जाती हैं। उनमें एक गाँठ हल्दी, १ सुपाड़ी, १ टका (पैसा) रखकर, हरदी और चून लेकर

---

[1]—कहीं-कहीं इससे पूर्व चावल भिगो दिये जाते हैं। ये चावल देवी-देवताओं का आवाहन करते समय पीसे जाते हैं, और आगे थापे के काम में आते हैं।

[2]—कहीं कहीं कंडों के स्थान पर लकड़ी लायी जाती है। ये लकड़ी या कंडे वायवन्द के पास के चूल्हे में रख दी जाती हैं।

[3]—ये सरैयाँ और कोहवर के मल्ले (मलरे) कुम्हरिया लाती है। इन्हें भी पूजकर लिया जाता है।

सरैयाँ भींत पर चिपटा दी जाती हैं। फिर कहती हैं कि 'दई-देवता' मुँदि गये"—इसका विशेष नाम वायबन्द है।[1]

११—इन दई-देवताओं के बन्द होने के स्थान से नीचे 'मानि' (मान्य) पाँच फावड़े मारती है। उसका नाम है 'तिमन'। जो तिमन खोदती है उसके हरदी के पंजे मारते हैं। नेग दिया जाता है।

१२—तिमन पर एक कढ़ाही रखदी जाती है। वह कढ़ाही तब उतरती है जब कन्यापक्ष में—लड़की बिदा होने के समय और लड़के के पक्ष में—बहू आकर, दई देवता पूज लेती है। यही 'तिमन' बूढ़े बाबू के सामान बनाने का स्थान है।

१३—फिर इसके बाद गीत गाये जाते हैं। प्रधान गीत हैं—

(१) बन्दी
(२) काजर
(३) बधाया
(४) हल्दी

१४—फिर महँदी का गीत आरम्भ होता है और महँदी घोली जाती हैं। पाँच टिकुली पहले दई-देवताओं के, फिर ढोलक में फिर सब स्त्रियाँ महँदी लगाती हैं।

१५—फिर वही पहले वाला ५। सेर चून माँड़ा जाता है—आधा मीठा, आधा फीका।

१६—फीके आटे में से 'खीकरी' होती हैं। मीठे में से छोटी-छोटी पूड़ी होती हैं, जिन्हें हतौना कहते हैं[2]। बाद में ७ छल्ले, सात गुँझियाँ, सात पूए बनते हैं। सात 'एंठा' बनते हैं। सबसे पीछे जो चून बचा उसका एक 'ल्होल गोट' जैसा बनाया जाता है, सेका जाता है।

१७—रात भर और गीत गाये जाते हैं—

अ—रजना एक प्रधान गीत गाया जाता है—आ—'सतगठा' भी रतजगे का प्रधान गीत है।

१८—४-५ बजे प्रातः 'कूकर' का गीत गाया जाता है।

[1] बायबन्द पूज जाने के बाद 'चर गोंठना' होता है। इसमें बायबन्द के पास चावल के थापे लगाये जाते हैं।

[2] कहीं ये वस्तुएँ तेल के दिन सबेरे सेकी जाती हैं।

१६—सवेरे के गीत सूर्योदय तक गाये जाते हैं। सवेरे के गीतों में प्रधान हैं—(१) दाँतौन, (२) तुलसा, (३) कूकरा, (४) वांयचरा, (५) बेलना, (६) कढ़ैया।

कढ़ैया का गीत यों आरम्भ होता है—फलानी (नाम लिया जाता है)।

वैठी है मैदा घोरि
मेरे गुलगुले खाइगौ कौन ?
खाए गुलगुले रहिगौ पेट—

६—तेल—

[तेलों की संख्या पंडित निश्चित करता है—कम से कम तीन तेल, ज्यादा से ज्यादा ७ तेल होते हैं। इतवार को तेल नहीं चढ़ाया जाता। शनिश्चर को तेल चढ़ाना शुभ समझा जाता है। ५ और ७ तेल खराब समझे जाते हैं। ३ तेल यदि निकलें तो सबसे अच्छा है]

१—चौक पूरा जाता है। गाँव में बुलाए लगते हैं।

२—हर घर की स्त्रियाँ थोड़ा बहुत नाज साथ लेकर घर में घुसती हैं।

३—वर या वरनी को बुलाते हैं। दो पटलियाँ बिछाई जाती हैं।

(अ)—लड़के के साथ एक छोटा सा कारा लड़का बैठाया जाता है।

(आ)—लड़की के साथ एक छोटी छोरी वैठती है।

४—आठ हतौना वर या वरनी की गोद में और ४ उस छोटे लड़के या लड़की की गोद में रखे जाते हैं।

५—एक कोरी सरैया में घी और एक में तेल रखा जाता है। एक कटोरे में हल्दी रखी जाती है। हरी दूब मँगा कर रखी जाती है।

६—चार कंकन बना कर गड़रिनि लाती है। उसमें ये चीजें रहती हैं—

१—लाख का छल्ला।

२—लोहे का छल्ला।

३—कम्बल का टूँक।

४—कम्बल के टूँक में राई, नौंन, भुसी, बाँध दी जाती है।

७—फिर पंडित आता है। वह पाँचों 'हतलगुओं' के कलाए बाँधता

है। दो धनकुटों में कलाए बँधते हैं। एक कोरे घड़े में कलाया बाँधा जाता है।

८—कंकन इस प्रकार बाँधे जाते हैं—

१—एक वर या वरनी के।

२—पटुली में—दो पटुलियों में।

४—एक कलश में।

६—पंडितजी गये।

१०—दूब से पाँचों 'हतलगू' तेल चढ़ाती हैं। तेल के गीत गाये जाते हैं।

११—हल्दी घोल कर फिर पाँचों हल्दी चढ़ाती हैं। हल्दी के भी गीत होते हैं।

१२—बूआ या बहिन रोली की मरुअटि लगाती हैं—मरुअटि का गीत गाती हैं।

१३—भाभी काजल लगाती हैं।

१४—'धामस-धूमस'

१—पाँच सेर बाजरा लिया जाता है।

२—५ हतलगू धनकुटों से बाजरा कूटती हैं।

३—कूट कर उसी घड़े में भर लिया जाता है। यही बाजरा बूढ़े बाबू[1] के दिन राँधा जाता है।

१५—बहिन या बूआ फिर आकर आरता करती हैं। आरते का गीत गाती हैं।

१६—[2]वरना या वरनी वहाँ से उठ कर पहले 'हतौना'[3] खा लेते

[1] कहीं-कहीं ये हतौने तेल चढ़ चुकने के बाद हाथ में दिये जाते हैं।

[2] कहीं-कहीं यह बाजरा 'गौरनी' में काम आता है।

[3] तेल चढ़ने के उपरान्त आरता हो जाने पर वर-वरनी के हाथ में, एक पटुली पर बिठा कर, हतौने दिये जाते हैं। उन हतौनों को लिए हुए, एक हाथ से पटुली पीछे लगाए हुए वर-वरनी को कजैतिन 'कोर' (कोहबर) उझकने ले जाती है। दो मल्ले होते हैं उनमें आटा भरा रहता है और ५ पैसा, हलदी, सुपारी होती है। आटा सवा सेर रहता है। मलरे खोल कर वर-वरनी को दिखाये जाते हैं। कजैतिन उन्हें दिखाते समय कहती है—"लाली-लल्लू कहते "भरो" वर वरनी को ऐसा ही कह देते होता है। तब वह उसका सिर हिलाती है—यह कहती जाती है "धरती माता ऊत परेत पाँय लागते हैं लाड़ो या बरना।" तब वरना हतौने खाता है।

हैं, पीछे कुछ और खाते हैं।

१७—वरना या वरनी उन चून के छल्लों आदि को पीछे फेंकता है—नाँइन पीछे बैठी रहती है। वह लेती जाती है। अन्त में सूप फेंक दिया जाता है।

१८—उबटना भी एक संस्कार है। उबटने के समय यह गीत गाया जाता है।

१—काये बेला उबटनौं? काये कौ तेल-फुलेल
करहु लड़लड़ी कौ उबटनौं
काँसे कौ बेला उबटनौ। सरसौं कौ तेल-फुलेल—करहु०
बोलौ लड़लड़ी के ताऊ ऐ, बाबा ऐ,
जिअ सुख देखें हो आइ—करहु०

स्नान के समय यह गीत गाया जाता है :—

बाबा ने सगर खुदाओ, पारि बँधाई ऐ ताऊ
सागर की तौ पारि बँधाइऐ
बाकी दादी कें भरत कहार; कुमरि अन्हवाइए।

७—घूरा पुजना—

[यह तेल के दिन ही पूजा जाता है। वरना या वरनी घूरे को पूजने से पहले देख भी नहीं सकते। सार्वजनिक घूरा पूजा जाता है। अपने घर का घूरा नहीं।]

१—पूजा की सामग्री—
१—चौमुखा दीया चून का
२—सात खीकरी
३—एक गुड़ की डेली
४—हरदी की सरैया
५—एक टका
६—एक तकुआ—यह वस्तुएँ सूप में रख कर ले जायी जाती हैं।

२—वरना हो या वरनी उसकी आँख बन्द करके, या फरिया उढ़ाकर ले जाते हैं। स्त्रियाँ ही गीत गाती हुई साथ होतीं हैं। वे गीत ये हैं—

घूरे को पूजने का—

सो पहलौ रे फूल धरती ऐ दीजै
दूजौ रे फूल माता ऐ दीजै
तीजौ फूल ठाकुर ऐ दीजै
चौथौ फूलु सती सुहागी ऐ दीजै
पंचयौ रे फूल बारे-जरूले ऐ दीजै
छटयौ रे फूल भूले बिखरे ऐ दीजै
सतयौ रे फूल सैयद[1] ऐ दीजै

घूरे को पूज कर लौटते समय का गीत—

हुल्लमारि हुल्लमारि रे
दसरथ कें दो जोड़ुआँ
द्वै ब्याही द्वै क्वारी एं, हुल्लमारि
क्वारी कुत्तनु दीजिये
ब्याही सौति हमारीयाँ, हुल्लमारि

३—बरना या बरनी के सिर पर खजूर की मोहरी या पंखा बाँधा जाता है।

४—घूरे पर पानी छिड़क कर एक सांतिया काढ़ा जाता है। सातों खीकरी रखकर उनमें बरना या बरनी तकुआ से छेद करते हैं। हल्दी से घूरे को पूज देते हैं। दीपक जलाकर घर लौटा लाते हैं। खीकरी रखदी जाती हैं।

५—घर लौट कर चौक पर कजैतिन आरता करती हैं [सारे ब्याह में यही एक आरता होता है जिसे कजैतिन करती है]

६—लौटते समय एक पसौं रेत बरना या बरनी लाती है। यह लाकर पारस (कोठार) में रख दी जाती है।

७—दीपक दई देवताओं के सामने रख दिया जाता है।

८—घर लौटकर (कहीं-कहीं) चौक पूरा जाता है। वहाँ चार फरा कारे पीरे करके चार-दिशाओं में फेंके जाते हैं। इससे यह माना जाता है कि चारों दिशाओं के विघ्न शान्त हो जायेंगे। इस दिन के गीतों में प्रधान गोत साँझलड़ी[2]

[1] कहीं-कहीं 'भुमिया ऐ दीजै'

[2] साँझलड़ी यों हैं
'मेरी साँझुलरी आइ झमकि तौ तुम बिन गाय:बछरा राजा दुद्धा न दुहै।'

और बड़ा दीवलरा है[1]।

६—इस दिन (कहीं कहीं) ब्याह रुरता है। इसमें एक भतइया गाया जाता है। उसका भाव यह है। "बाट चलते बटोही एक संदेश लेते जाना। मेरे भाई से कहना तुम्हारी बहिन के ब्याह है। भाई आया, पूछा कबका ब्याह है। एकादशी का माँडवा, द्वादशी का ब्याह। भाई कहता है—तू मुझे सामान लिखा दे। मैं भात लाऊँगा। बहिन सामान लिखा देती है।

८—अछूता[2]—

बूढ़ा बाबू—माढ़वे के दिन होता है। सब कुटुम्बी पहले अछूते का सामान खाते हैं, बाद में और सामान खाते हैं।

१—सामग्री

क—कढ़ी

ख—बाजरा

ग—चावल

घ—उसी उर्द की दाल की चँदियाँ

ङ—नेवज

१—छल्ला

२—गुंझिया

३—पूआ

२—फिर तेल चढ़ता है।

३—तेल चढ़कर बरना या बरनी दई-देवताओं के पास जाता है। आँख मींच कर।

४—घी का एक छापा बरना रखता है। दो मुठिया रखता है।

५—एक दीवला में एक हरदी की गाँठ, एक टका रखा जाता

---

[1] बड़े दीबलरा का यह रूप है :—

'ए बड़ दीवलरा तू तौ जुरे बाबूजी के चौबारे धरो जामें दयौ है परी भर तेल'
'बुतो बड़ी कुल की धीय फलानी ने जोरो ओ।'

[2] वह अछूता कहीं कहीं विवाह के उपरान्त (और कहीं कहीं द्विरागमन के उपरान्त) होता है। अछूता हो जाने के पश्चात् ही 'सुहाग रात' होती है। इस अवसर पर स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं वह आगे दिया हुआ है।

है। उर्द की पिठी से उसे बूढ़े बाबू के नाम पर चिपका दिया जाता है।

६—कुम्हरिया बुलाई जाती है। वह एक हँडिया और परिया लाती है।

७—चून का चौमुखा दीपक जलाकर कुम्हरिया को दे देते हैं और एक खीकरी भी।

८—फिर कुम्हरिया से पढ़ने को कहा जाता है। वह पढ़ती है।

सौने कौ आसन, सौने कौ सिंहासन
जापै बैठे बूढ़े बाबू घोड़ा पलान
ताँबे लौ आसन, ताँबे को सिंहासन
जापै बैठे बूढ़े बाबू घोड़ा पलान
चाँदी कौ आसनु
चाँदी कौ सिंहासनु
जामें बैठे बूढ़े बाबू
घोड़ा पलान

कुम्हरिया—बैरी मूँदूं ?
कजैतिन—मूँदि।
कुम्हरिया—बैरी मूँदूं ?
कजैतिन—मूँदि।
कुम्हरिया—बैरी मूँदूं ?
कजैतिन—मूंद।

झट खीकरी से वह दीपक को मूँद देती है।

९—जिस हँड़िया को वह लाती है उसे कढ़ी बाजरे आदि से भर देते हैं। इसे बूढ़े बाबू का भंडारा कहते हैं।

बूढ़े बाबू का गीत—

न्यों मति जानै रे स्वामी अन्नु अछूतौ
अन्नु सुरैहरी बिढ़ारियै।
न्यौं मति जानै रे स्वामी पानी अछूतौ
पानी कीरनु बिढ़ारियै।
न्यौं मति जानै रे स्वामी घीअ अछूती,
घीअ बिढ़ारी साजन के बेटा।
न्यौं मति जानै स्वामी बहू ऐ अछूती।

बहू बिढ़ारी अपनेऊ बेटा ।
न्यौं मति जानै स्वामी दूधु अछूतौ
दूधु बिढ़ारियौ गैयन के ऊ बछरा ।

९—माढ़वा गढ़ना : अछूते के दिन ही

१—सात सरैयों में छेद कर देते हैं। ६ सरैयों में एक एक खीकरी रखकर एक दूसरी पर ढककर एक डंडे में लटका देते हैं। एक ऊपर की खुली रहती है।[1]

२—मानि, (मान्य) जीजा या फूफा, इसे गाड़ता है—

३—गाड़नेवाले के हल्दी के थापे मारे जाते हैं।

४—डण्डे को गाड़ने के लिए जो गड्ढा खुदता है उसमें १ सुपाड़ी, १ हरदी की गाँठ और १ टका डाला जाता है।

५—गीत गाया जाता है जिसका मुख्य विषय मानि (मान्य) को गाली देना होता है।

विशेष—लड़की के विवाह में सरैया नहीं गाड़ी जाती है, और काम सब ज्यों के त्यों होते हैं। केवल आम की डाल बाँध दी जाती है। लड़की के विवाह में चार बाँसों या केले का एक मण्डप जैसा बनता है। अग्रवालों में लाल रंग का एक ही डण्डा गाड़ा जाता है।

१०—भात : माढ़वे के दिन ही

१—भातई अचानक घर नहीं आ सकता। उसे अलग ठहरा दिया जाता है।

२—बहिन उससे तब तक नहीं मिलती जब तक भात न पहिन ले।

३—निश्चित लग्न पर भातई बुलाए जाते हैं।

४—बहन अन्य स्त्रियों सहित, एक थाली लेकर, दरवाजे तक जाती है। थाली में:—

१—चौमुखा दीपक
२—जितने भाई हों उतने नारियल
३—रोली[2] चामर

---

[1] कहीं-कहीं इस माढ़वे के डंडे में आम तथा छौंकरे की शाखाएँ कलाये से बाँध दी जाती हैं। सरैया नहीं बाँधी जाती।

[2] बहुधा दही चावल होता है। दही अक्षत से भातई का टीका किया जाता है।

४—बताशे

५—एक रुपया

५—मान्य एक लोटा पानी लेकर खड़ी होती है। भातई उसमें कुछ द्रव्य डालता है।

६—द्वार पर एक चौक पुरा होता है। वहाँ एक पटली रखी होती है। पटली पर भातई आकर खड़ा होता है। बहिन तिलक करती है। फिर भातई अन्दर चले जाते हैं और भात पहनाया जाता है।

७—गीत:—

१—स्वागत का गीत

२—भीतर आकर पहनाते समय भी 'भात' गाये जाते हैं।

३—भातई के सम्बन्ध में लगन से लेकर रोज गीत गाये जाते हैं।

८—अन्त में बहिन भात पहनती है। रोकर अपने भैया से मिलती है। रोना आवश्यक है।

९—बहिन भाई पर न्यौछावर करती है और भाई बहिन पर।

१०—अन्त में यह गीत गाकर कृत्य समाप्त होता है—

'उसरौ रे उसरौ देवर जेठ पिआरे। मेरौ भौतु लुक्यौ ऐ भातई।'

११—(अ) व्याह का दिन : लड़के का

१—घुड़चढ़ी।

१—झगा, पाजामा, पेची, दुपट्टा, पाग, मौर, जूते सब एक डले में रखे जाते हैं। जूता और मौर सूप में रखे जाते हैं। मौर कढ़ेरा लाता है।

२—चौक पूरा जाता है। उस पर एक चौकी बिछाई जाती है।

३—नाई चौकी पर ही बैठ कर 'सींक' बनाता है।

४—वहीं वर कजैतिन के द्वारा नहलाया जाता है। नहलाते समय यह गीत गाया जाता है।

'पहलौ कलस ढराइये जाकी आई सुहागिल माइ
दूजौ कलस ढराइये जाकी आई सपूती माइ
तीजौ कलस ढराइये जाकी आई सुभागिनि माइ

चौथौ कलस ढराइये जाकी आई हसंती माइ
पाँचौ कलस ढराइये जाकी आई सतपुती माइ

५—बहनोई या फूफा वस्त्रधारण कराता है। मौर बाँधता है। 'धोबिन' गीत गाया जाता है।

६—मौर में पाँच सुइयाँ छुपा कर लगादी जाती हैं।

७—बहिन मरुअटि लगाती है।

८—सूप में रखे हुए मौर पन्हैया को सब पूजती हैं।

९—सेहरा बँधता है। सेहरे का गीत भी गाया जाता है।

१०—'चँदोआ'—एक कन्द की चादर के चार लर करते हैं। चारों हतलगू चार कोनों को पकड़ कर दूल्हा के ऊपर तानती हैं।

११—मान्य, बहिनोई या जीजा ऊपर सूत पूरते हैं सात बार। यहाँ गीत गाया जाता है। महमान को गाली दी जाती है।

१२—भाभी काजर लगाती है। आरता होता है।

१३—वह तना हुआ सूत हरदी में रँगा जाता है। उसमें एक आम का पत्ता बाँध देते हैं।

१४—लड़का उस सूत को मा के गले में पहना देता है। विवाह तक वह उसे नहीं उतारती।

१५—थोड़े से चावल पकाने को रख देते हैं।

१६—एक सूप में रखी जाती हैं:—

१—भुसो
२—नमक की डली
३—राई
४—तेल की मलरिया
५—चार सरैया—दो में भात और एक-एक ढकना।
६—टका।

१७—निकासी। यह गीत गाती हैं—

ठाड़ौ रह दूल्हा तेरी माइल बोलै
खोलौ खाई, देउ बधाई
दुलहा ऐ देखन आई लुगाई।
धनियाँ उम्हायौ दूला बागन मौरै
हाँसुली मेरी चाल सुहाई।

लोग कहैं दूल्ह कारौ ई कारौ
माइ कहै मेरौ जगत उजारौ ।

१८—दूल्हा घोड़ी पर बैठ जाता है ।

१९—बहिन हाथ में ७ सींक लेकर झारती जाती है । या अपने पल्ले में चुनी-भुसी बाँधकर उसे मारती जाती है । चलते में गीत गाया जाता है ।

२०—गाँव बाहर मन्दिर में जाते हैं ।

२१—कूआ में उझकाया जाता है ।

२२—माँ कुएँ में पैर लटका कर बैठती है । बेटा उसे बहू लाने का वचन देकर उठाता है ।

२३—कजैतिन अपना लहँगा बिछाती है । उस पर वर को बैठाती है । अपने आँचर से दूध पिलाती है ।

२४—फिर कहते हैं कि 'सरैया फोर और जा' । दूल्हा चारों सरैयों को चावल सहित फोड़ता हुआ चला जाता है । पीछे फिर कर नहीं देखता ।

२५—बहिन रास्ता रोकती है । वह बहू लाने का वचन देके चला जाता है । इस नेग को बाग मोड़ना कहते हैं ।

२६—सब मिल कर एक गीत गाती हैं ।

२७—वर-पक्ष में बरात चली जाने के पश्चात् कितनी ही बातें होती हैं । उनमें से एक है 'खोइया' । जितनी रात बरात लौट कर घर नहीं आती, उतनी ही रात प्रतिदिन खोइया होता है । खोइया में पहले दिन तो स्वाँग रूप से वह सब होता है जो कन्या के द्वार पर होता हुआ कल्पित किया जा सकता है । एक स्त्री वर बनती है । उसकी बरात चढ़ती है और बारौठी होती है । फिर स्त्रियाँ ही विविध रूपक धारण कर स्वाँग करती हैं । एक दूसरी बात ध्यान देने योग्य है 'गौरनी' की । हतलगू 'गौरनी' कहलातीं हैं । दूसरे दिन गौरनी की दावत होती है । गौरनी में दावत से पूर्व हतलगू एक बड़ा सा चावलों (भात) का गोला बनाती हैं । उसमें टके रखती हैं । और उसे कजैतिन की गोद में रख देती हैं । कजैतिन इस भात को दूध के साथ खाती है । इस गौरनी में बिना

बोले भोजन किये जाते हैं। इशारे से ही काम लिया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि यदि इसमें बोलेंगे तो बहू या दूल्हा बहुत लड़ाका आयेगा।

२—बरात पहुँची—

१—बरौनिया— मान्य ले जाता है। एक लोटा या मलरिया ऐंपन से रँग कर जौ भर दिए जाते हैं। उसे लेकर कोई मान्य जाता है। चौक पर पटुली के ऊपर मान्य बिठाया जाता है। हरदी के थापे मान्य के लगाये जाते हैं। पण्डित पूजन कराता है। उस लोटे को वहाँ छोड़ आते हैं। यह बरौनियाँ बरात बिदा होते समय चामर भर कर लौटा दिया जाता है। इसी लोटे के जौ 'पलका' के समय बोए जाते हैं। उस पात्र को लौटते समय गाँव के पास के छोंकरा पर टाँग देते हैं और चावलों को निकाल लेते हैं उन्हीं चावलों को घर आकर पकाया जाता है। एक बड़ी परात में उन पके चावलों को रख कर सब साथ-साथ खाती हैं फिर कहती हैं कि बहू अब हमारी जाति की हुई। बरौनियाँ को लक्ष्य करके गारी दी जाती है।[1]

२—बारौठी—

३—तोरना[2] मारे जाते हैं। [बेटी वाले के दरवाजे पर तीन लड़की की चिड़ियाँ गेरू से रँगी हुई लगी रहती हैं। उसे वर अपने हाथ से मारता है। इसे तोरन मारना कहते हैं]

११—(ब) ब्याह का दिन : लड़की पक्ष का—

१—मा-बाप, भैया-भौजाई आदि सब व्रत रहती हैं। पानी पीना चाहें तो उसी बरनी से मोल लेकर पी सकती हैं।

२—भात पहना जाता है।

३—बरौनिया के बाद भातई का 'कनेउ' होता है—

[इसमें मामा चार चाँदी की थारी लाता है।

---

[1] बरौनियाँ का लोकाचार सभी जगह और सभी जातियों में प्रचलित नहीं है।

[2] तोरन भी सर्वत्र प्रचलित नहीं है।

वह कान की ऊपर की लौर छेद देता है और दो बारी ऊपर की लौर में और दो नीचे की में पहना देता है—

४—इसी समय भातई बिछुआ दबाता है[1]।

५—'चौरौ'[2] पहनाता है ['चोरा' सफेद धोती है, कोरी। मामा कमसे कम यदि गरीब है तो चौरौ-बारी अवश्य लावेगा। ये दोनों नेग ब्याह में बड़े महत्वपूर्ण समझे जाते हैं] चौरे का गीत भी गाया जाता है।

६—पंडित पूजन कराता है—'भातई का, लड़की का, लड़की की माँ का।'

७—फिर एक कढ़ाही में पानी करते हैं। इसमें वरनी के मामा की चोटी और उसकी माँ की एक लट को एक साथ मिलाते हैं। फिर वरनी की बूआ (यानी भातई की बहिन की नन्द) उन दोनों को पकड़ कर साथ-साथ धोती है।

८—वर की भाँति वरनी पर भी हतलगू लाल फरिया तानती है और सूत पूरा जाता है। उसका उसी प्रकार आम का पत्ता बाँध कर हाँस बनाया जाता है और वरनी की माँ को वह हाँस पहनाया जाता है।

९—फिर मामा वरनी को गोद में लेकर पारस में ले जाता है। जो सामान वहाँ होता है उसमें से बहुत सा वरनी की गोद में भर दिया जाता है। उस सामान को लाकर वरनी अपनी कजैतिन को देती है।

१२—भाँवर—

१—बेटा वाले के यहाँ से भामरों का सामान आया। सामान वरपक्ष का ब्राह्मणों का—

१—चाँदी की हँसली

---

[1] कहीं-कहीं ये बिछुए भाँवरों के दिन भाँवर पड़ जाने के पश्चात् दाबे जाते हैं।

[2] चौरे-बारी का गीत—

ए वन बोइ न रे लाड़ी के मामा, लाड़ी चोरौ ऐ माँगै
ए वनु ओटिन री लाड़ी की माई, लाड़ी चोरौ ऐ माँगै
ए तुम चाँदी खरीदो न रे लाड़ी के माम, लाड़ी वारी रे माँगै
ए वनु कातिन री लाड़ी की माई, लाड़ी चोरौ री माँगै
भाट बुनाइन रे लाड़लड़ी के रे मामा, लाड़ी चोरौ रे माँगै

२—काजर बेंदी की डिबिया
३—लाल लुंगी की बखोई—जेबों में काठ के सिंदौरी सिंदौरा
४—कंघी-प्याली
५—फूल छबरिया—उसमें एक पंखा सा रखा जाता है। उसे भंगी लाता है।
६—गड़ा-पेंडा—धागों के टुकड़े, कुछ भब्बे भी रहते हैं।
७—चकला की चद्दर।
८—कुछ पैसा जो दई-देवताओं पर वार कर उठा दिये जाते हैं।

वैश्यों में—

१—आभूषण—बाजू, पायजेब, हँसली।
२—लाल चुँदरी जिसकी एक ओर चाँदी के 'घुँघरू' या भबिया—इसे चाँची कहते हैं।
३—मिसुरू—लाल धारी का सफेद कपड़ा, लहँगा की तरह घुमा हुआ, कलाए का नारा।
४—सिरगूँदी—माँग पर लगाने के लिए एक कन्द का टुकड़ा, उसमें एक सुपाड़ी होती है और सामान ज्यों का त्यों है।

कन्या पक्ष का सामान—

१—कुम्हार चौरी लाता है—यह चार मलरियाँ होती हैं। इनके सम्बन्ध का गीत भामरों के समय गाया जाता है।
२—वरना बुला कर पटली पर बैठाया जाता है। पीछे कन्या बुलाई जाती है। पहले आमने-सामने बैठते हैं फिर कन्या वाम अङ्ग में आ जाती है।
३—मा-बाप कन्यादान करते हैं [चून की एक लोई बनाई जाती है, उसमें भीतर एक रुपया रखा जाता है। इसे हतलोई कहते हैं। इसीसे पहले मा कन्यादान लेती है। लड़की के हाथ पीले

कर देती है। लड़के का अँगूठा पीला कर देती है] गीत गाया जाता है।

४—फिर सभी कन्यादान लेते हैं।

५—फिर मा-बाप भामरों के समय अलग कर दिए जाते हैं।

६—छोटा भाई दोनों के बीच में खड़ा होकर खील लड़के के हाथ में देता है।

७—फिर सारा कृत्य पंडितजी कराते हैं।

१३—भामरों के पश्चात्—

१—वर-कन्या भीतर उठ कर बेटी वाले के दई-देवताओं के पास जाते हैं। वहाँ पूजन होता है।

२—सरहज घीआखाती खिलाती हैं।

३—लड़का चला जाता है।

४—रहस-बधाया—कन्या को बेटे वाले के पास बुलाया जाता है। एक थैली में पैसे भर दिये जाते हैं, एक रुपया उसमें डाल दिया जाता है। लड़की से रुपया ढुँढ़वाया जाता है। पाँच मुट्ठी पैसे वह निकालती है। इन्हीं में से एक मुट्ठी में रुपया आ भी जाता है और नहीं भी आता है। निकाला हुआ पैसा मान्य को दे दिया जाता है।

१४—बढ़ार का दिन—

१—गौरनी—

क—पाँचों हथलगू अपना सिर धोती हैं; नहाती हैं; महावर लगाया जाता है।

ख—पाँच पत्तर सजाई जाती हैं—पत्तल पर थोड़ी-सी महँदी एक-एक बेंदी एक-एक टका रखा जाता है। माढ़वे के नीचे उन पाँचों पत्तलों को रख देते हैं।

ग—बेटा वाले के यहाँ से सामान मँगाया जाता है—

१—लूबरा लालकन्द की दुहरी ओढ़नी।

२—मुल्तानी छींट का बिना संजाफ का लहँगा।

३—काजर, बेंदी, महँदी, कंघी, सिर बाँधने के डोरे आदि।

घ—फिर वर बुलाया जाता है।

ङ—बीच में परदा लगा कर एक ओर वर और दूसरी ओर कन्या नहलाई जाती है।

च—पीली मिट्टी की दो मूर्तियाँ—एक गौरा, एक गौरि बनाई जाती हैं। उन्हें सजाया जाता है। उन्हें पहले कन्या, फिर सब बेटीवाले की ओर की स्त्रियाँ पूजती हैं।

छ—लड़का भीतर जिमाया जाता है। माढ़वे के नीचेवाली पत्तलों पर हथलगू और वरनी जिमाई जाती है।

२—कुमर कलेऊ के लिए वर और उसके साथियों को बुलाया जाता है।

३—न्योंतनी—कन्या पक्ष वाले बड़े-बूढ़े चने की दाल, तमाखू गुड़ की भेली लेकर बेटा वाले की ओर जाते हैं। दोनों ओर से अत्युक्तियों में प्रशंसा होती है।

४—कन्या पक्ष वाले दावत के समय वर पक्ष वालों में से सबसे बूढ़े के मुँह में गस्सा देते हैं।

५—स्त्रियाँ गीतों से पत्तर बाँध देती हैं। पण्डित उस बँधी हुई पत्तल को कविता में खोलता है। फिर पण्डित वाली पत्तल नाई को दे दी जाती है। सब बराती भोजन करते हैं। पत्तल बाँधने के गीत:—

१—चरखा चलै अठपाँखुरी, आठपाँखुरी
माले चलै नौ तार
कातनहारी, दारी पातरी
लफि लफि डारै तार
काति बुनाऊँ पागड़ी, सूई पागड़ी
पहरै सजन कौ लालु
माइलि बाँधू जा लाला की, जा लाल की
गरभ रहीं दस माँस
(इसी प्रकार सब वर पक्ष की स्त्रियों को बाँधते हैं)
पातरि बाँधू आक की, इस ढाक की
दोना सींकनदार
कोरौ सौ बाँधू कूल्हरा, देखो कूल्हरा
औरु गंगाजल नीर
(इसी प्रकार सब दावत की वस्तुओं को बाँधते हैं)

१५—पलकाचार—

१—माढ़वे के नीचे पलका बिछता है। सिरहाने लड़का और पाँइत लड़की बैठाली जाती है।

२—बरौनियाँ वाले जौ सूप में निकाल लिए जाते हैं।

३—मा-बाप[१] दोनों गाँठ जोड़ते हैं। मा हाथ में पानी का लोटा लेती है और बाप वर से जौ लेता चलता है। लड़की का बाप जौ बिखेरता चलता है और मा पानी डालती चलती है। इसी प्रकार ५ परिक्रमा होती हैं।

४—फिर उसके बाद सभी परिक्रमा करते हैं।

५—लड़के के टीका करते चलते हैं और पैर पूजते चलते हैं।

६—'सोबा दाइजा' कुछ बर्तन और कुछ स्त्रियों की तीहर पलिका के समय बेटी वाला देता है।

७—साली जूता दुबकाती है। कुछ लेकर जूते वापस करती है।

८—साली दरवाजा रोकती है। नेग लेकर रास्ता देती है।

९—उठ कर दई-देवताओं के पास जाते हैं। फिर घीआबाती खिलाई जाती है।

१६—रहस बधाया—

१—लड़की बाहर बेटे वालों के वर्ग में जाती है।

२—एक थैली में पैसे भर देते हैं और एक रुपया डाल देते हैं।

३—बरनी उस रुपये को ढूँढ़ने का प्रयत्न करती है।

४—फिर पैसे और उस रुपये को खींच कर लाती है।

५—पैसे मान्य को दे दिए जाते हैं।

१७—बन्दनवार—

१—बेटे वाले कपड़े के बन्दनवार लेकर आते हैं।

२—पहले माढ़वे से बाँधा जाता है, फिर सब कुटुम्बियों के घर बाँधे जाते हैं।

३—यह गीत गाये जाते हैं—

---

[१] कहीं-कहीं बरनी का छोटा भाई तथा उसकी बूआ का लड़का ही जौ बोते हैं।

मैंने लई ऐ सजन तिहारी ओट
सजन पति राखिदै
कै पति राखै साजना
और कै राखै भगवान
मैंने दई ऐ गुबरिहारी धीय
सजन पति राखिदै
मेरी कन्या ऐ दुख मति देउ
सजन पति राखिदै
गोबरु करवैयों, चाकी चलवैयों
पनियाँ कूँ मति भेजियों
मेरी कन्या एँ दुख मति दीजियों
साजन पति राखिदै

१८—मुँह-मड़ई

[यह बन्दनबार बाँधते समय ही होती है]

१—समधिन की ओर धनिया रखा जाता है।

२—समधी (बेटेवाले) की ओर भेली (गुड़ की) रखी जाती है

३—एक पर्दा लगा दिया जाता है। सात बार धनियाँ पलटा जाता है।

४—इसके बाद समधी गुड़ की भेली समधिन की गोद में रख देता है।

५—समधी के मुँह से बुरी तरह हरदी लपेटी जाती है।

१९—विदा

१—सिरगूँदी होती है—कन्या का शृङ्गार किया जाता है।

२—गीत गाती हुइ स्त्रियाँ लड़की को बिदा करने जाती हैं।

३—लड़की बाहर से अपने बाप की देहली पूजती है। देहली पर पूरी, बूरा और कुछ पैसे रखे जाते हैं। नाइन उसे लेती है।

४—बिदा होती है।

२०—दूल्हा फिर बुलाया जाता है

१—उससे भट्टी में लात लगवाई जाती है।

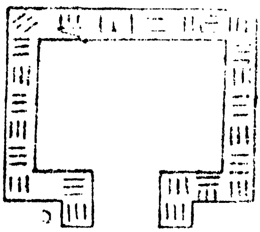
२—माढ़वे की गूथ खुलवाई जाती है। वह एक तिनका खींच लेता है।

३—कुछ कपड़े और मिठाई देकर सास उसे विदा करती है।

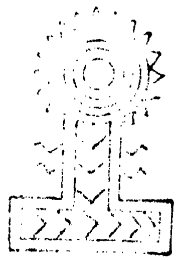
२१—वरनो वर के घर पहुँची

१—बाहर किसी के घर ठहरा देते हैं। शुभ घड़ी में उसे घर में लेते हैं।

२—दरवाजे पर गेरू से लकीरों की बेल काढ़ी जाती है, घोड़ी काढ़ी जाती है।



बेल



घोड़ी

३—जब घर की स्त्रियाँ सुन लेती हैं कि बहू आ गई तब एक ढाईपाव का ल्होल और एक गुना सेकती हैं। थोड़ा सा तिलकुटा कूटा जाता है। उस कुटे हुए तिलकुटे का मेंढ़ा बनाया जाता है।

४—उक्त सामग्री थाली में रखी जाती है। ल्होंल के ऊपर चाँदी की हँसली, तिलकुटे के मेंढ़े के समीप एक छुरी रखी जाती है। उसी थाली में चौमुखा दीपक और नारियल रखा जाता है।

५—एक लोटा पानी लेते हैं। उसमें चम्पे की, मरुए की, आम की एक डाली रखी जाती है।

६—कोली के यहाँ से कच्चा सूत आता है। उसकी इंडरी बनाई जाती है।

७—नवबधू के सिर पर यह इंडरी और लोटा पानी रखे जाते हैं।

८—थाली लेकर कजैतिन और कलश लेकर बहिन या बूआ जाती है।

९—कजैतिन वर से घोड़ी तथा बेल को पुजवाती हैं और

तिलकुटे के मेंढ़े को कटवाती हैं।[1]

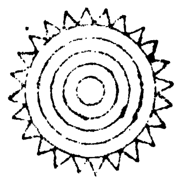
१०—भीतर लाकर उन्हें दई-देवताओं के पास बिठाते हैं। 'चाक-वास' पुजवाते हैं। पूजने की सामग्री—

१—लपसी

२—अठावरी (आठ पूरियाँ)

३—एक टका

इस सामग्री से 'चाक-वास' पुजवाते हैं। चाक-वास का चित्र यह है—



कहीं-कहीं इसी चाकवास के ऊपर साँप भी काढ़ा जाता है।

११—घीयाबाती होती है।

१२—'नेंता-सूती'—नेंती[2] में कच्चे सूत की ईड़री पोली जाती है। दोनों के सिरे पर सात-सात बार उसे छुवाते हैं—

गीत—मेरी नैंता सूती ऐ
कि बहुअरि अन्नु लै
अन्नु अघानी रे कि
बहुअरि धन्नु लै
मेरी धन्नु अघानी ऐ
बहुअरि दूध लें
दूध अघानी ऐ
बहुअरि सुहाग लै
सुहाग अघानी ऐ
बहुअरि पूतु लै।

२२—बहू नचाना—

१—सब बड़ी बूढ़ी दुलहा दुलहिन को गोद में लेकर नचाती हैं।

---

[1] यह बलि का टोटका किसी समय प्रचलित वास्तविक बलि का द्योतक है। यह टोटका सर्वत्र प्रचलित नहीं है।

[2] नेती वह रस्सी होती है जिससे मठा चलाने के लिए रई फँस जाती है।

२—न्यौछावर करते हैं।

३—गीत गाते हैं। गीत यह है:—

कहा नाचै कहा नाचै जिउ चँग नाएँ।
जसरत जोइ नचामते चौं नाएँ॥
जिउ चंग नाएँ मेरौ मनु चँग नाएँ।
दिल्ली ते बैद बुलामते चौं नाऔ॥
रानी की नारी दिखामते चौं नाऔ॥

२३—दई-देवता सिराना और माढ़वा सिराना—

१—जो दई-देवता सरैया में छिपाए थे उन्हें दिवाल से पृथक कर सिराने ले जाते हैं।

२—मौर और माढ़वा सिराने जाते हैं।

२४—ककनावरि—

१—वर के कङ्कन को वरनी खोलती है। वरनी के कङ्कन को वर खोलता है।

२—वरनी के कङ्कन को वर के जूते के नीचे रख देते हैं। और वर के कङ्कन को वरनी के सिर पर रख देते हैं।

३—एक कढ़ाही पानी भर लिया जाता है। वर की भाभी दोनों काँकनों के साथ एक रुपया और एक अँगूठी हाथ में लेती है। कढ़ाही में एक चून की मछली बनाकर डाल देते हैं। उसके नथुने में एक डोरा डाल देते हैं। सींक की तीर-कमान बना देते हैं। भाभी मछली को जल्दी-जल्दी फिराती है और वर उसमें तीर मारती है। फिर उस सारे सामान को पानी में डालती है। दोनों उन्हें जीतने का प्रयत्न करते हैं। पहले और अन्त में वर का जीतना शुभ माना जाता है।

२५—दई-देवता पूजना

१—एक सूप में हरदी की सरैया, गुड़, टका आदि रखकर ले जाते हैं।

२—वर-वधू की गाँठ जोड़ कर ले जाते हैं।

३—देवता जो पूजे जाते हैं:—

१—भुमियाँ

२—बह्माता

३—माता

४—पुरखों के थान को पूजते हैं।

यह विवाह संस्कार का सामान्य विस्तृत वर्णन है। कुछ साधारण हेर-फेर के साथ ब्रज में सर्वत्र यही ढङ्ग प्रचलित है।

विवाह के संस्कार का यथार्थ आरम्भ 'लगुन' अथवा लग्न-पत्रिका से होता है। लगुन के गीतों में विषय की दृष्टि से शुभ शकुन, लगुन संजोने में विविध पारिवारिक व्यक्तियों के योग, विवाह संबंधी विविध संस्कारों में तय्यारी का वर्णन, बाबा, ताऊ, भाई, चाचा आदि स्नेहियों की भावना आदि का उल्लेख होता है,

शुभ-शकुनों का उल्लेख मात्र होता है, विशेष विस्तार में गीत नहीं जाता। 'सगुन लै चिरई चिरगुलान हे' के संकेत से आरम्भ होकर, गीत केवल इसी बात पर विशेष जोर देता है कि—

"जोई सगुन दादी भुआ कूँ भये
सोई लड़िलड़ी कूँ होइ"—

तात्पर्य यह कि गीत यह मान लेता है कि सभी आवश्यक शुभ-शकुन हुए हैं। तोते के बोली बोलने संबंधी गीत में मंगालाशा का शकुन सम्बन्धी आनन्द परम उत्कर्ष पर पहुँच जाता है। 'लाड़ो, लाड़ में पली हुई वरनी चौक पर बैठी, शुक की वाणी से शुभ शकुन हुआ तो गीत कहने लगाः—

"तेरे पिंजरा में मोतिअरा बखेरूँ सुअना
रुगिचुगि जाइ"

इस आनन्दातिरेक के उपरान्त गीत फिर विविध कार्यों को गिनाने लगता है। तेरे बाबा ने लगुन सँजोई रुपयों से, तेरे ताऊ ने द्वार किया कलशों की जोड़ी से, तेरे चाचा ने दावत दी दो दो लडुओं की। अन्त में गीत कहता है, इतना बाबा, चाचा, ताऊ आदि ने किया एक हींसनी, पीसनी और रात की रतिमानी स्त्री दी फिर भी साजन का मन नहीं भरा।

इस एक ही गीत में शुभ-शकुन के सहारे मङ्गलाशा का आनन्द, कन्या-पक्ष का कर्तृत्व तथा वर-पक्ष का असन्तोष प्रकट हुआ है। लगुन के गीतों में कन्या-पक्ष का वर-पक्ष को संवाद भेजने का भी उल्लेख और चिन्ता प्रकट होती है। "हरे-हरे गोबर अँगनु लिपाए, मोतीनु

तय्यार किये जाने का भी संकेत है। फिर यह चिन्ता है "हे हरि दूरि. धामन काह पठऊँ, द्वारिका को जाई" न नाई जाना चाहता है, न ब्राह्मण, तब उससे कन्या की माँ कहती है कि हे नाऊ! मैं तुझे तो सिर की चुँदरी दूँगी और हे ब्राह्मण पुत्र तुझे पचास मोहरें दूँगी। तुम जाओ। नाइन ने जाकर संवाद दिया। वहाँ भी हरे हरे गोबर से आँगन लीपे गये, मोती के चौक पूरे गये। राजा दशरथ चले। शुभ-शकुन विचार कर चले। जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहीं प्रफुल्लता आ जाती है। बाग, तालाब पार करते हुए सीमा पर आये जहाँ हरी-हरी दूब छाई हुई थी। फिर गलियों में होते हुए जनमासे गये। बारौठी पर मोती बरसाये गये। द्वार पर कजरी (कदली) बन के केलों के खम्भ खड़े किये गये हैं। पान दिये गये। पान-फूलों से मण्डप छवाया गया है, वह लौंगों से गुथा हुआ है। प्रत्येक खम्भ पर दीपक जगमगा रहा है; पण्डित वेद पढ़ते हैं, सखी मंगल गाती हैं। रुक्मिणी कृष्ण की भाँवर पड़ती है।" दशरथ-नन्दन विवाह करके दुलहिन रथ पर चढ़ा कर लेगया।

एक गीत में कन्या अपने बाबा, ताऊ, पिता, चचा, भाई से हृदय से मिलना चाहती है। वह कहती है कि मुझे क्यों हृदय से नहीं लगा लेती 'लेउ न रे बाबा मेरे हियरा लगाइ" पर ये सभी अपने हृदय से उस बालिका को कैसे लगावें? वह आज पराई हो गई। पराई होने की घटना कैसे घटी? कोई बल पूर्वक उसे छीन नहीं ले गया। वह सात सुपाड़ियों में, लग्नपत्रिका के कागज में, हलदी की गाठों में, हरी दूब में दूसरे को बनाई गयी। सुपाड़ियाँ, हलदी, दूर्वा आदि वे वस्तुएँ हैं जिनसे विवाह का धार्मिक अनुष्ठान पूरा होता है।

इस गीत में जन-मानस का संचित आश्चर्य प्रकट होता है। जो कन्या आज तक हमारी है, कैसे कुछ सामग्री के सहारे सदा के लिए पराई हो जाती है। इस आश्चर्य का भी मूल स्थायी भाव करुणा और वात्सल्य है। इसी प्रकार एक दूसरे भाव-प्रधान गीत में कन्या के बाबा-ताऊ-चाचा आदि को जूए में हारे हुए के समान बताया गया है। उनसे घर की स्त्रियाँ पूछती हैं क्या हार आये? वे कहते हैं, हम मुहरें नहीं हारे, हम तो प्राण की प्राण राजकुमारी को हार आये हैं। इसका मुख्य बँध यह है:

"लाड़ी के बाबा जुअरा खेलिए

बाकी दादी रानी पूछति बात
कहा रे पिया तुम हारिए
ए हम हारे नांऐं मुहर पचास
हारे नाँइ रुपया डेढ़सै
ए हम हारे हैं हियरा कौ जियरा राजकुमारि,
जिन्हें ई जुआ में हारिए।"

भात नौतना--

लग्न-पत्रिका के चले जाने के पश्चात् किसी भी दिन लड़के अथवा लड़की की माँ अपने भाई के यहाँ भात माँगने जाती है। यों तो भात मांगनेवाली स्त्रियों के गीत अनन्त हैं, और वे अबाध गति से प्रवाहित होते रहते हैं, पर भात माँगने के गीतों में कुछ में करुणा का अत्यन्त समावेश मिलता है। ऐसे कुछ गीत ही विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं। एक गीत है :

ए बैहनि चली ऐं बीर कैं,
और भले-भले सगुन बिचारि।
भातु जौ नौतू अपने बीर कैं॥
औरु भेलीनु बरधु लदाय, भातु नौतू बीर कैं,
बीर, जब रे भैंनि बागन गई
औरु हरे री बाग सूखि जाय,
भातु जौ नौतू अपने बीर कैं॥
बीर, जब रे बैहन तालन गई,
औरु समँदु हिलोरे लेइ।
भातु नौतूँ बीर कैं॥
बीर, जब रे बैहन सीमनु गई,
और सीमन हरी हरी दूब[1]
भातु नौतू बीर कैं॥
बीर जब रे बैहनि ड्योढ़ी गई,
कुत्ता उठे ऐं घुघसाय।
भातु नौतूँ बीर कैं॥

---

[1] यहाँ गाने वाली से भूल हुई प्रतीत होती है। भाव परंपरा से यह पंक्ति ऐसे हो सकती है :
"और सीमन सूखी हरी दूब"

इस प्रकार गीत बताता है कि जब वह अपने भाई के घर को गयी तो जैसे जैसे चलती गयी वैसे वैसे ही उसे अपशकुन हुए। घर में पहुँच कर—

"औरु मिलि गए जी भूआ के जाए बीर"

उन्होंने कहा

"भैना हम तौ री अपनी के बीर,
अपनौ मैया कौ जायौ ढूँढ़िलै"

उसी प्रकार ताऊ के लड़के ने भी कह दिया पर उसका माँ जाया भाई कहाँ था—

बीर, बाबुल मरि महुआ भए,
और बीरन पीपर के पेड़
भातु जौ नौंतू अपने बीर कैं॥

जब वहाँ भाई नहीं मिले तो

"भैना लौटि जु आई घर आपने,
औरु आई एँ तनमनु मारि।
भातु जौ नौंतूँ अपने बीर कैं॥

तब उसने अपने पति से कहा

"चलि पिया दोऊ मिलि जायँ,
ढूँढै तौ अपनौ भातई"

उन्होंने

"भैना तिलु तिलु ढूँढी गुजराति
सबरौ तौ ढूँढ्यौ मालुऔ
मेरी मैया के जाये ना मिले

तब—

दारी सुरति लगाई मरघट घाट की
औरु ढूँढतु डोलूँ अपनौ बीर।
भातु जौ नौंतू अपने बीर कैं।

मरघट पर पहुँच कर बहिन ने कहा—

"भैया जौ कहूँ हौ तुम बैठिए
तौ भैना ऐ बोलु सुनाय"
भैया उतरि बिरछ[1] ते आइए

[1] इस गीत में कहीं-कहीं वृक्ष का नाम भी दिया हुआ है। यह महुए का वृक्ष था।

भाई वृक्ष से उतर आया और पूछा :

"भैना कब कौ री तेरौ माढ़यौ ?
औरु कब कौ रच्यौ ऐ विवाहु
हम लामें तेरौ भातु जी"

मरघट में भाई का प्रेम ही वचन देता है कि बहिन हम तुझे भात देंगे। किन्तु वे पूछते हैं :

भैना नौति चौं न आई भूआ जाए बीर कैं
ताई जाए बीर कैं ?

बहिन ने कहा—

"भैया वे तौ री अपनी के बीर
उलटो दई बगदाय
भैया मेरौ हियरा हिलोरे लै रह्यौ
और छ तयनु परयौ ए पजारु
भातु जौ नौतू अपने बीर क"
भैया इकदासिया कौ ए माढ़यौ
और द्वादसिया कौ ए ब्याहु"

भाई ने बहिन को वचन दिया—

"जाओ बहिनि घर आपने
औरु हम लामें तिहारे भातु"

भाई (प्रेत) वहाँ चला। बजाजे में गया, सुनारों के गया। बड़े जोर का भात सँजाया :

और लै पहुँचे ब्याई देश
और बहना देखति बाट

भातई वहाँ जा पहुँचे—

"आइ क्रम लारे-बाके भातई"

सबको भात पहनाया।[1]

बहिन को पहनाया। बहिन ने भाइयों से मिलने के लिए बाहें फैलायीं:

---

[1] इस गीत में कहीं कहीं यह उल्लेख है कि वह भातई भात पहनाता ही चला गया। बहुत समय होगया। तब किसी दौरानी या जिठानी ने उकता कर या चिढ़ से एक महुए की पटली वहाँ लाकर रखदी। महुए की पटली में वह समा गये।

"और भैना नैं वैया पसारिये
और वीरन गए ऐं समाय
भैया दोर जिठानी बोलें बोलने
सौति भूतु पहरायौ तोय भातु।

यह गीत भाई बहिन के स्नेह को मूर्तिमान कर देता है। सुख के रूपावरण में दाहक दुःख का भाव समाया हुआ है। बहिन के लिए भाई का मूल्य इसमें प्रकट होता है। यह गीत अपने कथाधार के कारण भी आकर्षक है। बहिन भात नौंतने जाती है, बूआ-ताऊ के लड़के, उसके भाई, उसका न्यौता स्वीकार नहीं करते। वह अपना भाई ढूँढ़ने श्मशान में जाती है। उसके भाई मर चुके हैं। वहाँ मरघट में वह महुए के पेड़ को नौंतती है। उस पर उसके भाई प्रेत योनि में रहते हैं। वे निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं। समय पर भात लेकर पहुँचते हैं। उन्होंने बहिन से कह दिया है कि महुए की पटली मत डालना। पर कोई ईर्ष्यालु भेद जानकर अन्त समय महुए की पटली डाल देता है—वे उसम समा जाते हैं—वहिन देखती रह जाती है। रहस्य खुल जाता है, उसे दौरानी जिठानी के बोल सुनने पड़ते हैं।

इस गीत में विषाद की अविच्छिन्न भूमिका के रहते हुए भी बहिन को भाई के भात लाने पर जो क्षणिक सुख और गर्व मिलता है, उसे ईर्ष्या ने निर्दयता-पूर्वक कुचल दिया है, विषाद और भी गहन हो जाता है। बहिन भाई के लिए ममत्व, सगे भाई का ही भरोसा, अन्य बन्धुओं द्वारा तिरस्कार

"भैना हमतौरी अपनी के बीर
अपनौ मैया कौ जायौ ढूँढिले"

धौरानी-जिठानियों की ईर्ष्या, भात का उत्साह आदि का यथार्थ दिग्दर्शन हुआ है।

इस गीत में महुए के पेड़ का और भूत का उल्लेख विशेष ध्यान देने योग्य है। महुए का वृक्ष उतना ब्रज में नहीं होता जितना बुन्देलखंड में होता है। ब्रज में भी उसका सर्वथा अभाव तो नहीं है। मथुरा में तो यह वृक्ष आजकल एक प्रकार से बिल्कुल ही नहीं होता। किसी समय में महुए का बड़ा महत्व रहा होगा। मध्यकाल में महुए का फल खाया भी जाता था, उसकी शराब भी बनती थी। ब्रज के

एक टेसू के गीत में और 'गिलोंदे' का वर्णन आता है। गिलोंदे महुआ के फल को ही कहते हैं। ब्रज में, मथुरा से अतिरिक्त ब्रज में गिलौदे पर मुहाविरा भी बन गया है। 'ऐसे नायँका गिलोंदे धरे जो गीधि गयौ ए'। किसी समय ये गिलोंदे अच्छी मेवा समझे जाते होंगे, और बड़ी रुचि से बच्चे इन्हें खाते होंगे। किन्तु 'महुए' पर भूत के रहने की बात ब्रज में कहीं नहीं सुनने को मिली। महुए का उल्लेख इस गीत में ब्रज से नहीं आया ऐसा प्रतीत होता है।

गीत में गुजरात और मालवा का भी उल्लेख हुआ है:—

"भैनां तिलु तिलु ढूँढ़ी गुजराति,
सबरौ तौ ढूड्यौ मालुओ"—

गुजरात और मालवा ढूँढ़ने का अभिप्राय यही है कि ढूँढने वाला इन प्रदेशों का नहीं है। ये दोनों अपनी प्रसिद्धि के कारण इस गीत में सम्मिलित किये गये हैं, अथवा यह अंश उस प्रदेश से आया है जो गुजरात और मालवा के निकट है। गुजरात का उल्लेख तो 'नरसी भगत' के कारण भी हो सकता है। उसका भात प्रसिद्ध है। कुछ भी हो, ये उल्लेख हमें किसी निश्चय पर नहीं पहुँचा सकते।

भूतों का उल्लेख केवल कहानी के उत्कर्ष के लिए नहीं हुआ है, यह जन के साधारण विश्वास को अभिव्यक्त करता है। साधारण जन का भूतों के प्रति भय का भाव रहता है। वे अपने स्वार्थ के लिए लोगों को परेशान बहुत करते हैं, ऐसा माना जाता है, किन्तु इसमें भाई-भूत ने सहायता का भाव दिखाया है।

भातई के लेने के गीत में लोक-गीतकार ने काव्य का पुट दिया है। 'ऊँनैरे ऊँनै[1] आयौ मेहु। इतमें रे आयौ मेरौ भातई[2]। वारिदों का उमड़कर आना, और भातइयों का आना केवल अलङ्कारिका नहीं लोक-जीवन के आह्लाद को प्रकट करने का सबसे समर्थ साधन है। ग्रामीण-लोकों के लिए मेह से बढ़कर सुखद और आह्लादकर कोई घटना सृष्टि के समस्त प्रकृत व्यापारों में नहीं है। बहिन को भातई का आना भी उतना ही सुखद है। 'भीजना' क्रिया विशेषार्थक है। भातई के आने से प्रेम-रस की वर्षा होती है। उसमें सभी भीग रहे हैं—लोक-

[1] उनमें ये उमड़ आये।

[2] पाठान्तर इतमें रे आये मेरे भातई।

कवि ने उन भीगने वालों में भातई के पक्ष का ही विशेष उल्लेख किया है।

भात पहिराने के गीत में कोई विशेष बात नहीं। उसमें तो भातई के वैभव का उल्लेख है, और वह किस प्रकार उदारता-पूर्वक वस्तुएँ भात में लुटा रहा है बताया गया है। भातई वकुचा खोलकर बैठा है, समस्त कुटुम्ब-परिवार को वस्त्र पहना दिये हैं। रुपये बखेर रहा है, मेवा बखेर रहा है, फूल बखेर रहा है। यह गीत तो केवल संस्कार को सङ्गीत की एक भूमिका देने के लिए है। ऐसा विदित होता है कि बहिन की भाई की उदारता के प्रति सहानुभूति का भाव भी एक गीत में है। बहिन भात में भाई को निस्सङ्कोच वस्तुएँ लुटाते देखकर अपनी ससुराल के लोगों से कहती है—

"उसरौ रे उसरौ[1] देवर जेठ,
भौतु लुट्यौ ऐ मेरौ भातई"

केवल देवर जेठ से ही नहीं, ननद से, सासु से, द्यौरानी-जिठानी सभी का नाम लेकर उनसे 'उसरने' की बात कही जाती है। शिकायत और उपालम्भ भी इन गीतों में रहता है। भाई बहिन के लिए और सब वस्तुएँ, जो उसने लिखाई या बताई थीं, ले आया है, पर एक दर्पण नहीं लाया तो बहिन यह दर्प-पूर्ण बात कहती है—

"टोटौ नाँओरे बिरन लाचारी नाँईरे,
अपनों उलटौ लै जा भातु बिरनु नादीदी नाँईरे।"

भात का अवसर विशेष भाव और रसों की सृष्टि करता है।

भात-माँगना और भात आना दोनों बातें ही अलग-अलग अवसरों पर होती हैं, किन्तु यहाँ हमने एक साथ ही उन दोनों पर विचार कर लिया है।

रतजगा—

विवाह-संस्कार में 'रतजगे' की तय्यारी और रात्रि में अनेकों लोकाचार होते हैं—एक साथ इतने लोकाचार सम्भवतः किसी और दिन विवाह में नहीं होते। साधारणतः रतजगे के गीतों को तीन विभागों में बाँट सकते हैं—

एक—साधारण गीत। इन गीतों में वे गीत गाये जाते हैं जो साधारणतः ब्याह में कभी भी गाये जा सकते हैं। इनसे विवाह के

[1] उसरो जितना हुआ उतने से सन्तुष्ट होकर हट जाओ, और अधिक मत होने दो।

समस्त संस्कार एक भाव में बँध जाते हैं। इन गीतों में बरनी-बरना में दुलहिन या दुलहा का किसी न किसी रूप में उल्लेख रहता है। उनके रूप, स्वभाव, नखरे आदि का वर्णन इनका प्रधान विषय होता है लाड़ी के गीत होते हैं जिनमें बरनी को लाड़ी या लड़लड़ी का संबोधन रहता है। घोड़ी में बरना की घोड़ी चढ़ने का प्रसङ्ग रहता है।

दो—अनुष्ठान-सम्बन्धी गीत। ये गीत रतजगे के विशेष अवसरों पर उस अवसर की विशेषता का उल्लेख करते हुए होते हैं। रतजगे की रात्रि से पूर्व ही इनका आरम्भ हो जाता है। बायबंद बँधने से पूर्व अऊत-पितर, वायु, मक्खी, मच्छर, लड़ाई-झगड़ा, आँधी, पानी, आदि को निमन्त्रण दिया जाता है, उनका आरम्भ ब्रज में साधे यों होता मिलता है—"अऊत बाबा तुमऊ बड़े हौ आजु हमारे नौंतऔ—"इसी प्रकार सभी का नाम लेते जाते हैं और उन्हें निमन्त्रित कर दिया जाता है। इस गीत का एक प्रकार पं० रामनरेश त्रिपाठीजी ने भी अपने ग्राम-गीतों में दिया है[1]। उसका आरम्भ यों है—

'हे पाँच पान नौ नरियल !
सरगे जे बाटे आजा परआजा,
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता ॥'

यह निमंत्रण देकर उन्हें बन्द कर दिया जाता है। निमन्त्रण तो बहाना है। अभिप्राय यह है कि एक पात्र में भरकर उन्हें बन्द कर दिया जाय, जिनसे वे उत्पात मचाने के योग्य न रहें। त्रिपाठीजी ने लिखा है कि "इसलिए निमंत्रण दिया गया है कि ये भी सन्तुष्ट रहें और विघ्न न डालें।" पर ब्रज में, निमंत्रण देकर उन्हें झोलों में भर लिया जाता है, और सरवों में भर कर चूल्हे के पास एक कोने में दिवाल से चिपका कर भली प्रकार बन्द कर दिया जाता है। यह प्रतिबन्ध का टोटका कहा जा सकता है। इस निमन्त्रण के साथ और भी कई गीत गाये जाते हैं। एक गीत में जोड़े से दो दो दई देवताओं का उल्लेख कर उन्हें बड़ा बताया जाता है—

एरी मइया जा धरनी पै भ ई को बड़ौ
एरी मइया जा धरनी पै द्वै बड़े,
एक धरती एक मेह—

और आगे इसी प्रकार एक प्रेत, एक अऊत, एक चामर, एक

[1] देखो पृष्ठ २०४ गीत, [५०]

देते, सती-सुहागिल आदि का नामोल्लेख किया जाता है।

सतगठा—

सतगठा इस अवसर का एक विशेष गीत है जिसमें कितने ही गीत होते हैं। ये सब दई-देवता सम्बन्धी ही होते हैं। अऊत, पितर, प्रेत और भुमिआँ का नाम इनमें विशेष आता है। एक गीत में प्रेत पल्ला पकड़ लेता है। स्त्री कहती है मेरा चीर छोड़ दो। मेरी सास बहुत बुरी है। प्रेत कहता है तुम्हारी सास मेरी मा लगती है, चलो 'आजु बसेरौ नौलख बाग में।' "एक में भुमिआँ को कलार मद के प्याले भर कर देता है। अऊत-पितर एक में अपनी आवश्यकताएँ बताते हैं—भूखे हैं, हम भूखे हैं—उन्हें यह आश्वासन दिया जाता है, "मेरे मामा पुरिया सिकावत हैं।" वे कहते हैं "नंगे हैं हम नंगे हैं।" उन्हें वस्त्र दिलाने का आश्वासन दिया जाता है। फिर वे कहते हैं "झूठे हो नाती झूठे हौ"—उत्तर मिलता है "साँचे हैं हम साँचे हैं, हम पुरिया सिकावत हैं।" अभय भावना का समावेश भी एक गीत में हुआ है, उसमें भी समस्त देवी-देवताओं का उल्लेख हो जाता है—धरती से दीमान खड़े हैं तौ न्याँ काए की संख्या[1]।

धरती से दीमान खड़े एं तौ न्याँ काए की संख्या
ठाकुर से दीमान खड़े एं तो न्याँ काए की संख्या
सेढ़ मसानी से दीमान खड़े एं ,,
सैयद पीर से ,, ,,
जाहर से दीमान ,, ,,
देवी से दीमान ,, ,,
सती सुगागिल से दीमान ,, ,,
माता भुमिया से न्याँ सबुई खड़े एं न्याँ काए की संख्या
अऊत[2] पितर से दीमान ,, ,,
कार्सवारौ[3] महावन[4] बारौ ,, ,,
बारे जरूलें[5] ,, ,,

---

[1] संख्या=शंका, भय।

[2] बालक जो मर जाते हैं।

[3] यह एक सात महीने का आधान था।

[4] जखैया।

[5] जो बिना मुण्डन के मर जाते हैं।

तीन—इस कोटि में वे गीत आते हैं जो विशेष विषयों के नाम से पुकारे जाते हैं, इनका समय निश्चित होता है। ऐसे अनेक गीत हैं। रात्रि को मेंहदी, कजरा, बर्द्धे, साँझलरी, बड़ौ दिवला, जैसे गीत गाये जाते हैं। प्रातः दाँतौन, तुलसा, कूकुरा, वाँयचरा, बेलना, कढ़ैया जैसे गीत गाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक गीत हैं। रतजगे में स्त्रियाँ समस्त रात्रि जागती रहती हैं। उनके विविध कृत्यों के साथ उनकी गीत की लहरियाँ प्रवाहित रहती हैं।

रात्रि के आरम्भ के गीतों में तो काजर-महँदी जैसे विषयों का उल्लेख है। ये प्रायः रात्रि को ही लगाये जाते हैं। 'काजर' में तो काजर पारने और लगाने का विषय है, पर महँदी का गीत प्रबन्धात्मक हो गया है। 'देवर के पिछवार राचन महँदी वारी लाला हम बई री'—भाभी महँदी सूँतने गयीं। हरे हरे पत्ते मँहदी के उन्होंने सूँते, उनके हाथ लाल हो गये। बिछुओं की झनकार सुनकर देवर भी वहाँ पहुँच गये। भाभी के लाल हाथ देखकर वे भी उसके पीछे चल दिये। भाभी अपने मायके गयी, देवर भी बुलाने पहुँच गये। भाभी अपनी माँ से मना करती है कि देवर के साथ मत भेजो। माँ कहती है, वे एक ही बाप के बेटे हैं। 'वे न भए तो वे भए'। वह भेज देती है। अब वह विवश है। देवर के हाथ में है। "रस रस लीयौ निकारि फोक फोक मोकूँ रह गयो जी।' उस स्त्री ने पति से कहा। जब पति ने कहा कि "अब कें बबाऊँगो ज्वार अदले के बदले करि लऊंजी।" तो वह उत्तर देती है!" तुम मेरे नाह कुनाह, तुम हौ जेठ बे कुल बधू"।

रात के गीतों में अश्लीलता का पुट रहता है; पर एक विशेष बात यह होती है कि वे बड़े आश्चर्यकारक होते हैं। उनमें कुछ अद्भुत बातों का उल्लेख रहता है। ऐसी बातें जो अनमिल होती हैं एक ही गीत में जोड़ दी जाती हैं। एक गीत यह है :—

पी गयौ रे दही में बूरौ डारिकें।
कौनें मोह्यौ री बहुत भोरौ जानिकें॥
चलौ गयौ री घर मो सी गोरी छोड़िकें।
दिल्ली सैहर बजार में सबज कबूतर जाय।
सीटी दैकें बोलती कोई जोड़ा बिछुटौ जाय॥

पी गयौ रे दही में बूरौ डारिकें।
कौनें मोह्यो री बहुत भोरौ जानिकें॥
चलौ गयौ री घर मो सी गोरी छोड़िकें।
छै छल्ला छै आरसी छल्ला भरी परात।
एक छल्ला कारन मैंने छोड़े माई बाप॥
पी गयौ रे दही में बूरौ डारिकें।
कौनें मोह्यो री बहुत भोर्‌यौ जानिकें॥
चलौ गयौ री घर मो सी गौरी छोड़िकें।
घूरे पै मुरगा चरै, कोई मति मारौ डेल।
आपन ही उड़ि जाइगें कोई सुनि गोरी के बोल॥
पी गयौ रे दही में बूरौ डारिकें।
कौनें मोह्यौ री बहुत भोरौ जानिकें॥
चलौ गयौ री घर मो सी गोरी छोड़िकें।

एक अद्‌भुत गीत में आगरा में मच्छर मारा गया, उसकी धमक अजमेर पहुँची, उसकी खाल का दशरथ को कुरता बना, मूंछों का उनके लिए हुक्का, आँखों का चश्मा, जाँघ का पजामा बना। बहुधा इन गीतों में ऐसा होता है कि कहीं कुछ पंक्तियाँ तो सार्थक होती हैं, और शेष आश्चर्य-भाव को प्रकट करने वाली। एक गीत है :

नैना दोऊ रमि गए महाराज।
रमते रमते रमि गए, पहुँचे कोस पचास,
सुर बदनामी बाँधि कें घरी न बैठे पास। नैना०
सैयाँ नें बोई कांकरी, हमनें बोए खरबूज,
सैया ने राखी जाटनी, हम राखे रजपूत।
जोड़ी मेरी मिलि गई जी महाराज॥
धोबी धोवै कापड़े और राजमहू के घाट,
मच्छी साबन लै गई, धोबी बारह बाट।
लादी मेरी लुटि गई महाराज॥
अचम्भा मैं सुनूँ मछली चाबै पान,
मेंढक बजावै ढोलकी और कछुवा तारै तान।
ता ता थेई मचि रही महाराज॥

इस गीत में नैनो का रम जाना, और 'सैंया ने राखी जाटनी' 'हम राखे रजपूत' में अर्थ है, शेष में अचंभे का तत्व विशेष है।

दृष्टि-कूट मान कर व्यंग से कोई दूरान्वय से प्राप्त अर्थ भले ही किया जा सके, अन्यथा अचम्भे के लिए ही ऐसी योजना की गयी है।

इसी शैली का एक और गीत 'रजना' नाम का है। वह इस प्रकार है—

रजना मेरी जल्दी खबरि सुधि लीजियो रजना
कोठे ऊपर कोठरी रजना खड़ी सुखामें केस
यारु दिखाई दै गयौ धरि जोगी कौ भेस
कारी परि गई रजना।
दुबकाइ लै रजना ।।
आगरे की गैल में परी चना की रासि।
लुगाई गठरी लै गई, लोग करें स्याबास ।।
कारी परि गई रजना।
आगरे की गैल में परयौ भुजंगी स्याँपु।
लोटै पीटै फनु करै सरकि बिले में जाय ।।
मरि गई रजना।
आगरे की गैल में सतुआ सोंठि बिकाइ।
चतुर चतुर सौदा करें मूरखि ढका खाइ ।।
मरि गई रजना ।।
दिल्ली सहर बजार में उलटी टँगी कमान।
खेंचन हारौ घर नहीं देवरिया नादान ।।
कारी परि गई रजना।
हरयौ नगीना आरसी उँगरी में दुख देइ।
ऐसे के पाले परी सो हँसै न ऊतरु देइ ।।
मरि गई रजना।
हरयौ नगीना आरसी उँगरी में सुख देइ।
रसिया के पाले परी हँसै ओ, ऊतरु देइ ।।

हाँ, इनमें यौन-प्रतीकात्मकता अवश्य है। ऐसे समस्त गीत मनोवैज्ञानिक प्रभविष्णुता से युक्त होते हैं। इन गीतों में जो मूर्त-कल्पना नियोजित हुई है वह कल्पना पृथक-पृथक मूर्त चित्रमयता में कोई अर्थ नहीं रखती। उनकी संयोगी संयोजन की क्रियाओं में सुझाव का उद्रेक चैतन्य मानस को विमोहित कर अवचेतन को स्फूर्ति युक्त कर देता है। उसी की प्रतिक्रिया से मानव का संपूर्ण व्यक्तित्व

मुग्ध हो जाता है। यही मनोवैज्ञानिक प्रभविष्णुता का रूप इन गीतों में है।

कहीं-कहीं यह अतिशयोक्ति गर्भित आश्चर्य-तत्व की संयोजना अर्थ के अंग की भाँति भी हुई है। पुरुष और स्त्री में लड़ाई हो गई। स्त्री अपने पीहर चली गयी। वहाँ सास ने जामाता से कारण पूछा तो उसके फूहर आचरण का अतिशयोक्ति को उल्लंघन करनेवाले अद्भुत वृत्त के द्वारा वर्णन किया, और तब कहा अपनी बेटी को अपने घर ही रखिये, हमसे नहीं सँभलती—गीत इस प्रकार है—

खसमा जोड़ भई लड़ाई, पीहर कूँ उठि चाली री भैंना
हात बोइया, बगल में चरखा, पीहर में जे पहुँची री भैंना
अँगना बिठंती माइलि पाई, कैसें धीअरी आई ?
तेरे जमैया ने मारे, माइकें चले आए री भैंना
सोमत ते लाला जागे, सुसरारि में भाजे दौरे री भैंना
सासुलि बोलै बोलनें, धीअरि कैसें मारी रे लाला
आओ री मेरी सारी सरहज, सुनियो कान लगाइ
चूल्हे बैठी बार खसौटै, नौ मन राख उड़ावै
कच्ची पक्की दार पकावै, नौ मन के फुलका डारै
नौ मन की तौ रोटी खाइ गई, बटुला भरि के दारि
तीन घड़ा पानी के पी गई, पोखरि है गई खाली
चढ़ि कोठी पै मूतन बैठी, घरु बहिगौ पटवारी कौ
पुल टूटियौ रैवाड़ी कौ ॥
पाँच दुकान बनियाँ की बहि गईं, छटयौ घर भटियारी कौ
बड़े साब की पल्टन बहि गयी, छोटे कौ खड़खड़िया रे
अपनी धीअरि घरई राखौ, हम पै नाँइ सम्हरिबे की

इस गीत में अनोखी ऊहा का समावेश अर्थ को पुष्ट करने के लिए ही है। ऐसा ही भाव बालकों के उन गीतों में भी मिलता है, जो चट्टा चौथ के दिन 'वसन्तक' के नाम की छाप से विद्यार्थियों द्वारा गाये जाते हैं। यहाँ बाल-मनोवृत्ति और स्त्री-मनोवृत्ति का साम्य भी मिलता है।

जब लड़ाई का प्रश्न उपस्थित हुआ है तो वह लड़ाई पति-पत्नी में ही नहीं, सासु-बहुओं में भी हो सकती है। उसका एक गीत यों है:

सासू बहुअरि भई लड़ाई
सुसरे खबरि बजारों पाई

आइ अन्दर बहुअरि समझाई
मुढ़िला बिठंती सासु तिहारी
काए कूँ करौ लड़ाई
सुनि सुसरा तेतौ बेटा अयानौ
जाई ते करूँ लड़ाई
मुढ़िला बिठन्ती सासु हमारी
नित उठि करें लड़ाई
दूधु प्याइ मैं करूँ सयानौ
सदा तुम राखौ लाज हमारी
अग्गै ऊ बाँटू जग्गै ऊ बाँटूँ
मोरी रहि गई साझें
जा मोरी के कारनै मैं राति मुतासी सोइ गई
अटुला बाँटूँ बटुला बाँटूँ
करछी रहि गई साझें
जा करछी के कारनैं मैंनें दारि अलौनी खाई
अकला धोऊँ चकला धोऊँ और धोऊँ संडासी
अपनी सासु ऐ खसमु कराइ दऊँ
बाल जती संन्यासी
अकला धोऔ चकला धोऔ और धोऔ संडासी
अपनी मा ऐ खसमु कराऔ
बाल जती संडासी[1]

इस गीत में अयाने बालक पति के कारण लड़ाई है, फिर बटवारे का उल्लेख है और उसमें एक वस्तु साझे की रह जाने के कारण परेशानी है। तब झुँझला कर सासु को गाली दी गई है, और सासु समधिन को गाली देती है। इसी आश्चर्य-तत्व के साथ हास्य का समावेश इन गीतों में है। 'केले की सगाई' की सांगोपांग कल्पना का गीत ऐसा ही है—

केले की भई ऐ सगाई सकलकन्दी नाचन आई
कासीफल के बने नगाड़े भिण्डी की चोब बनाई
गोभी फूल के गड़े सिमाने, मूरी के खम्भ लगाए।
गाजर बिचारी के लाल भए एं आलू छोछक लाए।

[1] संन्यासी

गौंड़े बिचारे नें भेली बाँधी, गेहूँ के गूँजे भराए।
बेर घुरकली के भौंड़ बराती, मूँगफली रंडी बनाई।
मक्का बिचारी के साल दुसाले, ज्वार लड्डुए बँधाए।
उग्रार बाजरे के डोम मोरासी, नटिनी नाचन आई।

नटों के रतजगे का गीत भी इसी तत्व से युक्त है। उसमें इस आश्चर्य और हास्य के साथ 'भय' का भी पुट मिलता है—

राजा कबऊ न बे मन बोले—
पाँवरौ तोरि खड़ुआ बनवाए, कुढ़ारी तौरि बीछिया
काँवरि की नथुली गढ़वाई, बीछू कौ डारि लियौ भलुका
खुरपी के छागत बनवाए, हँसियौ काटि हँसुलिया
टाट फारि मैंने फरिया बनवाई, पुर की बनाई घँघरिया
कारे नाग कौ नारौ डरवायौ, बर्रन कौ लगाइ लिए झब्बा
पहरि ओढ़ि अँगना भई ठाड़ी, गोरी कूँ लग गई नजरिया
नजरि उतारिबे कूँ बलमा बोले राजा नें बारि दई कुतिया
ऐसे बलम रँग रसिया वे मन कबऊ न बोले।

आश्चर्य के भाव के लिए कैसी भी अनहोनी कल्पना की जा सकती है—यह आश्चर्य कवि भी अनुभव करता है—

अतरजु देख्यौ न जाइ महाराजा !
बैठी बिलैया पटिया पारै, बन्दरु बट्टा दिखावै महाराज।
बैठ्यौ डींगरु चक्की चलावै, झींगुर सीटी लगावै महाराज।
भैंसि कौ सींगु कसीदा काढ़ै, भेड़ जो जारी खोदै महाराज॥

किन्तु सभी गीत ऐसे नहीं होते। कुछ में विशेष प्रबन्ध-कथा भी रहती है। एक कथा में तो एक राजा का अपनी मौसी की लड़की पर ही मोहित हो जाने, उसी से विवाह करने का हठ और उसका परिणाम दिखाया गया है। गीत इस प्रकार है :—

एक गंगा पार की बेटी ऐ।
कुमरि बरसाने में ब्याही ऐ॥
एकु दूतु लाग्यौ ऐ रे।
राजा ! रानी बहुत मलूक ऐ॥
ब्वानें थलबरु मारयौ रे।
ब्वानें अंसर डारे रे॥
ब्वाकी माइलि पूछै रे।

अरे बेटा उठिकें कचैहरीनु जाउ ॥
नाँइ जाऊँ, नाँइ जाऊँ रे ।
अरी मैया बिर्जो ऐ ब्याहूँ रे ॥
तेरी बहिन लगति ऐ रे ।
अरे बिर्जो मोसी की बेटी ऐ ॥
मैं तौ नांइ मानूँ, नांइ मानूँ रे ।
अरी मैया बिर्जों ऐ ब्याहूँ रे ।
ब्वाकी गोरी बरजै रे ॥
अरे पिया उठिकें, रसोई जैंऔ रे
मैं तौ नांइ उठूँ, नांइ उठूँ रे ।
मैं तौ बिर्जों ऐ ब्याहूँ रे ॥
तू तौ अँधौ होइगौ रे ।
अरे बिर्जो बहिन लगति ऐ रे ॥
तू तौ कोढ़ी होइगौ रे ।
तेरे कोढु चुचाइगौ रे ॥
बिर्जो गौड़े मति जइयौ रे ।
बिर्जो रथ मति चढ़ियौ रे ॥
मैं तौ रथ में चढ़ूंगी री ।
मैया गोंड़ेनु जाउंगी रे ॥
बो तो गोंडेनु पहुँची रे ।
बिर्जो रथ में चढ़ि गई रे ॥
गंगा न्हवाइ ला रे ।
मौसी के बेटा गंगा न्हवाइ ला रे,
बो तौ गंगा में पहुँची रे ।
मौसी के बेटा अबऊ समझि जारे ॥
ब्वाके मुरवानु पानी रे ।
मौसी के बेटा अबऊ समझि जा रे ॥
मैं तौ नांइ मानू, नांइ मानू रे ॥
बिर्जो तोई ऐ ब्याहूँ रे ॥
ब्वाके करिहनु पानी रे ।
मौसी के बेटा अबऊ समझि जा रे ॥
मैं तौ नांइ मानू नाँइ मानू रे ।

अरे बिर्जो तोई ऐ ब्याहूँ रे।
ब्राकी चुटियनु पानी रे।
मौसी के बेटा अबऊ समझि जा रे॥
तू तौ अन्धौ ह्वेइगौ रे।
मौसी के बेटा न्योंई'[1] फिरैगौ रे॥
तू तौ कोढ़ी ह्वेइगौ रे।
मौसी के बेटा कोढ़ चुचावै रे॥

एक ऐसे ही काव्य-मय गीत में दो सपत्नियों का चित्र है। एक पति को विशेष प्रिय है, दूसरी नहीं। बड़ी पति के पास से लौट कर सास-ननद के पूछने पर कहती है :—

"सेजन पै पथरा परे औरु पिय पै परयौ ऐ तुसार।"

छोटी लौटकर यह बताती है :—

"सेजनियाँ फुलवा परे कोई पिउ पै उड़त गुलाल।"

इस गीत का आरंभ काव्य मय है:

सीतल छांह बमूर की जौ कहुँ काँटौ न होइ।
अरे रस भौंरा रे ज्ञानी भौंरा रे।
अति की सुगन्ध गुलाब में जौ कहुँ काँटौ न होइ।
अरे रस भौंरा रे ज्ञानी भौंरा रे॥
सुन्दर पेड़ केरा कौ जौ कहुँ फलु आवै द्वै बार। अरे रस०

इसी काल के 'चमारों' के रतजगे के गीतों में ब्रज के लोहबन क्षेत्र की ओर 'सैयद' का उल्लेख विशेष आता है। सैयद का वर्णन भी रण-जूझने का होता है। 'सैयद' का यह उल्लेख चमारों में ही मिलता है, यह एक आश्चर्य की बात है। ब्रज भर में इन संस्कार के गीतों में, अन्य जाति के गीतों में, प्रायः सैयद का उल्लेख नहीं मिलता। चमारों के ऐसे दो गीत यहाँ दिये जाते हैं :

(१)

पहिले गिरारे लिकरे बाबुल करी ऐ सलाम
सैयद के रन मति जूझै रे।
सैयद के रन मति जूझै, खुदा मति हारै
जोड़ू न कौ ताबेदारु। रन मति०

---

[1] न्योंई

दूजे गिरारे लिकरे बीरन करीऐ सलाम
सैयद के रन मति जूझै रे।
रन मत जूझै, खुदा मति हारै जोडू न के तावेदार
नांदेरे बारे चिरजियौ अइयों बैरी उ मारि
सैयद के रन मति जूझै रे।
तीजे गिरारे लिकरे, माइल करी ऐं सलाम
सैयद के रन मति जूझै रे।
चौथे गिरारे लिकरे, धनउलि करी रे सलाम
नांदेड़े वारे चिरजीऔ अइयों से मुड़िया कटाइ
तोपन के भूआ लगे, तीरन लागे झुंड
तोपनु लै गई झुंझुनी, तीरन लै गई दीम
सैयद के रन मति जूझै रे।

(२)

पीपरिया झक झालरी
म्रों सैयद को थानु
सैयद रन मति जूझै लाड़िले
अम्मा तेरी ढोरैं रे ब्यारि
सैयद सोए गोरि में दै दै गहरी नीम
कै रै जगामें बीबी फातमा
कै हजरत कौ लोगु
भरौ रे कटोरा दूध ब्वाकी माइ पिवामन जाय
सैयद रन लाड़िले
रन मति जूझै रे।
भरो रे कटोरा खीचरी घिऊ बिन खाई न जाइ
सैयद रन लाड़िले
बिछुटि गई ऐं सबु गाइ
औंधे रे भए ऐं चलामने
औरु छछिहारी फिरि फिरि जाइ
सैयद रन लाड़िले
सूधे रे भए ऐं चलामने
छछिहारी लै लै जाइ।

इतना रात्रिकालीन गीतों का वर्णन हुआ। प्रातः के गीतों में

पहले तो जागने और जगाने का वर्णन मिलता है। ये बहुधा गालियों से युक्त होता है। यथा, 'तुम लै मैंना ऐ सोइ रहे हम जागे सिगरी राति।' किन्तु गम्भीर और भावयुक्त गीतों का भी अभाव नहीं होता। 'सुखमद्रा' गीत में जगाने का उल्लेख हुआ है—

सुखमद्रा रे सुखमद्रा
तू धरती ऐ जाइ जगाय,
सुखरंजन के बलि जइऐ।
सुखमद्रा रे तू तौ कौसल्या ऐं जाय जगाय
सुखरञ्जन के बलि जाइऐ।
ए सुख सोती धरती ऐ कौन जगावै
ए ब्वाके कछ-मछ कीयौ ऐ सोरु
तौ उनई नें हाल जगाय।
ए सुखरञ्जन की बलि जाइए।
ए सुख सोती कौसलाऐं कौन जगावै
ए ब्वाके राम-लछन मचायौ ऐ सोर
तौ उननें हाल जगाय
ए सुखरञ्जन की बलि जाइऐ।
ए सुख सोती देवी ऐ कौन जगावै
ए ब्वाके लाँगुर मचायौ ऐ सोर
तौ उननें हाल जगाय
ए सुखरञ्जन की बलि जाइए।

जगने के उपरान्त मुख-प्राक्षालन का गीत इस प्रकार है :

एक भरी ऐ सरैया दूध की
दई देवताओ तुम मुख धोओ
के दूती बोलैगी।
सती सुहागिलओ ! तुम मुख धोओ
कै दूती बोलैगी।
एक भरी रे सरैया पानी की
रामचन्द्र एक तुम मुख धोओ
कै दूती बोलैगी।
लाला रिगरि रिगरि दाँतिन करी
तिहारे मुख में एक नागर पान,

तिहारे होटन रच्यौ ऐ तमोल
कै दूती बोलैंगी।

इस गीत में देवताओं को, सती सुहागिलों को मुख धोने के लिए सरैया भर दूध दिया गया है, और वर के प्रतीक रामचन्द्र को सरैया भर पानी। 'ब्याहुलरा' गीत में प्रातः गाय दुहने का उल्लेख हुआ है—

५—जौ तू री सुरही अति बड़ी
[1] धुइ ऐ गी जसरत दरबार
ब्याहुलरौ कहिऐ।
ऐ दुहि दीजौ कौसल्या के हात
ब्याहुलरौ कहिऐं।
ऐ दुहि दीजौ री रामचन्द्र दरबार
ब्याहुलरौ कहिऐ।
ऐ दुहि दीजै जी सीता के हात
ब्याहुलरौ कहिऐ।

'कूकुरा' और 'डौंमिनी' इस समय के प्रसिद्ध गीत हैं। चमारों का एक 'कूकुरा' इस प्रकार है :

अटरियनु रामचन्दरजी चढ़ि गए
जागौ जागौ ओ रजन के पूत। अब झरु लागिए कूकुरा
महमान अटरिया चढ़ि गए
जागौ जागौ ओ छिनारि के पूत। अब झरु लागिए कूकुरा

डौंमिनी का यह रूप है :

डौम पहाऊ झरि पकं
अब झरु लाग्यौ डौंमिनी।
ए बे करुए नींब। नींब निबौरिन झरि पके।
अब झरु लाग्यौ डौंमिनी।
"ए बेटा तौ कहिए जसरथ राव के
भए एँ करन दातार
घुड़िला तौ बकसौ जीन ते,
सौं खाँड़े झर फोरि।
खोलौ खोसा,

[1] स्वर विपर्यय से दूसरे वर्ण का प्राण पहले में मिल जाता है और यह शब्द 'घुइ' हो जाता है। [द+ह+उ=घु, ह+ई—ह=ई]

देउ पईसा
तुम लाला के बाबा औ
तुम बरना के ताऊ औ।"

इन प्रातःकाल के समस्त गीतों में से 'दांतिनि' महत्वपूर्ण मानी जाती है। यह प्रबंध-कथा से युक्त है। जगने, मुँह-धोने के उपरान्त 'दांतुन' करना ही चाहिए। पर 'वर' को प्रतिदिन प्रातः यह दांतुन करायी जाती है। यशोदा रुक्मिणी से दांतुन माँगती है, रुक्मिणी सुनती नहीं। कृष्ण माँ की सम्मान रक्षा के लिए रुक्मिणी को उसके मायके भेज देते हैं। घर सूना हो जाता है। फिर माँ का रुख देखकर वे उसे बुला लाते हैं। यह गीत इस प्रकार है:—

दांतिनि

[1]ए हरि जू भोर भयौ परभात
माइ जसोदा नें दांतिनि मांगी ऐ।
[2]ए हरि जू हेला तौ दिए दस-पांच
गरब गहीली नें[3] ऊतरु ना दियौ।
[4]ए मैया मेरी लाऊँ गंगाजलु नीरु
दांतिनि लाऊँ चोखे जार की
बेटा दांतिनि तुम करि लेउ,
हमरी तौ दांतिनि बिरियाँ टरि गई
ए मैया[5] कहौ[6] तौ देंउ निकारि[7],
कहौ खँदै[8] दऊँ धन के बाप कें
[9]ए बेटा काए कूँ देउ निकारि
काए कूँ भेजौ धन के बाप कें।

[1]—ए बेटा भइयें सबेरे की बार।

[2]—ए बेटा बोल दिए द्वै चार।

[3]—गहीलिनि।

[4]—'ए मैया मेरी' से 'बिरियाँ टरि गई' 'ये चार पंक्तियाँ किसी किसी जगह नहीं गायी जातीं।

[5]—माँ मेरी, [6] कहै, [7] डारूँ मरवाइ।

[8]—खँदाइ दूं।

[9]—यहाँ से "रच्यो ऐ बिबाहु" तक चौदह पंक्तियाँ किसी किसी जगह गायी जाती है।

ए बेटा जे तौ जनेंगी नन्दलाल,
नांउ चलै तिहारे बाप कौ।
ए बेटा जे धन जनिंगी धीअ
नातौ जुरैगौ काऊ गाम ते।
ए रुकिमिनि चों न करौ सोल्है सिंगार
तिहारे लिवैया बीरन आइऐ।
हरि जू कौन तौ आयौ लैनहार
कौन तौ आयौ छेता धरि गयौ।
ए रुकिमिनि बीर तिहारे लेनहार
नाऊ कौ छेता धरि गयौ।
ए हरिजू ब्याहु नाएँ सगाई कहारे करिंगे पीहर जाइकें।
रुकिमिनि तुम पीछें भए नन्दलाल उनकौ रच्यौ ऐ बिवाहु।
[1]धिमरा के उठि चोंन डुलिया पलान[2]
[3]रुकिमिनि तौ जाँगी बाप कें
[4]ए रुकिमिनि पौंहोंचीएं कोस पचास
जाय उतारीं उनके बाप कें।
ए हरिजू साँझ भई भोरु अँध्यार
किसन हरि मरकि बैठे देहरी
ए मा मेरी कहा गुनि भोर[5] अँध्यार[6]
का गुनि लरिका बारे अनमने।
बेटी[7] दीए बिन भोर अँध्यार
मा बिनु लरिका बारे अनमने।
ए धिमरा के उठि चोंन डुलिया पलानि
[8]रुकिमिनि लिवैया[9] हरि जू बे चले[10]।
हरि जू पौंहोंचे एं कोस पचास

[1]—नफर, [2]—सँभारी।
[3]—धन कूँ करिआओ धन के बाप कें।
[4]—ए रुकिमिनि....देहरीं, यह भी किसी किसी गीत में नहीं।
[5]—चोर, [6]—अँध्यारु।
[7]—ए बेटा मेरे।
[8]—धन के, [9]—लिवउआ, [10]—जातिएँ।

[1]जाइ मढारे हरि जू रुकिमिनि के बाप कें।
[2]रुकिमिनि बैठी ऐं ताई चाची बीच
हरि जू नें डारी पारसी
[3]रुकिमिनि उठि चोंन करौ[4] सिंगार
तिहारे[5] लिवौआ[6] हरि जू आइऐ
[7]ऐ ताई चाची रूठिनु कैसौ सिंगार
[8]बिड़रीनु कैसौ बुलामनों
ऐ रुकिमिनि मेरौ तेरौ जियरा[9] एकु
मानु तौ[10] राख्यौ जसोदा मायकौ[11]।

'दाँतिन' का गीत बड़ा होते हुए भी भावपूर्ण है। इसी प्रकार एक प्रबन्ध में 'तुलसी' के बिरवा के आदर का वर्णन है, पर यह आदर इसलिए है कि तुलसी-पूजा से हरि मिलेंगे। हरि आते हैं, उनका आदर-सत्कार होता है। इस सत्कार का गीत विस्तारपूर्वक वर्णन करता है। हरि के साथ उसे हरि की गोपी को सोने का अवसर भी मिलता है, पर प्रातः उठ कर देखती है कि कृष्ण लुप्त हो चुके हैं—गीत इस प्रकार है :

ऊँचौ रे चौरौ चौकड़ी
हींगुर ढोरी ऐ ब्यारि
तुलसी कौ बिरुला आदरु ऐ
जे हर आए पाहुने कहा लै रे आदरु लेंउ
चन्दन चौकी डारूँ बैठना दूध पखारूँगी पाँइ।
तुलसी कौ०

---

[1] मरिकें बैठे हरिजू देहरी।

[2] यहाँ से दो पंक्तियाँ उक्त गीत में नहीं हैं।

[3] एरी रुकिमिनि, [4] करउ।

[5] तुम्हरे, [6] लिवउआ।

[7] ए राजा बिड़रीनु कैसो सिङ्गार।

[8] रूँठिनु राजा कैसें मनावने।

[9] ऐ।

[10] जो।

[11] कहीं-कहीं एक पंक्ति और मिलती है : 'ए भैया खोलो क्यों न झँझन किबार, रूठीरे धनहुलि घर कूँ आइये।'

आले गीले गेहूँ रे पिसाऊँ
झलकनु आमें चून
गाढ़े से कपड़े छनामती
घूँसनु कनिक मड़ामती
लप झप पुरिया पुवामतो
घीअ में लेंती झकोरि। तुलसी कौ०
घीअ में माखी परि गई
पापर लगि गौ दोस। तुलसी कौ०
घिअ मैं ते माखी लै लई
पापर लीए फटकारि
सोरन थार परोसती दही ऐ कटेंमा भूरी भैंसि
मोरछलीन कौ बीजना गढ़ मथुरा कौ थारु। तुलसी कौ०
जेंऔ जसोदा के लाड़िले, अँचरन ढोरूँगी ब्यारि
जेंए रे जूठे उठि चले सोइबे कूँ ठौरु बताइ
ऊँची अटरिया ईंट की दिवल बरै छछिआइ। तुलसी कौ०
सोमत सौए द्वै जनैं, धरि गलबइयाँ हाथ।
सोमत सोए द्वै जने, जागि परूँ तौ हत नाँइ। तुलीसी कौ०
जौ हरि ऐसी जानती, अँगना में बमती खजूरि।
ग्वा पै चढ़ि हरि जू ऐ देखती, लगते बसत एँ कै दूरि। तुलसी कौ०
जो मोइ गावै सुधारि कें, ब्याकी सदा सुधरी होइ
जो मोइ गावै बिगारि कें, ब्याको सदा बिगरी होइ। तुलसी कौ०

रतजगे के गीतों की यह साधारण रूप-रेखा यहाँ देदी गयी है। यों तो इस अवसर पर अगणित गीत होते हैं; पर उनमें से प्रमुख यहाँ दिये गये हैं। ये प्रायः गीत सर्वत्र प्रचलित हैं। रतजगे के इन गीतों के उपरान्त विशेष अवसरों के फिर कुछ ही विशेष गीत मिलते हैं। तेल. हरदी, मरुअट, आरता ये अनुष्ठान प्रायः प्रतिदिन ही बरात चलने के समय तक होते रहते हैं। इनमें तीन बातों का उल्लेख रहता है, तेल, हरदी, मरुअट आदि वस्तु कैसी हैं? इसमें सन्देह नहीं रह सकता कि यह लोक-कवि उस वस्तु को अपनी ज्ञान-सीमा के अनुसार सर्वोत्तम बतायेगा। तेल एक चमेली का है, लहरा हरदी (चमारों के एक गीत में) है। दूसरी बात यह कि कौन लगा रहा है? तीसरे किसके लगा रहा है? बहुधा लगाने वालों के तो

नाम अथवा नाते दिये जाते हैं, जिन के लगाया जाता है उसका भी नाम लिया जाता है, पर इसमें बहुधा प्रतीक नामों से काम ले लिया जाता है। वर के प्रतीक बहुधा राम या कृष्ण होते हैं, कभी कभी लक्ष्मण भी आ जाते हैं। कहीं कहीं तोता या शुक या सुअना भी इसी उपयोग में आता है। इसके साथ ही इन गीतों में भूषा की वस्तुओं का भी उल्लेख होता है।

'लाड़ी' विवाह के विविध गीतों में से एक विशेष गीत है। लाड़ी एक नहीं अनेक हैं। इनका प्रधान विषय है 'वरनी' का वर्णन। 'वरनी' का वर्णन विविध रूपों में किया गया है। कुछ में वर-वरनी का पूर्वानुराग भी है। वरनी बाबा की 'फुलवार' में फूल बीनने जाती है। साजन का लड़का आकर उसे पिछौरा में ढँक लेता है। यहाँ वरनी कहती है बिना विवाह हुए नहीं चलूँगी। इसी सम्बन्ध में वह अनेकों वैवाहिक संस्कारों का नाम ले देती है—"जब मेरी घर कौ बाबुल लगुन सँजोवै तब रे चलूँ तेरे साथ रे"। कहीं यह 'लाड़ो' (वरनी) पिता के छज्जे पर बैठी केसरिया वर की बाट जोह रही है। कहीं शिव-पारवती के विवाह का व्यंग्य-वर्णन आ जाता है "गोरौ रूप सरूप भिखारी कैं चौं दई"। किसी गीत में लाड़ी के रूप-सरूप का वर्णन है: "कैनौरे लाड़ी गढ़ी रे सुनार कै सांचे में ढारिये।" वरनी कहीं कहीं तो इतनी स्पष्टवादिनी हो गयी है कि गर्व से बाबा ताऊ से कहती है कि "ए सोने को कुढ़िल गढ़ाओ मेरे बाबा ताऊ तेरे सजन पखारेंगे पाँय।" कहीं लाड़ी के हीरा-पन्ना जड़े घूँघट का उल्लेख है, कहीं लौंगों के गलीचे का, जो इत्र की सुगन्ध से सुवासित है। कहीं लाड़ो के आभूषणों और शृङ्गार की बहार का। कहीं लाड़ी के लिए वर ढूँढ़ने की परेशानी का चित्र है। मा अथवा दादी का अपनी लाड़ी के लिए मोह भी कम नहीं मिलता। कहीं तो वह कहती है जुआ में सब हार लिया ठीक रहा, पर मेरी बेटी क्यों हारी। एक में वह कहती है "ये लाड़ो मोइ बहुत ही प्यारी कहौ तौ राखूँ दुबकाइकें।" वरनी के लिए वर ढूँढ़ने की विकलता में बाबा को नींद नहीं आती। वरनी बाबा से कहती है—बाबा सुघड़ वर ढूँढ़ना, "चन्दा से वरु ऊजरे तरैया वरु झिलमिले, उनकी प्रेम मुरकि रही जुलफ़, सुघड़ वरु ढूँढ़ियौ।" वरनी लाड़ी को यह भी चिन्ता है कि यहाँ तो चारों ओर आम, महुआ, खजूर के पेड़ हैं दूल्हा कैसे

आयेगा ? उसे आश्वासन दिया जाता है कि ये सब कटवा दिये जायँगे। एक गीत यह है :—

"तिहारौ तौ बाबुल सँकरौ गिरारौ मेरी सोंदल हथिनी लुभ्याइगी[१]
अपनौं गिरारौ लाड़ो फेर चिनाऊँ चन्दन करूँ छिड़काव
तेरी सौंदल हथिनी यों समाइगी

इस गीत का एक रूप यह भी मिलता है—

"तिहारौ तौ दगरौ बाबा सँकरौ ऐ
मेरी हथिनी कौ दलन समाइऐ
दगरौ तौ बेटी मेरी फेरि चिनाऊँ
तिहारी हथिनी कौ दलहु समाइए
जापै बैठिकैं वरना आमैं
उनकौ दल न समाइए।..........आदि।

विवाह के अवसर पर जो स्त्रियाँ या महमान घर पर आती हैं, वह यही गीत गाती हुई घर में प्रवेश करती हैं।

लाड़ी या वरनी की भाँति ही वरना के गीत होते हैं। ये वरना कहलाते हैं। ये भी कितने ही हैं। इनमें कहीं तो वरने के रूप-रङ्ग, नाज़-नखरे का वर्णन मिलता है, कहीं उसके वस्त्र-आभूषणों का—उसके सिर पर ककरेजी चीरा, पेचों में हीरा-पन्ना, कान में सच्चे मोती, बालों में हीरा, पन्ना, गले में सोने का तोड़ा, हाथों में सोने का खड़ुआ, कंकरण, अङ्ग में केसरिया जामा, पैरों में मखमल की जूती, कर में नीला घोड़ा, साथ में भाइयों की जोड़ी, यह है उसकी एक झाँकी। कहीं वरना से वरमी की बड़ी बड़ी माँगें हैं—वरना फूल बीन लाना, सन्दल लाना, तवाइफ लाना, आभूषण लाना;—कहीं वरना बागों में बाज उड़ा रहा है; कहीं वरना भागा जाता है, लोगों से पुकार कर कहा जा रहा है पकड़ना। यह किसी की ढाल-तलवार ले गया है, किसी की चूँदरी लेगया है; कहीं वरना की गुही चोटी के सौन्दर्य का वर्णन है। किसी गीत में वरनी वरना की गलियों में चन्दन छिड़कने को प्रस्तुत है। एक गीत में वरना से वरनी कहती है कि तुम्हारे घर में किसी का भरोसा नहीं। इस प्रकार 'वरना' गीतों में विविध भाव हैं।

इन गीतों के साथ 'सेहरा' तथा 'घोड़ी' भी गाये जाते हैं।

[१] स्पष्ट ही यह भूल है। यहाँ 'न समाइगी' पाठ होगा।

'सेहरा' तो मुकुट (मौर) बाँधने के समय होता है। अथवा 'घुड़चढ़ी' के समय। 'घोड़ी' के गीत भी विविध हैं। एक में घोड़ी नरवरगढ़ से आयी है। उसकी चाल सुन्दर है। उसकी विविध आवश्यकताओं का उल्लेख है—गीत यों है :

घोड़ी नरवरगढ़ से आई लाल।
वाके बाबा रहस बुलाई लाल॥
घोड़ी की चाल सुहावनी।
घोड़ी बँधी उसारे।
बारे बरना की सेज तिवारे॥
घोड़ी की चाल सुहावनी॥
घोड़ी घूँघुरियाँ ररकावै।
बारे बरना चाव छुड़ावै॥
घोड़ी की चाल सुहावनी।
घोड़ी माँगै अगारी पिछारी।
बाके बाबा बट नहिं जानें लाल॥
घोड़ी की चाल सुहावनी॥
घोड़ी माँगै चना कौ दानों।
बाकी दादी दर नहीं जानें लाल॥
घोड़ी की चाल सुहावनी॥

किसी में बिदकनी घोड़ी का उल्लेख है, रंग भरी घोड़ी भी आयी है, घोड़ी कैसे आयी, कैसे खरीदी, किस से उसका सत्कार हुआ—"घोड़ी नीरु गो नागर पान चना के खेत में। घोड़ी हरी ऐ चना की दारि कटोरा दूध के।"

बारौठी के गीतों में प्रायः गाली होती है, जिसमें या तो कारी माता के गोरे पुत्र की समस्या खड़ी की जाती है, या बूढ़े वर का उल्लेख होता है, या वर के स्वयं काले होने का। कुछ गीतों में बारौठी पर दिये गये सामान की भी सूची दी जाती है।

भाँवर के गीतों में से पट्टे पर बैठने के गीत में शुक को संबोधन करके कहा गया है हरे हरे बोलो, लाड़ी चौक पर बैठी है। फिर क्या क्या तय्यारी की गयी हैं इसका भी वर्णन कर दिया जाता है। भाँवर के समय के एक गीत में हरे गोबर से आँगन लीपा गया है, मोतियों के चौक पूरे गये हैं, अमृतघट लाकर मरुए की डार रखी गयी

है। लौंगों से गूँथ कर पावन माँढ़वा (मंडप) तय्यार हुआ है। वहाँ सीता-राम की भाँवरें पड़ रही हैं।

'कंकन गाँठि खुलै हति नाएँ, सखियाँ हँसै दै दै तारी।
कंकन गाँठि खुलै हति नांइ एक माइ दुऐ बाप'॥

कहीं कहीं कंकण वर के घर पहुँच कर खुलता है। यहाँ भाँवरों के समय ही खोलने का उल्लेख हुआ है।

भाँवर पड़ते समय प्रति पद पर गीत में यह संकेत किया जाता है :

"मेरी पहली भाँवरि ऐ तौऊ बेटी बाप की।"

इसी प्रकार छटो भाँवरों तक कहा जाता है। गिनती छह तक हो जाने पर सातवीं भाँवर पर कहा जाता है :

'मेरी सतई भामरि ऐ भई बेटी सुसर की'।

घीआवाती के गीत में तो गाली ही रहती है। यथार्थ में विवाह में 'गारी' का साम्राज्य रहता है। ये गालियाँ व्यंग-पूर्ण भी होती हैं। अर्थ-गंभीर भी, श्लील भी और अश्लील भी। ये गालियाँ प्रायः सभी अवसरों पर गायी जाती हैं। पर भोजनों के समय इनका विशेष उपयोग होता है। ज्यौंनार भी एक गीत है। यह भी भोजनों के समय गाया जाता है। ज्यौंनार में भी गाली हो सकती है। गाली का व्यंग-रूप तो वह है जिसमें अभिप्रायः तो प्रशंसा का होता है पर पूर्व पुरुषों की बुराई स्पष्ट शब्दों में कही जाती है—उदाहरण के लिए यह 'गारी' ली जा सकती है जो कृष्ण-बलराम को दी गयी है।

गारी

तुम सुनौ कृस्न बलराम, हमारी गारी प्रेम भरी,
मथुरा में हरि जनम भयौ घूमे पहरेदार।
लागे तारे खूटि गए ऐं पहुँचे पल्ली पार,
धन्नि तिहारी जननी कूँ॥
पाँच बरस के भए कृस्नजी कौतुक किए अनेक,
लूटि लूटि कें माखन खाए राखी अपनी टेक।
करी कछू अच्छी करनी॥
भूआ तिहारी कुन्ती कहिऐं कहिऐं रूप अपार;
क्वारी नें तो लाला जायौ निकरी ऐ सौति छिनारि।
हमारी गारी प्रेम भरी॥

भैना तिहारी सुभद्रा कहिऐ कहिऐ रूप अपार,
क्वारी अर्जुन संग सिधारी, निकरी ऐ सौति छिनारि।
हमारी गारी प्रेम भरी ॥

रूप देखि हम सबुई सुखी भए कुंडलिपुर की नारि,
संग द्वारिका हमकूँ लै चलौ, लै चलौ घासीराम।
हमारी गारी प्रेम भरी ॥

अर्थ-गम्भीर वे गालियाँ हैं, जिनमें 'गाली' जैसी कोई वस्तु नहीं मिलती केवल गाली की तर्ज होती है, और गायी भी गाली के अवसर पर जाती है। ऐसी गालियों में या तो उपदेश, या कोई आध्यात्मिक निरूपण रहता है। ऐसी एक गाली उदाहरण के लिए यहाँ दी जाती है। यह कबीर के नाम की छाप से युक्त है। इसमें शरीर को महल का रूपक दिया गया है और ईश्वर-प्राप्ति के लिए सुरत के उपयोग की बात कही गयी है।

गारी

महलाइति उजरी रे, मुडेली जाकी अजब बनी।
भीतर मैली बाहर उजरी महलाइति जाकौ नाम,
बीच बीच जामें छिके झरोका चमड़े कौ हैरह्यौ कामु।
झरोका जामें नौ रे छिके।

सुरति बड़ी चंचल ऐ मन आवै जहँ जाइ,
पाँच भूत समधिनि के बेटा छतिया से रहे लिपटाइ।
बनी रे डोलै हीरा की कनी ॥महला०॥

नौ नारी तेरी संग की सहेली जागि रही दिन रैनि,
सोमत आपु जगै ना कबऊँ बिछुटि जाइ सतसंग।
जगाऐं ते नाँइ जगी ॥

सील सासु संतोसु सुसर ऐ दया-धरमु देवर जेठु,
सत्त की नाव धरम कौ ऐ बेड़ा, राम लगामें बेड़ा पार।
बीच में आपु धनी ॥

अमिरत कूआ सुरति पनिहारी, भरि भरि लाऔ पनिहारि
सत्तकी डोरि धरम कौ लोटा, राम लगामें बेड़ा पार।
बीच में आपु धनी ॥

कहँत कबीर सुनौ भाई साधो महलाइति जाकौ नामु,
जा महलाइति की करौ खोजना उतरि भौ सागर पार।
मुड़ेली तेरी अजब बनी॥

अश्लील गालियों का उल्लेख यहां नहीं किया जा सकता। वे अत्यन्त फूहड़ होती हैं। इनमें यौन-संकेतों की भरमार होती है, स्त्री और पुरुषों के गुह्य अङ्गों और उनकी क्रियाओं तक का निर्लज्ज उल्लेख रहता है। विविध वर्जित सम्बन्धों में सम्बन्ध दिखा कर गाली देना तो साधारण सी बात है। ये सभी जातियों और सभी वर्गों में मिलती हैं। किन्तु उदाहरण के लिये एक चमारों की गाली यहाँ दी जाती है। यह अश्लील नहीं, व्यंग्यपूर्ण है, पर ब्याज निन्दा नहीं।

गोरी के महल साठि गज ऊँचे रसिया कैसें जावैगौ
मारि मारि चन्टी रसिया चढ़ि गए जाइ छुए जोवन पै।
चारों ओर पलँग के डोलै, सोइ गई सोरठि प्यारी। राम०
चतुर आँक अंचर पै लिखि दए सूरति लिखि दई न्यारी।
भयौ सबेरौ सोरठि जागी जल कौ लोटा लाई
रिगड़ि रिगड़ि दारी मुखड़ा पोंछे अंचर ते मुख पोंछै
कै कोई धसि गयौ, कै कोई छलि गयौ, कै कोई छलिया लै जाइगौ
मेरे महल में एंड़ी न छेंड़ी कहाँहैकें घुसि आयौ राम रंग बरसैगौ

माँड़वे के नीचे जब दावत होती है तो कहीं कहीं 'करवलिया' नाम की गाली गायी जाती है। वह करवलिया यों है :—

करवलिया—[माड़वे की पाँति के समय का]

करवलिया री करवलिया
जे कौन बड़े की ऐ पाँति
महोवरि मेरी करवलिया
एक बो कौन सी मानिक पाँति
महोवरि मेरी करवलिया
बसुदेव बड़े की ऐ पाँति
महोबरि मेरी करवलिया
अर्जुन मानिक पाँति
महोबरि मेरी करवलिया
कौनें सोहै करवलिया रे करबलिया
कृस्न के हाथ सोहै करवलिया रे करबलिया

बूरौ परोसै करबलिया
सागु परोसै करबलिया
ना जानूँ रे कौन बड़े की ऐ पाँति
ए बे भैया बैठे गोंछ मरोरे
पातरि परिगे ओरन छोरे
भैया बैठे कुहननि जोरि
भैया जैयें गोंछ मरोरि

इन विधानों के उपरान्त विवाह में होने वाले सांस्कारिक गीत बहुत नहीं रहते। उनमें भी प्रायः संस्कारों का स्थूल उल्लेख रहता है। क्या संस्कार है, कौन करा रहा है, कैसे कर रहा यही दो तीन बातें इन गीतों में साधारणतः मिलती हैं। पलका के गीत में जौ बोने का गीत प्रधान है, इसमें मण्डप के दान की वही प्रशंसा है जो गङ्गा में स्नान की। यह गीत इस प्रकार है:—

पलिका होने के समय का गीत

माइलि हात गड़उरा सोहै, बाबुल कुस की डारन हो।
दादी हात गड़उरा सोहै, बाबा कुश की डारन हो॥[1]
मड़हे तर तौ जौ बओ, भई ऐ धरम की बारन हो।
काए के कारन जौ बए, काए कूँ हरे हरे बाँस॥
धर्म के कारन जौ बए, बेटी कौ लीयौ कन्यादान।
मड़ए कूँ हरे हरे बाँस, जा कारन बाँस बबाइऐ॥
मड़ए के नीचे गङ्गा बहति ऐ, न्हायौ जाय तौ न्हायलै रे धरमी।
बेटी चलीं घर आपने।

विदा करते समय का गीत मार्मिक है। उसमें बिदा होती लड़की पिता, भाई तथा माँ की विविध द्रावक मनोवृत्तियों का चित्र दिया है। वह गीत भी यहाँ पूरा उद्धृत करना उचित होगा—

औरे रे कौरे गुड़िया ओ छोड़ी।
रोमत छोड़ी सहेलीरी॥

---

[1] कहीं-कहीं ये पंक्तियाँ भी मिलती हैं :—
"धीय्र को दान जमैया ऐ दीजै।
गाइ कौ दान पुरोहित दीजै॥"

अपने बबुल को देस छोड़्यौ।
अपने सुसर के साथ चली ॥
लेउ बाबुल घर आपनो।
छोटे बिरन पकर्यौ रथ कौ डंडा ॥
हमारी बहन कहाँ जाइ।
छोड़ौ बिरन मेरे रथ कौऊ डंडा ॥
अपनी पराऐ पराई अपनीं।
जे कलियुग व्यौहार ॥
फिर चौन बोलै दारी सौंन चिरैया
देखूँ बबुल कौ देसु
अपनौ कुटुम लै उतरूँगी बाबुल
तिहारौ नगर सूवसु बसौ
छिअर पनारि घर बाबुल आये
माइल आई
माहे पै चितु जाइ।
फटि फटि रे मेरे हिया वज्जुर के
धीअरि जमैया तौ गयौ
घरुरी रित्यौ, अँगना रित्यौ,
मेरौ सब दुख रिति गयौ पेटु
मैं हा फिर नहिं जनमुङ्गी धीअ
मेरी धीअरि जमैया लै गयौ।
मेरौ घरुरी भर्यौ, अँगना भर्यौ
मेरौ सबु सुख भरि गयौ खेत।
मेरौ बेटा बहुए लै आइए
मैं तो नित उठ जनमूंगी पूत
मेरौ बेटा बहूए लै आइए

इन गीतों के साथ विवाह के गीतों की रूप-रेखा स्पष्ट होजाती है। इन गीतों के साथ 'खेल के गीत' भी अगणित हैं। उन गीतों में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। विविध विषयों पर ये गीत रहते हैं। नई तर्ज और नए विषय इसमें रह सकते हैं। खड़ी बोली के नए गीत भी खेल के गीतों में सम्मिलित किए जाते हैं। एक गीत में है :—

नई रे रसम बड़ी चलने लगी है।
पहले जमाने में कुर्ता फितूरी।
कमीजों पै सूटर झुकाने लगी है।

इस प्रकार नई फैशन और पुरानी फैशन का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है। किसी में पति से पृथक हो जाने की प्रार्थना है, किसी में विविध पदार्थों और वस्तुओं के उपयोग करने की है। शहर से कुछ वस्तुएं मँगवाने का भी उल्लेख मिलेगा। तात्पर्य यह है कि इन गीतों में विवाह संबंधी वर-कन्या विषयक बातों के अतिरिक्त अन्य स्त्री-मनोरथों के चित्र भी मिलते हैं। इन्हीं में कथा-प्रधान गीत भी गाये जा सकते हैं। खेल के गीतों में कोई भी गीत स्थान पा सकता है। इन खेल के गीतों में से एक कथा-प्रधान गीत जो प्रसिद्ध 'पूरनमल' की प्रचलित कथा से संबंधित है, यहाँ देना ठीक होगा। पूरनमल के पिता ने एक नया विवाह किया था। वह नई मा पूरनमल पर मोहित होगई। पूरनमल कैसे उसके समक्ष पहुँचे—इस घटना का उल्लेख करते हुए यह गीत आरम्भ होता है :

पूरनमल—

नई नई गेंद मेरे किन्नें मारी
सुनि बाँदी री ! सो चढ़ि कोठे पै देखि
किन्नें मारी जे नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी
सुनि रानी री ! तिहारी सौति के लाल
उन्नें मारी, नई नई गेंद उन्नें मारी
सुनि बाँदी री ! महलन लेउ बुलाइ,
कि पूछूँ बातें सबु बतियाँ
सो नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी
सुनि लाला रे ! महलन जल्दी आओ
तुमें तुमारी मौसी बुलावै
सो नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री आले गीले गेहूँरा पिसाइ
करिंगे जिनकी महमानी
गेंद किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री कै लबभवी पुरियाँ सिकाइ
सो लइ आ बाँधौ री

नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री धई ऐ कटैमा भूरी भैंसि कौ
बूरौ परसौ जी !
सुनि बाँदी री कै सोरनु थारु मँगाइ
कराऊँ जिनकी महमानी
सो नई नई गेंद किन्नें मारी।
सुनि लाला रे ! झटपट भोजन करि लेउ
अँचरा ते ढोरूँ तिहारी ब्यारिं
सो नई नई गेंद किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री कै अन्दर सेज बिछाइ
करूँ जाकी मन राजी।
सुनि मौसी री क ऐसे वचन मति बोलै
लगै मेरी महतारी
सुनि मौसी री लगै धरम की माइ
महल ते भाजूँ री
सुनि बाँदी री कै राजा कूँ बेगि बुलाइ
कराऊँ जाकी गल फाँसी
सुनि रानी री क राजा कचहरी के बीच
कहूँगी कहा जाइकें री
सो नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी।
लोहे के पिंजरा बैठ्यौ एक सुअना
हौलैं हौलें सुनि रह्यौ बात
बाँदी भाजि कचहरीनु जाउ
चलौ राजा जलदी ते
सुनि बाँदी री मेरी अँगिया चोली ऐ डारौ फारि
मेरे बारन देउ बखेरि
सुनि बाँदी री ! तेरी खाल काढ़ि भुस भरवाऊँ
बताऊँ सोई करियो री।
सुनि रानी री ! कै राजा महलन आये
कहौ कहा बातैं री।
सुनि राजा तेरौ पूतु दिमानौ
करी ऐ मेरी बेइजती

सो नई नई गेंद मेरें उन्नें मारी।
सुनि राजा रे कै सूरी देउ चढ़बाइ
करूँगी जबई भोजनियाँ
सुनि राजा रे अब सुअना बोल सुनाइ
लगतु मोइ डरु भारी
सो नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री जल्लादनु लेउ बुलाइ
कुमर कौ देखूँ नाँइ मुख
करी ऐ जानें मेरी ख्वारी
सो नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री जल्दी ते देउ चढ़बाइ
करी ऐ मेरी बड़ी ख्वारी।
सो नई नई गेंद मेरें किन्नें मारी।
२—सुनि बाँदी री पिंजरा ते लेउ निकारि
औ साँची बात ऐ दऊँ बताइ
सो नई नई गेंद जाकें किन्नें मारी।
सुनि बाँदी री कै उड़ि सुअना महलन बिच बैठ्यौ
राजा ऐ लेउ बुलाइ करूँगो ब्याते सब बतियाँ
सो गेंद इनके किन्नें मारी।
बाँदी चुपकें ते लाई बुलाइ
महलनु लै गई चढ़ाइ
सो नई-नई गेंद जाकें कौनें मारी।
सुनि राजा रे! तोता तुमें बुलावै
रानी न सुनि पावै रे
सुनि राजा रे तिरिया की बातनु आवै
सत्त तैनें कैसें जानी?
नई-नई गेंद जाकें किन्नें मारी।
सुनि सुअना रे दाख चिरोंजी दऊँ चुगबाइ
साँची देउ बताइ
सो गेंद जाके कौने मारी।
सुनि राजा रे! तेरे पिछवारे चौकु
गेंद सब खेलत ऐं

सो नई-नई गेंद् जाकें कौनें मारी।
सुनि राजा रे! रानी ठाड़ी महलन के बीच
सो राजा रे! मारथौ टोल गेंद् में
सो आँगन आइ परी
सो नई-नई गेंद् जाकें कौनें मारी।
सुनि राजा रे कै बाँदी दई भजाइ
पूरनमल महलनु लियौ बुलाइ
सुनि राजा रे जानें लई रसोई तपवाइ
थार लगवाइ दिए
सुनि राजा रे जानें अँचरा ते ढोरी ब्वाकी ब्यारि
सुनि राजा रे जानें सेज लई बिछवाइ
करी ऐ ब्वाकी भौतु ख्वारी।
सुनि राजा रे तेरौ कुमरु सतवादी
लगै मेरी महतारी
सुनि राजा रे बाँदी दई भजाइ
राजा ऐ लाऔ लिवाइ।
सुनि राजा रे जानें हाथई कौतुक लिए बनाइ
पूरनमल दोष लगाइवे कूँ
सो नई-नई गेंद जाकें कौनें मारी।
सुनि राजा रे हुकम ऐ वापिस लेउ
कहि रही कराऊँ तेरे गल फाँसी।
सुनि तोता रे सोने मढ़ाऊँ तेरी चोंचि
रूपे मढ़ाऊँ तेरी पाँउरिया
सुनि तोता रे सौने कौ पिंजरा गढ़ाऊँ
चुगाऊँ तोइ दाखरिया
गेंद् जाकें नाँइ मारी।
तैनें मेरौ बंसु बचायौ,
बोलि रह्यौ सतु बानी
गेंद जाकें नाँइ मारी।
सुनि तोता रे पूरनमलु जती कहावै
दोसु जानें लगवायौ
गेंद जाकें नाँइ मारी।

सुनि तोता रे पिंजरा लै लियौ हात
पहलें तौ बाँदी ऐ मरवाऊँ
सुनि बाँदी री ! खाल काढ़ि तेरें भुस भरवाऊँ
झूँठ तू चों बोली
चाँइ राजा मारौ चाँइ राजा छोड़ौ
लगै मोइ डरु भारी
गेंद जाकें नाँइ मारी
सुनि राजा रे तोता की बानी सबु साँची
हमारी सबु झूँठी
पूरनमलु कचौ दूधु
दूध में जामुन दीयौ
सुनि बाँदी री तेरे बचन परमाए
तेरी जानि ए दुंगो बकसि
गेंद जाकें नाँइ मारी
सुनि बाँदी री सो नगर ऐ लेउ बुलाइ
बताऊँ जाकी सब बतियाँ
सुनि राजा जी के महलन जाऔ उतरि
बुलाऊँ मैं तौ सब नर-नारी
गेंद जाकें नाँइ मारी
सुनि राजा जी ! ठाड़े दुआरे लोग
हुकमु सुनाऔ जी !
हात जोरि कें राजा बोले—
परियौ मो पै औखा भारी
गेंद जाकें नाँइ मारी
मेरौ कुमरु गेंद जो खेलै
महलनु आइ गई गेंद
गेंद जाकें नाँइ मारी।
कुमरु मेरौ महलनु लियौ बुलाइ
करी ऐ खातरि भारी।
गेंद जाकें नाँइ मारी।
मेरौ कुमरु सतवादी, उलटौ दोसु लगावै
गेंद जाकें नाँइ मारी।

भाई कचहरी ते लीयौ बुलवाइ
बनावै मोते झूँठी बतियाँ
सुनि राजा रे तेरौ कुमरु दिमानौ
करी ऐ महलन जोरी ।
गेंद जाकें नाँइ मारी ।
सुनियों नर औरु नारी
करावै मोपै गल फाँसी
इक तोता पिंजरा बिच बैठ्यौ,
हुकमु सूली कौ दै दीयौ,
गेंद जाकें नाँइ मारी ।
उड़ि सुअना महलन बिच बैठ्यौ
सुनाइ साँची बानी ।
गेंद जाकें नाँइ मारी ।
जानें दीयौ ऐ बंसु बहोरि,
गेंद जाकें नाँइ मारी ।
भाई जल्लादनु लेउ बुलाइ, नैन जाके मँगवाऊँ ।
बन बिच देउ मरबाइ, गेंद जाकें नाँइ मारी ।
सुनियों नर और नारि, दोसु मोइ मति दीजों ।

यह 'पूरनमल' की कथा को बहुत संक्षेप में ही समाप्त कर देता है। 'पूरनमल' से असंतुष्ट होकर उसकी विमाता ने उसे फाँसी की आज्ञा दिलायी, पर प्रत्यक्ष द्रष्टा तोते ने समस्त बात सच-सच बताकर रहस्य खोल दिया, और पूरनमल को बचा लिया। यह घटना साधारणतः लोक-प्रचलित 'पूरनमल' की कहानी से भिन्न है। लोक-प्रचलित कहानी के साधारण रूप में पूरनमल को कुँए में डलवा दिया गया है। फिर गुरु गोरखनाथ आकर उसे जीवित करते हैं, और वह उसका भक्त हो जाता है। इस खेल के गीत में कवि वहाँ तक नहीं गया, तोते के द्वारा रहस्य-उद्घाटन करके उसने पूरनमल को बचा दिया है।

यहाँ एक और गीत देने का लोभ-संवरण नहीं होता। यह गीत कृष्ण के छल का है, और साधारणतः यह 'छद्म' भी खेल के गीतों में गाया जाता है।

सासुलि रोकै, बहू हठीली, दधि बेचन मति जाइ गूजरी ।
सिर पर घड़ा, घड़ा पै गगरी, दधि बेचन निकरी गूजरी ।

गोकुल बेचि महावन बेची, मथुरा बेची सबु नगरी ।
बीच में कान्हा गौएँ चरामें गहि लई बाँह सम्हरि कें जी ।
तोरि लाश्रौ पत्ता, बनाइ लेउ दौंना मीठौ दही चखाइ दऊँ जी ।
डार-डार पै कान्हा डोल्यौ एक पातु नहिं पायौ जी ।
तोरि लाश्रौ पत्ता बनाइ लाश्रौ दौंना, मीठौ दही चखाइ गई जी ।
साँझ भई दिन गयौ मुँदन कूँ, कान्हा नें गौएँ हाकि दीनी जी ।
गौऊ हाँकि खिरक में करि दईं कान्हा नें तन-मन डारयौ जी ।
टूटी सी खाट, पुराने से बन्दन, श्रोढ़ि लई पीतम सारी ।
माइ जसोदा न्यों उठि बोली श्राजु कुमर मेरे कहाँ रहे जी ।
ढूँढ़ति ढूँढ़ति गई खिरक में, खिरकनु कान्हा सोइ रहे जी ।
कै बेटा तोइ जुर ते जाड़ौ कै तेरी दूखैं पीड़री ।
नांइ मैया मोइ जुरते जाड़ौ, नांइ दूखें मेरी पींड़री ।
अपने कान्हा कूँ चारि बिहाइ दऊँ, द्वै गोरी द्वै कारी जी ।
चारिनु काटि कुश्रा में दै दै मेरौ मनु लैगई बुही गुजरी ।
ढूँढ़त ढूँढ़त कान्हा पहुँचे गुजरी के जे देसनु जी ।
मेरी बहिन ते न्यौ जाइ कहियौ, द्वार पै ठाड़ी तेरी बेंदुली ।
नाँइ मामा की नाँइ फूफी की बहिन कहाँ ते श्राई जी ।
चलौ बहिन दोनों हिलिमिलि लिंगे, मिललें दोऊ भैंना जी ।
कहँत सुनत भैंना लाज लगति ऐ, रोजु तेरौ भैंना मरदानों ।
छोटी सीनें भैंना पौहे घेरे, रोजु बहिन मेरौ मरदानौ ।
चलौ बहिन दोऊ हतमुख धोवें, धौमें दोऊ भैंना जी ।
कहँत सुनत भैंना लाज लगति ऐ पाँइ बहिन तेरे मरदाने
छोटी सी भैंना विधवा है गई, पाँय बहिन मेरे मरदाने ।
चलौ बहिन दोऊ रोटी जैमें, जैमें दोऊ भैंना जी ।
कहँत सुनत भैंना लाज लगति ऐ कौरु भैंन तेरौ मरदानौ ।
छोटी सी की मैया मरि गई, सिख न दई काऊ श्रौरन नें ।
जीजा की खाट खिरक में लै दै दोऊ भैंना सोमिंगे ।
श्राधी सी राति पहर कौ तरकौ कान्हा नें छल बलु खेल्यौ रे ।
जो कान्हा तुम छल बलु खेलौ करि लेउ मोर अँधारयौ जी ।
चन्दा तौ सिरहाने रखि लेउ सूरज रखि लेउ पाँइत जी ।

विवाह के संस्कारों के गीतों श्रौर वार्त्ताश्रों का यह वर्णन यहाँ समाप्त होता है ।

ब्रज में अन्य संस्कारों के लिए विशेष गीतों का प्रचलन नहीं है। ऊपर जिन गीतों का उल्लेख हुआ है, मांगलिक अवसरों पर उन्हीं का उपयोग हो जाता है।

मृत्यु-संस्कार एक विशेष संस्कार है, जो मनुष्य जीवन का अन्तिम-संस्कार है। यह विषाद और शोक का अवसर होता है, बहुधा। जब किसी अत्यन्त वृद्ध की मृत्यु होती है, तो यह इतने दुःख का अवसर नहीं रह जाता। ऐसा व्यक्ति बड़ा सौभाग्यशाली समझा जाता है और उसका विमान निकाला जाता है।

ऐसे अवसर पर साधारणतः गीतों का विधान नहीं मिलता। पर ब्रज में ही चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर जो स्त्रियों का रुदन होता है, वह संगीत-गति के साथ होता है। संगीत-गति का अभिप्राय किसी वाद्य-यन्त्र के साथ होने का नहीं है। इस रुदन में भी एक लय मिलती है, और अभिप्राय भी होता है। इसमें प्रायः मृत पुरुष के विविध प्रिय पदार्थों का नाम ले-लेकर शोक प्रकट किया जाता है। सामाजिक रूप से मृत्यु के अवसर पर इस प्रकार लय से सधा हुआ, संगीत जैसा रुदन अन्यत्र नहीं मिलता। और और जगहों में समस्त संस्कार विषाद की छाया में होता है। हाँ अन्त में कहीं-कहीं कोई गीत भी गा लिया जाता है। ऐसा एक गीत है :—

मरण-गीत

काए के कारन जौ बए, और काहे के हरे हरे बाँस।
हरि रे किसन कैसें तिरयऔ।
लाला धरम के कारन जौ बए, मरन के काजें हरे हरे बाँस।
हरि रे किसन कैसें तिरयऔ।
बेटीन ब्याही आपनी, मढ़हे न लीयौ कन्यादान।
हरि रे किसन कैसे तिरयऔ।
साजन न झुलमे द्वार,
हरि रे किसन कैसें तिरयऔ।
काए के कारन गऊ दई, काए के दीए गउ दान।
हरि रे किसन कैसें तिरयऔ।
पार के काजे गऊ दईं, और तरन कूँ दए गऊ दान।
हरि रे किसन कैसें तिरयऔ।

मृत्यु के समय के विधि-विधान में भी विशेष लौकिक तत्त्व नहीं

होता। बात सीधी है। शोक में ऐसी विधियों के लिए कोई स्थान कहाँ हो सकता है? इस अवसर की रीतियाँ सूक्ष्म और सरल होती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण यों है:—

मृत्यु सुहागिल स्त्री की—

१—मरते ही—

१—महँदी
२—हरी चूड़ी
३—बेंदी-ईंगुर
४—नथ
५—चूँदरी

लाए जाते हैं। इन सबसे उसका शृङ्गार किया जाता है। काँसे के बिछुआ पहनाए जाते हैं। चूँदरी ऊपर डालते हैं।

२—छाती पर जौ का 'पिण्ड' बेटा की बहू, सास या अन्य कोई रखती है। एक पैसा भी।

३—यथा सम्भव कोई आभूषण नहीं रहने देते, सौभाग्य के चिन्हों को छोड़ कर।

विधवा की मृत्यु—

१—कोरी धोती पहनाई जाती है
२—दो चोली उसके बगलों में रखदी जाती हैं।
३—पिंड आगे रखा जाता है।

स्त्री वाले पुरुष की मृत्यु—

१—उसकी स्त्री के चूड़ी बीछिया फोड़कर उसके ऊपर रखे जाते हैं।
२—पिंड और पैसा रखते हैं।
३—लँगोटा आदि पहनाते हैं।

विना स्त्री वाले पुरुष की मृत्यु—

१—लँगोटा आदि पहनाते हैं।
२—छाती पर पिंड और पैसा रखते हैं।

गाँव बाहर जाकर—

१—लाश को उतार कर रखते हैं।

२—उसकी छाती पर रखे हुए पिण्ड को निकाल कर फेंक देते हैं।

३—यदि उसकी मृत्यु पंचकों में होती है, उसके साथ घर से चाकी की भिर ले जाते हैं। और गाँव बाहर उसे भी फोड़ जाते हैं।

४—जहाँ मुर्दा रखा जाता है वहाँ दो पैसे रख कर चले जाते हैं। इसके बारे में एक विश्वास प्रचलित है कि जमीन मुसलमानों की है। उनका यह कर है।

मरघट पर—

१—मरघट पर आकर लाश को नहलाते हैं।

२—चिता चुनकर उस मुर्दे को सुला देते हैं।

३—उसके शरीर पर से सब कपड़े उतार लिए जाते हैं और कण्डों से उसे दबा देते हैं।

४—मा-बाप को बेटा, यदि बेटा न हो तो स्त्री को मालिक दाग देते हैं।

५—जमाई को जाने का निषेध है।

६—आधी चिता जल चुकने पर लड़का सिर को फोड़ता है। और सिर में घी डालता है।

७—जल चुकने पर उस स्थान को नदी के जल से धोते हैं।

८—उस स्थान पर बाँए हाथ की छोटी उँगली से 'राम' लिख देते हैं। पैसा रखते हैं।

९—फिर दाग देने वाला मृतक को आवाज़ देता है।

१०—लौट कर गाँव के पास आकर नीम के पत्ते खाते हैं। कहीं कहीं जमीन से कंकड़ी उठाकर पीछे फेंक देते हैं।

घर आकर—

१—पहले दिन का खाना घर में रखे हुए सामान से नहीं बनता। सब सामान बाजार से खरीद कर लाया जाता है।

२—दाग देने वाला व्यक्ति जमीन पर कम्बल बिछा कर सोया करता है।

३—छौंक और हल्दी डालकर सामान नहीं बन सकता कड़ाही नहीं चढ़ती (नहान तक), प्रायः छिलकों सहित उर्द की दाल ही होती है।

४—प्रति दिन पहले गौ-ग्रास निकाला जाता है, बाँये हाथ से।

बरकटा नहान—

१—मरने के बाद बृहस्पति अथवा सोमवार को होता है अथवा कुटुम्ब में प्रचलित व्यवहार के अनुसार किसी भी अन्य दिन।

२—सब कुटुम्बी गाँव के बाहर जाकर एक कम्बल बिछाकर बाल कटवाते हैं।

३—चने खाए जाते हैं।

४—घर में उस दिन कढ़ी, बाजरा, चावल आदि बनाए जाते हैं।

५—बाल कटवा कर पीपल के पेड़ की डाल पर एक घड़ा टाँग देते हैं। उसमें एक छेद करते हैं। प्रतिदिन पानी भरा जाता है।

६—घर आकर सब उसी सामान को खाते हैं।

७—उसी दिन सब स्त्रियाँ नहाने जाती हैं।

८—सबके सिर में थोड़ी थोड़ी खल डाली जाती है।

९—एक मलरिया में सामान रख कर मृतक को खिलाने उसी पीपल के पास जाते हैं।

१०—लौटने पर घर उसे थोड़ा बहुत मीठा खिलाते हैं।

११—पहले स्त्रियों के आगे एक एक पत्ता रखा जाता है। उस पर थोड़ा थोड़ा सामान रखा जाता है। उसे पैर से दबा घर के पीछे फेंक आती हैं। इसे पत्ता फाड़ना कहते हैं।

१२—फिर सभी स्त्री पुरुष खाते हैं। पहला कौर बाँये हाथ से खाया जाता है।

१३—बचे सामान को फेंक दिया जाता है। बचाया नहीं जाता

सगर छाप—

१—कठौटी के नीचे रखते हैं—

१—राख: (छान कर)

२—उर्द की दाल राँध कर रखते हैं

३—एक रोटी रखते हैं

२—चार बजे सबेरे मृतक के फटे कपड़े में काले उर्द की दार, गुर की डरी, चून और टका बाँध कर भङ्गी के यहाँ देने जाते हैं।

३—कठौटी के नीचे—ऐसा विश्वास है—जिस यौनि में जन्म लेता है उसका निशान बन जाता है।

४—कभी-कभी गरुड़-पुराण की कथा कही जाती है।

ब्राह्मण भोजन—

स्त्रियों के बारह और पुरुषों के तेरह दिन पीछे ब्राह्मण भोजन होते हैं अथवा कुटुम्ब में प्रचलित नियमों के अनुसार अन्य किसी दिन।

मृत्यु के समय से नहान (स्नान) के दिन तक अशौच माना जाता है। यह अशौच या 'सूतक' समस्त कुटुम्ब को लगता है। ऐसे घर में सहानुभूति प्रदर्शन के लिए जो स्त्रियाँ जाती हैं, वे अपने घर में प्रवेश करने से पूर्व अपने हाथ मुँह धोती हैं, कुल्ला करती हैं और कोई वस्तु थोड़ी सी खा लेती हैं। तेरहवें या बारहवें दिन, जिस दिन ब्राह्मण-भोजन होता है, क्रिया (किरिया-करम) की जाती है। यह शास्त्रीय विधान से पंडित कराते हैं। तेरवीं तक किसी भिखारी को भीख भी नहीं दी जा सकती।

ब्रज में प्रमुख संस्कारों के सम्बन्ध की लोक-वार्त्ता का यह संक्षिप्त परिचय यहाँ समाप्त होता है।

इन पर दृष्टि डालने से एक बात तो यह स्पष्ट होती है कि ब्रज में विशेष महत्त्व जन्म और विवाह के संस्कारों का ही है। अन्य संस्कारों की ओर उतना ध्यान नहीं। अन्य संस्कारों की रूप-रेखा दो प्रधान संस्कारों की सामग्री से ही हो जाती है।

इस समस्त लोक-वार्त्ता में चार स्तर मिलते हैं—

१—अत्यन्त आदिम अवशेष।

२—घरेलू सभ्यता का स्वरूप।

३—पौराणिक गाथाओं की छाप।

४—विविध अनुष्ठानों का स्थूल उल्लेख।

अत्यन्त आदिम अवशेष इनमें बहुत कम रह गये हैं। एक-दो ही ध्यान देने योग्य हैं। जन्म-सम्बन्धी वार्ता में पहले तो 'वै' है। यह 'वै' शब्द ध्यान देने योग्य है। ठीक बच्चा पैदा होते समय 'वै' के गीत गाये जाते हैं। प्रश्न यह है कि यह 'वै' क्या है? लोकवार्त्ता में इसका कोई विशेष उत्तर नहीं मिलता। एक 'वै' के गीत में यह उल्लेख है कि तुम खाली कुम्हार के यहाँ जाओ, और भरी हमारे यहाँ आओ

कुम्हार का उल्लेख प्रतीकवत् हुआ है। कुम्हार साधारणतः प्रजापति (परजापति) भी कहलाता है। कुम्हार ब्रह्मा का प्रतीक है। इस गीत में 'वै' मातृत्व शक्ति का बोधक हो सकता है, जो 'विधाता' से सन्तान युक्त होकर घर आये। लोक-कहानियों में एक 'वैमाता' आती है। लोक-वार्त्ता में भी 'वै' माता कही गयी है। अबोध-शिशु जब कभी स्वयमेव हँसता है या रोता है तो यह विश्वास है कि वैमाता उसे हँसा-रुला रही है। शैशव में 'वैमाता' सदा बालक के साथ रहती है। यह वै शब्द 'वि' का रूपान्तर हो सकता है—तब वैमाता 'विमाता' का रूपान्तर माना जायगा। पर विमाता का ऐसा स्नेह माना नहीं जा सकता। यह शब्द 'विधिमाता' का ही रूपान्तर है। 'विधि' 'वै' में परिगणित हो गया है। विधि का अर्थ ब्रह्मा है। फलतः विधि-माता प्रजनन शक्ति का प्रतीक हुई। विधि का ब्रह्मा से अर्थ लेने पर यह शब्द वैदिक-संस्कृति से आया प्रतीत होता है। किन्तु 'विधि' में मातृत्व का आरोप, उसे माता रूप में ग्रहण करना भी क्या वहीं से लिया गया है? सप्त-मातृकाओं का भारतीय-शिल्प में बहुधा चित्रण हुआ है। ये प्रजनन और पोषण की शक्तियाँ हैं। किन्तु लोक में तो 'भू' ही प्रजनन माता मानी गयी है। मोहेन्जोदड़ो और हड़प्पा से मिले मूर्त-प्रतीकों में मातृ-योनि में से अंकुर का विकास दिखाया गया है। यही वास्तव में 'जननी' भू माता है। 'माता' का यह रूप प्राक् ऐतिहासिक है। यह 'वैमाता' कहीं वहीं से आयी है।

एक गीत में, जो जन्ति का ही गीत है, यह प्रसङ्ग उपस्थित होता है कि ननद ने एक बर्द्ध के मूत्र में हाथ पखार लिए तो वह गर्भवती हो गयी। उसके बर्द्ध ही उत्पन्न हुआ। इस गीत में भी एक अत्यन्त प्राचीन संस्कार जीवित दिखाई पड़ता है। वह संस्कार उस विश्वास से सम्बन्धित है जो यह मानता है कि गर्भाधान के लिए पुरुष की आवश्यकता नहीं। विद्वानों के मत से यह सिद्धान्त 'आत्मा' के पदार्थवादी दर्शन से सम्बन्ध रखता है।

भारत में विविध जातियों के बसने और उसके विश्वासों के विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

निवास का क्रम	जाति	उनके विश्वास
प्रथम निवासी	नैग्रिटो	१—पीपल वृक्ष की मान्यता

		२—आदिम शैश्न उर्वरत्व सम्बन्धी विश्वास
द्वितीय निवासी	प्रोटो-आस्ट्रेलॉड	१—नैग्रिटों के द्वितीय सिद्धान्त का प्रचलन
		२—टाटेम[1] का सिद्धान्त अथवा उसका बीज
तृतीय निवासी	भूमध्यसागर क्षेत्र से जिनका निकास है	१—शैश्न तथा मैगालिथिक
		२—जीवन-तत्व का सिद्धान्त

[यहाँ विद्वानों में कुछ मतभेद है। किसी-किसी के मत से मुण्डा लोग पहले आये, और वे प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड से भिन्न हैं तो—

तृतीय	मुण्डा	१—जीवन-तत्व का सिद्धान्त
चतुर्थ	भूमध्यसागर क्षेत्र से जिनका निकास है	१—जीवनतत्व के सिद्धान्त को पुनरावतार के सिद्धान्त में विकसित किया।
		२—महामाता (Great Mother) की पूजा।

[1]टोटेम एक विशेष शब्द है। टोटेम उस पशु, वृक्ष, पक्षी तथा मानवेतर वस्तु को कहते हैं जो किसी मानव वर्ग में विशेष प्रकार की मान्यता से मुक्त हो जाय। या तो उससे वह वर्ग अपनी उत्पत्ति मानता हो या किसी रूप में उसे अपना पूज्य मानते हों ओर उसके सम्बन्ध में विविध धारणायें प्रचलित हों। सन् १९०२ में एथनाग्राफी [मानव-विज्ञान] आफ इण्डिया के डाइरेक्टर श्री एच० रिजले ने इसकी यह परिभाषा दी है—

"टाटेमिज्म—एज हिदरटू आवजर्वड इन इण्डिया मे वी रिफाइण्ड एज दी कसटम बाइविच ए डिवीजन आव ए ट्राइब आर कास्ट बेअर्स द नेम ऑव ऐन ऐनिमल; ए ट्री, ए प्लांट, आर ऑव सम मैटीरियल ऑवजैक्ट, नेचुरल आर आर्टिफिश्यल विच द मेम्बर्स ऑव दैट ग्रुप आर प्रोहिबिटेड फ्रॉम किलिंग, ईटिंग, कटिंग, बर्निङ्ग, करीइङ्ग, यूजिंग, ऐटसेट्रा। द डिवीजन्स दस नेम्ड आर यूजुअली ऐक्सोगेमस ऐन्ड द रूल इज दैट ए मैन मे नॉट मैरी ए वोमन हूज टोटेम इज द सेम एज हिज ओन। द रिलीजस आस्पेक्ट, ऑव टोटेमिज्म, विच इज प्रामिनेण्ट इन आस्ट्रेलिया ऐण्ड ऐलसवेयर, इज जैनरली ऐवजैण्ट इन इण्डिया" मैनुअल ऑव ऐथनाग्राफी आफ इण्डिया।

[किन्तु आसाम, वर्मा और इण्डोचीन की जातियों में मंगोलों के दक्षिण प्रवास से पूर्व ही काकेशीय तत्व मिलता है जिससे उक्त समय से पूर्व ही भूमध्यसागर का प्रभाव सिद्ध होता है अतः—

तृतीय (जैसा सबसे पहले)	भूमध्यसागरीय	१—जीवन-तत्व के सिद्धान्त का विकास
चतुर्थ	मुण्डा (वर्बर-आक्रमणकारी)	आत्मा का पदार्थवादी सिद्धान्त
पंचम	[मेसोपोटामिया होकर] एशिया माइनर से व्यापारियों आदि के द्वारा आया हुआ धार्मिक तत्व	[इसने उर्वरत्व प्रजनन तथा आत्मा के पथार्थ-वादी संस्कार के स्थान पर निम्न स्थापना की] १—साकार देवता २—बलि-यज्ञ ३—आनुष्ठानिक पूजा ४—शैशव तत्व के साथ ५—देवदासी की प्रथा ६—ज्योतिष--वार्ता तथा आकाशस्थ पिंडों का सम्प्रदाय ७—पौरोहित्य-प्रथा
षष्ठम	आर्य	[इस जाति के विश्वासों[1] को विस्तार से यहाँ देने का अवकाश नहीं]

इस व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा का पदार्थवादी

[1] देखिए १९३१ की सेंसस रिपोर्ट।

दृष्टिकोण मुण्डा जाति की देन है। पर उक्त गीत में उल्लिखित यह गर्भ की स्थिति 'जीवन-तत्व' के सिद्धान्त से भी हो सकती है। उस दशा में यह तृतीय निवासियों के विश्वासों का अवशेष है। इस अवस्था में अभी मनुष्य-सन्तान-उत्पत्ति में एक तो कार्य-कारण परम्परा नहीं जान सके थे, दूसरे किसी भी पदार्थ के स्पर्श से गर्भ की भावना को संभव मानते थे।

विवाह के गीतों में टोटके का भाव तो बहुतों में विद्यमान है, विशेषकर घूरा-पूजने, बायबंद में, कोर उभकाने में तथा ऐसे ही अनेक कृत्यों में। घूरा पूज कर लौट कर आने पर वर या कन्या पर वार कर कुछ फरा फेंके जाते हैं। ये फरे आटे के बने होते हैं, इनके पाँच कौने निकले होते हैं, इस प्रकार ये मूलतः मानवाकृत्ति में होंगे। चार कोने हाथ-पैरों के द्योतक, और एक शिर का। ये अभिचार के अङ्ग माने जा सकते हैं। इस अवसर पर विविध मृत-योनियों का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे, अऊत, प्रेत, जरूले, पितर—एक गीत में तो ये सब यह कहते मिलते हैं कि हम भूखे हैं, हम नंगे हैं, और उन्हें सन्तुष्ट करने का आश्वासन भी दिया जाता है। विवाह के खेल के गीतों में एक और क्रूर अभिचार का उल्लेख हुआ है, किसी देवरानी ने पुत्र-कामना से अपनी जिठानी का पुत्र मार डाला। ऐसा करने का परामर्श उसे किसी सिद्ध ने दिया था। किन्तु रहस्य खुल गया और देवरानी को परिणाम भोगना पड़ा। इस प्रकार का अभिचार मध्य-काल में बहुत प्रचलित था, किन्तु गीत में इस घटना का जिस रूप में उल्लेख है उससे वह किसी नयी घटना को ही स्मरण कराता प्रतीत होता है।

जैसा ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है जन्म और विवाह के संस्कार में लौकिकांश सबसे अधिक रहता है। वैदिक अथवा पौरो-हित्य भाग बहुत कम। इन लौकिक व्यवहारों में टोने और टोटके भरे पड़े हैं। ऐसे प्रत्येक अनुष्ठान में हम उस धर्म का रूप देखते हैं जिसे नृ-विज्ञान वादियों ने 'ऐनिमिज्म' का नाम दिया है। ऐनिमिज्म को हिन्दी में 'भूतात्मवाद' कह सकते हैं। यह भूतात्मवाद समस्त धर्म का आदिरूप अथवा धर्म के आधार का आदि-पाद माना जा सकता है। भारतीय भूतात्मवाद के सम्बन्ध में यह व्याख्या समीचीन है; भारतीय भूतात्मवाद मनुष्य को ऐसा जीवन यापन करते मानता है जो प्रेत

मय शक्तियों तत्वों, प्रवृत्तियों, से आवृत हैं, अधिकांशतः स्वभाव में व्यक्तित्व हीन हैं, रूपहीन कल्पना है जिसका कोई चित्र नहीं खड़ा हो पाता तथा जिसका कोई निश्चित भाव नहीं बन सकता। इनमें से कुछ के अपने प्रभाव क्षेत्र होते हैं : एक हैजे की अधिष्ठात्, एक शीतला की, एक पशु रोगों की, कुछ पर्वतों में रहती हैं, कुछ वृक्षों पर, कुछ का सम्बन्ध नदियों, भँवरों, झरनों अथवा पर्वतों के गर्भ में छिपे अद्भुत तालों से रहता है। इनके द्वारा जो बुराइयाँ पैदा होती हैं उनसे बचने के लिए हमको बहुत सावधानी से इन्हें संतुष्ट करने की आवश्यकता होती है।

इन सब अनुष्ठानों में टोना व्याप्त रहता है।[1] टोना आदिम-धर्म का प्रधान मूल भाव है। इस टोने का रूप ब्रज के इन विविध संस्कारों में हमें स्पष्ट दीखता है। विशेषतः विवाह के बायबंद आदि में। आँधी, धूल-धक्कड़, अलाइ-बलाइ सभी को 'भूतात्म' मानकर उन्हें हानि से रोकने के लिए उन्हें बन्द कर दिया जाता है। ऐसा विविध तत्वों को अपने क्षेत्र में सबसे बड़ा भी माना गया है। इसकी साक्षी वह गीत है जिसमें यह कहा गया है कि इन दोनों में कौन बड़े हैं ? इन उल्लेखों में चारों ओर के प्रायः सभी पदार्थों का उल्लेख हो जाता है। जंति और विवाह के समस्त संस्कारों में यह टोना स्पष्ट और प्रबल रूप से देखा जा सकता है। इन गीतों में जो यौन-संकेत अश्लीलता नियमित रूप से मिलती है, वह भी टोने का ही एक रूप है। बौद्ध स्थापत्य में यह माना जाता रहा है कि बाहर नग्न चित्रों के देने से वज्र नहीं गिरता। यह आदिम टोने से सम्बन्ध रखता है।

इन गीतों में घरेलू सभ्यता के चित्र पद पद पर मिलते हैं। इनमें नन्द, भावज, सास, बहू, देवरानी, जिठानी, सपत्नी, बाबा, दादी, मा, चाचा, चाची, बाबुल, आदि के पारस्परिक अच्छे बुरे सम्बन्धों का उल्लेख हुआ है। ननद क्या माँगती है, माँ क्या माँगती है, वर क्या चाहता है, कन्या क्या चाहती है, इन चाहनाओं और माँगों को विविध रूप से इन गीतों में व्यक्त किया गया है। स्त्रियों की माँगों में बहुधा वस्त्र और आभूषणों का ही उल्लेख है। बहू का चित्र बहुधा अनुदार है। ननद नेग के लिए विशेष झगड़ती है। 'नरंगफल' नाम के गीत में सामन्त कालीन (दोहद)

[1] देखिये सर हरबर्ट रिजले लिखित तथा क्रुक संपादित 'दी पीपिल आव इण्डिया' का पृ० २३१।

चाह का चित्र है। 'नरंगफल' का पाना सरल काम नहीं। 'गर्भिणी' ने वह नरंगफल चाहा है, उस पर पहरा है, पर पति वहाँ जाकर फल तोड़ता है। गर्भवती के लिए चाहिये वह समझ कर उसे वह फल लाने की आज्ञा मिल जाती है। विवाह के गीतों में वैभव की चाह है।

पौराणिक गाथाओं की छाप की दृष्टि से 'राम' से अधिक कृष्ण आये हैं, जो उचित ही है। ब्रज में कृष्ण ही प्रथम आने चाहिये। ये भी राम और कृष्ण के रूप में नहीं आते वरन् यथार्थ नायक के प्रतीक की भाँति ही आते हैं। उनका पौराणिक व्यक्तित्व अत्यन्त शिथिल हो जाता है।

अनुष्ठानों के स्थूल उल्लेख का स्वरूप हम ऊपर प्रत्येक अनुष्ठान के साथ देख चुके हैं। किसी-किसी गीत में तो किंचित भी अवर्ण्य नहीं आ पाया। केवल उन बातों का बहुत ही स्थूल रूप से उल्लेख कर दिया है जो अनुष्ठान में होती है।

(इ) त्यौहार, व्रत, और देवी आदि के गीत

संस्कारों के गीत के उपरान्त त्यौहारों और व्रतों के गीतों का स्थान है। ये गीत भी अनुष्ठान के अङ्ग होते हैं। यों इन अवसरों पर अन्य गीत भी गाये जाते हैं। ये गीत प्रायः भजन होते हैं। ऐसे त्यौहार और व्रत जिन पर ब्रज में अनुष्ठान सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं, कम हैं। नीचे उन प्रमुख व्रतों और त्यौहारों का ब्यौरा दिया जा रहा है जो ब्रज में प्रचलित हैं। उनके सामने ही यह उल्लेख कर दिया गया है कि किस अवसर पर ऐसे गीत गाये जाते हैं—

मास—ब्रज-त्यौहार	वार्ता	अनुष्ठान
चैत्र—नौदेवी (नौदुर्गा) देवी के गीत		
वैशाख—अखतीज	घट तथा कुल्हड़ स्थापित किये जाते हैं। सीरे-फुलके से पूजे जाते हैं। चार मिट्टी के ढेल घट के नीचे लगाये जाते हैं। जितने ढेल भींगे उतने ही महिने वर्षा होगी।	
आसचौथ	कहानी होती है पट्टे पर चार औरतें मिट्टी से काढ़ी जाती हैं। गाज और जीभ की शक्ल	

			की पूड़ियाँ बनती हैं। घी और गुड़ से पूजा होती है।
ज्येष्ठ—	निर्जला एकादशी		व्रत रखा जाता है, कतीर, फल, पंखा और घड़ों का दान होता है।
अषाढ़—	धोंधा एकादशी		पाँच धोंधा पोतनी मिट्टी के, पाँच काली मिट्टी के, सीरा-फुलका से पूजे जाते हैं।
सावन—(श्रावण)	रक्षाबन्धन	सावन के गीत	राखी बाँधी जाती हैं। घरों में उगाये हुए गेहूँ की पौध बाँधी जाती है। सरमन द्वार पर काढ़े जाते हैं। सेमई-चावल से पूजे जाते हैं।
	हरियाली तीज	सावन के गीत	गौर बनायी जाती है। कारी लड़की पूजा करती हैं।
	हरियाली-मावस		किसान हल की पूजा करते हैं। भीत पर हलदी का चौक काढ़ा जाता है, उसमें हलदी के नाग रखे जाते हैं।
	नागपञ्चमी		दीवाल पर दूध में कोयला घिस कर नाग रखे जाते हैं। इनको पूजा होती है।
भादों	नागपञ्चमी		,, ,, ,,
	कृष्णाष्टमी		जन्माष्टमी भी रखी जाती है। साँपों पर कृष्ण बनाये जाते हैं।
	अनन्त चौदस	कहानी होती है	अनन्त बाँधे जाते हैं। मिट्टी से पट्टे पर एक आदमी का रेखा चित्र बनाते हैं। पूड़ी आदि से पूजा होती है।
	चट्टा चौथ	चट्टा के गीत	
कार	नौदेवी	देवी के गीत	न्यौरता बनाया जाता है प्रतिदिन गौर चढ़ाई जाती है।
	न्यौरता	न्यौरता के गीत	साँझी रखी जाती है।

	दशहरा		
	टेसू	टेसू के गीत	लड़के टेसू खेलते हैं।
	झाँझी	झाँझी के गीत	लड़कियाँ झाँझी खेलती हैं।
कार्तिक	कार्तिक स्नान	गीत तथा कहानी	पूरे महीने प्रातः स्नान किया जाता है। राई-दमोदर की पूजा होती है। गीत और कहानियाँ प्रतिदिन होती हैं।
	करवाचौथ	गीत, तथा कहानी	दीवाल पर करवा चौथ रखी जाती है। रात्रि में चन्द्र को अर्घ्य देकर भोजन होते हैं। उससे पूर्व कहानी सुनी जाती है। गौर भी बनाई जाती हैं। गौर और करवा-चौथ के चित्र की पूजा होती है। चावल के लेपन से करवाचौथ रखी जाती है।
	अहोई आठें	कहानी	दिवाल पर चित्र बनाया जाता है। उसकी पूजा होती है। चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाता है।
	दिवाली		दिवाली दूध और नारियल के खोपड़े के कोयले को मिला कर दिवाल पर रखी जाती है। उसकी पूजा होती है।
	स्याहू	गीत, कहानी	प्रातः गोबर का एक गोला रख लिया जाता है। उसमें सींकें लगादी जाती हैं। उसमें हल्दी में रंग कर रुई के फाहे लगा दिये जाते हैं।
	गोवर्धन		गोवर्धन गोबर के बनाये जाते हैं। रात को पूजा होती है और परिक्रमा दी जाती है।
	भैयादौज	गीत तथा कहानी	भूमि लीपकर, चौक पूर कर, गौर गोबर की बनायी जाती है। उसके हाथ पैर मुँह नहीं बनाते। उढ़ायी भी नहीं जाती। उसके सिर

पर 'आव' रखी जाती है। ये 'आव' रुई और कपास मिलाकर बनाई जाती है। उसे करवाचौथ के बचे ऐंपन में हलदी मिलाकर उस रुई और कपास को गुने की शक्ल का बना लिया जाता है। ये सूप में रखली जाती हैं, उसमें खील, बताशे, हल्दी का दिबला भी रहता है। गौर को भूमि पर गोबर का घर बना कर उसमें कटेरी के पत्ते बिछाकर रखा जाता है। हल्दी से पूजने वाली बायें हाथ के ऊपर साँतिया रख लेती हैं और चार आव व्याही दो आव कारी बायें हाथ से गौर पर चढ़ाती हैं। फिर कहानी होती है। कहानी हो जाने पर गौर हटादी जाती है। कटेरी पर लोटा रखा जाता है। उस हल्दी का साँतिया काढ़ा जाता है। लोटे के गले में हँसली डाल दी जाती है। उसमें बायें हाथ की छिगुनी उँगली डाल ली जाती हैं। फिर गीत गाये जाते हैं।

इसके उपरान्त हँसली पहन ली जाती है। एक धनकुटे पर पाँच जगह हल्दी के बन्ध लगा दिये जाते हैं। कटेरी और घर का गोबर बटोर लिया जाता है। द्वार पर जाकर बाँयी ओर जमीन पर कटेरी, गोबर, खील, बताशे, पूड़ी के टुकड़े डाल कर कूदते हैं। गीत गाते जाते हैं। फिर दिवाल पर पानी डाल कर 'कौरे ठंडे' कर दिये जाते हैं। वहाँ

	दरवाजे के दोनों ओर हल्दी से सॉंतिये बना दिये जाते हैं। लौटते समय स्त्रियाँ बधाया गाती हुई लौटती हैं।
अगहन—देवठान-गीत गाया जाता है।	जमीन पर एक लिपे-पुते स्थान पर आँगन के बीच में एक युग्म का रेखा-चित्र बनाया जाता है। उसे डलिया से ढँक देते हैं। समस्त आँगन चित्रों से चित्रित कर दिया जाता है। पुरुष रात्रि में देवताओं को जगाते हैं, उठाते हैं। उन्हें तपाया जाता है, गन्ने का रस पिलाया जाता है। पूजा जाता है।
पूष—	....
माघ—बसंत पंचमी	....
फाल्गुण— होली	घरगुली रखी जाती है। प्रतिदिन चून की टिकुलियाँ रखी जाती हैं। गोबर की गूलरी, ढाल, तलवार बनायी जाती है। उनकी माला बनाकर घरगुली पर रखी जाती है। होली की आग से उसे जलाया जाता है।
भैया दौज–कहानी, गीत	सारा पूजा विधान दिवाली की भैया दौज के समान, पर चौक गुलाल से पूरा जाता है और 'आव' गुलाल घोल कर उससे रँगी जाती हैं।

ऊपर सार्वजनिक महत्त्वपूर्ण त्यौहारों और व्रतों का उल्लेख हुआ है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेकों स्थानीय त्यौहार-व्रत भी मिल जाते हैं। उनका उल्लेख यहाँ नहीं हो सकता।

चैत्र में देवी का त्यौहार सबसे प्रधान है। इसका बड़ा महत्व

भी है। शीतला माता की पूजा भी इसी महिने में होती है। विविध देवियों के मन्दिरों की जात (यात्रा) भी इसी महिने में होती है। नौ दिन यह देवी-पूजा होती रहती है। ये नौदुर्गा कहलाते हैं। प्रतिदिन देवी के गीत गाये जाते हैं। देवी का रात्रि-जागरण (जागन्न) भी होता है, सिर पर देवी आती हैं। यह भी गीतों के साथ ही होता है। अतः देवी के ये गीत पहले दो भागों में बँट जाते हैं—एक वे जो प्रतिदिन घर में स्त्रियाँ गाती हैं। दूसरे वे जो जागरण करने वाले 'भगत' गाते हैं।

स्त्रियों के गीतों को दो प्रकारों में बाँट कर समझा जा सकता है; एक स्फुट गीत, दूसरे प्रबन्ध-गीत। स्फुट गीतों में देवी की प्रार्थना, स्तुति, उसके पराक्रम का उल्लेख, उसके स्थान का तथा शोभा का वर्णन, जात की तय्यारी और यात्रियों की कठिनाई का वर्णन मिलता है।

एक स्त्री अपने पति से कहती है 'चलि पिया दोऊ मिलि जायँ, परसें देवी जालिपा ओ माय'—पति कहता है दोनों कैसें चल सकते है घर में घोड़ी है, भैंस है, बहू है, बेटी है, दूध है, पूत है, इनको कहाँ छोड़ा जाय? स्त्री समाधान बतलाती है। घोड़ी को घुड़सार में, भैंस ग्वारिया को, बहू घर-बार को, बेटी ससुरार को, दूध गूजरी को दे चलो और पुत्रों को साथ ले चलो। चलो दोनों मिलकर देवी माता को परसें। एक गीत में पुत्रों को धाय को दे चलने का सुझाव है। तय्यारी होने लगी। पर तय्यारी में पहले तो पण्डित बुलाना चाहिये कि वह निर्मल घड़ी बता सके। चैत का महिना आ गया है। पिता को बुलाना चाहिए क्योंकि उससे पूरा-पूरा खर्च लेना होगा। माँ को बुलाना आवश्यक है, उससे शान्ति मिलेगी। ननद की केसर तिलक लगाने के लिए अपेक्षा है। भावज विना देवी के छन्द कौन गायेगा। स्त्री-पुत्रों को तो साथ ही चलना है, उन पर तो जात बोली ही गयी है। पण्डित बुलाया गया। पोथी खोलकर उसने बताया दौज-तीज का चलना ठीक नहीं शनिश्चर की सातें ठीक है। स्त्री आँगन लीप रही है। माँ चौक पूर रही है। बहिन टीके की तैयारी कर रही है। पर—

घर ही में बाबुल बरजन लागे
कठिन पंथ देवी कौ,
देवी कौ

भैया सिंह ढहाड़ कजरी कौ
बारह कोस बनहिं बन कहिऐ
सिंह ढहाड़ कजरी कौ

तब वह पुत्र कहता है "सिंह मारि जालिपा परसौं तौ बालकु जननी कौ"—जाती (यात्री) को माँ के पास जाना ही होगा। माँ भी तो बाट देख रही है—

मैया लै जु कसनि कसु डारि जियरा मेरौ तोई सौं लगौ
परवत चढ़ि कैं देखें भोरी माय जाती मेरौ कहाँ बिलमौ

पिताजी ने खरच बँधाने में देर करदी है, चाचा ने रुपया भँनाने में देर करदी है। भाई ने घोड़ा सजाने में, मा ने पूड़ियाँ सेकने में, चाची ने लड़ुआ बाँधने में, बेंदुल[1] ने छन्द गाने में, बुआ ने तिलक सजाने में, स्त्री ने पन्थ सिराने में, रोक लिया है।

यात्री अन्ततः मन्दिर के पास पहुँच गया। कैसा है वह मन्दिर ? एक गीत में यात्री उसका वर्णन कर रहा है—

दुख हरनी मैया मेरौ दुख तुम न हरो
काहे कौ मन्दिर मैया कौ, ए दुख हरनी मैया,
काहे के लागे चारों खम्म ॥ दुख० ॥
सौने कौ मन्दिर मैया कौ, ए दुख हरनी मैया,
चन्दन लागे चारौ खम्भ ॥ दुख० ॥
ऊँचे पै मन्दिर मैया को, दुख हरनी मैया,
नीचे बहैं श्री गंग ॥ दुख० ॥
ओर-पास लौंगनि के जोड़ा, दुख हरनी मैया,
बीच बिराजैं जगदम्ब ॥ दुख० ॥
तोइ सुमिरि मैया तेरौ छन्द गाऊँ, दुख हरनी मैया,
जग में होउ सहाई ॥ दुख० ॥

माँ को लौंग विशेष प्रिय है। यात्री पहुँच चुका है, पर माँ भवन में नहीं है। वह प्रार्थना करता है—माँ भवन में आओ, मैं तेरी आशा करके आया हूँ पर—

एक बनु कहियत फूलनि कौ फूल रहे महँकाय,
देवीजी बिरमि रही बाई बन में,
एक बनु कहियत लौंगनि कौं लौंगैं रही महँकाय,

[1] बहिन।

देवी जी बिरमि रहीं बाई बन में।

माँ लौंग के बन मे ही लकड़ी बीनने चली जाती है, तभी मन्दिर में नहीं है।

माँ ने एक-एक लकड़ी बीनी, जूने[1] से उसकी गठरी बाँधी तभी एक असुर आ गया। उसने माँ की लकड़ियाँ बखेर दीं। देवी ने लाँगुरवीर को आज्ञा दी—

"नौ नौ ठोकौ कील दरदु नैंकौ मत करिओ"

पर असुर की चतुर स्त्री ने असुर को समझाकर माता के चरणों में भेज दिया। उसने माताजी के चरण पलोटे। एक-एक लकड़ी बीन कर माता की गठरी बाँध दी। माँ दयार्द्र हो गयीं।

"सुनिरे लँगुरिया वीरु असुर मेरे चरननु आयौ
नौ नौ खेंचौ कील कसरि नैंकौ मति राखौ"

मैया नंदन बन को भी चली जाती हैं। पुष्प उन्हें बहुत प्रिय हैं, वह 'फूलनि की लोभिनियाँ' हैं। उसके द्वार पर अन्धा खड़ा है, आँख माँग रहा है; कोढ़ी खड़ा है, काया माँग रहा है। बाँझ खड़ी पुत्र माँग रही है, निर्धन धन की पुकार लगा रहा है।

माँ है ही नहीं, लाँगुर परेशान है। वह ढूँढ़ता डोलता है। क्या हुआ माँ को ? वह सो गयी है, या पृथ्वी में समा गयी है— पर नहीं।

"ना तेरी मैया सोइ गई है परि ना गई धरनि समाइ
कनही जाती कै होंम रचौए परि माँ हरि जगी शिब राति
धुजा औ नारियर लोंग सुपारी वे मोपै दए एँ चढ़ाइ
सोने कौ दिवला कपूर की बाती परि आरति लई है उतार।"

माँ आ गयी है। पर मन्दिर के द्वार—वज्र किवाड़ अभी बन्द हैं, यात्री प्रार्थना कर रहे हैं कि माँ किवाड़ खोलो—माँ किवाड़ खोल देती है।

बेलोनि[2] है बैकुण्ठ खम्म जामें लगे हैं धरम के
मैनपुरी[2] है बैकुण्ठ खम्म जामें लगे हैं धरम के
मैया बैठी है तखतु बिछाइ लंगुर जाकी बियारि ढोरतएँ
जाके शेर गुंजत हैं द्वार जाती तौ डरपैं मुलिकनि के।

[1] जून=मुंज या घासपात की बनी काम चलाऊ रस्सी।

[2] ये वे स्थान हैं जहाँ देवी के मन्दिर हैं और जहाँ की यात्रा होती है।

दये मैया वजुर किवार जाती तौ ठाड़े मुलिकनि के।
खोलो मैया वजुर किवार जाती तौ भीजैं मुलिकनि के
खोलो मैया वजुर किवार जाती तो लीने मुलिकनि के
मैयाजी के चरन पलोटि जाती तो आये मुलिकनि के

किवाड़ खुले ! अब यात्री देख रहा है :

[देवी]

भमन में लटकि रहे फुँदना
हरौ हरौ गुबरा पियरो सी माटी तो राजु लिपाऊँ अँगना
नंगेऊ पाँइनि आवें जती अरे हाथ लऐं गजड़ा
नंगेऊ पाँइनि आवें तिरिआ तो हाथ लऐं गडुआ
अरु लट छुटकाये मैय्या आवे गोद लऐं ललना[1] ॥भमन०॥
कर रे जोरिकें ठाड़े जती अरे देत गऊँनि दछिना ॥भमन०॥
तोइ सुमिरि मैया तेरौ छंदु गाऊँ बीधि में होउ सहाई ॥भमन०॥

देवी को कन्या रूप में भी यात्री ने देखा है—"कन्या रूप भमानी मैंने आजु देखी"—इस देवी के 'बरु अगवारैं, बरु पिछवारें, बीपर धर्म द्वारैं' है। इस देवी की पूजा के लिए, अर्चना के लिए विविध तय्यारी करके यात्री आया है :—

काँहर उपजी डाँड़ुरी औ काँहर मारुअरे के खम्भ, भमन में गरजति आदि भवानी
आगिवारे उपजी डाँड़ुरी औ, पिछवारे मारुअरे के खम्म। भमन में०
काइरे काटूँ डांड़ुरी औ, काइरे मारुअरे के खम्म। भमन में०
कुढ़रीनु काटूँ डांड़ री के खम्म औ खुरपीन मारुअरे के खम्म। भवन में०
कौन भए बलि बाढ़ई औ, कौन भए सुत ढार। भमन में०
लछिमन भए बलि बाढ़ई, राम भए सुत ढार। भमन में०
काए रे लादूँ डाँड़ री औ, काए रे मारुअरे के खम्म। भमन में०
गाढ़न लादौ डाँड़ री औ, गाड़िन मारुअरे के खम्म। भमन में०
गढ़यौ रे हिंडोलौ साँपरौ, गढ़यौ ऐ जलफदे के द्वार। भमन में०
पहरि पटोरे की धोबती, भूलौ जलफदे के द्वार। भमन में०
लाँगुरि दीयौ झोटिका, टूट्यौ ऐ लोंगन को हारु। भमन में०
काए समेटूँ, कहा गुहूँ औ, का भरि उतर देंउ भवन में। भमन में०
गुह्यौ रे गुहायौ सांपरौ धरयौ ऐ जलफदे के सीस। भमन में०

[1] 'मातृका-भाव'

मांगनौ होइ सोई माँगि मलिनियाँ, जो मन इच्छा होइ। भमन में०
कहा माँगू कहा देउगी, कहा मेरे हतु नाँइ। भमन में०
"मेरौ मलिया अमरु करि देउ", अमरु न दई और देवता।
मलिया अमरु कैसे करि दऊँ। भमन में०
अमर ऐ जलफदे की चूँदरी, अमरु लँगुरिया कौ चीर। भमन में०

एक भक्त माता के आँगन में केवड़े को सींच कर उसका हार गूँथकर देवी पर चढ़ाता है :—

माता के आँगन केवरो जै जै कै गुन हरिअल होइ हो माय
कै सींचै जाकौ मालिया जै जै कै ढुरि बरसैगो मेउ हो माय
ना सींचै जाकौ मालिया जै जै ना ढुरि बरसैगौ मेउ हो माय
जाती तौ आये तीनों लोक के जै जै सींचि गये दिनु राति हो माय
सींच साँचि पर्वतु भयो जै जै बौरौएं अनी अनी भाँति हो माय
को जाकी डार नबाइये जै जै को जाके तोरै फूल हो माय
मलिया के डार नबाइये जै जै मालिन टोरै जाके फूल हो माय
टोरि टोरि मालिन लै गई जै जै गूँथौ ऐ नौलख हारु हो माय
गूँथि गाँथि मालिन लै चली जै जै धरौऐ जलफदे के सीस हो माय
माँगनौ होइ सो माँगि लैरी मालिन जो मन इच्छा होइ हो माय
दूध पूत मैया तुम दयौ जै जै मलियै अमरु करि देउ हो माय
अमरु न देई देवता जै जै मलिया अमरु कैसे होय हो माय
अमरु जा धरती पै तीनि एँ जै जै पानी पमनु गंगा नीर हो माय
अमरु जलफदे की चूँदरी जै जै औरु लँगुरिया की पाग हो माय

यों तय्यार होकर भक्त-स्त्री कह रही है—'लेउ मैया बीरा मैं कब की ठाड़ी।' वहाँ वह 'ध्वजा नारियल' राजा से चढ़वाती है, लाल और हीरा भी। माँ कहती है वरदान माँगो। वह कहती है :—

"राजुपाटु मैया तुमरौ दयौ ऐ रजवै अमर करि दीओ'। फिर जैसे ऊपर के गीत में है, वैसे ही उसमें उत्तर मिलता है :

जा धरती पै रानी कोई ना अमरु है, रजवा अमरु कैसे हुइ हैं ?
अमर जलफदे की चूँदरी कहिए अमरु लँगुरिया की पागिया।

वरदान में अमरता ही नहीं माँगी गयी, एक गीत में अनेकों अन्य चीजें माँग डाली गयी हैं—

ठाड़ी माँगूँ बरदान देवी के मन्दिर में।
माँगूँ मैं हरी हरी चुरियाँ, हरी हरी चुरियाँ।

मोतिन भरि माँग देवी के मन्दिर के भीतर।
माँगू मैं दस पाँच दिवरा, मैं दस पाँच दिवरा,
ननदुलि माँगूँ एक देवी के मन्दिर के भीतर।
ठाड़ी माँगूँ बरदान देवी के मन्दिर में।
माँगूँ मैं सात पाँच बेटा, मैं सात पाँच बेटा,
बेटी माँगूँ एक, देवी के मन्दिर के भीतर।
माँगूँ मैं सात पाँच भइया, मैं सात पाँच भइया,
बहूदुलि माँगूँ एक देवी के मन्दिर के भीतर।

इस प्रकार जात करके यात्री लौटता है। घर उससे पूछा जाता है कि "कैसे पिया वे देस कि जिन भुमि तुम गए"।

धानू[1] की धनुअलि यों कहै,
कैसे पिया वे देस कि जिन भुमि तुम गए।

उत्तर मिलता है—

टाटी तौ लगी ऐ पहार की,
लगे एँ धरम के खम्भ, सुनि बाई देस कौ।

और वहाँ क्या होता है—

अंधेनु नेत्तर दै रही, कोढ़िन काया दै रही,
बाँझन पुत्तर दै रही।
सुरति बाई देस की।

इस प्रकार देवी के स्फुट-गीतों की यह रूपरेखा है। देवी के गीतों में प्रबन्ध-कल्पना लिए हुए भी गीतों का अभाव नहीं है। एक गीत तो अत्यन्त सुन्दर है—

कजरी रे बन ते चाली सुरही गाय,
नन्दन बन चरिवे गई हो माय।
साँझ भई दिन छिपन पै जाय,
सुरही रे चरिके बाहुरी हो माय।
ऊँची सी एक पूंठरी रे जापै बैठौ सिंह
"रख्यौ री रखाओ नन्दन बन क्यों चरयौ हो माय
"आऔरी मेरी सुरही मैया जान न दुंगो तोय
"नाहैं हे मेरे सिंहराजा जामन दीजौ मोय

[1] धानू देवी का अत्यन्त प्रसिद्ध भक्त होगया है। यह आगरा का रहने वाला था। इसके संबंध में अनेकों चमत्कारक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

खिरक रँभाएँ मेरे बाछरा हो माय"
"एक बच दो बच तीन भरि जाउँ
बचनन की बींधी सुरही ना रहै हो माय
एक बच, दो बच तीन भरि जाउँ,
बचनन की बींधी सुरही चलि दई हो माय।
"आओ रे मेरे बालक बच्चे खींचौ मेरौ चीर,
बचनन की बींधी सुरही ना रहै हो माय।"
"नाहैं री मेरी सुरही माता चीरन खींचौ जाय,
बचनन को बींधी दुद्धा ना पिवे हो माय।"
आगैं आगैं बालक बच्चे पीछें सुरही गाय,
बचन को बींधी सुरही चाली है हो माय।
ऊँची सी एक पूंठरी रे जापै बैठौ सिंह
बचन को बींधी सुरहो आई है हो माय॥
ऊँचो सी एक पूंठरी रे जापै बैठौ सिंह,
"एक गई द्वै वाहुरी हो माय।"
आऔ रे मेरे सिंह मामा पहिले भखौ मोय,
जा पीछे माऐ विनासिये हो माय"
"नाहिं रे मेरे बछरा भानज, भानज भखे न जाँय,
नातौ रे बहिन विनासिये हो माय।
आओ री मेरी सुरही बहिनाँ चालौ मेरे संग,
नगरकोट को चालिऐ हो माय।"
आगैं आगैं बालक बच्चे पीछे सुरही गाय,
नगरकोट को चाली हैं हो माय।
"आओ री मेरी सिंह नानी पूजो इनके पायँ,
यहि रे ननद यह भानजौ हो माय।"
"नाहैं रे मेरे सिंह राजा जाको भेद बताय,
कहा गुन लागै बछरा भानजौ हो माय।"
"नाहैं री मेरी सिंह रानी माकी जायी है न,
इनके जाये बाछरा रे भानजे हो माय।"
दौरी दौरी आई रानी लागी ननद के पाय,
भानुज गोदी में लैलयो हो माय।
"आओ री मेरी सिंह रानी कोस पठावें जाय,

यहि ननदी यह भानजे हो माय।"
आगें आगें बालक बच्चे पीछे सुरही गाय,
कोसुक सुरही पठाइ है हो माय ॥

देवी के गीतों के साथ 'लँगुरिया' अवश्य गाये जाते हैं। ये गीत देवी के लाँगुर से सम्बन्ध रखते हैं। देवी का यह लाँगुर या लँगुरिया विचित्र प्राणी है। उससे जाति पूछी जाती है "भैया लँगुरा रे अपनी जाति बताउ" तो वह उत्तर देता है—

'बम्मन के हम बालका उपजे तुलसी के पेड़'। उसकी माँ समझती है कि लाँगुर कुछ नहीं खाता, पर वह 'बाराबाटी मदु पियै सौ रे बुकरा खाइ'। लाँगुर की माँ कहती है कि छः महिने की रात्रि है, पर लाँगुर सोता ही नहीं। यह लाँगुर माता को बड़ा प्रिय है। उसका सहायक है, उसका आज्ञाकारी। देवी आज्ञा दे तो असुर के नौ कीलें ठोक दे, आज्ञा दे तो उन्हें निकालने में कोई कसर नहीं छोड़ता। वह भी देवी की ढूँढ़ खोज में व्यस्त रहता है। यदि कहीं भी माता चली जाती है तो वह उसे ढूँढ़ता फिरता है। भक्तों से उसका क्या सम्बन्ध है? देवी माँ का कृपा-पात्र होने के कारण वह भक्तों की सेवा का अधिकारी तो है। एक भक्त तो दिन भर उसे गाँजे की चिलम भर-भर कर पिलाता है—"मेरौ चिलम भरत दिनु जाइ लँगुरिया बड़ौ पिवैया गाँजे कौ" उसके लिए दस बीघा गाँजा बोया गया है, नौ बीघा भाँग। गाँजा लँगुरिया पीता है, भाँग महादेवजी पीते हैं। भक्त-स्त्रियाँ उसे किस रूप में ग्रहण करती हैं, और किस भाव से देखती हैं, यह कुछ गीतों की निम्न आरम्भिक पंक्तियों से प्रकट होता है :—

१—कारी चूँदरिया में दागु न लगइयो लाँगुरिया।
२—ए लँगुरिया तेरी धन खाइ लई कारे नाग नें,
अरे कछु खाई, कछु डसि लई औरु कछु मारी फुसकारि,
ए लँगुरिया।
३—"दहिअ बिलोबै दारी गूजरिया विलबावै लाँगुरिया"
४—बसन्ती रँग रँगवाइ दुंगी, जा लाँगुरिया की टोपी
५—मति खेंचैरे लँगुरिया तलवारि तेरौइ घर जाइ,
मैं हँसती कब देखी।
६—तेरौ करूँगी भमन में न्याव, लँगुरिया मति हँसै

७—काऊ देस चोरी जइयो लाँगुरिया, काऊ जाटिनी के
झुमका वारी लइयो लाँगुरिया।
८—दरद कौ मारौ लाँगुरिया मरि मरि जाय
लाँगुर तुम लोटा हम डोर सरकि आऔ जाई बन में।
९—करौली वारी नदिया बहाए लिए जाय
जब नदिया मेरे पाँयन आई
सम्हारि बारे लाँगुरिया, मेरे बिछुआ भीजे जाँय।
१०—कैला मैया नें बुलाई जब आई लाँगुरिया
११—ए लँगुरिया हँसि मति अइयो काऊ और ते
मैं मरूँगी जहर बिस खांइ।
१२—करि लिए दूसरौ ब्याहु लँगुरिया मेरे भरोसे मति रहिए।
मोइ लीपि न आवै लीपनों और काढ़ि न आवै खूँट
मोइ पीसि न आवै पीसनों और डारि न आवै कौरु
मोइ राँधि न आवै राँधनों और मोइ परसि न आवै थारु

एक गीत और यहाँ उद्धृत करना होगा—

लँगुरिया

अनौखी मालिनी भैना करै तौ डरपै काए कूँ।
तेरे हाथ कौ मूँदरा, लाँगुर दियौ गढ़ाइ। अनौखी मालिनी०
तेरे सिर की चूँदरी, भैंना लाँगुर दई रँगाइ। अनौखी मालिनी०
तेरी गोद कौ लालुआ, लांगुर की उनहारि। अनौखी मालिनी०
ना काऊ के घरै गई, ना मैंने लियौ बुलाइ। अनौखी मालिनी०
रस कौ बींध्यौ लाँगुरा, आइ गयौ मेरी सेज। अनौखी मालिनी०

लँगुरिया को वारा या छोटा बहुधा बताया गया है। उसी के अनुकूल कहीं कहीं उसे वात्सल्य भाव से देखा गया। रँगीली टोपी रँगवाने में वही अर्थ है। किन्तु यह बालापन भी पतित्व लिए हुए दीखता है, जैसे बहुधा गीतों में 'वारे नाह' का उल्लेख होता है। यह पति के प्रति अत्यन्त लाड़ का द्योतक है। भारतीय घरों में स्त्री पति का ऐसे ही पोषण करती है, जैसे किसी बालक का। यह भी हो सकता है कि देवी की जात के लिए जाने वाले पुत्र और पति दोनों में ही देवी के लांगुर भाव का आरोपण कर दिया जाता हो। फिर भी यह यथार्थ प्रतीत होता है कि लाँगुर में पति-भाव विशेष है। अन्त में जो गीत दिया गया है उसमें लाँगुर पर-पुरुष के रूप में भी दिखायी

पड़ता है। मालिन ने स्वीकार भी कर लिया है। लाँगुरिया के गीतों में व्यंग, विनोद, हास्य सभी भरा हुआ है। देवी के गीतों के साथ देवी सम्बन्धी कुछ अन्य विषयों पर भी गीत होना अनिवार्य माना जाता है। ये विषय हैं—लांगुरिया, सुरही, काजर, मँहदी, भोग, पौढ़ना (शयन)। लाँगुरिया और सुरही ऊपर दिये जा चुके हैं। शेष गीतों में पहले तो यह वर्णन रहता है कि कहाँ से आया है वह पदार्थ फिर देवी के द्वारा उसके उपयोग का उल्लेख होता है। इन गीतों में पहले देवी के प्रसिद्ध भक्त धाँनू का नाम लिया जाता है, फिर जिस घर में गीत गाये जाते हैं उसके समस्त स्त्री पुरुषों का नाम लिया जाता है।

इन गीतों में देवी अथवा माता के कई नाम आये हैं। जालपा देवी, माता, ज्वाला, नगरकोट की माता, करौली वाली माता, कैला, बेलौन की माता, मैनपुरी की माता, जगदम्बा देवी। नगरकोट की माता वज्र`श्वरी भी कहलाती हैं। इसी कारण सम्भवतः माता के मन्दिर के वज्र किवाड़ों का उल्लेख हुआ है। मन्दिर के नीचे गंगा बहने का भी वर्णन है। यह गंगा बानगंगा हो सकती है। सोने के मन्दिर से अभिप्राय नगर कोट से एक मील दूर 'भवन' नामक नगर के मन्दिर से हो सकता है।[1] ब्रज-क्षेत्र में करौली, केला, मैनपुरी माने जा सकते हैं।

इन गीतों में दो भक्तों का विशेष नाम आया है। एक है कान्हर, दूसरा है धानू। धानू अत्यन्त प्रबल भक्त था। यह आगरा-निवासी था, देवी की इस पर विशेष कृपा थी। कान्हर का विशेष विवरण नहीं मिलता।

छः महीने की रात्रि का उल्लेख एक गीत में हुआ है। इस उल्लेख से उत्तरी ध्रुव से कोई सम्बन्ध नहीं बैठ सकता। यहाँ केवल देवताओं की दीर्घकालीन रात्रि बताने के लिए ही इसका प्रयोग हुआ विदित होता है।

देवी के इन सभी गीतों में ध्वजा, नारियल, तथा लौंगों का जोड़ा या उनकी माला अथवा केवड़े की माला चढ़ाने का वर्णन हुआ है। बीड़ा देने का भी उल्लेख है पर बलि का—पशु-बलि अथवा नर-बलि का, कहीं उल्लेख नहीं हुआ। केवल

[1] देखिए The Geographical Dictionary of Ancient & Mediaeval India by Nando Lal Day page 135.

लाँगुरिया के लिए आता है कि वह मद पीता है और बकरे खाता है।

देवी-पूजा के दिनों में बहुधा आठें-नौमी को रात्रि-जागरण—'जागन्नु' भी होता है। इस दिन देवी के भगत जो बहुधा कोली या कुम्हार या पटवा होते हैं, रात को डमरू बजाते हैं, एक ज्योति जाग्रत रखते हैं, और निरन्तर गीत गाते रहते हैं। इसी 'जागरण' में कभी-कभी भगत के सिर पर देवी आ भी जाती है। इन जागरण के गीतों का भी विषय प्राय: वही रहता है, जिसका ऊपर विस्तार से उल्लेख हो चुका है। भक्तों का वर्णन विशेष होता है। धानूँ भक्त ही सबसे प्रधान है। देवी के भवन का वर्णन, उसकी ज्योति का वर्णन, उसके चढ़ावे का वर्णन, यही इनका प्रधान विषय है। स्थान-स्थान पर पाण्डवों का भी उल्लेख है। 'बैठी मैया तखत बिछाय चौरु ढोरै अर्जुन से'। यहाँ पर लाँगुर के स्थान पर अर्जुन का उल्लेख भूल से भी हो सकता है। पर एक गीत यह है—

तेरे अन्तरघट की और कौन जानें भोरी मा
पमन बुहारी दै गए, इन्दुर कीयौ छिरकाउ
बिसकर्मा नें कीए बिछौना देव जुरे सब आइ
भोर भयौ बै[1] फाटी ऐ भीमा खोली बाट
अब जीमनु हतु नांइ भैया तिरिया के अरजुन दाबे पाँय
तिरिया तिरिया मति करै भैया तिरिया बुरी बलाइ
जे जगतारन माइ।
कूआ हारि बावरी हारी हारे सागर ताल
हतिनापुर कौ खेरौ हारयौ हारि चुके सबु राज
बर कौ पेड़ अखैबर कहिए बाकी सीतल छाँह
पात पात पै भीमा डोलै बैठ्यौ ऐ बदन छिपाइ।

यहाँ इन्द्र, वायु आदि देवताओं के साथ भीम और अर्जुन का उल्लेख भी देवी के महत्त्व को बढ़ाने के लिए अद्भुत ढंग से किया गया है।

देवी के जागरण की भाँति ही ब्रज में एक जागरण 'जाहरपीर' का भी होता है। यह 'जाहरपीर की जोति' भी कहलाती है। एक पट टाँग दिया जाता है, यह चँदोवा कहलाता है। इस पट पर जाहरपीर सम्बन्धी विविध वृत्तों के चित्र कढ़े होते हैं। वहीं मोरछली की एक

[1] पौ।

ध्वजा ऊँचे से बाँस में बाँध कर खड़ी करदी जाती है, साथ में एक चाबुक होता है। इस जागरण में जाहरपीर का ही गीत गाया जाता है। उस गीत का आरंभिक अंश यह है:—

गुरु गैला गुर ग्रावरा करै गुरुन की सेवा है
गुर ते चेला अति बड़ा तौऊ करै गुरू की सेवा है
महरी पै बादर ओरथौ बरसै कोलाढार है
रानी कौ भीजै कांचुओ[1] जाहर मिरगुल[2] पाग है
कहाँ सुकाइ दें काचुओ, कहाँ मरद तेरी पाग
महल सुखाइ देउ कांचुओ, महरी[3] मरद की पाग
जाहर के बाजार में सौनौ गढ़ै सुनार
घोड़े कूं गढ़िला चाबुका, रानी सिरियल कौ सिंगार
जाहर की गैल में स्यांपु लहरिया लेए[4]।
पापी चेला डसि लए दाताऐ दर्सन देइ।
राना हे
सोवैं नाग जगै नागिनियाँ
तू बालक कित आयौ
नागिन नाग जगाइ दै अपनौ मैं ख्वाइ जाचन आयौ
मारयौ टोल गेंद गई दह में
गेंद के संगई धायौ

[1]—चीर

[2]—पाग

[3]—मन्दिर

[4] जाहरपीर और गुरु गुग्गा को एक माना जाता है। टेम्पल महोदय ने 'दी लीजेण्ड ग्राव गुरु गुग्गा' ('दी लीजेण्ड्स ग्राव पंजाब' में संख्या ६) के प्रारम्भ में लिखा है—गुग्गा की समस्त कहानी महान ग्रन्धकार में पड़ी हुई है। ग्राजकल वह प्रधान मुसलमान फकीरों में है ग्रथवा सब प्रकार की नीच जातियों का पूजा-पात्र है और जाहरपीर के नाम से भी विख्यात है। श्री जगदीशसिंह गहलौत ने लिखा है—गौगाजी, यह जिला हरियाना के गाँव मेहरी के चौहान राजपूत थे। सं० १३५१ में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह द्वितीय के सेनापति ग्रबूबक्र से युद्ध कर ये वीर गति को प्राप्त हुए। हिन्दू इन्हें देवता तुल्य मानकर भादों वदी ६ को इनकी जयन्ती मनाते हैं। मुसलमान इन्हें जाहरपीर के उपनाम से पूजते हैं।

मारी फुसकार स्याम भयौ कारौ
गोरे ते ह्वै गयौ कारौ
ठाड़ी जसोदा अर्ज करै मेरौ नागु छोड़ि दै कारौ
मानसी-गंगा राजा माननें खुदाई
जाके बीच में गिरधर धारयौ
सिंगमरमर कौ बन्यौ मुकरबा[1] हरदम द्वारा न्यारा
कालीदह पै गाय चरावै कंवर ओढ़े कारा
गज और ग्राह लड़े जल भीतर लड़त-लड़त गज हारे
गज की टेर द्वारिका लागी नंगेई पैरन धाए।
जौ भरि सूँड़ रही जल ऊपर जब हरिनाम पुकारे।
गोविन्दौ हरि आप बनायौ
एक सै एक लगे बिसकरमा रोजु एकु नाँइ आयौ।
भिलनी के बेर सुदामा के तन्दुल
रुचि-रुचि भोग लगायौ
नाग नांथि रेती में डारयौ नगरु तमासे आयौ।
पंचपीर[2] पंचों के भाई, धुर मक्के में जात लगाई
धरथरी का भरथरी
अलील[3] का बन्द
जोगी खेलैं नौऊ खंड
मांगू भिच्छा तारू गाम
अलख पुर्स का सुमिरूँ नाम
दे ताका भी भला न दे ताका भी भला
बंकी महरी बनी पीर तेरी गचकीली और कलई-सेत।
चारयौ खूँट की आवै मेदिनी कादिम[4] लेंत पीर तेरी भेट
पूरब पच्छिम उत्तर दखिन धामत एँ तोइ चारयौ देस
नाथन की करवाई मान्ता राखी लाज भेस की टेक

[1]—चबूतरा

[2]—पाँच पीर ये माने गये हैं:—
१—जाहर, २—नरसिंह, ३—भज्जू, ४—ग्वारपाहरिया, ५—घोड़ा,
६—बालाभांजो सहर दलेले

[3]—कमर

[4]—खादिम=मुसलमान सेवक

मान सरोवरि राजा मान की जा घर कुमरु लियौ औतारु
एक बरस की है गई दूजी लागन हार
द्वैई बरस की रानी बाछिला जाकौ निकरयौ बाछल नांउ
तीन बरस की रानी बाछिला चौथी में पगु धारयौ है
पाँच बरस की रानी है गई, छैई बरस में पगु धारयौ है
सात बरस की रानी है गई, आठई में पगु धारयौ है
नौ बरस की रानी है गई, दसई में पगु धारयौ है
ग्यारही बरस की रानी है गई, बारही में पगु धारयौ है।
घर कौ ही बोल्यौ है नाई बामना है।
बर ढूँढ़न हम जायँ है
पाँच सुपाड़ी इक नारियल लै बिरमा झोली डारे है।
चले चले व्वा गए पहुँचे बागर देस है।
बैठ्यौई पायौ राजा उम्मरु तखत पै
कहाँ ते आये कहाँ जाउ मुख के बचन सुनाऔ है।
व्वा घर बेटी जनमी राजा मान कें
व्वाई के भेजे आये हैं।
तो घर देवराय लालु है, करन सगाई आए है।
सहर दलेला भारी राव कौ, व्वा घर देवरायु लालु है
बैठ्यौई पायौ राजा बँगला उम्मरु नामु व्वाकौ है
'बुरी करी तौ है' नाऊ बामना, बैरीन घर करि आये काजु है'
'इकदसिया कौ माढ़यौ, द्वादस निरमल कन्या कौ ब्याहु है।'
'राजा नें लगुन लई लिखवाइ
नेगी लए बुलाइकें जानें नेगीनु दई गहाइ
तुम तौ मेरे महाराज औ तुमते कछू न बस्याइ
नाऊ होतौ तौ व्वाइ देतौ मरवाइ
लै नेगी न्यौते चले पहुँचे सैर दलेले जाइ
बैठ्यो पायौ राजा उम्मरु तखत पै बौहौत भए खुस हाल
तौमर ने हमारी लई तौमर करत बिचार
इतनी बात कही उन्मर में जाते जाते छमामन्त भए पिरोत महाराज
इतनी बात म्यों मति कहियौ राजा तोइ जिअते डारूँ मारि
पयौ कुमर कौ तेलु रहसि हरदी चढ़वाई
रोरी मरुअटि घुरै बैठिकें कजर लगायौ

चुन्नी नाऊ फिरै नगर में दैंत बुलाए
भूप चलौ ज्यौनार पाँति कूँ सबुई बुलाए
भूप चले, ज्यौनार जोरि पंगति बैठारी
या के दोना पत्तरि फिरैं हाथ गागरी और पानी
लुचई, पूरी, मगद, कचौरी
बूरौ, दही पाँति दई गहरी ।
सो ऐसी पाँति दई ब्या राजा नें सो दादा मेरे
नंगर में होंति बड़ाई सो भूकौ न्याँते ना फिरै ।
२—सुरसुती भाटु बुलाइ तुरीन की जाति निकारौ
ओजकीया, और दल्ल किसोरा, ऊँचे परबत माँभी
ताजी तुरकी सजि गए बंडा
सुरख बनात नारि में गंडा
घूँट परबती सजे सजे तुरकी ऐराकी
रथ बहली सजि गईं धरीं हाथिन अम्मारी
केसौंड़े के चारि नगर परिकम्मा दीनी
लसकर फिरै नकीब देर काए कूँ कीनी
सो उड़ि उड़ि धूरि लगी अम्मर में दादा मेरे
सो भानु गर्द में अटि गयौ
३—म्वांतें उम्मरु चल्यौ सुरति जानें बिरज की लगाई
नाऊ नेगी नांहि गैल हमें कौन बताई
म्वांते राजा चालि दियौ और मानसरोवरि आय
मान सरोवरि आइकें राजा मान के घटाए मान
बामन राज ते पिरोइत ते मेरी कछू न बस्याइ
दसए अंश के पिरोत ते मेरी कछू न बस्याइ
सो हात जोरि तेरे करूँ निहोरे दादा मेरे
मेरी कछू न बस्याइ, सो सादी कुमरि की है गई ।
४—नेगी लीने बोलि भूप प्याऊ करवाई
तुम राजा के पास जाउ, नेग करवाओ
नेग कछू मति लाइयों, नेगु चहियतु हतुनाँय ।
बेटी की भामरि डारि कें तुम कुमरि ऐ लै जाउ ॥
चमरा लीनों बोलि घास दानों मँगवायौ
मेख दई गढ़वाइ

अरे राजा ऐसी बात चों करतु ऐसो मेरें आए नौक हजार।
करीं तैयारी बरैनुआँ मँगवाऔ,
जो ढाकरौ लावै बरौनिया तौ हमारी न्याँई रूपैगी रारि।
उम्मरु गयौ दहलाय पुरोत अपनों बुलवायौ
तुम लै जाऔ बरनुआ महाराज,
मान राजा के मान मति घटाऔ, सो हम लेंइ कुमरि ऐ ब्याहि
लै बरैनुआँ पिरोत गयौ राजा भयौ खुस्याल
सो जल्दी करौ भामरि तुम डारौ सो दादा मेरे
सो मैं भार हौंत विदा न्याँते करि दऊँ
५—दै बरैनुआँ न्याँते आये
उम्मर नें जब वचन उचारे
कहौ महाराज राज नें क्या वचन उचारे
पाँति फाँति की कहा चली राजा लीजो भामरि डारि
ऐसी जग्गि करी तैनें न्याँई, ऐसी न्याँ मिलिबे की नाहिं।
नाऊ दीनौ भेजि भामरिन कौ सामानु मँगाऔ
मति करौ अवार जल्दी भामरि गिरयाऊँ
सो पाँति के भरोसें तुम मति रहियों दादा मेरे
नगर ते दिग्गे निकारि करम लिखी होगी सो हम भुगतिंग्गे
६—लीनों कुमरु चौक बैठारयौ
बेदी पण्डित नें रचवाई
सखियाँ गाइ रहीं मङ्गलचार
सो मुहरा बाँधा ज्या कुमरि के सो बैरीन घर हैगौ काज।
रोसमन्त है गयौ मान नें बादर फारे
सखियाँ देति बिरहैन
मोसौ राजा कैसे जीवैगौ बैरीन घर कर दौ काजु
भामरि दीनी गेरि खुसी भयौ उम्मरु राजा
बेटी चहिंयत नाँइ
बेटी ऐ तुम अपने घर राखौ अपने लाला कौ करि लुंगो ब्याह
हाथ जोरि मान भयौ ठाड़ौ
तुम बेटी लै जाउ दमाद हमारौ दिखलाई लागै
तीज सनूने की तौ कहा चलो मेरें नित आऔ, नित जाउ
बेटी तौ मेरी बहुत ऐ प्यारी, दमाद के लुंगो आदर भाव

१—पै फाटी पियरौ भयौ, भयौ ऐ सकारौ हाँ
रानी बाछलि तपति रसोई हे हाँ
जा मेरी बाँदी जा मेरी बाँदी राजै बोलिला
अरे सिरकार क मेरी हाँ
बिरम लकुट लई हात में राजा ऐ बोलन जाइ
सार खिलंते सारिया राजा तोइ कैसी सार सुहाइ
महल बुलाए डोला पद्मिनी राजाजी चलौ राउजी हमारे साथ
सार बढ़ाइ लई, तै करी, फाँसे धरतु सम्हारि
गल माला रुद्राछजी राजा मुख ते रामु जपाइ
आमत देखे बालमा, रानी पलिका देति नवाइ
राजा कूँ तौ पलिका नवायौ
ढिंग बैठि गई मूढ़ा डारि।
मोरछलीन कौ बीजना, रानी राजा वी ढोरति ब्यारि।
ठंडे पानी गरमु धरावै जल सियरे लेंति समोइ।
चंदन चौकी डारि कें रानी राजा ऐ उभटि न्हवावै।
पीताम्बर करी धोवती राजा सूरज ध्यान लगावैं।
हुलसे पै चंदनु घिस्यौ राजा नरसींगी खौरि चढ़ावै।
सवा पहर सुमिरन करथौ राजा जौजूँ डेढ़ पहर दिन आवै।
न्हायौ धोयौ सापरे राजा झुकि चौका में आये
काए के थार में भोजन परोसे, रानी काए कटोरा में दूध
सोने के थार में भोजन परोसे राजा चाँदी कटोरा दूध
पहलौ गिरास धरती धरथौ राजा, दूजौ गाइ गिरासु
तीजौ कौर मुख में दीयौ राजा जाके गिरी नैन ते धार ऐ
जोंरें ठाड़ी गौरै गंगा भमानी पूछै राजा से बात ऐ
कै बलमा मेरे भोजन बिगरे खालीं परी ऐ सिकार ऐ
कै काऊ बैरी ने बोल बोले राजा, कै काऊ नें आइ दाबी सीम।
कै तेरौ घोड़ा हस्यौ कै रन लौटी तरवारि
नाँ चातुरि तेरे भोजन बिगरे ना खाली परीऐ सिकार
नाँ काऊ नें बोल बोले रानी नाँ काऊ नें दाबी सीम ऐ।
ना चातुरि मेरौ घोड़ा हस्यौ ना लौटी तरवारि।
अन्न बिहूना जग बग सूना, बस्तर सूनी काया
कंठ राग बिन कविता सूनों, बेटा बिन सूनी माया।

(हे रानी यह लाख खाक है)

[तौपन पै तोरा, बहू के गीत, मंगलचार कौन कैं गबि रहे ऐं।
आपकी बस्ती में एक साहूकार ऐ श्रीमहाराज उसके नाती पैदा भयौ ऐ।
हुब्ब के गीत उसके गबि रहे हैं। रानी धनि हमारी परालबदि तादिना ब्याहि के लाएँ ऐसी मौज कबऊँ न भयी।]

नींव दैकें जनमु जाहरपीर कौ होइ
पन सारदा सुनैं बोलौ बागर के बीर की मदद।
२—काऊ के पुन्न परताप ते सभा जुरी आय
आपु नई डटि जाइयै गाय बजाय रिझाय
खरिया ओढ़ बुलाए राजा नें कासी कूँ दए खंदाय
कासी सहर ते बिरमा बुलाइ लए कथा दई बैठाय
देस देस के पण्डित आये कथा रहे बे बाँचि।
बिरमा बाँचें बेद कूँ राजा ऐ गाइ सुनामें
एकु बिरामनु न्यों उठि बोल्यौ सुनि राजा मेरी बात ऐ।
बेटा की तौ कहा चली राजा करमन में तौ बेटी नाँएँ।
इतनी बात सुनी राजानें मारयौ गादी ते हातु ऐ।
जमदर[1] काढ़ि म्यान ते लीयौ हियरा कूँ लायौ राजा हाथु पे।
काए कूँ जननी तैं मैं जन्यौ बिसु दैं डारयौ न मारि।
एक बिरामनु न्यों उठि बोल्यौ सुनि राजा मेरी बात ऐ।

वार्त्ता—

काऊ के पुन्न परताप ते सभा जुरी आय
आपु नई उठि जाइऐ गाय बजाय रिझाय
खरिया ओढ़ बुलाए राजा नें गोला कौ दह्यौ लगायौ।
खोदत खोदत गए पातालै जाकौ अमिरत पानी पायौ।
बेलदार राजा नें बुलवाए बागन की रौस डराईं
धुर काबुल ते पौधि मँगाई, धरवायौ लखैरा बागु
बाग बीच एक बारहद्वारी, फूला माली कीयौ रखवारौ
गरमी की मेवा फालसे लगाए राजा जाड़े की मेवा दाख ऐ।
आमरे आमनि जामिन जम्हीरी फरौसौ कलन्दरौ गहर सूँ गँभीरी
सैतून ताला किलोंदे नवरनी आलसे फालसे बहुत जामें खिरनी

[1] तलवार

नए नारियल दाख कारी विरोंजी कंजा जुरीठा कैतोर पान तौ
लगत बहुत मीठा ।
लगति बेरि मीठी नौज गोजा
सेंजनौ कचनार सीसों नबोजा
रही बाँस महकाय चन्दन चमेली
सुतगुरू गुलीन गुलीन मुलंगा
नोरंग चमेली खूब रंगा
कमल लैन रही दोना जु मरुओ मिर्च लाल खंडो
खैरा जु धौपरी गुलकंज तोरा
सूरज मुखी फिरति नारि मोरा
लोंग रे इल्याची की सदे क्यारी
झुके मन्द चरें जाय बारी
कीकड़ि करीला छए बाँस गूरर
रेमजा छोंकरा धौन धौरी
हींसिया पंलुआ फेरि मौरी
हींसिया हँसड़ा बारि के बीस गाँसा
परी पापरी संगर सिहोरे हवासिनि हवासिन इतेक रूख जोरे
अरलू पसेंदू कदम कुण्ड विराजें
माधुरी लतान न्यों सबन में बिराजें
न्यां साल तेंदू
नपट नाग दौनी
कामिन्न धामिन्न सोंदी
रोसन बबूरा सदाराम सरहे
हसायन बकायन बड़ी बेलि पाईं
धरि बेलि गुन्नम धरि जोरि महुआ रायन लभेड़ो गोंदी न गड़आ
जांकुमर आड़ काड़ू करोंदा न करेरे
खट्टा जु मिट्ठा निबुआ चनेरे
देखे बदाम देखे जो अँगूरा
कोकरि कड़ीला छए बाँस बारी
केतकी न केला केवड़ो न बौला
कैतन के पेड़ लगे जां बासी न बौला
खआरि के पेड़ देखे बहुत ई मलूम जायें बामनी के पेड़ बहुतई बौला

रामन जमामन बर के पौधा
रमासिनि आई यौं, सीलताई पाई
बड़े बड़े पेड़ न्यौं पीपर के भाई।
नीब की निबोरी लगीं, अम्मार तीन के फूल झरे
बनकाट की लकड़ी रास पै ठाड़ी ऐ
फेरि आए फुलवारी की वहाल तौ देखि रहे
मरुए की छवि न्यारी गोल के नीचे ढारी ऐ
मोरछलीन के पेड़ राजा नें फुलवारी के बीच धरे
गुमती दुरंता की भारी ऐ।
ऐकु पेडु पसेंदू कौ आयौ छवि जाकी न्यारी
उखारि भाइ जाइ, बेला कौ तमासौ एक फुलवारी न्यारी ऐ।
फूलन के हजार देखे फुलवारी एक
हजारा गेंदा की भारी ऐ।
खसबोई तौ आमति न्यारी न्यारी
झूटी साखि बमूर नें डारी ऐ।
भौंतु तौ सुहामतों फूल एकु देख्यौ
गोरख मुण्डी एक खेतन में न्यारी ऐ।
अर जारे माली के एक गोरख मुण्डी न लाए
सेंति मेंति की एक किसानू फुलवारी ऐ

[वार्ता]

बांस की डाली केश के पत्ता फूल लए फल चारि
लै डाली म्वाते चल्यौ राजा की कचहरी आया।
डाली धरी उतारि माली नें नबि नबि कें मुजरा कया
मैं तोइ पूँछूँ हीरामनि माली मेवा कहाँ ते लाया
जो राजा तुमनें बाग लगायौ मेवा राम बाग ते लाया
खुसी भयौ रे देसापति राजा माली कूँ देंतु इनामु ऐ।
चढ़नों तौ जानें घोड़ा दियौ, उड़नों दियौ बाजु ऐ।

[वार्ता]

जादिन बागु ब्याहिबे कूँ आमें तेरी राजी करि आमें
फूला माली विदा करि दीयौ फुलवारी डाली पै आई राजा की आँखें।
फिरि राजा नें माली बुलवायौ बेटा बासी मेवा लायौ।

अरे राजा परि सिंगमरमर की बनी कचहरी पानों से बँगला छाया
परि लगी भमैक मेवा कुम्हलानी मैं फूल कालि के लाया ।
धनि धनि रे माली के बेटा तैनें राख्यौ सभा में मानु ऐं ।
लै डाली म्वांते चल्यौ आया बाग के बीच ऐ ।

[वार्ता]

लै डाली मालिनि चली रानी के रावर आई
परि डाली धरी उतारि मालिनि नें मुरि मुरि पैरों लागी
मैं तोइ पूछूँ घर की मालिनि जा डाली में कहा लाई
तुमनें रानी बागु लगायौ मेवा राम बाग तें लाई
खुसी भई देसापति रानी मालिनि कूँ देति इनामु ऐ
परि दखिन का चीर, मुल्तान को आँगी मालिनि कूँ देति गहाइ ऐ
परि मुहर रुप्यों से भरी छबरिया मालिनि बिदा हो आई
परि जा दिन बाग ब्याहिबे आमें तेरी राजी करि आमें
परि सांझ भई दिन गयौ मुदन कूँ राजा रावलि आयौ
लै मेवा आगें धरी जाइ खाइ लेउ राजकुमार ऐ ।
परि खाइ लेउ पीलेउ विलसि लेउ राजा करिलेउ जिश्र की सार ऐ ।
करद निकारी फौलाद की फल पै धरतु जमाइ ऐ ।
राजा नें तौ करद जमाई रानी नें पकरयौ हातु ऐ ।
परि क्वारे बाग की मेवा न खांगे ब्याहु करें जब खांएं ।
होते में खायौ नांइ राजा पहरयौ नांय जुल्हालु ऐ ।
मरघट दिंगे बोलना सूम उतारयौ आइ ऐ ।
माया दीनी सूम कूँ ना बिलसै ना खाइ ऐ ।
अरे राजा सरग हमारौ झौंपड़ा न्यां तौ आधापार ऐ ।
जैसें बद्धा दांइ कौ दियौ मुछीका जाइ ऐ ।
कल्हि करै सो अब करि राजा कालि करै सो हाल ।
अरे कल्हि तौ ऐसी आवै दोऊन कौ है जाइ कालु ऐ ।
बोलौ बागर के पीर की मदद

३—रालि जगावै जोरै चिगारी
जनम सुनै ब्वाकौ धरि कें कान
रिद्ध सिद्ध देता बहुतेरी कभी न आवै विसकें हानि
गोर्धन के माली नें धायौ गुरुका बचन हुआ परमान
हीरालाल बनियानें धायौ वुसने जाना निज कर राम

अपनोंई घोड़ा है अरे सजवाइ लै
मारू देस के हीरा हाँ उम्मर कौ हाथी सजवाइ
रानी कौ डोला सजवाइ, जाते बाईस लागेरे कहार
पार्छेते जाकी बाँदोऊ जाइ
दगरे छगरे जाकी फौज हकिंगी, जाकौ लसकरु झूमतु जाय
अरे बागन में राजा पहुँच्यौ जाय
बागन में जै जैई जै जै होय
राजा नें तम्बू दिए तौ ढरकाय
जाकी काढ़ि गईं पक्की मेख
राजा की खिंचि गई रेसम डोरि
अरे जाते जरदी लागीं लाल कनात
राजानें भट्टी दई खुदवाइ
जानें खाँड़ दई गरवाइ
जानें नेगी लीए बुलवाइ
हरी हरी गिलम बिछी दरियाईं, मुरबन जूंठसकत पाँय।
सोभा पातुरि राजानें बुलवाई, ठनवायो बागन में नाँचु
छोटे छोटे छोरा नाचें ब्रजवासिन के चुटकीन में उड़ाइ रहे तान ऐ
डोला में ते रानी बोलीं करि लीजौ बाग कौ ब्याहु ऐ
काए काए में राजा मेरौ सींग रे मढ़ावै
काए में खुरी मढ़ावै
सोने में राजा मेरौ सींग रे मढ़ावै
रूपे में खुरी रे मढ़ावै
अगिनि कुण्ड राजा नें खुदवायौ हुतिबे कूँ नागर पान ऐ।
हुती ऐ लोंग समद चन्दन की और नागर पान ऐ।
सुरगस्यन के घीअ मगाए राजा न्योंई देंतुऐ ढरकाइ ऐ।
एक फार तौ पाताल जायगी बासुकि देवता मगन है जाय
धनि धनि रे देवराय से राजा तेरें होंइ बेटन औतार ऐ।
एक फार तौ आगासै जाइगी इन्दुर देवता मगन ह्वै जाइ ऐ।
बेटीन की तौ कहा चली राजा लाल तौ रोजु ई हुंगे।
अरे राजा काए काए की तौ भामरि लेगौ
काए की परिकम्मा देगौ
गोला वे तौ भामरि लेगौ तुलसी की परिकम्मा देगौ।

परि बागु ब्याहु टाड़ौ भयौ राजा बिराम्म कूँ दतु इनामु ऐ।
परि बिराम्मन कूँ तौ गैया दीनीं, भाटन कड़े पाहराये।
डोमन कूँ तौ चोरा दीने मीरासीन गाम इनाम ऐ।
इक तखता में बिरामन जैमें दूजे में भैया बन्द एं।
इक तखता में अभ्यागत जैमें चौथे में और भिकरौड़ि ऐ।
परि सबकूँ पाँति जुगति ते परसौ मति करौ पाँति में दुभाँति ऐ।
एकु एकु रुपया एकु एकु लडुआ बिरफन कूँ देंतु गहाइ ऐ।
हुकम करै तौ गौरे गंगा भमानी करि आऊ बाग की सैल ऐ।
एकु बिराम्मनु न्यौं उठि बोल्यौ मति जइयौ बाग की सैल ऐ।
चारि घरी तापै मूल कौ निछुत्तर मति जइयौ बाग की सैल ऐ।
तुम तौ राजा नित नित आओ कब आवै राजकुमारि ऐ।
अस्त्री पुरुष कौ संगु मिल्याँ ऐ जुरि मिली कैं करि लेंइ सैल ऐ।
कौन के हाथ गडुरुआ सो है कौन के कुस की डार ऐ।
रानी के हाथ गडुरुआ सोहै राजा के कुस की डार ऐ।
परि दिवराइ राजा हरु हांकैगौ झोरी बांधति राजकुमारि ऐ
परि मुहरन के तौ कूँड़ लगावै मोतीन के जइया चारि ऐ
परि बिराम्मन कौ कहनां नांइ मान्यौ झुकि आयौ बाग के बीच ऐ।
आगें आगें देखै तमासौ पाछें ते पतझरु होइ ऐ।
बोलौ बागर के पीर की मदद

४—नाम की खातरि रानी ब्याही साहिब नें राखी बाँझि ऐ।
परि नाम की खातरि बागु लगायौ मेरौ सूख्यौ लाखा बागु ऐ।
परि तेगा काढ़ि म्यान ते लीयौ हियरा कूँ लायौ हातु ऐ।
औरें ठाड़ी गौरै गंगा भवानी राजा कौ पकरति हातु ए।
काए कूँ जननी तें मैं जन्यौ बिसु दै डारयौ न मारि
नाम की खातरि मैंनें रानी ब्याही करता नें राखि दई बाँझि ऐ।
नाम की खातरि मैंने बागु लगायौ, मेरौ सोऊ सूख्यौं बागु ऐ।
'पहलें बलमा मोइ माड़ारौ फिर करियौ अपघातु ऐ।
'तोइ ना मारें, हम ना मरिंगे तजि जाँगे तेरा देसु ऐ।'
परि दै दै पींड़ि जेट में रोवै दै मारै रोसन ते मूँड़ ऐ।
मेरो सूख्यौ ऐ नौलखा बागु राम तैनें कछु न करी
अरे दोना सूख्यौ मरुऔ रायबेल चम्मेली
सबरे पेड़ नारियल सूखे सूखि गई ऐ बनराय

सूखी तो चम्पे की डरी । मेरौ०
अरे परि तिरिया नें मति हरी राजा की साढ़ू के बंगला आयौ
परि आमतु देख्यौ देसापति राजा फाँटिकु दयौ लगाय ऐ
परि मेरी कचहरी मति आवै राजा सौने के खम्भ दहलाइ ।
खम्मु गिरै छज्जौ गिरै रुंदि मरै कचैरी कौ लोगु ऐ ।
पहलौ दोसु तोइ वो लग्यौ पति भरता रह गई बाँझ ऐ ।
अरे साढ़ू मति बोली मारे । लाला बोली मति मारै
बिन दिन कूँ भूलि गयौ ऐ
रौतिक ते भाज्यौ आयौ ।
अरे पामन में पन्हई नाईं
तेरे सिर पै पगड़ी नाईं ।
अरे चढ़िबे कूँ घोड़ा नाँओ
चढ़िवे कूँ घोड़ा दीयौ
अरे तोइ आधौ राजु दीयौ
अरे रहने कूँ महल दीनें
अरे बरबरि कौ भैया कीयौ
अरे साढ़ू मति बोली मारे ।
अरे बखतर कूँ फोरि गई ऐ
अरे पिंजर कूँ तोरि गई ऐ
अरे गोली कौ घाव भला ऐ
अरे बोली तें ससकतु रहँता
अरे गोली ते ठौर रहँता । रे गो०
साढ़ू मति बोली मारै
साढ़ मारै बोलना भए करेजा साल ऐ
परि उल्टी घोड़ी फेरिकें राजा आया महल के बीच ऐ
घोड़ी पै ते न्यों गिरै राजा गिरह कबूतर खाय
घोढ़ी पै ते न्यों गिरयौ रानी नें पकरयौ हातु ऐ
रानी नें तौ राजा पकरयौ लै गयी महलन के बीच ऐ ।
अरी हम तौ चले बनवास कूँ रानी तू जानै तेरौ कामु ऐ ।
बौलौ बांगर के बीर की मदद ।

५—बाछलि कौ पून बाजन कूँ भूत, परचे की खातरि धाया ई ऐ
अजी हिन्दू-मुसलमान दोनों दीन घामें बादशाह नहीं जायाई ऐ

गुसा भया बागर कोई राना, जब घोड़ा सजवाया ई ऐ
घोड़ा मारि गयौ डिल्ली कूँ बास्याइ जाय जगाया ई ऐ
अग्नी लाल पलके में सोवै बास्याइ पलके ते औंधा मारा ई ऐ।
अजी दौरी आई बास्याइ तेरी अम्मा कौनें मरद सताया ई ऐ।
पाँच मौर और एक नारियल पीरजी कौ पंजौ उठाया ई ऐ।
जब मेरौ मालिकु महर करै, सब कुनबा जारति आया ई जी।
महलन में राजा देवराय निरपु दुख्याइ।
भली सी रानी किसिमिति में ई फलु नाँइ।
जोगी जती सेए मैंने इनपै डारयौ सुवाल
रानी! और संकल्पी गाय, रानी किसमित मं तौ फलु नाँइ।
अरे भली सी रानी०
रानी माल परगनों बहुत ऐ बैठी भूँजौ राजु
राजा माय बिना कैसौ मायको, पिय बिन कैसौ सिंगार
धन बिनु नाँइ धनेसुरी राजा ऋतु बिन नाँय मल्हार
महलन में रानी न्यों रही ऐ समझाय।
अरे संग सहेली बोलिकें करि आमें गाय बजाइ
पिया पनारे पौरि जूँ धनि ठाड़ी पकरि किवार ऐ।
अरे बाँह छुड़ाए जाँतु हौ निबल जानि कें मोय ऐ।
परि हिरदे में ते जाइगौ राजा मरद बदूंगी तोय ऐ
जौ तेरी मनसा जोग पै काए कूँ कीयौ ब्याहु ऐ।
परि नौसै घोड़ी लै चढ़यौ बाबुलजी की पौरि ऐ।
बनजारे की आगि ज्यों गयौ सिलगती छोड़ि।
अरे राजा जौ तेरी मनसा जोग पै तपौ हमारे द्वार ऐ
मढ़ी छवाइ दऊँ काँच की मढ़वाइ दऊँ हीरा लाल ऐ
परि गंगा मँगाऊँ हरद्वार की नित उठि करौ असनान ऐ
भूखे तौ भोजन करूँ हारें दाबूँ पाँइ ऐ
ज्यों जोगु ना बनै रानी न्यौ बनिबे कौ नाँइ ऐ।
परि ऐसें जोग ना बनै रहै भोग का भोग ऐ।
'अरे राजा साधू जन थमते भले जौ मति के पूरे होंइ।
अरे राजा बंदा पानी निरमला जौ जल गहरा होइ
साधू जन थमते भले मति के पूरे होंइ
'अरी रानी बंदा पानी गादला गहता निरमल होइ

साधू जन रमते भले जाते दागु न लागै कोइ
अरे राजा गलखासा जामा बोरि कें किया भगम्भर भेस ऐ।
अरे जानें किया भगम्भर बाना अरे रानी नांदन में गेरू घुरवावै
अरे अपनी चाद्दरि मगवाई
जानें चिट्टी चाद्दरि बोरी
रानी माला हात गही ऐ
तुलसी की माला हाथ बिराजै गोरख कूँ रही मनाइ ऐ
अजी जौजूँ बलमा दीसते धन ठाड़ी पकरि किवार ऐ
जब बलमा दीसै नईं जे उलटी खाति पछार ऐ
अरे चौपड़िया के नीबरा तोइ डारूँ कटवाय ऐ
परि तो तर बलमा पौढ़ते मैं मिलती सौ सौ बार ऐ
राजा की लीली झुलमें थान पै पिंजरा में गंगारामु ऐ
राजा नें अँगला बँगला बैठक छोड़ी और गैरा फुलवारि ऐ
समझावें नगर के लोग मात मात काए कूँ रोवै
थोरे से जीवन के काजें चों नैनन कूँ खोवै
अरे टाप बे धरती ते मारें
दै दै मुँह में सूँड़ि पौरि पै हाथी चिंघारें
अरी मात तोइ जबर चोट लागी
तेरौ राजा जोगी भयौ करी जानें बनोबास त्यारी।
आगें आगें दिवराय राजा पीछें राजकुमारि ऐ
एक बन नाख्यौ, दूसरौ, तीजे बन है गई साँझ ऐ।
फिरि पाछे कूँ देखतु ऐ राजा जि आमति राजकुमारि ऐ
'गाम गैल दीखति नाँइ राजा कहाँ करें गुजरान ऐ
'गाम गैल दीसति नांइ रानी यहीं करें गुजरान ऐ
पात बिछाओ बनफल खाओ रानी पातन में गुजरान ऐ
'कहाँ रहे सौर निहालिया कहाँ रहे राते पलँग
कहाँ रहे राजा मूँढ़ा बैठना, कहाँ रहीं राजकुमारि ऐ।
'घर रहे सौरि निहालिया रानी घर रहे राते पलँगि ऐ।
घर रहे मूढ़ा बैठने रानी घर रही राजकुमारि ऐ।
हाँ लकड़ी कंडो जोरि कै राजा मेरे बैठो आँच बराइ ऐ।
'आरी सोइजा राजकुमारि अरे तेरौ पहरौ दुंगो।
'अजी मैं ना सोऊँ महाराज पत्यारौ तिहारो नाँए

जब सोऊंगी महाराज डुपट्टा के छोर तौ गहाइदै
हाथ की उँगरिया मेरे म्हौं में लगाइ दै
घौंटू ऐ सिरहाने लगाइ दै
सोइ गई राजकुमारि बिपति की मारी
जि काए कूं गैल चली ऐ
जाकैं पाँच-चारि काँटे लागे
पामन में ठोपर लागीं
मेरे राजा जी कौ हंसु उड़्यौ ऐ
जे सहर दलेले में आयौ
खासे के घोड़ा जाके फाके मैं बँधे एँ
मकुना हाथी जाके ओंई घूमतु ऐं
नंगर की परजा जाकी रोवै
ऐसौ राजा फेरि न मिलैगौ
अजी कौन के हाथी कौन के घोड़ा अपनी जानि मर्दा फाके में परी ऐ
अरे भोर भयौ ऐ परभात, रानी बाछिल जागै।
बोलौ बागर के पीर की मदद
६—देवी सोइ गई भमन में नौरँग पलँग नवाइ
अरी नौरँग पलँग नवाइ
आंइत पांइत गेंदुआ ठाड़ौ बालम ढोरै ब्यारि ऐ।
धूर उड़ी ब्रजराज की अजी जिन गलियन की धूरि ऐ
अजी जिन गलियन की धूरि अँग लागी लिपिटी नहीं,
जम भजे जांत एँ दूर ऐ।

वार्ता—

अरे चलि मेरे बेटा डिगरि चलो हतिनापुर मनुआ ढारथा
कैतौ रे गुरु गंगाजी न्हवाय दै ना तौ छोड़ौ जोगु ऐ
तोपै ते गुरु जाँउ न्हाँइ लेंउ गोरख सी गंगा
अरे मैं मिलूँ कुटम में जाइ बाजरौ बैलुंगो बंगा
तम्मू मेख उखारि मेसे चेला कसना लियौ बनाइ ऐ
मजल्यौ मजल्यौ जोगी चाल्यौ मजल्यों पै आसन माड़्यौ
आसन माड़ि भगम्मर तान्यौ बाबा बैठ्यौ जल थल पूरि ऐ।
अजमति के गुर तम्मू तनाए अनहद के बाजे नाद ऐ।

बिन खूँटी बिन डोरि मेरे बाबा, अधर भगम्मर तान्या
परि सोमत जागे पाँचौ पंडा छुटी कमंता माइ ऐ।
'अरी ए कै री टिड्डोरी कै बंजारी कै कौरौं दल आये।
कै सिपाई कै रँगीलौ कै जरजोधन आयौ
अरे बेटा ना सिपाई ना रँगीलौ ना जरजोधन आयौ
परि ना टिड्डोरी ना बनजारौ ना कौरों दल आये।
परि कजरी बन का गोरख जोगी परभी न्हाइवे आयौ।
अरी माता जा जोगी ते बादु करूँगो मेरी भूमि नाद बजायौ
'परि जोगी जती से बादु न करना रहना दोऊ कर जोरे।
परि घुटी दबाई मुड़िया जोगी जे तौ अपरम्पार ऐं।
जोगी जती से बाद न करना रहना दोऊ कर जोरे।
७—सेर चून है पाँइ पूजना जे जोगीन का बादु ऐ
कमर मुलका गल में सेली। अंग भभूति लगी अलबेली।
नागर पान चबाय रह्यौ बीरा। सुघड़ नाथ रतनारे नैना।
जाकें छोटी छोटी बावरी। जाके कंधा झोरी फावरी।
पाँइ पद्म्म झलकैं आला। जाके गुद्दी परी वैजंती माला।
पाँइ पद्म्म झलकैं भारी। सदा नाथ कौ आज्ञाकारी।
जापै मखमल ऊ की गूदरी। अरे सौने ऊ की मूँदरी
सो हीरा लाल लगे नग साँचे ग्वा गुदरी में
सो कामरि ओढ़ी स्याम कारी जि परभी बूझन जाँतु ऐ।
अरे लै पत्तुर औघरिया चल्यौ
गाम नंगुर पूछत फिरयौ
गंगा दगरौ कितमें गयौ
अरे राजन की ड्यौढ़ी पै गयौ
राजन कें परदन की रीति
तुम मति घुसौ महलन के बीच
जब जाइ सुरति जोग की आई
हमकूँ परदा कैसौ रे भाई
सत्त नाम लै अलख जगायौ
भिच्छा वारौ जाइ कहूँ न पायौ
तुही तुही करि बोल्यौ बानी
चौंकि परी कौंता पटरानी

मोती मूंगा मुकता लाल
भरि लाई सौंने के थार
भरि लाई सौंने की थारी। जे आइ भई ड्यौढ़ीन पै ठाढ़ी
नेंम धरम कूं कौंता डरी। दै परिकम्मा पाँइनु परी
सो भूखे औ तो भोजन जें लेउ, प्यासे औ तो पानी पी लेउ
ए बाबा जी, रहि जाइगी नामना तिहारी
सो दै जा जोगेसुर मोइ आसिका।
अरी माता कांकर पाथर क्या दिखलावै
मोइ परभै बस्तु बतावै
ऐसी बात मोइ ना सूझै। परभी जाइ पंडवनु बूझै
अरी कहाँ खेलें तेरे पाँचों बीर। अरजुन, भीमा, सहदेव भीम
सो गचकीली कौ बन्यौ ऐं चौंतरा ए बाबाजी
देखि सीतल पेड़ु री मल्हारी
म्ह्याँ खेलें पाँचौ पण्डवा।
मातु कँमेता भेदु बतायौ। जब औघड़ पंडन ढिंग आयौ।
भीमसेन भोयौ कीयौ। अब सहदेव ने दावु दीयौ
गाड़ि कचैरी पाँउ नादु फूंकि दीयौ
'अरे राजा बैठौ न्याबु चुकावै। इन्दुरु बैठौ जलु बरसावै
बैठे जंगल चरनी हिरनी।
हम जोगी कूं बैठें ना बनें, नबै कंठ पद्मिनी फिरती,
सिध गोरख जागे
अरे बेटा उड़ता तीतुर उड़ता बाज। उड़ती जंग हिवाई
हम जोगी से उड़ता ना बनै पाँचौ जमों से टक्कर खाई,
सिध गोरख जागे
अरे हम भी मरसी तुम भी मरसी। मरसी कोट अठासी
बेद पढ़ंते बिरमा मरि गए, जे परी काल की फांसी,
सिध गोरख जागे
'अरे कौन गुरू तू काकौ चेला, कहा तौ तिहारौ नामु ऐ
अरे चेला गोरखनाथ कौ औघड़िया मेरौ नांउ ऐ।
अरे बेटा कजरी बन मेरौ थान। गुरू हमारे विद्यामान
हम आए तेरी परभी न्हान
तेरी कबै परैगी परभी पंडा बेद की बताइ।

'अरे परभी पूजैं सेठ साहूकार दुनिया और राजा
भैंनि भानजी ऐ न्यौंति जिमावैं, जोरा औरु तीहरि पहरावै
जे करैं गऊन के दाँन सौंने में सींग मढ़ावैं।
सो सिर पै टोपी, गाँड़ि लँगोटी, बूझन आए ए बाबाजी
तुम दाँन तौ करौगे परमाधारी।
सो कहा गंगा में तुम जौ बवौ
'गरब की बोली जी मति मारौ पंडवा, बचन करौगे यादि ऐ
जा बोली कौ म्यानों दुंगो बेटा, असलि गुरु कौ चेला
परि छिमा खाइ औघरिया चाल्यौ आय गुरुन के पास ऐ
जैलै बाबा झोरी पत्तुर नांइ सधै तेरौ जोगु ऐ
परि जोग नांइ जोंहर भयौ बाबा बिन खांड़े सँगरामु ऐ
'बेटा कै पंडन्नें मारयौ, छेरयौ कै पंडनु दई गारी
'अरे बाबा ना पंडनुनें मारयौ छेरयौ, ना पंडनु दई गारी
अरे सबद की मार दई पंडन्नें लीया करेजा काढ़ि ऐ।
बोलौ बागर के पीर की मदद
८—मैं लई स्याम सरनि जमुना की तेरे चरन सिर लाग्या ध्यान
अब जोगी जती सती संन्यासी मगन होते धरि तेरा ध्यान
चारयौ पहर भजनों में रहते प्रात होत गंगा अस्नान
तीनि लोक ते वारी न्यारी मथुरा बेदन गाई ऐ
चौबीस घाट की कहा कहूँ महिमा बिच बिसरांति बनाई ऐ
उज्जलि कुल चौबे गुजराती अपनी देह पुजाई ऐ।
भूतेसुर कुतवाल सहर में केसवदेव ठकुराई ऐ
अलख निरंजन तेरौ जस गामें
मथुरा जी की पदम लटन में बह चली जमुना माई ऐ।
'अरे बेटा कै पंडन कें अगिनि लगाइ दऊँ कै कोढ़ी करि डारों।
'अगिन न दैना, कोढ़ी न करना बड़ा लगै अपराधु ऐ
बड़ी औम गंगा माई की हरि लै गंगा माइ ऐ।
अरे सबरे चेला अरजी करौ लै चीपी झोली में धरौ
पुन पंडवन के मारौ मान, गंगा जी हरौ।
अरे बेटा सब तीरथ हरिलाओ मान पंडन के मारौ जी
लै पत्तुर औघरिया चल्यौ। गाम नंगर पूछतु फिरयौ
गंगा दगरौ कित में गयौ। अजी गाम पछाँईं ढूंढ़ा पीपरी

बाबाजी म्हा गंगा कौ मारगु बन्यौ
जाकी नजरि परी धारा जी करके पै ठाड़ौ भयौ
अरे हाथ जोरि गंगा खड़ी,
आऔ दीनदयाल महरि नाथ नें करी
असलि गुरु के चेला हरि लै मोइ पत्तुर बीच।
अरी हटि हटि गंगा बावरी। हाथ मेरे फावरी
जिया जन्तु धन तो में ब्यौंइ। कोढ़ी न्हाइ कलंकी न्हाइ
हत्यारो न्हाइ मत्यारौ न्हाइ। अब नाऊ न्याइ नैनियाँ न्हाइ
अरे मेरें हुकमु गुरुन की नाँइ। गंगाजी तोमें बोरूँ न पाँइ
अरो कि माता तेरौ जलपारायन नाँइ। हम तेरे जल में कबऊँ न न्हौंइ।
जोगी मिर्त लोक ते छूटी धार। सिवसंकर नें ओढ्यौ भार
श्रीकृश्न के चरन रही। मैं महादेव के सीस रही
मोइ करि सेवा भागीरथु लायौ
अरे कि बाबा चौरे में लाइ डारी। मंजलोक आइ डारी
दुनिया न्हाँति मों में पाप की भरी।
'अरे ज्या पत्तुर में कबऊ न आऊँ बाबा घर घर माँगी भीक ऐ।
झोरी हमारी कामधेनु, संसार हमारी बारी
अरे जल कौ छोइया करै जुबाब। सुनि री गंगा मेरी बात
क्या लगायौ जोगी ते बादु।
तुम ऐसी लहरि बहौ पटरानी
जोगी और जोगी कौ तोमरा काऊ लोक खूँ बहि जाइ
बैठि मगर खार के बीच जाइ कांकरी सौ खाइ
अरी माता आइजा पत्तर, है जा पवित्तुर, गुरु करें निस्तारा
बाबा नें पहला पत्तुर बोरा दरयाय में पहला समँद समाना
दूजा पत्तुर बोरा दरयाय में दूजा समद समाना
तीजा पत्तुर बोरा दरयाय में तीजा समद समाना
चौथा पत्तुर बोरा दरयाय में चौथा समद समाना
पाँचा पत्तुर बोरा दरयाय में पाँचा समद समाना
छटवाँ पत्तुर बोरा दरयाय में छटवाँ समद समाना
सतवाँ पत्तुर बोरा दरयाय में सतवाँ समद समामा
सातौ समद आठई गंगा नौसै नदी नबाका

ताल पोखरा सबई समाइ गए पत्तुरु भरि ऐ नाँइ ऐं हाँ हाँ
मूँगानाथ गामें, गुरु गोरख उस्ताद कूँ मनामें
सुन्दरनाथ अर्थामे छवि महरी की न्यारी ऐ
चोआ चन्दन और अरगजा आमें महक भारी ऐ
भीतर परसि कें आए पीर, भीतर ऊते आए
छवि डूँगर ऊ की न्यारी है।
डूँगर की छवि न्यारी, डोरीनाथ नें उतारी
डोरी तौ उतारी जाकी सोभा बरनी न्यारी ऐ
ऐरापति हाथी सजवाए, लख चौरासी घंट लगाए
नकुल कुमर हौदा वैठारे,
गुनु भाऊन में उड़ति दिखी रेती
चलौ रे बेटा परभी सौमोंती परी
बयन के से छूटे झुण्ड रीते पाए राधाकुण्ड
दद्बल कुण्ड, सकल बल तीरथ गंगा में जलु नाँऐं
हम परभी काए में न्हामें।
बारू रेत के जमि रहे खासे
लैकें बेद स[illegible] बाँचे
माइ कमंते पूछौ एक पोथी ब्वाऊ पै धरी
माता बाँचि रहीं असलोक। कै गंगाजी भईं अलोप
कै सिवसंकर संग गईं।
मोइ ब्वाई कौ भरमु समानों, गंगाजी मेरी ब्वाई नें हरी
अरी माता सबरो पौहमि पै ढूँढ़ि ढूँढ़ि मारूँ मेरी गंगा कहाँ
लै जाइगौ।
अरे गंगा में जलु नाऐं मेरे बेटा समद करौ असनान ऐं
गंगा ते चले समद पै आए समंदुर में जलु हतुनाऐं
समन्दर में जल नाँऐं मेरे बेटा कूआ करौ असनान ऐं
समँद चले गोला पै आए, गोला में जलु ना पायौ
अरी गोला में जल नाऐं मेरी माता कहाँ करें असनान ऐं
गोला में जल नाँऐं मेरे बेटा महल करौ असनान ऐं।
गोला चले महलन में आए, महलन में जलु नाँऐं।
नेंक टिकौ मेरे अरजुन बेटा, ठाकुर पूजा जाऊँ
चली चली मन्दिर में आई जल की घड़िया पाई

परि मन चंगा तौ कठौटी में गंगा परभो लई ऐ साधि ऐ
राजा बाबू उँगरी कूँ बोरें बहुतेरे म्वा लौटें
अरे बेटा कै बारी के बेंगन तोरे कै पनवारी के पान ऐ
कै तौ प्यासी गाय हटाईं कै न्योंते बामन ललकारे
कै कोई जोगी कै कोई जंगम कै कोई सिद्ध सतायौ
अरी माता ना बारी के बेंगन तोरे ना पनवारी के पान रे
ना तौ प्यासी गाय हटाईं ना बामन ललकारे
ना कोई जोगी ना कोई जंगम ना कोई सिद्ध सतायौ
परि भूरंगा सौ एक जोगना परभी बूझन आयौ
परि परभी नाँई बताई मेरी माता न्योंई दियौ बहकाय ऐ।
परि जानि गई पहचानि गई बे आइ गए गोरखनाथ ऐ।
ब्वा कौ रे औघरिया चेला हरि लै गयौ गंगा माइ ऐ।
गंगा ढूँढ़न निकरे हाँ। कौंती के पाँचों हाँ
भटकत विकट उजार हे हाँ
अजी कंधा गजा भीम नें धरी। माइ कमंता संग लई।
जे गंगा ढूँढ़न चले। कै पंडा परबत पै चढ़े
अजी आमत देखे पांचों पंड, पारबती म्वाँ घोटें भंग
जे पंडन देखि हँसे, कि बाबा गुफा में धँसे।
भीम—अरे जोगी अब कहाँ जातु ऐ बदन दुराई
तू दै जा मेरी गंगा माई
परबत को करि डारूँ छार
मेरी गंगाजी हरि लाए, कबकौ हो दामनगीर
कुन्ती—खरग दुभाइ खोह में धरौ, हाथ जोरि पाँयन तर परौ
शिव—अरे बेटा एक गंगाजी भागीरथ लै गयौ राजा सगर कौ नाती
राजा सगर कौ नाती बेटा दिलीप कौ, राजा
लै गंगाजी न्याँते चलौ दाने नें लई छुड़ाइ ऐ
जब दाने की जाँघ चीरी गंगा ने लियौ परभाइ ऐ
[वार्ता]
गोरख—मेरे पास भभूत कौ गोला जल में दुंगो डारि ऐ
जल में दुंगो डारि पंडवा सूखौ लेउ निकारि ऐ
सूखौ लेउ निकारि मेरे बेटा घिसि घिसि अंग लगाऊँ।
सकल बदन ते कपड़ा उतारे कूदि परे जल बीच ऐ

परि पहली डूबक मारी पंडवा सौंने के जौ लाए
दूसरी डूबक मारैं पंडवा चाँदी के जौ लाए
परि तीसरी डूबक मारैं पंडवा ताँबे के जौ लाए
चौथी डूबक मारें पंडवा लोहे के जौ लाए
परि पाँचई डूबक मारें पंडवा पाँड़ौ माटी लाए
कुं०—अरे बाबा सैर दलेले की रानी बाँझ। रोमति ऐ सबेरें साँझ
बुनकी कोखि हरी करै बाबा तेरी जब जानूँ करामाति
बाछा—अरी भैना तेरे ऐ तीरथ कौ धाम, जोगी जती करें असनान
कोई पूरौ सिद्ध आवै बेटी बाँगर भेजरी।
गो०—अरी हतिनापुर की रानी। तैनें बात कही ऐ स्यानी
मेरे हिरदै बीच समानी।
तोइ गंगा दीनी कौल की। तोइ परी का और की
तुम लम्बी कूंच करौ, कै बेली बागर कूं चलौ
बोलौ ई बागर के पीर की मदद।
१०—'चलि मेरे बेटा चलि मेरे बेटा !
डिगरि चलौ औघरिया चेला हाँ
चलि मेरे बेटा डिगरि चलौ नगरी कौ लोगु दुख्याना
तम्बू मेख उखारि मेरे चेला कसना लियौ बनाय
देसु भलौ रे पच्छिम की धरती औरु मिठबोला लोगु ऐ
पानी माँगैं दूधु रे पिलामें देसु भलौ हरिआना
घर घर गोरी हाँसिली मिरगानैनी नारि
पानी माँगैं दूधु रे पिमामें देसु भलौ हरिआना
देसु भलौ हरिआना बेटा दही दूध कौ खाना
अजी ताँमजाम हाँकि दीए। लंबेऊ कूंच कीए
जाते बोलै गोरखनाथ 'बेटा देश कौन रे
ओ०—'बाबाजी चलतूँ अगारी। बागर छोड़ि दई पिछारी
सैर कामरू धना
आसनु करौ बनाइ, तम्बू नाथ कौ तना।
हाती पीलमान लाए। तम्बू ठाड़े करवाए।
रुपि गई तम्मून की कनात। जुरि गई जोगीन की जमात
जिननें आसनु करयौ बनाइ, कि तम्मू भौंरे पै तनौ।
धायौ भूभरिया चेला। दीयौ धोबिनि कें डेरा।

धोबिन आदर भाव कीयौ। जानें मूँढ़ा डारि दीयौ।
जानें पढ़ि पढ़ि सरसों मारी। नाथ की अकलि गुम्म करिडारी
जानें कबरा गधा बनायौ हाँकि घूरे पै दीयौ।
धाया कानीफा चेला। दीया धीमरि कैं डेरा
धीमरि आदर भाव करयौ। जानें मूँढ़ा डारि दीयौ
जानें पढ़ि पढ़ि सरसों मारी। नाथ की अकलि गुम्म करि डारी
जानें बकरा करि बिरमायौ। बांधि खूँटा तें दयौ
बेड़ा बस्ती बड़ी लग्यौ परकोटा। सबु बस्ती कौ एकु लपेटा
तुम छोड़ौ कूंड़ी पटकौ सोटा
तुम भाव भुगति लै आऔ चेला बेगि जाउ रे।
कामरू की नारी। अजी विद्यामान भारी
छोड़ि बीरताल छोड़ी कालिका भमानी।
मेंढ़ा और बकरा कीए, जोगीन के बालका
औघड़नाथ गए तेली कें मुंडा बैलु बनायौ हाँकि पाटि में दयौ
अजी दम्मक दम्मा घानी पेलै। तेलिनि हातु सबेरौ फेरै
चुनी चोकले बे नँई खाँय, अजी पीना में मुँह मारैं, प्यारु तेलिनियाँ करै।
हाथ झोरी में डारयौ। चेला सोकनाथ काढ़यौ
कर जोरि भयौ ठाड़ौ
मैं हुकमु नाथ पाऊँ। गढ़ कामरू चेताऊँ
गुरू नें पंजौ धरि दीयौ। नीरु सोखि सबु लीयौ
दुनिया प्यासी तौ मरी
जब जेहरि धरि लई सीस नारि पानी कूं चली।
नैनी मृगनैनी ओढ़ें प्रेम-पीताम्बर साड़ी
आँगी गात ना सम्हारी
चालि मधुर सी चली
जेहरि धरी उतारि नजरि नाथ की परी
गोरखनाथ धारी। विद्यामान ऐं जे भारी
इननें विद्या परकासी। विद्या बाँधि सबु लई
जब गधई कर कें नारि हाँकि झीलि में दई।
कामरु देस की सबरी महरियाँ सबु गधई करि डारीं
परि महलों रहतीं पान चबातीं बुहू घूंसि करि डारीं

एक जाट नें करी लुगाई रोटीन कौ पेंड़ौ देखै।
बोलौ बाँगर ई पीर की मदद
११—चलि मेरे बेटा डिगरि चलौ हरिआने कूँ करौ कूँचु ऐ
उखरी तम्मू और कनात। चलि दई जोगीन की जमात
जाते बोले गोरखनाथ
बेटा हरिआने कूँ चलौ
मजल्यौ मजल्यौ जोगी चाल्यौ मजल्यों पै आसनु मारयो
आसनु माड़ि भगम्मरु तान्यौ बैठ्यौ जलु थलु पूरि ऐ
हरिआने की सीम में बाबा नें बजाय दयौ नाँदु ऐ
हरिआने की रानी बोली जे आइ गए भोलानाथ ऐ
अरे जा मेरे बेटा डिगरि चलौ दूध के भोजन लाइ दै
अन्न के भोजन ना मैं जेंऊँ बेटा दूध के भोजन लाइ दै।
अजी लै पत्तुर औघरिया चल्यौ
ओघड़ करी नाद में घोर। जब चौंकें जंगल के मोर
हाजुर ऐ सो भेजि माता
बाबा दूधाहारी ऐ।
अन्न के भोजन नाइ लेंउ माता बाबा दूधाधारी
कै तौ माता दूध री पिलाइ दै नाँ तौ ओटि सरापु ऐ
नाद में नाँएँ, गोद में नाएं दूध कहाँ ते लाऊँ
पार कें नाऐं, परौसी के नाऐं, दूध कहाँ ते लाऊँ
गाम में नाऐं परगने में नाँइ में दूधु कहाँ ते लाऊँ
अरी कै तौ माता दूध री पिलाइ दै नाँ तौ ओटि सराप ऐ
अरे न्हाइ धोइ कुमरि चौकी भई ठाड़ी, सुरति करता ते लगाइ लई
बाबाजी मेरे ख्याल परयौ ऐ
बेटा जसरत के उदई के नाती। मेरी तुमई ते डोरि लगी ऐ
जाकी छूटी कुचन ते धार, धार पत्तुर में आइ गई।
जानें पत्तर भरयौ झकोरि दुआ मेरे गुरु की आइ गई।
'अरे क्या तुम देउ भोलानाथ कहा मेरें हतु नाऐं
अजी जे तुमनें माग्यौ नाथ दूध मेरें हतु नाऐं
अरी माता नौ कोठी मारवाड़ में
छपन कोट हरिआनौ

बारह पालि मेवाति ऐ।
अन्न चाल परि जाँय।
पानी के जबाल परि जाँय
परि दूध घनेरा होइगा।
बोलौई..........
१२—किए कूँच पै कूँच संग सबु चेला लै लीये
राजा उम्मर के बाग नाथ नें डेरा दै दीये
'सूखे बाग में मति रहै मेरे बाबा काऊ हरियल में चलि रहना
'सूखौ से तौ हरयौ है जायगौ आग बाग गुजरान ऐ
नगरी ते कूरौ बटोरिला बेटा जामें दै दै आगि ऐ''
धूनी दई धूआँ घुमड़ानों मार रही बनराय ऐ
परि हरी डार पै हरियल बोल्यौ मुनियाँ लाल फिंगारै
परि लालामी धौपरिया मारयौ गिरयौ छोड़िगौ केला
अरे बाबा गलगली बोलि गलगला बोल्यौ
साँप फिंगारयौ कलजुग की बिलैया बोली
मूँसौ दूँकतु आयौ।
परि सुप्परभात करन कौ ऐ पहरौ नगर तमासे आयौ
परि धनि धनि रे कलि गोरख जोगी हरयौ कियौ तैंनैं बागु ऐ
अरे बेटा भूँक प्यास की कोई नाँइ बूझै दंडौतन के ढेर ऐ
अरे प्यास लग्यौ औघड़िया चेला घूँटक पानी प्याइ दै
परि बाबा जौरें बाग में गोला होंतौ बागु सूखि चौं जाँतौ
अरे बेटा जा राजा नें बागु लगायौ पहलें खुदायौ होगौ कूआ।
पीर की मदद—
१३—अरे लै लई तोमा डोरि
नाथु गोला पै आयो।
कूआ प जी पाए चौकीदार अरे तो जलु जहरु बताया
जल मत पीवै नाथ अरे पीमत मरि जागौ
राजा नें रखवारी बैठारे।
मारें दहसति के मारें।
मैंनें जी ढूँढ़े तीनों लोक जहर मोइ कहूँ नाँइ पायौ
मैं आइ गयौ बागर देस जहर कूआ में पाइ गयौ
चेला के जी मन में पाप नाथ की टोपी लंग्गो

लँगोटी लुंगो
बाबा जी कौ चकमक बटुआ लुंगो
पाँइ खड़ाऊँ हातीदाँत की बैजंती माला लुंगो
बाबा की लौहरी सुमिरिनी हात की ऐ लै लुंगो
मुगेरी सोटा लै लुंगो
जाकौ कोतल घोड़ा लुंगो
सबरौ लेंउ असबाब नाथ कूँ ठोकि लकड़िया दुंगो
इतनों पापु बिचारि नाथ नें तौमा फाँस्यौ
तौमा दीयौ फाँसि नाथ ऐ जलु नांइ पायौ
देखे बाबरी ताल नाथ गहबरि कें रोयौ
राजा कौ नांइ दोस, दोस अपने करमन कौ
जो दुख लिख्यौ ऐ लिलार नाथ सोई भुगत्यौ चहियें
मन में बड़ौ घबड़ानों
अरे आयौ गुरूजी कौ नाम गोला तौ मुँहड़े जूँ उमग्यौ
पानी पार्छे झमारयौ मरुए ते लाग्यौ
अरे ढोंड़ चलि बाज्यौ फुलवारी में लाग्यौ
अरे तौमा भरयौ ऐ झकोरि नाथ के आसन आइ गयौ
अजी तौमा धरयौ ऐ अगार ररकि पीछें भयौ ठाड़ौ
बरकिंगे भोलानाथ चेला तौ मेरौ कहाँ गयौ ऐ
बाबाजी मैं पाछें ठाड़ौ
अरे बेटा नेंक आगे आइजा कुल्ला करवाइजा
अरे नेंक थोरौ सौ पीलै पानी,
पानी के वंदा जौरें न जाइगौ।
बाबा सुनि आयौ मैं पानी जहर कौ बतायौ
जहरु ऐ पानी, पीएँ ते है जाउगे नाथ गुरमानी
अरे बाबा जी पीवै तौ पीलै नाथ अरे नईं लुढ़काइ दै
अरे नईं उल्ले ते पल्ले ऐ फ्याइदै
अजी आकनाथ ढाकनाथ पत्थरनाथ,
नईं सबु चेलान्नें फ्याइदै।
पानी के औरें न जांगो

[वार्ता]

रंगी चंगी बो भौनारी। खोटी भौंह मुलम्मे बारी।

घिसि घिस एड़ी धोवे नारि। उनके गोरख द्वार न जाइ
बातो खेंचि चूल्हि में देइ। हौलें हौलें मेरी चन्दो मगरे लेइ
झगा बिछावै सोवे नारि। पार परोसिनि जौरें न जाइ
हँसि लई ब्याइ छोड़ौ कन्त। सोमत ई व्वाके देखो दंत
रोमति पीसै, सिनकित पवै। सदा दलिद्दर उनके रहै
तिल भौंरी मांथें मसौ और कनफुटी लीक।
भाजिनों होइ तो भाजि कंता नँई बेगि मँगावै भीक॥
अरे बनि ठनि औघड़नाथ बस्ती में आइ गयौ
माँगत जो माँगत नाथ पल्ली ओर कूँ निकरि गयौ
नाऊ न के माँऊ
जाते कोई माई मुख ना बोलै, औघड़ गलियन में डोलै
कुअटा पै चबैया, गलियन में गैरा
एक सखी न्यौं कहै राज को ऐं बेटा
जाके गुरू ने खँदायौ जे तौ माँगि न जानैं भीख
जाके घर में नारि करकसा
जाकें मारी बोली, जाई ते भैना है गयौ जोगी।
गुबर पाथती नारि अरे ललना ऐ खिलाबै
अरे पलना में झुलावै
अरे तुम कहाँ गए भोलानाथ अरे मोइ न बताबै
मैया री मेरी मैं माँगन आयौ भीख मेरे गुरु नें खँदायो
जिअ देखि राजकुमार क मेरौ तोमा रीतौ
जा नंगर को पापी राजा रैयति लैगयौ डाँड़ि ऐ
राजा नें तो सब परजा डांड़ी काऊ में आसति नांऐं
अरी मोइ भीक न डारै
भलो रे नगर धरमात्मा राजा, बाबाजी तुम अभागे डोलौ
ऊँची पोरी बंक दुवारी एकदंता झूमें द्वार
रानी बाछिल नगर दुहाई जब रैयति घर पावै
बुनकें ते लै आवै बाबा जब रैयति घर पावै
मोइ ग्वेई महल बताय दै ठकुरानी माथ निबाजैं तोइ
नाथ निबाजै सबु दुख भाजै
जो तुम करो सोई तुमें छाजै।
रानी बाछिल की पोरि पै औघड़ कौ बाज्यौ नादु पै

पीर की मदद—

१४—चीर उतारि धरयौ री रानी नें सिर ते लोटा डारयौ
एक हाथ ते लोटा ढारै दूजे ते मींड़े पींठि ऐ
सुनि लै री रुकमादे बाँदी बाबा कें डारि आ भीक ऐ
भीक ले तौ भीक दै आ नहीं बातन में बिरमाइ लै
थार भरे री गजमानिक मोती थार बाँधी भरी भिच्छा लावै
लेंतु ऐ तौ तू लै बजमारे मारूँ ढकेला चारि ऐ
परि बाँदी ते बाँदी कही तब मन में है गई आगि ऐ
पकरि पाँम चौखटि ते मारूँ डाढ़ दाँत जाँइ टूटि ऐं
डाढ़ दाँत जाँइ टूटि बजमारे करि करि हलुआ खाइ ए
परि बाँदी गारी दै गई सतगुर कौ जीतब नांऐं
परि आगे आ मैया आगें आ तेरे लऊँ हाथ की भीक ऐ
परि आगें लई बुलाइ बाबा नें स्वाफी दई बिछाइऐ
पहलौ सोटा ऐसौ मारयौ गयौ हाथ ते थारु ऐ
दूजौ सोटा ऐसौ मारयौ भयौ चुरीन को ढेरु ऐ
तीजौ सोटा ऐसौ मारयौ डारयौ कनफटौ फौरि ऐ
डारि झोरिया खिबिरि गयौ जब बस करि बस करि होइ ऐ
परि आपनु रानी न्हवन सँजोवै जोगीन पै पिटवावै
बे बाबा से घर घर डोलै बे काऊ ना मारें
तुम बाबा ते कुबचन बोलीं बाबा नें सजा लगाई
परि खाल कढ़ाऊँ तेरी, भुस भरवाइ दऊँ बाबाजी ऐ लाइ दै
बोलि ऐ
अरे रानी जहाँ भेजै म्वां जाऊँ मेरी रानी बाबा माऊँ अब
न जाउँगी
परि भकर भकर वाकी आँखि बरै सोटनि की मार लगावै
अरी महल चढ़ी तोइ बोलै कमंता सुनि बाबाजी बात ऐ

पीर की मदद—

१५—पतिभरता के द्वार नाथ नें नादु बजाइ दयौ
थार भरे गजमानिक मोती रानी भिच्छा लावै
लीजौ रे परदेसी बाबा जोगी आस्या लागी
तेरे हाथ की भिच्छा न लुंगो माता बालापन की बाँझ ऐ
बांदी आई मेरी मारि कें बिडारी मोइ का ऐबु लगावै

नाती हमारे पलना में झूलैं बाबा बेटा गए रे सिकार ऐं
पांच-चारि तौ घर आँगन खेलें द्वै भैंसिन पै ग्वार ऐं
जौ भैया तेरे लालु घनेरे एक फलु माँग्यौ दैना
तीरथ बरत करामें बुहतेरे तेरा तोइ मिलामें
सुनियों री मेरी पार री परौसिन जा बाबा के बोल ऐं
मैं आई बाबा पै मांगन बाबा बेटा मांगै
तुम से गुरु मैंने सेए घनेरे पूरी मेरी काऊनें न पारी
हाँ जो सेऔ जो निगुरौ सेऔ सतगुरु भेट्यों नांइ ऐ
जाइ नांइ सेवै माता मेरे गुरु ऐ हरयौ री कीयौ तेरौ बागु ऐ
नामु सुन्यौ जानें हरे बाग कौ सीतल भयौ रे सरीरु ऐ
कौन गुरु रे तुम का के चेला कहा तिहारौ नाम ऐ
'चेला गोरखनाथ कौ औघड़िया मेरौ नामु ऐं'
नामु सुन्यौ गोरख जोगी कौ जाकौ सीतल भयौ सरीरु ऐ
हाँ बाबा जी बैठि जा गुरु कह देउ मन की बात ऐ
चारि घरी रे ब्वातन बिरमायौ तौ जूँ भोजन है गए त्यार ऐं
आ बाबा जी बैठि जा गुरु बैठि कें देउ जिमाइ ऐ
लै पत्तुर आगें धरयौ जाइ भरि दै राजकुमारि ऐ
दाबि भरूँ तेरौ पत्तुर फूटै बहि में भोजन छीजें
छोटौ पत्तुर मुकति घनेरी कहौ नाथ क्या कीजै
सैज ई लैन सहज ई दैना सहज करौ ठकुरानी
सहज ई सहन करौ ठकुरानी पत्तुर सब की कलै सम्बाई
अरे बाबा बारह मँहगी पकमान समाइ गए दस बूरे के मॉट ऐं
परि सोलह कलस जामें घी के समाइ गए पत्तुर भरिऐ नाँइ।
उझकि उझकि पतिभरता देखै भरै न रीतौ होइ ऐ
पत्तुरु पूजि छत्तरु पूजि कालकंट भाजें दूरि
जा भंडार ते आवै सदा भरपूर
अलहदास करते की बानी
क्या करंते कूँ क्या करें
रीते मन्दिर फेरि भी भरें
जो बाबा महरि करें
आगें आगें औघड़ चेला जाके पीछें राजकुमारि ऐ
जबई बाग किनारें आई सतगुर की खुलि गई बारी

मैं बाबरिया नगर खँदायौ बेटा घरबारौ बनि आयौ
कै रे ठगी तैनें गाई माई कै रे ठग्यौ घरबारौ
नाँइ ठगी मैंनें गाई माई नाँइ ठग्यौ घरबारौ
सवा लाख बागर की रानी सेवा करन तेरी आई
सेवा करन तेरी आई लटधारी बाबा भोजन भौतिक लाई।
'जा मैया पै सेवा न होइगी बेटा जा घर राजु रिस्याइ ऐ।'
'जोगी नाव परी मँझधार पार मोइ करिजा रे जोगी
नामना बाबा रहि जाइगी तेरी।
मो घर कोई न रिसाइ पिया परदेस गयौ मेरौ
आसरौ बाबा आइ कें लियौ ऐ तेरौ
परि जे कंचन सी देह खाक मैं लगाइ लऊँ तन में
सेवा की बाबा लागि रही मन में
हमरी माता तिहारौ तौ रहनों महरी मन्दिर न्वां जंगल कौ बासा
अरे बाबा तुम तौ रहियों महरी मन्दिर में न्वांई करूँ गुजरान ऐ
अरी माता तिहारौ तौ खानों पानु मिठाई, हमारौ आक धतूरा
अरे बाबा तुम तौ खइयों पानु मिठाई मैं आक धतूरौ खाऊँ
परि दाब काटि करि लीयौ बिछौना आसन लेंति बनाइ ऐ
परि चौदह सौ धूनी रोजु लगावै चौदह सैनु डारि डारि आवै
परि मूँड़ छबरिया हात बुहरिया केसन से पग जारै
परि एक हात से सुआ पढ़ावै दांए ते ढोरति ब्यारि ऐ
परि सुआ पढ़ामत गनिका तिर गई बाछलि तिरि गई गोरख ते
चारि महीना परे जड़कारे जाड़ेन के जमि गए पारे
चारि महीना परी धौपरी रमि गयौ बोलन हारौ
परि बोलन हारौ रमि गयौ माँटी रही निधान ऐ
पच्छिम दिसा की आँधी आई बाछिल कौ बँध्यौ मटूला
चारि महीना घोरि घोरि बरस्यौ ऊपर घासु हरियानी
कानों में पंछी अंडा धरि गए सिकुला है उड़ि जाना
परि बाछलि बमई है गई सरप रहे लिपटाइ
बारह बरस में तीनि दिन बाकी जागे गोरखनाथ ऐ
परि सुनिलै रे औघड़िया चेला बो माई कहाँ गई ऐ
परि कुंड जराइ दई आगि खबरि मोइ नाँइ रही ऐ
परि जोगी उठ्यौ लहराइ हाथ जई पतबरी

सीसु बचायौ नाथ पिंजरा झारि डारयौ
परि सिर पै धरि दियौ हातु भमानी करि डारी ऐ
तू अपने घर जाउ तपस्या पूरन भई
मैं सोइ गई भोलानाथ तपस्या नांइ भई
अरी ऐसे भोजन लाउ व्वा दिन लाई री
हुकम देउ तौ जांउ बे हुकमें ना जाइबे की
अज्ञामांगि भोरी माइ महल पग धारै
पीर की मदद
१६—सब पीरों में पीर औलिया जाहरपीर दिमाना है
दोनों जौरुआ मारि गिराए कीया राज अमाना ऐं
डिल्ली के आलमसाह बास्याइ बिरगाह बना ई ऐ
हेमसहाय नें कलस चढ़ाए, दुनिया झारत आई ऐ
मकुना हाती जरद अम्बारी जिही तुम्हारे काम का
नवलनाथ साँची करि गामें बासी बिन्दावन धाम का जी
ठगन बिरानी आस ठगिनी आमति ऐ
भैना मिलि लै कंठ मिलाय भौतु दिन बिछुड़ी जी
अरी जोगी कौ का दोसु सरीरु तुजाइ लौ री
गुर गारी मति देइ कोढ़िन है जाइगी
गुरुन के पूजौ पाँय गुरु नोंति जिमाइलैरी
गुरु मेरे भोलानाथ भैंनि मति कोसै री
कासी सहर ते पंडित आए री पुस्तक लै आए री
पुस्तक लाए मेरी भैंनि भौतु समझाई री
'अजी आजु नगर में तीज भैंना कपड़ा मोइदै री
'जे कपड़ा ना देंउ और लै जइयो री
'अरी गुन में दै दै आगि पुराने भैना मोइ दै री
'अरी दुहरे तिहरे थान रेसमी जोरा री
कम्मर के लै जाओ जामें बड़े बड़े झब्बा री
नैंनूं की चादरि लैजा जामें जरद किनारी री
मिसुरू की चादरि'लैजा जामें गोटा लगि रह्योजी
'अरी ऐसे मति बोलै बोल करूँगी हत्यारी री
बगुदा लैं लीऔ हात बुरज पै चढ़ि गई री
सुनौ बस्ती के लोग याइ हत्या दै देंउ री

तेरे पिछवारें नदी जाई में बहि जाऊँगी री
तेरे अँगना में कुइया भड़कि मरि जाऊँगी री
अरी छै पैंसेरी बिसु खाँउ टका भरि तोइ देंउ री
पौनी ते फारूँ पेटु सरबा में डूबूं री
अरी ना कपड़ा ना देइ नांइ मुखते बौलै री
कलि की असलि भमानी जानें बगदि बुलाइ लई री'
कपड़ा दिए उतारि जबै मन फूली री
फूली अँगना समाइ कुठोला रानी है गई री
अरे सेरक चामर रांधि नाथ पै आवै रे
भोजन धरे एँ अगार ररिक पीछें भई ठाड़ी री
अरे भोजन भोग लगाइ महर करि मोपै रे
बाबा जी भोजन भोग लगाइ महरि करि मोपै रे
अजी बरकिंगे भोलानाथ बेटा बे माई नांएँ रे
अजी औघड़ भरि गयौ साखि औरु ना आवै रे
बो माई पिअरी पिअरी ब्वाइ बोलें बोलु न आवै रे
बेटा बो माई हति नाँइ हलमुष्टी कहाँ ते आई री
बेटा बो माई हति नाँइ बेटा जीभ घनेरी लाई री
अरे बेटा बुही ऐ गाई गुई है माई ला बटुआ दरिआई
अजी बटुआ में हारयौ हातु जाइ द्वै जौ पाए रे
अरी सत के तौ लै जाइ फलै औरु फूलै री
अरी बे सत के लै जाइ होत मरि जाइगो री
अजी डाढ़ी में दे देंउ आगि नाथ मति कोसै रे
पीर की मदद
'अरी भैना जोगी डिगरे जांइ राँड़ तैनें सेऐ री।
अरे भरि बहँगीन में मालु बाग पगु धारै री।
ठाड़ौ रहौ जोगी तनक तुम ठाड़े बाबाजी
गाइ दुहाई मैंनें खीरि रँधाइ लई जोगी जी
गाइ दुहाई मैंने खीरि रँधाई सौ मन कीनी लपसी
ऐ तेरे काजैं मैंने गुदरी सिमाइलई तेरे चेलन कूँ टोपी
मैंनें तौ जानी सतगुरु मिल्यौ अरे बाबा निकरयौ ऐ असलि करीलु
बाबा जी निरफल है गए नौऊ न्यौरता
अरी मेरी निरफल है गई न्यारस जी

ऐ पति पै खेली नौऊ न्यौरता
अरे बाबा संपति पै उजई ग्यास्सजी
अरी ऐसी फाबरी मारि बेटा ठगिनी आवै री
ऐसी फाबरी मारि बेटा इतमें न आवै रे
सुन्यौ फाबरी कौ नांउ मैया गहबरि रोवै रे
ठाड़ौ रहि बीरा रे बाट बटोहिया मेरे मा के जाए हो जी
अरे तैनें कहूँ देखे गोरखनाथ जी
अरी धूनीन में ते भौंरा बन्यौ 'अरी माता क्या पूछति ऐ मोइ
अरे जिन धूनी में भौंरी जरि मरी, अरी मैं फूल पहुँचाऊँ बाके
गंगजी

बाबा जी पेड़ जो बए बमूर के मैं आम कहाँते खांउ ए
मैया परि तेरी सूरति तेरी मूरति तेरे नगर कोई औरु ऐ
मेरी सूरति मेरे कपड़ा माकी जाई बहना
परि महलन में तौ मोइ ठगि लाई भाँग ख्याइ गई तोइ ऐ
मैया ब्वा ठगिनी ऐ ठगि लै जान्दै माता ग्वाइ ठगै भगमानु ऐं
परि सेवा मारी गई मैया औरु करै फलु पावै
बाबाजी अब सेवा कैसें करूँ जोगी डिगमिग डोलै नारि ऐ
परि अब सेवा कैसें करूँ माता धौरे परि गए बारऐं
बाबाजी अब सेवा कैसें करूँ बाबा हालन लागे दाँत ऐं
बाबा परि मौति बुढ़ापा आपता सबु काऊ कूँ होइ ऐ

पीर की मदद

१८—अरे दाब काटि करि लीयौ बिछौना आसन लेति बनाइ ऐ
अरे खलका छोड़िकें गोरख चाले ठाकुर पै कीनी फिरादि ऐ
ठाकुर ज्ञानी ब्यों उठि बोल्यौ चौं आयौ मारे लोकों में
रानी बाछलि करी तपस्या फलु दीजौ पति भरता कूँ
परि नौंद में नाएँ बेद में नाऐं फलु नाऐं चारयौ जुग में
गोरख चाले ठाकुर चाले जब आए सिबसंकर पै
महादेव जोगी ब्यों उठि बोल्यौ चौं आयौ म्हारे लोकों में
अजी बाबा पतिभरता नें करी तपस्या फलु दीजौ पतिभरता कूँ
ठाढ़ी गवरिया गुदरी हलावै फलु ना पायौ गुदरी में
परि गुदरी में फलु नाँइ चारों जुग में
परि तीनों मिलिकें म्वाते चाले तब आए ब्वा जोतों में

अरी बरती जोति में गोरख समाने भभूति लाए मांसे भरि
अंगु मलैया माँथे मलना गूगरि की डरी बनाई
परि निरंकाल की करी खोखला अन्तर के भीतर लाया
परि जा गूगर कूँ लैजा माता होइगा गूँगा पीरु ऐ
बाबाजी हाल की आई तोते द्वै फल लै गई
मोइ गूँगा गैला दीयौ।
अरी गूँगौ नाएं बाबरौ नाएं सच्चा जाहर पीरु ऐ
अरी जोरन की नापैदि करै बाँगर कौ भूँजैं राजु ऐ
अरी जोरन की नापैदि
पीर की मदद
अरे लई ऐ दरांती हात रानी बोटे जौ बनावै री
अरी खाइ लै मेरी भैनि तेरें नरसिंह होइगौ री
होइगौ पूत-सपूत बड़ौ मरदानों री
अरी खाइलै छजुआ की नारि तेरें भजुआ होइगौ री
अरी होइगौ पूतु सपूतु बड़ौ मरदानों री
लीली बंधी ऐ घुड़सार जानें सबदु सुनायौ री
दूध कुड़िला मंगवाइ गूगुरु घुरवायौ री
अरी खाइलै मेरी बीर तेरें लीला होइगौ री
होइगौ पूत सपूत बड़ौ मरदानौ री
अरी गोरखनाथु मनाइ रानी गूगुर खायौ री
अरी गोरखनाथु मनाइ रानी घट में डारै री
अरी दौरानी जिठानी भैना जुरि आओ आंगन भरि आयौ री
दौरानी जिठानी बैठि मंगल तुम गाओ री
'अरी सब सब के तौ री तुम पैरों लागौ, अरी तुमारी होइ
ललना औतार
बड़ी बड़ी रानी ब्वाई बैठों तखत पै, खस खस के बँगला हो जी
कुघरी गई ऐ जाकी सुघरी ए आई, घर घर की कामिनि हो जी
नांदौ भी बाढ़ौ चिरजौ जी जीऔ जी, मेरी बाछलि भैना हो जी
अरी। कि तेरें होइ बेटन औतार
अरी कि तेरें धरिंगे सांतिए। द्वार जी,
सब सब के तौ रानी पैरों लागी, सीलमंतिनि रानी होजी
आजु अपनी नन्दुलि के लागी हति नांइ

मेरे पैरों री तू तौ नांइ लगी मेरी भावज प्यारी हो जी
अरी तोइ आजु नंगर ते देउंगी निकारि हां हो जी
मेरे मेरे पैरों री तोइ तौ नंमर ते मैं तौ ऐसी निकारि दूँ जी
मेरी भावज प्यारी हो जी
जैसें दूध मखारी हो जी
तेरें तेरें पैरों मैं तौ कबऊ न लागूँ मेरी नन्दुलि प्यारी हो जी
मेरें हुकमु गुरु कौ नाँइ
अरी तू तौ री नन्दुलि ऐसें बनाई जैसें भगनो की हांई हो जी
अरी ब्वानें सीया ऊ दई ऐ निकारि
तेरें करें ते भैना कछूना होइगौ मेरी नन्दुलि प्यारी जी
मो पै किरपा करिंगे गोरखनाथ जी
मान हरायौ जे तौ, म्वां ते आई ननदुलि छबीलदे अपने
बाबुल ते चुगली खाई हो जी
लाज बी घनेरी जी, परदा घनेरे मेरे, गरुए से बाबुल हो जी
आजु बहूजी नें परदा डारयौ ऐ फारि हाँजी
सौने की नाँदी रेसम की झोरी अरे क जानैं जोगिनि कूँ
दई ऐं गहाइ ए
बड़े बड़े लट्ठा जानें धूनी में जराए मेरे गरुए से बाबुल हो जी
अजी सबरी दौलति दई ऐ लुटाइ जी हाँ
हाँ दौलति लुटाई जानें भली रे करी ऐ मेरे गरुए से बाबुल हाँजी
बारह बारह बरस जे तौ बागन रहि आई मनधारी राजा होजी
अजी जे तौ जोगीन कौ गरभु लैकें आई हाँ होजी
राजा रे बाबू कोई सुनि जौ रे पावै मेरे गरुए से बाबुल जी
मेरे सगाई ब्याह बन्द है जाँगे जी हाँ।
अपने बीरन कौ मैं तौ ब्याह करबाऊँ मेरे गरुए से बाबुल जी
अजी अपनी ननदलि कौ डोला लैकें आँऊ हो जी हाँ
"बेटा री होंतौ मैं तौ ब्वाइ समझामतौ मेरी बेटी छबील दे हो
अजी कि मेरी बहूजी ते कछू न बस्याइ जी हाँ
सुघरी गई ऐ जाकी कुघरी जौ आई मेरी बेटी छबीलदे हो
अरी क मैंनें बेटा ते प्यारी राखी जी
सेवानु करिकें जाकौ बेटा जौ आयौ अरे कि जानें काबुल ते
मुजरा कीयौ आइ जी

तेरौ तेरौ मुजरा मैं तौ कबऊ न लुंगो मेरे देवराय लाला हे
अजी कि बहूजी नें परदा डारयौ फारि हाँ।
दूजौ दूजौ मुजरा जानें उम्मर माऊँ कीयौ मारु देस के
राजा हों
जानें नीचे कूँ नवाइ लई नारि हाँ।
तीजौ-तीजौ मुजरा जानें बाबुल माऊँ कीयौ देवराय लाला जी
अरे कि जेतौ मुजरा पै देंतु जुबाबु जी
तेरौ तेरौ मुजरा मैं तौ जबई रे लुंगो मेरे देवराय लालाजी
आजु तुम बहूजी ऐ जौ डारौगे मारि
म्वाँते चल्यौ ऐ मारु देस कौ राजा पहुँच्यौ ऐ महलन जाइ
जुरि आई घर घर की कामिनी जी
जे तौ गामें बधाई हाँ जी
अजी कि जाकौ लौटि आयौ राजाजी
ऐव असबाब जाके सबु ढकि जाँगे
अरी क जाके धरिंगी साँतिए द्वार हाँ
रानी तौ जो ठंडे तौ पानी गरम धरावै बेटी संजा की जी
अजी अपने बलमै उबटि न्हवाइ रही जी
बलम न्हबायौ जाइ दिलु न सुहायौ घर घर की कामिनि
हो जी
अजी क मोपै हुँगे बाबा सहाइ जी ऐ हाँ
तेरी बेंदुलि के मैं तौ पैरों न लागी मेरे घरके बलमा हो जी
अजी क तिहारी भैना नें चुगलई बबुल ते खाइ लई जी
सोने की थारी रे भोजन लाई तुम जेंलेउ राजा हो जी
अजी क तुम तौ भोजन जें लेउ चित्त लगाइजी हाँ
'जेंमत हो सो हम तौ जें तौ चुके हैं मेरी घर कामिनि हे
मोइ रामु जिमावै जब जेऊँ हो जी
ऐसी तौ रानी मोइ फिरि न मिलैगी मेरे करतम करता हो जी
ऐसी सौने में मिल्यौ ऐ सुहागु जी हां
ऐसी पतिभरता मोइ फिरि ना मिलैगी मेरे गरूए से बाबुल
हो जी
अजी पतिभरता ऐ लगाइ रह्यौ दोसु जी हाँ
बाबुल कौ तौ मैं कहनों न मानू मेरे सिरी ठाकुर हो

अजी कि अबई सतजुग पहरौ चलि रह्यौ जी हाँ
एक दिन ऐसौ आवै सतजुग जावै कलजुग आवैगौ मेरे गरूए से बाबुल हो जी
अजी क जाकूँ बेटा दिंगे बाबुल ऐ फिटकारि हाँ जी
मैं तौ तेरौ कहनों रे मानि तौ रह्यौऊँ गरूए से बाबुल जी
आजु पतिभरिता ऐ डारूँगो मारि जी ऐ हां।
तोपै तौ बेटी बाबुल मारी न जाइगी जानें कौन से गोत की बेटी हो जी
जा फगिनी के पीछे मारू जी हाँ
साँझ भई ऐ भाई भयौ तौ अंध्यारौ मेरे गरूए से बाबुल हो जी
म्वांते चलैगौ रे मारू देस कौ राजा देवराय लाला हो जी
अजी कै जितौ पहुँच्यौ ऐ महल मंझार हो जी
चँदन किबरी मारी खोलि खोलि दीजौ मेरे घर की री कामिनि हो जी
अजी क जानें कुँदी तौ दीनी ऐ खोलि जी हाँ
रानी भी सोई जा कौ राजाऊ सोयौ मेरे करतम करता हो जी
अजी क जा राजाऐ नींद न आवै जी हाँ
आधी रे निकरि गई जाकी अधर रैनि आई हो जी
अजी क जानें खाँड़ौ तौ लीयौ निकारि ऐ हाँ
पहलौ पहलौ खाँड़ौ जा नें रानी माऊँ ओज्यौ हो जी
अजी क जापै है गए गोरखनाथ सहाइ
दूजौ दूजौ खाँड़ौ जानैं अज्यौ रे देस कौ राजा ने जी
अजी क जापै दुरगे भई ऐ सहाइ जी ए हाँ
तीजौ तीजौ खाँड़ौ रे जानें मारु माँऊ ओज्यौ देस के राजा हो
सीसु बचैगौ जाकौ चोटी कटि जाइगी मेरे करतम करता हो
अजी क राजा रोवै जार बेजार हो जी
बारह बारह बरस तू तौ उघटि न्हवायौ खाड़े दुधारा हो जी
अजी क कांडू तू न भयौ सहाय जी
अरे क तैनें रानी डारी गांडू मारि हाँ
गोरख तुही।

यहाँ पर गीत का आरम्भ मात्र दिया गया है। गीत बहुत बड़ा है। यहाँ गुरुगुग्गा की कथा मात्र देना ही पर्याप्त होगा।

बहिन[1] के भड़काने पर भाई देवराय[2] ने पहले तो बाछल को मार डालना चाहा पर जब तलवार चल ही न सकी तो बाछल को घर से निकाल दिया। वह एक रथ पर सवार होकर अपने पिता[3] के यहाँ जाने को प्रस्तुत हो गयी। मार्ग में एक स्थान पर बैल पानी पीने को रुके, वहाँ एक सर्प ने बैलों को डस लिया। बाछल बड़ी दुखी हुई। तभी गर्भस्थ गुग्गा ने चमत्कार दिखाया। उसने बाछल को स्वप्न दिया कि पास में नीम का पेड़ है। उसकी शाखा तोड़ कर गुरु गोरखनाथ का स्मरण कर बैलों को झाड़ दो, विष उतर जायगा। बाछल ने इसी प्रकार विष उतार दिया, मायके पहुँची। वहाँ बाछल को बड़ा कष्ट रहता। तब गुग्गा ने गर्भ में से गुरु गोरखनाथ का स्मरण किया और प्रार्थना की कि आप पिताजी को सद्बुद्धि दें। मैं यदि यहाँ जन्म लूँगा तो उचित नहीं होगा, वे मां को लिवा जायँ। गुरु गोरखनाथ ने देवराय को स्वप्न दिया, जिससे भयभीत हो वे बाछल को लिवा ले गये। गुग्गा का जन्म हुआ। गुग्गा कुछ बड़ा हुआ तो शिकार को निकला उसे बड़ी प्यास लगी। एक कुँए पर ब्राह्मणी पनिहारी से उसने पानी माँगा। ब्राह्मणी ने कहा—मिट्टी के घड़े हैं, उनसे कैसे पानी पिलाऊँ, वे खराब हो जायँगे। वह दोनों घड़ों को सिर पर रख कर चलने को तय्यार हुई। गुग्गा ने क्रोध में भरकर एक बाण से दोनों घड़े फोड़ दिये। ब्राह्मणी पानी में तर हो गयी। उसने गुग्गा को शाप दिया, मा बाछल ने जैसे तैसे शान्त किया।

उधर कारू (कामरूप) में धूम नगर के राजा संजा की बेटी सिरियल की सगाई के लिए पुरोहित भेजे गये। उन्होंने गुग्गा से सगाई कर दी, विवाह की तय्यारियाँ हो रही थीं कि देवराय की मृत्यु हो गयी। यह समाचार संजा को मिला। उसने बेटी को अभा-

[1] टेम्पल महोदय ने जो स्वाँग दिया है उसमें इसका नाम सामरदेई है इस गीत में 'छबीलदे' है।

[2] टेम्पल महोदय के स्वाँग में यह नाम 'जेवार' है जो देवराय का अपभ्रंश हो सकता है।

[3] व्रज के गीत में पिता का नाम 'मान' है, जिन्होंने गोवर्धन में 'मानसी'-गंगा, की पार बँधबाई है। टेम्पल महोदय के गीत में बाछल का पिता गजनी का राजा था।

गिनी समझ कर गुग्गा से उसका विवाह न करने का सन्देश भेज दिया। इससे बाछल बहुत दुखी हुई। तब गुग्गा घर से निकला। एक बंशी बनाई। जंगल में जाकर वह बंशी बजाई। जितने भी नाग थे वे जाग पड़े। बासुकि ने सोचा यह बंशी बजाने वाला कौन है? तातिग नाग को भेजा। उसने वासुकि को समस्त समाचार दिया। वासुकि ने तातिग को नियुक्त किया कि जाओ, गुग्गा का कार्य करो, वह गोरखनाथ का शिष्य है। तातिग कारू पहुँचा। उसने सिरियल को डस लिया और गुग्गा को ब्राह्मण बना कर विष उतारने भेजा। जब राजा ने सिरियल का गुग्गा से विवाह कर देने का वचन दे दिया तब सर्प बन कर सिरियल का विप चूस लिया। धूमधाम से विवाह कराके गूगा घर बागड़ में आ गया। उसकी इच्छा अपने दोनों मौसेरे[1] भाइयों को देखने की हुई। वह भाइयों से मिला। भाइयों ने गुग्गा से आधा राज्य मांगा। उस प्रार्थना पर जब किसी ने ध्यान नहीं दिया तो वे गुग्गा को शिकार के लिए लिवा ले गये और उसे मारने के लिए दो बार तलवार चलाई, पर हर बार निष्फल हुए। तब गुग्गा ने उन पर अपना वार किया। दोनों के सिर काटकर उसने माँ को दिखलाये। माँ ने उसे धिक्कारा और कहा—मुझे मुँह मत दिखाना। गुग्गा बहुत दुखी हुआ, उसने पृथ्वी माता से प्रार्थना की वह उसे अपनी गोद में ले ले। पृथ्वी ने कहा—मुसलमान जमीन में दफनाये जाते हैं, हिन्दू चिता पर चढ़ते हैं। तू अजमेर रत्तनहाजी और ख्वाजा खिज्र के पास जा और कलमा पढ़ आ, मैं तुझे ले लूंगी। वह अजमेर गया। वहाँ कलमा पढ़के घर लौटा और जमीन में समा गया।

ब्रज में तो गुग्गा की जाहरपीर के नाम से ज्योति ही जगाई जाती है और जागरण किया जाता, पर मारवाड़ तथा पंजाब में तो 'नाग-पंचमी' को गूगा-पंचमी कहते हैं, इस दिन घर-घर में गूगा की मानता होती है।

यहाँ देवी जागरण के प्रसङ्ग में ही जाहरपीर के जागरण का विवरण दे दिया है। यथार्थ में जाहरपीर का जागरण किसी भी मानता में कभी किया जा सकता है। यह जागरण नाथ लोग कराते हैं। वैसे भादों का महीना गुग्गा के जन्म का महीना है, उसी में

[1] टेम्पल महोदय के स्वाँग में गुग्गा की मौसी का नाम 'काछल' दिया गया है और दोनों भाइयों का नाम उरजन और सुरजन दिया गया है।

उसकी पूजा विशेष होती है।

वैशाख में अखतीज का त्यौहार तो मात्र त्यौहार है। घट-पूजन होता है किसी कथा कहानी या गीत का इस दिन कोई स्थान नहीं। पर 'आस चौथ' पर कहानी होती है, गाज पहनी जाती है। 'गाज' का अभिप्राय बादलों की 'गरज' से है। जब गरज सुनी जाती है तभी यह गाज पहनी जाती है।

ज्येष्ठ-आषाढ़ में केवल एकादशी ही महत्व के दिन हैं। जेठ में निर्जला एकादशी होती है, आषाढ़ में धौंधा धरनी एकादशी होती है। एकादशी तो सभी महीनों में व्रत मानी जाती है। इस व्रत के दिन कहीं-कहीं कथा भी होती है, पर अब उस कथा का प्रचार नहीं मिलता। उस कथा का लिखित रूप हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में मिला है। इस दिन गीत भी होते हैं। एक गीत यह है—

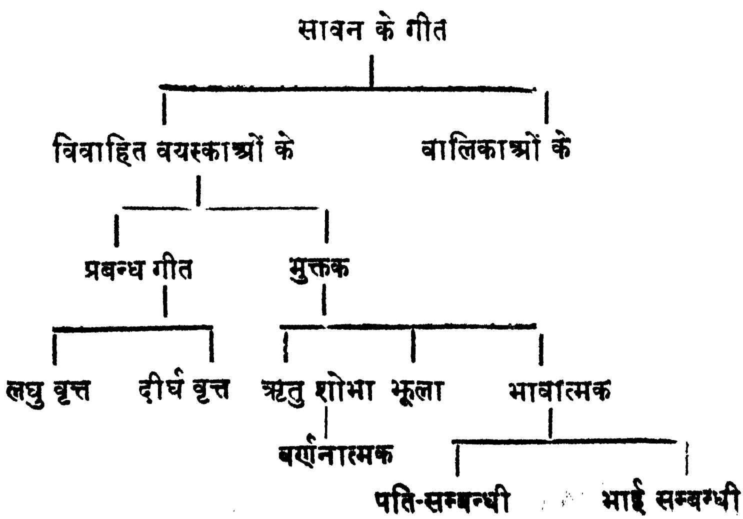
[एकादशी व्रत का गीत]

चरतु भरतु लछिमनु रामु पढ़ौ तौ हरि की एकादशी
झूठीं कहते झूठीं सुन्ते झूठी साखें जे भरते
अरे इन पापनि सों भये कूकुरा घर घर घूँसत जे फिरते ॥चरतु०॥
चोरी चुगली औरु परनिन्दा कपट बुराई जे करते
इन पापनि सों भये बहिलबा आँखें बाँधे बे चलते ॥चरतु०॥
साँची कहते साँची सुन्ते साँची साकें जे भरते
इन धर्मनिसों भये बादसाहि भरीं कचहरिनि बे बैठे ॥चरतु०॥
गउऊ दान अरु अन्नदान औ कन्यादान सदा करते
इन धर्मनिसों भये बादसाहि चढ़े बिमाननि बे फिरते ॥चरतु०॥
सूरज समुही कुल्ला करते जल में जूठनि जे डारें
इन पापनि सों भये सिड़ौआ ऊँचे चढ़िकें चिल्लाने ॥चरतु०॥
तुलसीदास भजो भगवानै हरि चरननि की बलिहारी ॥चरतु०॥

इस गीत में पाप और पुण्य के फलों का दिग्दर्शन कराया गया है। श्रावण का महीना आते ही ब्रज के जन-जन की वाणी मुखर हो उठती है। वर्षा हो चुकी होती है। चारों ओर हरियाली छा जाती है। धुले हुए वृक्ष अनोखी मनोरमता से विभासित हो उठते हैं। श्याम जलदों को आकाश में उमड़ता देखकर कभी कभी उसकी गरज से होड़ करता हुआ मोर कूक उठता है, उसकी कुहुक प्रान्त में तीखी तलवार की भाँति एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती है। दादुर अलग

अपना राग अलापते सुन पड़ते हैं। झिंगुर झिनकारने लगता है। जन ही नहीं, बन, नदी, नद, तालाब भी विविध सङ्गीतमयी ध्वनियों से गूँज उठता है। स्थान-स्थान पर वृक्षों पर झूले पड़ जाते हैं, वहाँ मैदानों में पुरुष पैंगे बढ़ाते दिखाई पड़ते हैं। घरों और बाटिकाओं में झूलों पर स्त्रियाँ झूलती होती हैं, प्रायः संध्या और रात्रि के समय। यह महीना गीतों का महीना कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। प्रतिदिन एकानेक नये-नये गीत और नये-नये स्वर इस महिने में सुनने को मिलते हैं। विविध भावों का उद्वेलन झूले के दोलन के साथ होता मिलता है। इस महिने में प्राचीन काल का आनन्दातिरेक भरा रहता है। प्राचीन काल में, जबकि यातायात की आधुनिक सुविधाएँ नहीं थीं यह विधान था कि 'चातुर्मास' में बाहर गये हुए घर आ जायँ। सभी प्रवत्स्यपतिकाएँ इस महिने में अपने पति की बाट जोहती थीं और उनके आ जाने पर आनन्द मग्न हो जाती थीं। इस महिने में पति के आ जाने पर उन्हें यह सुविधा होती थी कि अपने भाई के घर जा सकें। प्रेम का साक्षात् प्रवाह माँ-बहिनों : स्त्रियों में लहरें लेने लगता है और वह शतशः गीतों में परिणत होकर भूमि को रसमय कर देता है।

सावन के गीत अगणित हैं। उन्हें हम कई विभागों में बाँट सकते हैं—



ऋतु-शोभा और झूले के गीतों को साधारणतः अलग-अलग नहीं किया जा सकता। ऋतु-शोभा के सभी गीतों में झूले का समावेश नहीं मिलेगा, पर झूले के प्रायः सभी गीतों में ऋतु-शोभा का उल्लेख किञ्चित हुआ है। झूले के लिए ऋतु तो पृष्ठ-भूमि ही है।

ऋतु-शोभा में रिमझिम मेह की प्रधानता है: "रिमझिम रिमझिम मेहा बरसत"। रिमझिम मेह में तो पावस की मनोरम प्रवृत्ति का ही परिचय है, पर मेह की फुहार, नन्ही-नन्हीं बूँदें और नन्हीं-नन्हीं फुहारें तो रस से सिक्त किये देती हैं। ये नन्हीं-नन्हीं बूँदरियाँ कारे कारे बादरों से ही तो छन के आ रहीं। बादर उमड़ रहे हैं, मेह के ढङ्ग हो रहे हैं। घटायें साधारण नहीं, घनघोर हैं, उनमें बिजली भी चमक जाती है। पपीहा 'पीउ' 'पीउ' कर रहा है, कोयल कूक रही है, और शोर मचाती है। ऐसा हरियल सामन आ गया है। बाग में बहाली (बहार) छा गयी है। बाग में—

गेंदा हजारो रौसन खिलि रह्यौ, चम्पा खिल्यौ है अपार
बेला चमेली फूलौ मोतिया फूलौ हार सिंगार।
अजब सुगन्धी आली उड़ि रही झुकी है कदम की डार।

लोक-गीतों का यह बाग 'चम्पा बाग' ही है। कोई-कोई चन्दन बाग में भी पहुँचा है। नौलखा बाग भी मिलता है। इस बाग में हिंडोले पड़ रहे हैं। हिंडोला आम की डाल पर ही पड़ा है। उस पर राधिका अथवा राजकुमारी अथवा नर-नारी झूलते हैं। अकेले नहीं झूला जाता, साथ में सखियाँ भी हैं। ये सात सखियाँ साथ हैं।

ऋतु के इस दृश्य में शोभा है। रिमझिम मेह, नन्हीं बूँदें, पपीहा की 'पिउ पिउ', कोयल की कूक, मोर का शोर, घनघोर बादल, बिजली की चमक सभी हैं—जो हृदय को ही नहीं शरीर को भी थरथरा देते हैं—पति की चाह के लिए यह सब सामग्री उद्दीपक है।

किसी-किसी गीत में मूसलाधार वर्षा का भी उल्लेख है। मूसलाधार वर्षा में झूलने का आनन्द नहीं रह सकता। नन्हीं-नन्हीं फुहारें हीं रस बरसा सकती हैं। इन फुहारों में भींगने से चूँदरी का रंग भी छूटता है—यह रङ्ग किसकी चूँदरी का छूट रहा है?

कोई गोरी कोई साँवरी जी ऐ जी कोइ पल म लें चित चोर[1]।

[1] एक गीत में तो पावस की तुलना पृथ्वीराज के युद्ध से करदी गयी है—
पड़े रे हिंडोले नौलख बाग में जी—एजी कोई झूलत रानी राजकुमारि

झूले के गीतों में ये गोरी-साँवरी दीठ बन्दिनी, कर्णफूल, झूमका, हार पहिने हुए हैं। सूआ-कसूमी रङ्ग की साड़ी हैं। सींकिया और पचरंगी चूँदरी (ओढ़नी) रंगा देने का सुझाव 'धन' का पति अपनी माता से करता मिलता है। माखनी चीर का भी अभाव नहीं। यों सजधज के राजकुमारी अथवा राधिका और उनकी सखियाँ बाग में झूला झूलने जाती हैं। मल्हार की मधुर ध्वनि से चम्पा-चन्दन-नौलखा बाग गूँज उठा है। जिसके नन्दकिशोर घर हैं वह उमंग भरी झूलती है, जिसके नन्दकिशोर नहीं वह जली जा रही है. पीड़ा से वह विकल है; कोई-कोई मायके में पति की बाट देख रही हैं। सलूनों रक्षाबन्धन, तीज के सुहावने त्यौहार इसी सामन में आते हैं। धौरी-धौरी सेंमई तथा खीर भी राँधी गयी है।

ये गीत वर्णनात्मक माने जाने चाहिए। भाव की अपेक्षा वर्णन प्रधान है। भावात्मक गीतों में वर्णन की अपेक्षा भावों का विशेष समावेश हुआ है।

भावात्मक गीतों के केन्द्र या तो पति हैं या भाई।

पति सम्बन्धी गीतों में चार प्रकार के भाव मिलते हैं। १-प्रवत्स्य पतिका का, वियोगिनी का। २-आसन्न वियोगिनी का ३-संयोगिनी का ४-आगत-पति का।

प्रवत्स्य पतिका अपने पति की बाट जोह रही है। वर्षा ऋतु आगयी, पर प्रियतम परदेश ही में हैं—

"कारो सी आई बादरी झकझल्लरि आयौ मेह।
बरसै असाढ़ी मेहरा एजी इत बालम परदेश।"[1]

वियोगिनी वर्षा को देख कर कल्पना कर रही है, कि उसके

इत मघवा दल तौ चढ़ौ जी,—एजी कोई उत दल प्रिथिवी राज
इत मघ घोरे नन्हीं नन्हीं घोर से जी—एजी कोई उत तोपन धधकार
इत घन चमकै मेरी आली वीजुरी जी—एजी कोई उत चमकै तरवार
इत घन बरसें नन्ही-नन्हीं बूँदरी जी—एजी कोई उत गोलिन की वौछार
इत वागन में गावत कामिनी जी—एजी कोई उत सूरन हुङ्कार
नाम बतानौ अपने वीर कौ जी—एजी कोई गाइके राग मल्हार।

[1] इस गीत को पढ़कर सूरदास के एक गीत का स्मरण हो जाता है जो इस प्रकार है—"वरु ये बदरा हू बरसन आये।
अपनी अवधि जानि नँदनन्दन गरजि गगन घन छाये।।

साहिब का सिर भीग रहा है, उनकी पगड़ी में से कुसुम्भी रङ्ग चू रहा है। इस ऋतु में उसे भाई का स्मरण हो आता है, यह कामना है कि भाई की ओर सोने की बूँदें बरसें, और जिधर 'नन्दुल के बीर' हैं उधर पानी की बूँदें बरसें। वह वियोग नहीं सँभाल पाती—

"अंचर फारि कागज करूँ कोई उँगरी तराच कलम
नैंनन की स्याई करूँ कोई लिखूँ संदेशौ भेज

पत्र मारूजी के पास पहुँचा, और बड़ा निर्मम उत्तर आया कि "हमारी धनियाँ से यों कहौ कोई दिन दस आँमन नाँइ।" इस प्रकार बारह महिने बीत गये—छप्पर पुराने पड़ गये, बाँस तड़कने लगे—पति नहीं आये। पति के वियोग में जोगिन हो जाने के भाव से समन्वित एक काव्यमय गीत इस प्रकार है—

कौनें वजाई बींजाँ बाँसुरी
कौनें री गाई ऐ मल्हार
एरी सखी सैंया राजा जोगी है गए
हमऊँ जोगिनि हैं री जाँइ
जोगीरा बजाई बीजाँ बाँसुरी
जोगिन ने गाई मल्हारि
चम्पा बी बोए चमेला बी बोए
ढिंग ढिग बोए एं अनार
एरी सखी राजा जोगी है गए
सरप नें छोड़ी चम्पा काँचुरी
नदिया नें छोड़्यौ ऐ किनार
ए री सखी राजा जोगी है गए
सरपु सम्हारी ऐ काँचुरी
नदिया नें सम्हार्यौ किनार
राजाजी नें सम्हार्यौ बारौ जोबना
हमऊँ जोगिन है री जाइँ

पति योगी हो गये हैं। वही 'बीजाँ बाँसुरी' बजा रहे हैं। पति ने पत्नी को जिस प्रकार निर्मोही होकर छोड़ा है, उसे सर्प की काँचुरी और नदिया के किनारे की उपमा से व्यक्त किया गया है। इस वियोगिनी को पहली वियोगिनी की भाँति अन्त तक तड़पना नहीं पड़ा है। राजाजी ने 'बारा यौवन' सँभाल लिया है। चम्पा-चमेली और अनार

के बोने में अभिप्राय से अधिक प्रभाव-व्यञ्जना है।

वियोग के गीतों में ही 'बारहमासा' नाम का गीत आता है। वियोग के उत्ताप में वर्ष के विविध महीनों का वियोगिनी के लिए क्या रूप हो जाता है, यही बारहमासे में अभिव्यक्त होता है। इनमें प्रत्येक ऋतु की विशेषता के साथ ही उसकी विरहिणी पर प्रतिक्रिया प्रकट की जाती है। साहित्य में षट-ऋतु का जो स्थान है, वही लोक-काव्य में बारहमासे का माना जाना चाहिए। ग्राम या लोक-कवि यथार्थ में सभी महीनों की कोई विशेषता इतनी प्रबलता से नहीं प्रकट कर पाता कि उनकी पारस्परिक भिन्नता प्रकट हो सके। एक बारहमासे में बैसाख उतर कर जेठ आने पर कोइल के शब्द सुनाने मात्र का वर्णन है। कोइल की कूक ही क्या जेठ की विशेषता है? किसी-किसी स्थान पर वह अच्छा वर्णन भी कर सका है। आषाढ़ में बादल उमँगे हैं, गरज रहे हैं; स्त्री विकल घूम रही है। उसे बादल नँदलाल से लगते हैं :—

'उमँगे से बादर फिरत कामिनी गाजि घोर सुनाइये
ऐसे नन्द के लाल कहिए असाढ़ मास जो लागिये।'

श्रावण का यह वर्णन है:—

सामन रिमझिम मेहा बरसै, जोर से झर लाइये
हरियल बन में मोर बोलें, कोइल सब्द सुनाइये।

रिमझिम मेंह और झर लगना दोनों बातें इस महीने में हैं; मोर और कोइल का बोल भी सुनाई पड़ता है। भादों के वर्णन में 'घनघोर घटा' छाई है उसमें 'जोर दमकै दामिनी' ऐसे अवसर पर विरह की तीव्रता होती है—'राम बिना सुख-सेज सूनी सेज बिलकै कामिनी'। इस बारहमासे के कवि ने क्वार में भी वर्षा का वर्णन किया है :—

'क्वार जलहल नीर बरसै आमन की आशा भई।
नदी तौ नारे सागर ताल भरयौ बीच बरखा अति घनी'॥

कार्तिक में राधा कार्तिक-स्नान करती है, उद्धव से झगड़ती है। और कहती है कि यदि कृष्ण इस महीने में भी नहीं आए तो 'जोगिन' हो जाऊँगी। इसी प्रकार अगहन, पूस, माघ का वर्णन है। फागुन में फाग खेलने, केसर में अँगिया बोरने का उल्लेख है। चैत में बन फूले हैं, हरियल बाँस लुभावने लग रहे हैं। ऐसे ही विविध

विधियों से महिनों, ऋतुओं तथा विरहिणी की अवस्था का चित्रण इन गीतों में होता है।

पति को सन्देश भेजने के वृतों का भी इन गीतों में समावेश है। एक गीत का आरम्भ है: "पाँच टका दूँगी गाँठि के, है कोई लश्कर जाइ, लहरिया सब रँग भीजै धन कौ डोरिया।" यह गीत 'लहरिया' नाम से ही प्रसिद्ध है। इसमें विरहिणी पति को बुलाने के लिए पहले तो यह सन्देश भेजती है कि मा मर गयी है। पति नहीं आता, यह कह देता है कि 'अच्छा हुआ घर का दरिद्र दूर होगया।' संवाद जाता है भावज मर गयी।, उत्तर आता है 'अच्छा हुआ, तुम्हारी आधी बटौनिन चली गयी।' बहन के मरने के संवाद पर भी उसका मन विचलित नहीं होता। तब उसे यह समाचार मिलता है कि तुम्हारी स्त्री मर गयी। इसे सुनकर वह विकल हो उठता है "नारि मरी तौ बुरौ भयौ रे घर भयौ बारहबाट"—तब कहीं वह चाकरी छोड़कर घर के लिए चल देता है। वहाँ का दृश्य कुछ और था—

"माय तौ कातै है कातनों
बहिन अटेरे सूत
भावज तपै ही रसोइया
नारि सँभाले घरवार।"

इस युक्ति से पति को स्त्री ने बुलवाया। इसी गीत का एक रूप 'मँहदी' नाम से मिलता है। इसका आरम्भ यों है:—

"पाँच पेड़ मैंहदी बये केसरिया लाल
ए ऊपजे हैं नौ दस पेड़ कि मैंहदी रंग चुए जी महाराज"

दूसरी पंक्ति से उपरोक्त गीत की दूसरी पंक्ति मिलती है, आगे की पंक्तियाँ भी मिलती चली जाती हैं। भावज का उल्लेख इसमें नहीं है। दो चरण इसमें अधिक हैं :—

मायल गाढ़ौ देहरी कोई ऊपर आमन जान,
बैंदुल गाढ़ौ खेत में कोई ऊपर सूर बबूर
धनहुलि गाढ़ौ बाग में
कोई ऊपर फूल गुलाब—मैंहदी०

इन चरणों में 'गाढ़ने' का संकेत विशेष दृष्टव्य है। इस लोक कवि ने जलाने का उल्लेख नहीं किया। यह कुछ कम सम्भावना प्रतीत होती है कि इस गीत में आर्यों से पूर्व के मृतकों के गाढ़ने की प्रथा का

उल्लेख है, जो आज तक बचकर आगया है। अधिक संभावना यही प्रतीत होती है कि गीत पर मुसलमानी प्रभाव है।

'मनिरा' नामक गीत में मनिहार से चूड़ी पहनने का उल्लेख है। मनिहार विविध रङ्ग की चूड़ियाँ दिखाता है, किन्तु स्त्री उस रङ्ग से पति के किसी रङ्ग को मिलता पाकर अस्वीकार कर देती है। यह मनिहार पूर्व से आया है, पश्चिम को जा रहा है। मनिहार हरी, नीली, काली, पीली, ऊदी, लाल रंग की चूड़ियाँ दिखाता है पर ये रंग पति के झगा, घोड़ा, केश, तोड़ा, दाँत (मिस्सी के कारण ऊदे होंगे) होठ के रंग हैं। वह इनसे भिन्न किसी रंग को पहनती है। पातिव्रत्य प्रकट करने का यह एक अनोखा ही ढङ्ग लोक-कवि ने अपनाया है।

संयोग सुख में ही वियोग दुख की चर्चा एक गीत में आई है, पर कवि ने उसमें दुख को एक आगे की बात का प्रस्ताव रख कर पीछे ठेल दिया है। इस गीत की टेक 'करेला मारूजी' है। स्त्री अपने मायके जाने का आग्रह करती है। पति उसे अपने साथ झुलाने ले जाता है। स्त्री इतने जोर का झोटा लेती है कि झटके से वह स्त्री मरभन—गिर पड़ी। मरणासन्न स्त्री अपने पति को दुखी देख कर अपने मृत्यु-कष्ट को भुला देती है; और अपने पति से कहती है कि वे और विवाह कर लें और उसी की छोटी बहिन से करें, जो उससे 'दो तिल' रूप में आगे है।

एक गीत में पति के पास दक्षिण देश से नौकरी का परवाना आया है। रात्रि है, पति तभी दीपक जलाकर उसे पढ़ डालना चाहता है। नौकरी का संदेश सुनकर उसकी स्त्री उसे रोकती है। वह सुझाती है कि इस बार श्वसुर को भेजो, अथवा जेठ, देवर, पड़ौसी, मित्र आदि को भेज दो। तुम घर का त्यौहार करो। पति उन्हें न भेजने का कोई न कोई कारण बताता है, अन्त में चाकरी पर जाने के लिए उससे आशीर्वाद माँगता है।

इस गीत में 'दक्षिण देश' का उल्लेख हुआ है। यह गीत शिवाजी के समय से चला होगा। किसी योद्धा को उसके यहाँ से नौकरी मिली है।

एक गीत की नायिका ने तो उपालम्भ देते हुए पति के घोड़े की लगाम ही पकड़ली है—उलाहना यह है—

तिहारौ ढोला बुरौ रे सुभाइ
उठत जुवन चाले चाकरी जी महाराज।

स्त्री कहती है तुम नौकरी पर क्यों जाते हो, तुम्हें जो चाहिए मुझ से माँग लो। पति विविध वस्तुएँ माँगता है यथा—घोड़ी, घुड़सार, सोने की मूँठ का खाँड़ा, बारहमन की सौर, आलमसाले कौ गेंदुआ, बारह गाम, अपनी सूरत का पुत्र—स्त्री सब कुछ देना स्वीकार कर लेती है। पर 'सामन' आया, स्त्री पालकी पर चढ़ अपने मायके को चली। इस बार पति की बारी आई। वह भी उलाहना देता है, "तिहारौ गोरी बुरौ सौ सुभाव, लगत सामन चार्लीं बाप कें"। डोली का बाँस पकड़ कर वह भी खड़े हैं, और कह रहे हैं, मायके मत जाओ माँगना हो सो माँग लो। स्त्री अपने पति से अधिक चतुर निकलती है वह माँगती है—

माँगूँ ढोला अम्बर ऊपर दूब
धरती पै माँगूँ ढोला तारई जी महाराज।

विचारा पति परास्त हो जाता है, "जइयो गोरी री तेरो नासु" यही उसके मुख से निकलता है। एक अन्य गीत में स्त्री अपने पति को रोकती नहीं, स्वयं पति के साथ जाने को प्रस्तुत हो जाती है। पति विविध बहाने बनाता है—तुम्हारी बेंदी चमकती है, चूँदरी रँगीली है, बिछुआ बजने वाले हैं, आरसी चमकनी है, लड़का रोने वाला है—ये बातें लश्कर में बुरी लगेंगी। गोरी इन सबको, लड़के को भी, छोड़ जाने को तैयार है। किसी को बहिन को, किसी को जिठानी दौरानी, नन्द आदि को दे जाने को प्रस्तुत है; लड़का सास को दे जायगो पर जायगी पति के संग। इस प्रकार पति सम्बन्धी गीत, संयोग-वियोग के विविध नूतन भावों से परिपूर्ण हैं। सामन का महीना पति से भी अधिक भाई की मान्यता का होता है है। स्त्री के हृदय में भाई का प्रेम इसी ऋतु में सबसे अधिक प्रबल होता है।

इन गीतों में स्त्री अपने भाई के यहाँ जाने को प्रस्तुत है, इसीलिए कि उसके पति, उसकी ननद के वीर चले गये हैं। ननदी कहती है भाई के क्यों जा रही हो, झूला यहाँ डाल लो, लीला वस्त्र यहाँ रंगालो आदि। पर भावज कहती है इन सबका आनन्द तो तुम्हारे भाई के साथ चला गया। चमारों के यहाँ से प्राप्त एक गीत में पीहर जाने वाली स्त्री को पुरुष ने यह उपदेश दिया है कि वह अकेली न

सोये छोटे भाई को साथ ले ले। स्त्री ने तुरन्त वही उत्तर पति को दे दिया है—भादों की अँधेरी रात में अकेले मत सोना, छोटी बहिन को साथ सुला लेना। इसी प्रसंग में शेष बारह महीनों का भी संक्षेप में उल्लेख हो गया है। कार में करेला होते हैं, कातिक में जौंड़री (ज्वार) अगहन में ये कट जाते हैं, पूस में फुसेला लगते हैं, माह में महुआ, फागुन में फगुआ, चैत में ये कट जायँगे, जेठ में छप्पर छवेंगे, असाढ़ में वर्षा होगी। ऐसे गीत भी पति-चर्चा में गिने जाने चाहिए।

भाई के सम्बन्ध में एक बहिन का प्यार उमँगा है, वह नन्हा-नन्हा सूत कातने का गीत गाती है। उससे रेशम की पगड़ी अपने भाई के लिए बनाएगी। उसे पहन कर भाई नौकरी के लिए चलेंगे, तो ऐसे फवेंगे कि बाजार में राधा गूजरी की नजर लग जायगी। बहिन भाई पर राई नोंन करैगी, और राधा को कोसेगी। भाई पर कितना अधिक प्रेम इस गीत में प्रकट हो रहा है। एक बहिन अपने आये हुए भाई को लौटा देती है, वह भाई के यहाँ एक पग भी नहीं रखेगी। माँ के गेहुँओं को तो चिड़िया बनकर चुग जायगी, भावज लीपेगी उसे बिल्ली बनकर खूँद आवेगी, उसे भावज से चिढ़ है। भावज ने सपने में ननद से कह दिया है कि तुम अपने घर जाओ; ससुर, जेठ, देवर के आगे कैसे रहे इसकी शिक्षा भी दी है। वह भाई के नहीं जायगी। इस गीत का आरम्भ यों है :—

> झारू बुहारूँ कोठरा, कूरौ रे पटकन जाँउ रे नीबोला।
> कोई अधबिच मिलि गये वीर, ओ नीबोला।

'नीबोला' इस गीत की टेक है। 'भावज' का चित्र इन गीतों में ननद का अपमान करते हुए ही बहुधा आया है। भाई कहीं गये हुए हैं बहिन घर पहुँची, भावज ने सत्कार नहीं किया। जिस वस्तु की भी चाह ननद ने की उसी को देने से उसने इनकार कर दिया—कह दिया तुम्हारे भाई ने लाकर ही नहीं दी। बहिन जैसे आई थी वैसे ही लौट गयी। दूर मार्ग में भाई मिल गये तो उसने ओछे घर की भावज का उल्लेख कर दिया।

बहिन अपनी ससुराल में आँगन बुहार रही है। बुहारी की सींक टूट गई। सासु ने भाई को गाली दी, भाई की सुधि आगयी। कौए को बहिन दक्षिण देश में भाई का संदेश लेने भेजती है। पर भाई कौए के उड़ने से पूर्व ही आ जाता है, बहिन बड़ा सत्कार करती

है। डोली में बैठकर बहिन भाई के साथ चल देती है। मार्ग में यमुना पड़ी। उसमें बहिन, भाई, डोला, कहार सब डूब गये। 'माइ व.ई बेटा धीय लिवौआ, सासु वहाति प्यौसार।'

ऐसे ही एक गीत में भाइ और देवर के संस्कार के अन्तर का चित्र उपस्थित हुआ है। भाई लीली घोड़ी पर चढ़ कर आये हैं, उनके लिए उज्वल चावल, हरी मंगोड़ी, धोवा दाल, लपझपी पूड़ियाँ, दस-बीस शाक सेंमरी, घेवर, फेनी सभी बढ़िया भोजन सजाये गये हैं, मथुरा के थाल में। चन्दन चौकी पर बैठाकर दूध से पैर पखारे गए हैं। अंचल से वायु की गई है। भाई पचास मुहर देंगे। देवर कानी गधइया पर चढ़ कर भाइ की विदा कराने पहुँचे हैं, उनके लिए किस-किने चावल, हरी मंगोड़ी धोवा दार की गयी है, लचपची पूड़ियाँ हैं, दस-बीस शाक हैं। दूर से घेवर फेनी मंगाई गई है, सोने के थाल में परासे गए हैं। चन्दन चौकी पर बिठाए गए हैं, पानी से पैर धोए गए हैं, पंखे से वायु की गई है। ये लाड़िले देवर भाइ को पुरस्कार में पचास लट्ठ देंगे।

इस प्रकार इन गीतों में भाई के प्रेम, भावज के तिरस्कार, तथा देवर आदि के व्यवहार का रोचक उल्लेख हुआ है।

बालिकाओं के स्फुट गीतों में विनोद-भाव की प्रधानता है। उनके गीतों का छन्द भी छोटा है, गति में कुछ द्रुत, और मध्य में कितने ही विरामों के साथ। इन गीतों में से किसी किसी में कोई परम्परित वर्णन होता है, उदाहरणार्थ ब्राह्मण ने मुझे चुंदरी दी, वह चुंदरी मैंने धोबी को दी, धोबी ने चीर-चीर कर दी, वे मैंने दरजी को दी, दरजी ने गुड़िया बनादी, वे मैंने तिखाल में रख दीं, वहाँ से उसे भैंस खा गई। किसी भाई के ससुराल में जाने और वहाँ होने वाली खातिरदारी का वर्णन है। किसी में भाई, माँ, बाप, आदि के लिए विविध सामान लाए हैं, बहिन के लिए चुंदरी लाना भूल आये हैं इससे सौ सौ नाम धरे गए हैं। ऐसे ही एक गीत में भावज के स्नेहपूर्ण व्यवहार का उल्लेख है—उसके लिए पान-सुपाड़ी लाये हैं, वह अकेली नहीं खायगी, प्यारी ननद को बुलाती है। ननद को आदर से बिठाती है, मोतियों से माँग भरती है। पर अन्त में एक कठोर चेतावनी भी है: 'जौ ननदुलि तुम लरौ-भिरोगी, मूसर ते धमकाऊँगी।' इस प्रकार छोटी ननद के प्रति स्नेह का भाव मिलता है। इन गीतों

में ऐसे ही विनोद, मनोरञ्जन और भाई-भावज के स्नेह तथा स्नेहपूर्ण उलाहनों के उल्लेख हैं।

सामन के गीतों में सबसे रोचक गीत प्रबन्धात्मक हैं। इनमें से किसी में छोटी कथा है, किसी में बड़ी। इनमें से अधिकांश गीत स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध के हैं। इनके सम्बन्ध में किसी न किसी घटना का उल्लेख है। उस घटना का दृश्य बहुधा कूआ अथवा बाग है। किन्तु यह दृश्य बहुधा भूमिका-रूप ही रहता है। प्रधान विषय कहानी हो जाती है।

वर के गोंद पर झूला डालकर एक एक 'डावर नैनी' झूल रही है। सात सहेलियाँ साथ हैं। सातों के पति घर हैं। इस डावर नयनी के पति परदेश गये हैं। एक बटोही आकर उससे कहता है तुम हमारे साथ चलो, तुम्हें सोने-चाँदी में मढ़ दूँगा। वह सास के पास गयी और कहा कि एक बटोही कहता है मेरे साथ चलो। सास उससे उस बटोही की रूप-रेखा पूछ कर बताती है, वही तो तेरा पति है। यह सुनकर स्त्री रोष में भरकर कहती है कि वह परायी स्त्री की ओर आँख उठाता है मैं उसकी दाड़ी-मूँछ जला दूँगी, उसके रस भरे नैनों को फोड़ दूँगी। 'मरमन' नाम के गीत में ऐसा ही एक दृश्य स्त्री के मायके में मिलता है। लड़की अम्मा से आग्रह करके कुँए पर पानी भरने गयी है। वहीं कुँए पर एक बटोही मिल गया। माँ ने बताया 'गहि चौं न पकरी बाकी बाँह', वही तो तुम्हारा पति है। अब तो वह माँ से, भाभी से कहती है—गेंहू पिसाओ, पूड़ियाँ सिकाओ। तुम्हारे जमाई या ननदोई आये हैं। वह पुरुष उसे लिवा ले गया। चम्पा बाग में डोला उतरा, वहाँ काला नाग उसे डस गया। उस मरमन का पति समझ रहा है कि मरमन सो रही है। ग्वारिया ने बताया कि यह सो नहीं रही है, संसार से कूँच कर गयी है। पुरुष मग्न हृदय से केवल इतना कहता है 'ए मरमन व्या तोकूँ रोवैगो कोन, मायके मरी न सासुरे।' कहीं-कहीं यह गीत और आगे बढ़ता है। मरणासन्न स्त्री कहती है कि मेरे राजा, मेरी सास रोएगी जिसका बेटा रंडुआ हो गया है, मेरी मा रोएगी जिसकी कोख में पैर पसारे हैं। यह स्त्री पति को यह भी सुझाती है कि तुम मेरे पीहर जाकर मेरी छोटी बहिन से विवाह कर लेना। 'कलारिन' नाम के गीत में पानी भरने 'कलारिन' गयी है—चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही है। कलारिन भी ऐसी ही

सुन्दर है। वह गागर और रस्सी कुँए पर रख कर बाग में गयी, दांतन तोड़ी। मलमल के पैर धोए, दाँत माँजे। वहीं एक बटोही आगया। दोनों एक दूसरे के मन भा गए। उस पुरुष ने कहा हमारे देश में आना तुम्हारी जोड़ी के वर वहाँ मिल जायेंगे। कलारिन गयी, पर उसने किवाड़ न खोले, कहा कि शय्या पर तो विवाहित सोयेंगी। कलारिन ने कहा हमारे देश में आना तुम्हारी जोड़ी की वरनी वहाँ मिलेगी। पुरुष पहुँचा तो उसने भी किवाड़ लगा लिए और कहा कि घर लौट जाओ, शय्या पर तो विवाहित पति ही सो सकता है। 'नटवा' गीत में भावज और ननद पानी भरने गयी हैं। भावज नट पर रीझ गयी है। बहिन ने भाई से यह बात कह दी। भाई ने नट बुलाया तमाशा कराया और 'झरोका बैठी गोरली' उसे देदी। नटवा के यहाँ हर बात पर उसे राजा और राजमहलों का स्मरण हो आता है। कहाँ टांडा, कहाँ पालकी; कहाँ सिरकी का छप्पर, कहाँ राजमहल; कहाँ माँग कर लाए हुए टूँक; कहाँ महलों के थाल; कहाँ गुदड़ी का बिछौना, कहाँ राजा की सुख सेज। राजा शिकार में नट के यहाँ रानी से मिले। रानी रोपड़ी। बहुत रोयी, पर अब क्या हो ? तब नट पर क्यों रीझीं। ऐसा ही एक प्रेम राजा की बेटी का बनजारे से हो गया, बनजारा उसे लेकर बाजार में गया, बाग में गया, ताल पर गया, वहाँ खूब सत्कार किया। महल में उतारा—"जाइ उतारी महल में लाइक बनजारे ब्याही के मरि गए मान जी।" किन्तु जब उस गृहिणी ने पूछा यह कौन है तो बनजारे ने उत्तर दिया—

"नाँ मैं लायौ दोसरी रे महलों की रानी, ना लायौ महमानजी
राति कूँ पीसै तेरौ पीसनौ रे महलों की रानी दिन को खिलावै
नँदलालजी।"

रानी की बेटी को यह बात बुरी लगी, बेसर बेचकर विष खरीदा और पीकर सो रही। एक गीत में बड़ी अवस्था होने पर विवाह नहीं किया गया, इससे वह लड़की विजयसिंह जाट के साथ ही भागने को तय्यार हो रही है। आखिर माँ को कहना पड़ा है कि आगामी 'साहे' पर विवाह कर दिया जायगा। एक और गीत में ननद-भावज का साथ है इसलिए नन्द भावज से कहती है चलो पानी भर लावें। पर भावज रोकती है। भाई से पूछ आओ, कुए पर नवाब पड़ा हुआ है, नवलसिंह गागर भरने नहीं देता। एक अन्य गीत में

ननद-भावज पानी के लिए गयीं तो गैंदाराय के बाग में घूमने लगीं और गैंदाराय की एक एक चीज देखती हुई उसकी शय्या के पास जा पहुँची। वहाँ पहुँच कर नन्द ने कहा—

"चलौ भावज गगरी उठाइ
मेरौ भैया राजकुमार
जे बजमारौ राइकौ छोहरा जी महाराज।

धोबिया नाम के गीत में 'धोबी' से प्रेम हो जाने का वर्णन है। एक स्त्री चूँदरी धुलाने गयी। धोबी ने धुलाई में आधा यौवन और सम्पूर्ण सुख सेज माँगली। पर द्वार पर श्वसुर है, पौरी में पति। धोबी पनाला पकड़ कर छत पर चढ़ गया और सोती हुई स्त्री को गठरी में बाँध कर ले आया। एक गीत 'जाटनी' नाम का है। एक पुरुष जाटनी ले आया है, 'पटना' से। उसकी विवाहित स्त्री सभी कुटुम्बियों के पास फरियाद लेकर जाती है। कोई उसकी सहायता नहीं करता। ननद ने यह उपदेश अन्त में दिया है। "हिलमिल रहियो भावी साथ भैया जी को लागे प्यारी जाटिनीजी महाराज।" कुछ गीतों में घर के आन्तरिक भ्रष्टाचार का भी वर्णन है। पति बारह बरस बाहर रहा है, यहाँ जेठ का मन डिग गया है। जेठ के द्वारा एक लड़का हुआ है। जेठ ने उसे दुलरी पहना दी है। पति आया तो स्त्री कहती है; "तुमने कमाये पिया मौहर असरफी हमनें कमाये नन्दलाल।" पुरुष पूछता है दुलड़ी का भेद बताओ। वह कहती है अपने पिता से पूछो, माता से पूछो, भाभी से पूछो, बहनोई से पूछो। बहनोई उत्तर देता है कि उसी छल-छन्दी से पूछो—अन्त में उसने यह उत्तर दिया है—

"बाजत आमें धूम-धमाके गूँजति आमें तरवारि
गोरी के सिर पै कूँ महाराज
फाटि गए बे ढोल-धमाके टूटि गई तरवारि
हमतौ जीति गए जी महाराज
जेठ गढ़ाई हमने पहिरी

'भानजा' गीत में माँई के साथ भानजे के शयन का उल्लेख है। भाई बहिन से कहता है कि अपने पुत्र को रोकलो मेरे सूने महलों में आता जाता है। बहिन कहती है कहीं छैल रोका जाता है। 'मोर' गीत में 'मोर' को प्रेमिक का रूप मिला है। राजा की रानी पानी भरने गईं। मोर की कुहक मन में बस गई। यह जानकर राजा

शिकार को गये। मोर को मार लाये। पर हृदय में बसी कुहक नष्ट नहीं होती।

ये तो लघुवृत्ती कथाएं हैं। कुछ बड़े गीत भी गाये जाते हैं। बड़े गीतों में 'चँदना' 'चन्द्रावली' और निहालदे गिनी जा सकती है। 'चँदना' में चँदना अपने मायके है। वहाँ उसकी बदनामी होरही है। उसका प्रेम सुनार से हो गया है। माँ ने उससे कहा बेटी चरखा ही कात लो। उसी में मन लगाओ। चरखा कातने से देह में पीड़ा होती है। उँगली और कमर में दर्द होता है। माँ ने आखिर सुसराल में समाचार भिजवाया। लिवा ले जायँ। जमाई आया। खाना खा के लेट गया। सोते होने का बहाना बना लिया। रात में उसकी स्त्री सुनार के गयी। ये पीछे पीछे गये और समस्त बात समझ आये। दूसरे दिन बिदा करा के चले। मार्ग में स्त्री को मारकर गाड़ दिया और घर आये। यह प्रसिद्ध है कि यह गीत किसी वास्तविक घटना पर बनाया गया है।

चन्द्रावली[1] पानी के लिए सहेलियों के साथ निकली। पठान की सेना आगे पड़ी थी। पठान ने चन्द्रावली पकड़ ली। भाई, पिता, ससुर, पति, जेठ सब के पास यह संवाद पहुँचा। सभी चन्द्रावली को छुड़ाने के लिए द्रव्य तथा पदार्थ लेके गये। पठान—'मुगल के छोहरा' ने कुछ भी स्वीकार नहीं किया। चन्द्रावली सी रानी कहाँ मिलेगी। चन्द्रावली ने प्रत्येक से यही संवाद कहा कि आप जायँ मैं कुल में दाग़ नहीं लगने दूँगी। जब सबके प्रयत्न विफल हो गये तो चन्द्रावली ने पठान से कहा—प्यास लगी है, वर्तन साफ माँज कर पानी मँगवाओ। उसने पीठ फेरी कि चन्द्रावली ने तम्बू में आग लगा ली और जल गयी, इस प्रकार दोनों कुलों की लज्जा बचाई।

'निहालदे' सामन का बहुत प्रसिद्ध गीत और राग है। निहालदे

[1] ब्रज में जो गीत चन्द्रावली नाम से प्रचलित है वही बुन्देलखंड में मथुरावाली नाम से है। दोनों की कथावस्तु बिल्कुल एक है। बुंदेली गीत में आरम्भ में सगे काका का वृतान्त नहीं जो मुग़ल को चढ़ा लाया। ब्रज के गीत में मुग़ल ने चन्द्रावली से तिलक इजार पहनने और अल्लाह नाम लेने का आग्रह नहीं किया। यहाँ के गीत में चन्द्रावली ने ढोल वाले से ढोल बजाकर चन्द्रावली के जलने की घोषणा करने के लिए भी नहीं कहा। देखिए लोकवार्ता : वर्ष २ अंक १।

मां के रोकने पर भी झूलने के लिए बाग में गयीं। वहाँ झूल रहीं थीं कि बाग मुग़ल ने घेर लिया सब सहेलियाँ भाग गयीं। निहालदे को मुगल ने पकड़ लिया। सखियों ने सब समाचार जाकर घर कहे। भाई ने सुना तो तय्यार होकर बहिन को छुड़ाने चला। मुग़ल के द्वार पर पहुँच कर उसे वहाँ मार डाला और बहिन को छुड़ा लाया।

इस गीत में पुरुष भाई ने बहिन की बंदि और बन्धन मुक्त कराये हैं। पर एक गीत में स्त्री ने साहस पूर्वक अपना पति दिल्ली से छुड़ाया है। उसके पति दिल्ली में व्यापार करते थे पकड़ लिए गये। स्त्री ने ससुर, जेठ, देवर सभी से प्रार्थना की कि पति को छुड़ा लायें। किसी को अवकाश नहीं। तब वह स्त्री ही मरदाना भेष करके दरबार में पहुँच गयी और झटक कर अपना पति छुड़ा लिया।

यह सामन (श्रावण भादों) के गीतों का परिचय है। अधिकांश गीतों का आधार प्रेम है—रोमांस से परिपूर्ण इन समस्त प्रबंध गीतों पर दृष्टि डालने पर यह प्रतीत होता है कि इनमें किसी वास्तविक घटना का ही उल्लेख है। कहीं न कहीं वह घटना घटी है, और कवि ने उसे अपने काव्य का विषय बना लिया है। घटनायें या तो बाग में हुई हैं, या अधिकांश पानी भरने के लिए जाने के समय कुँए पर। विवाहित और क्वारी दोनों ही गीत का विषय बनी हैं।

जिन गीतों में क्वारी स्त्री का उल्लेख है उनमें शब्दावली प्रायः एक-सी है :

'अरे छोरा तू अति कौ बड़ौ मलूक
इतनौ बड़ौ तौ क्वारौ चौं रह्यौ,
'अरे छोरी तू अति की बड़ी मलूक
इतनी बड़ी तौ क्वारी चौं रही।'

अभिप्रायः यह कि इन गीतों में जहाँ भाव-साम्य होता है वहाँ पर बहुत शब्दावली भी साम्य हो जाती है। मुगल-पठानों के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि इन गीतों का निर्माण मुग़लकाल में हो गया होगा। जाटों की ओर भी आकर्षण है, यों जाटिनी भी एक गीत में प्रेयसी बन गयी है। निम्न स्तर के और काम करने वाले अथवा व्यवसाय करने वाले व्यक्ति रोमांस के नायक बनाये गये हैं—जैसे बनजारा, धोबी, नटवा आदि। इनमें यौन-शास्त्र और मनोविश्लेषण की अनुकूलता है, पर यह भी लक्षित होता है कि इनका आरंभ अथवा

प्रचार निम्नस्तर की जातियों से ही हुआ होगा। प्रायः सभी गीतों में नैतिक व्यञ्जना अवश्य उपस्थित हो गयी है। जहाँ तक गीतों में आये यौन-सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, उनमें समाज-नियम की अवहेलना तो दृष्टिगत होती है, पर अस्वस्थ मन नहीं दिखायी पड़ता। वस्तुस्थिति को अत्यन्त हृष्ट-भाव से यथार्थ रूप में ग्रहण किया गया है। यही कारण है कि साधारण शिष्ट-भावाविष्ट जन को इन गीतों के पात्रों के भाव सहज नहीं लगेंगे। फिर भी इन गीतों में भावों का धरातल उतना पावनता उद्रेकी नहीं है—ये गीत सभी मुसलमानी काल में रचे गये प्रतीत होते हैं। कितने ही गीतों में दक्षिण में चाकरी के लिये जाने का उल्लेख है। यह मरहठाओं के उदय के काल के गीत होंगे।

सामन-भादों के रँगीले-रसीले, आले-गीले महिनों में गीतों के फव्वारे छूट जाते हैं, फिर कार में इतने गीत नहीं रह जाते। 'न्यौरता' होता है—नवरात्रि। न्यौरता खेला जाता है। मिट्टी का एक छोटा घर बना लिया जाता है, एक देवी की पूरी मूर्ति मिट्टी से दिवाल पर जमा लेते हैं। प्रातः सूर्योदय से पूर्व स्त्रियाँ-लड़कियाँ इस पर मिट्टी की सूच्याकार 'गौरें' चढ़ाती हैं और गीत गाती हैं। इन गीतों में भजनों की प्रधानता होती है, पर दो गीत प्रधान होते हैं। एक में गौरी-गौरा से प्रार्थना की जाती है कि वे किवाड़ें खोलें, पूजने वाली आयी हैं। ये 'खेल-खिलन्तर' क्या माँगती हैं? बेटियाँ, पिता का राज माँगती हैं, भाई की जोड़ी माँगती हैं, भाभी की गोद में भतीजा माँगती हैं, बहुऐं श्वसुर का राज्य माँगती हैं, छोटा देवर माँगती हैं, हरी चूड़ियाँ मोती भरी माँग के द्वारा अटल सौभाग्य माँगती हैं, अमरबेल के बिछुआ माँगती हैं और अपनी गोद में बालक माँगती हैं। यह याचना का गीत अवश्य गाया जाता है। दूसरा गीत गौरी-दर्शन का है, 'अपनी गौरि की झाँई देखूँ का प्हैरें देखूँ' यह प्रश्न करके विविध वस्त्राभूषणों का नाम लेती चली जाती हैं और पानी भरे लोटे में जैसे इस झाँई को देखती जाती हैं।

कार्तिक का महिना बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रायः स्नान का बड़ा महत्त्व है। यह महिना राई दामोदर (राधा दामोदर) की पूजा का है, किन्तु साथ ही साथ प्रतिदिन की पूजा-मानता भी होती है। स्नान के उपरान्त गीतों का, यथार्थ में भजनों का और उस दिन की कथा सुनने और कहने का अनुष्ठान अनिवार्य है। फलतः

इस महिने में तो नियमतः प्रातःकाल भजन सुनने को मिलते हैं, इन भजनों में प्रातःजागरण के गीत प्रधान हैं—'जागिए गोपाल लाल भोर भयो अँगना' जैसे गीत गाये जाते हैं। 'उठि मिलि लेउ राम भरत आये' जैसे तीर्थ के गीत भी गाये जाते हैं। और भी हरि-स्मरण सम्बन्धी भजन इस अवसर पर गाये जाते हैं। कार्तिक स्नान के विविध माहात्म्य सम्बन्धी एक पद यहाँ उद्धृत किये देते हैं—

राधा दामोदर बलि जइये।
राधा बूझैं बात चतुर्भुज कैसें रे कातिक नहिये। मेरी राधा०
नोंनु तेल को नेमु लयौ ऐ अलोनेई भोजन करिये,
नौनु तेल को नेमु लयौ ऐ घीउ सुरइनि को खइये।
मूँग मनोहर नेमु लयौ ऐ साठी के चामर खइये,
खाट पिढ़ी कौ नेमु लयौ ऐ धरती पै आसन करिये। राधा०
चारि ऐंतवार द्वै एकादशी इतने व्रतन कूँ रहिये। राधा०
कातिक माँझ उज्यारी सी नौमी आमरे तन जइये
जोड़ी जोड़ा नौति जिमइये इच्छा भोजन पइये
राधा पूछै बात चतुरभुज का कातिक कौ फलुऐ
कारी करइ सुघरु बरु पावें तरुनी लाल खिलइये
बुढ़िया न्हनाइ विषुन पद पावें तरि बैकुण्ठें जइये। राधा०

इसी के साथ 'करवा चौथ' आती है। 'करवा चौथ' अँधेरे पक्ष में चतुर्थी को होती है। चन्द्रमा को अर्घ्य देने के गीत में दही का अर्घ्य देने का उल्लेख होता है, और दशरथ से श्वसुर, कौशिल्या-सी सासु, राम से पति, लक्ष्मण चरत-भरत से देवरों की कामना की जाती है। 'अहोई आठें' और दीपावली का त्यौहार भी इसी कार्तिक में पड़ता है। दीपावली की पूजा में तो गीतों का विधान नहीं, पर प्रातः 'स्याहू', या 'स्याही' की पूजा में गीत गाये जाते हैं। गोवर्द्धन रखते समय गीत गाये जाते हैं और दौज को गोवर्द्धन के स्थान की पूजा करके दौज की कहानी सुनने के उपरान्त एक विशेष तान्त्रिक उपचार के साथ एक गीत गाया जाता है। यथार्थ में ये प्रतिपदा और दौज के गीत तो 'अगहन' के महिने में माने जाने चाहिए।

अगहन में एक ही त्यौहार 'देवठान' पड़ता है। देवठान पर भी गीतों का विधान नहीं होता। देवता उठाने के समय मन्त्र की भाँति यह गीत पढ़ा जाता है :—

उठौ देवा,
बैठौ देवा,
आँगुरिया चटकाओ देवा।
चलि चलि मूसे गोबर जायँ।
गोबरु लाइ लाइ अँगनु लिपामें।
अँगनु लिपाइकें बम्हन नौतें।
बम्हन दीजै कपिला गाय, सुरई गाय।
चलि चलि मूसे डाब कटामें
डाब कटाइकर जिबरी बटामें, जिबरी बटामें।
जिबरी बटाबट खाट बुनामें, खाट बुनामें।
इतनी अंबर तारइयाँ, तारइयाँ।
इतनी जा घर भौटरिया, भौटरिया।
इतनौई बाहिर ईंटा रोरौ।
इतनौई जा घर बरध किरौरौ, बरध किरौरौ।
औरें कौरें धरे मजीरा, धरे मजीरा।
जीऔ भगिनी तिहारेऊ बीरा।
औरें कौरें धरे अनार।
जीऔ खसमजी तिहारेऊ यार, तिहारेऊ यार।
औरें कौरें धरे चपेटा, धरे चपेटा।
जिऔ मातुल तिहारेऊ बेटा, तिहारेऊ बेटा।
जनेऊ जनेऊ,
ढोकसरा भर देऊ।
ढोकसरा फूटे राए में, चौराए में।
कौशल्या नाची गिरारे में, गिरारे में।
इतनी पोखरि मेंड़कियाँ।
इतनी जा घर भैंसरिया।

पूस-माघ में जाड़े और शीत की उग्रता के कारण गीतों की ध्वनि मन्द हो जाती है। माघ में बसन्तोदय-बसन्तपंचमी से फिर गीतों की लहर उठती है और फाल्गुन में तो वह अपने चरम पर पहुँच जाती है। यों इस महिने में होली और फाग-धमार ही विशेष गाये जाते हैं, पर अनुष्ठान-त्यौहार सम्बन्धी गीत इस महिने में भी कम ही हैं। 'घरगुली' (गृर-होली) फागुन सुदी दौज को रखी

जाती है। प्रत्येक घर में पट्टी के आकार की 'घरगुली' खोदी जाती है। इस अवसर पर एक गीत गाया जाता है, इसका आरम्भ यों है—

रामा बलि के द्वार चढ़ी ए होरी
कौन के हाथ रँगीलौ ढफु सोहै,
कौन के हाथ गुलाब की छड़ी।

उत्तर में विविध नाम लेते जाते हैं, इस 'घरगुली' पर प्रतिदिन लीप कर संध्या के समय 'टिकुलियाँ' रखी जाती हैं। ये आटे से रखी जाती हैं। उँगली के पोटुए के आकार (∩) की ये होती हैं।

होली में आग लगने से पूर्व उसे पूजने जाते हैं, उस समय के गीत में स्त्री तो यह शिकायत करती है कि मेरे पास कोई आभूषण ही नहीं होली कैसे पूजूँ? पति कहता है इस बार ऐसे ही पूजो, अगली बार दो-दा बनवादूँगा। सीधा-सा अभिप्राय यह है कि आगामी फसल अच्छी हो। जिससे बहुत से आभूषण बन सकें। आग लग जाने पर बालें उस पर भूनी जाती हैं। उस समय भी गीत गाया जाता है। वह कुछ ऐसे है—

बालि

बालि बलूलरियाँ
जौकी लामनियाँ
कृष्णजी भैनि बुलाई, कै जौ की लामनियाँ
सहद्रा दौरी दौरी आवै, ,,
भैना गूँजा खाइबे आउ ,,
कै हिस्से खाइबे आउ ,,

होली मँगर जाने के बाद घर लौटते समय कुछ ऐसा गीत गाया जाता है:

होरी में आग जला कर लौटने पर स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं—

होरी के हुरिहारे आये राम चना रे
कोरे दतार आये राम चना रे
कृश्न जी दतार आये राम चना रे
होरी मँगारि घर दाऊजी[1] आये राम चनारे
पइदैं मइया रोटी राम चना रे

[1] भैयों का नाम लिया जाता है।

ईंधन नाइ बाँधन नाँइ
कैसें पैंइ बेटा रोटी राम चना रे

इस प्रकार विविध त्यौहारों और पर्वों के गीतों का यह परिचय यहाँ समाप्त होता है।

—ई—

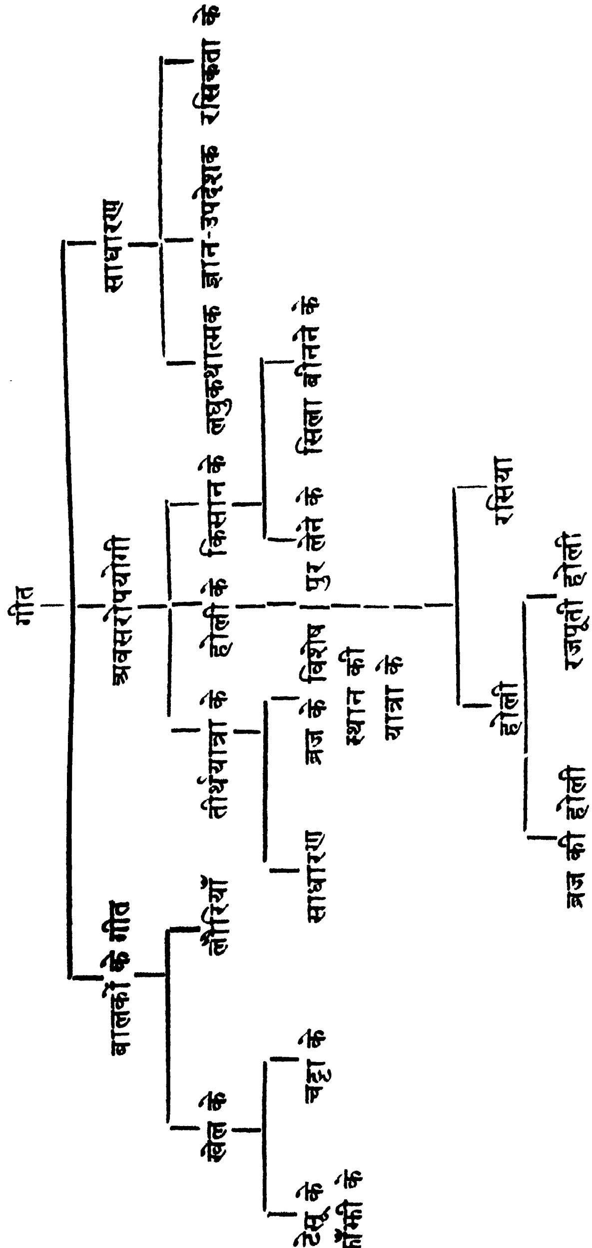
अन्य विविध गीत

विशेष अवसर और अभिप्राय के गीतों का वर्णन हम अब तक कर चुके हैं। उक्त गीतों के साथ अवसरानुरूप किसी न किसी लोक-वार्ता का बड़ा गहरा सम्बन्ध था। यहाँ अब हम ब्रज के शेष गीतों के अटूट भण्डार का संक्षेप में निरीक्षण करेंगे। इन शेष गीतों को हम दो बड़े भागों में बाँट सकते हैं : एक प्रबन्धात्मक, दूसरे मुक्तक। प्रबन्धात्मक गीतों को एक अलग अध्याय का विषय बनाना उचित होगा। यहाँ पर तो मुक्तकों पर ही विचार करेंगे। इन मुक्तकों को भी अपनी सुविधा की दृष्टि से निम्न वर्गों में बाँट कर देखेंगे : [देखिए पृष्ठ २६५]

इन शेष गीतों की संख्या अगणित है। इनका संग्रह वर्षों पर्यन्त चलने पर भी समाप्त नहीं हो सकता। यहाँ तो हम इनके स्वभाव पर ही किंचित प्रकाश डाल कर समाप्ति करेंगे। बालकों के गीतों में खेल के गीत प्रधान हैं। इन गीतों में गीतकार ने दो बातों का ध्यान रखा है : एक गीतों में सामूहिक लय। बच्चों के खेल के गीत कितने ही बालकों द्वारा मिलकर गाये जाते हैं, फलतः इनमें सामूहिक लय का ध्यान रखना स्वभावतः ही अनिवार्य है। प्रत्येक चरण छोटी तौल का होता है। अधिक लम्बे चरण इनमें नहीं होते। साधारणतः इन गीतों का एक चरण इस गति का होता है :—

'इमिली की जड़ में ते निकसी पतंग'

इसमें बीस मात्रायें हैं। १५ तथा २०-२२ मात्राओं के बीच के ये छन्द होते हैं। प्रत्येक चरण प्रायः संतुलित, बहुधा सतुक होता है, यद्यपि बीच-बीच में अतुकान्त स्थलों के आ जाने की भी सम्भावना रहती है। दूसरी बात है विलक्षणता। टेसू के गीतों में विलक्षणता हमें अद्भुत अकल्पित बातों की, एक दूसरी पर आश्रित संयोजना के रूप में मिलती है। ऊपर जो चरण दिया है वह एक टेसू का गीत है। इसी


गीत
साधारण
लघुकथात्मक
ज्ञान-उपदेशक
रसिकता के
अवसरोपयोगी
किसान के
पुर लेने के
सिला बीनने के
होली के
रसिया
होली
ब्रज की होली
रजपूती होली
तीर्थयात्रा के
साधारण
ब्रज के विशेष स्थान की यात्रा के
बालकों के गीत
लोरियाँ
खेल के
टेसू के झाँझी के
चट्टा के

पंक्ति में यह विलक्षणता स्पष्ट है। इमली का वृक्ष है, उसकी जड़ में से पतंग निकली। यह अकल्पित संयोग है। इन टेसू के गीतों में इस प्रकार की अकल्पित अद्भुत संयोजनाओं के साथ एक, क्षीण और लघु, कथा-वस्तु भी मिलती है। एक गीत में वह वस्तु यह है :—

टेसूराय ने दस नगरी दस गाँव बसाये। उसमें तीतर मोर बस गये। वहाँ एक सरी डोकरी (अत्यन्त वृद्ध स्त्री) रहती थी, उसे चोर चुरा ले गये। चोरों के यहाँ खेती होती थी। बुढ़िया वहाँ खा-खा कर मोटी हो गई।

एक दूसरे गीत में है—

कोई कहीं गिलोंदे खाने पहुँच गया। कुछ खाये कुछ बाँध लिये। उसी समय उस पर रक्षकों ने हल्ला बोल दिया। उसने आशा ग्वाल को पुकारा। आशा ग्वाल की लीली घोड़ी है, उसने दाना खाते समय दाने का पात्र फोड़ दिया। पानी पिलाने वाला सक्का मारा। तब वह दिल्ली को फरियाद ले चला। पर दिल्ली तो बहुत दूर है। अन्ततः वह चूल्हे की ओट में छिप गया।

चूल्हा माँगै सौ सौ रोट
एक रोट घटि गयौ
चूल्हा बेटा लटि गयौ।

इस प्रकार के कथा-विन्यासों में भी अद्भुत का प्राधान्य रहता है। एक गीत में एक छोटी सी छटमासी या कचपैंदरिया गैया का अद्भुत वर्णन है। वह अस्सी डला भुस खाती है। तालाब का समस्त पानी पी जाती है। हँगने बटेश्वर जाती है। समस्त नगर में दूध देती फिरती है। दूध से पोखरें भर देती है। पार[1] पर घी जम जाता है। इसी प्रकार के एकानेक अद्भुत प्रकरण इन गीतों में आते हैं। टेसूराय की सात वधुओं का बहुधा इन गीतों में उल्लेख हुआ है—

टेसूराय की सात दीहरियाँ
नाचें कूदें चढ़ें अटरियाँ

ये स्त्रियाँ क्या हैं, मल्ल हैं। मन मन पीसती हैं, मन मन खा जाती हैं। बड़े मल्ल से युद्ध करने जाती हैं। किसी किसी गीत में सातों वधुओं के अलग अलग काम बताये गये हैं। सातवीं वधू टेसूराय को अत्यन्त प्रिय है। वह खाट पर बैठी बैठी मोटी हो गयी है—

[1] किनारा।

"एक लला जू की बहौतुई प्यारी तौ
पलिका ते पामु न देय सुगना
फूलि बिटौरा है गई सुगना तौ
घर के द्वार न समाइ सुगना
ब्याई गाँम के बढ़ई ऐ बोलौ तौ
घर कौ द्वार छिलाइ सुगना[1]

'टेसू' के अधिकांश गीतों में अद्भुत की परम्परा होती है। एक पद में एक बात का वर्णन होता है, तो उसके बाद के में उससे असम्बद्ध को सम्बद्ध करके यह परम्परा प्रस्तुत की जाती है। उदाहरण के लिए एक पद है—"इमली की जड़ में ते निकली पतङ्ग, नौसै मोती, नौसै जंग"। इस पद में इमली की जड़ का और पतंग से कोई सम्बन्ध नहीं। इस सम्बन्ध द्वारा अद्भुत प्रस्तुत किया गया है। उस पतङ्ग में नौसै मोती, नौसै जङ्ग। अब इस अनायास ही आजाने वाले शब्द 'जङ्ग' को और भी अद्भुत बनाने के लिए इसी के आधार पर गीत आगे बढ़ाया गया—"एक जंग मेरी टेढ़क-मेढ़ी' 'दाना देत कुल्हैंड़ी फोड़ी' पानी पिलाता सक्का मारा—' एक दूसरे से असम्बद्ध और असंगत बातें जोड़ी गई हैं। 'मारा' शब्द आते ही 'मारा है बे मारा है, जा दिल्ली पुकारा है—फिर दिल्ली की शरण ली गयी है।

'टेसूराय' के गीत तो बालक गाते हैं। इसी अवसर पर बालिकाएं झाँझी (झैंझी) के गीत गाती हैं। झाँझी के गीतों में एक और पद्धति का उपयोग किया जाता है। वह यह है कि बहुधा ये गीत संवादात्मक हैं। माँ से प्रश्न है, फिर उसका उत्तर है। साथ ही एक पुच्छवत् टेक रहती है जैसे—

"माँ भैया कहाँ कहाँ ब्याहे, पारेवरिया"

इस गीत में 'पारेवरिया' पुच्छवत् टेक है। समस्त गीत में यह यथास्थान आती रहेगी। टेसू के गीतों की तरह इनमें भी वही अकल्पनीय असम्बद्धता-सम्बद्धता रहती है।

माँ भाभी कौ मुँहड़ौ कैसौ ?
नाक चना सी, मुँह बटुआ सौ, घूँघट में मन लाई

[1] यह गीत का अंश वास्तव में झाँझी के गीत में से है। उसमें टेसू का नाम नहीं है ललाजू नाम है।

'थोरौ खानी बहुत कम।...नी जे जगु जीती आई

(किसी किसी गीत में मन लाई के स्थान... पर 'घुरंई' पाठ है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है)

एक दूसरे प्रश्न में पूछा गया कि 'दरबज्जे (द्वाराचार के सम...य) कहा कहा दीयौ ?"

उत्तर है—"आठ बिलैयाँ, नौ चकचूँदरि सोल्है मूँसे दीये, पारेवरिया।

एक अन्य झाँझी या झैंझी के गीत में ऐसी ही टेक है 'भली मेरी रावरिया'। टेसू के गीतों के से क्रम—असम्बद्ध से सम्बद्धता के तारतम्य का इन गीतों में भी अभाव नहीं है—एक गीत यों है—

बाबाजी के चेली चेला भिच्छया माँगन आए जी
भरि चुकटी मैंने भिच्छा डारी, चूँदरिया रँगि लाए जी

भिक्षा की चुकटी का तो सम्बन्ध है, पर चूँदरी रँगने[२] से कोई सम्बन्ध नहीं, फिर चूँदरी का वर्णन—

चूँदरिया की उरकन मुरकन द्वै मोती मोइ पाए जी,
वे मोती मैंने सासु ऐ दिखाए जी
सासु निपूती ने धरि पत्थर पै फोरे जी

इसी प्रकार यह क्रम चलता है। इनमें एक ध्रुव सूत्र अवश्य रहता है। समस्त गीत में भिक्षा डालने वाली लुप्त नहीं होती। ऐसा ध्रुव-सूत्र टेसू के गीतों में नहीं मिलता।

झाँझी अथवा झैंझी के गीतों में टेसू के गीतों से एक और विशेषता मिलती है। वह यह है कि इनमें मात्र अद्भुत ही नहीं रहता। अद्भुत के भीतर हृदय का रस भी झाँकता दीखता है। ये गीत किसी न किसी नाते-रिश्ते का आश्रय लिए रहते हैं। ऊपर के गीत में सास और माँ के व्यवहार की एक झलक है। सास ने मोती फोड़ दिये, उसने

[१] एक अकबरपुर के गीत में यह मिलता है—

'माँ रोटी कितनी खावै, पारेवरिया ?"
बेटी चही की चही उड़ावै पारेवरिया

अकबरपुर के गीत में 'सोनौ' शब्द आया है।

माँ सोनौ कितनों लाई, पारेवरिया ?"

[२] 'चुंदरी रँगते' में प्रेम से रंग देने का अभिप्राय अवश्य निहित है। किन्तु यहाँ इसके द्वारा अद्भुत-भाव का भी उद्रेक हो रहा है।

वे फूटे मोती माँ के पास भेज दिये। माँ ने गङ्गा-यमुना में प्रवाहित कर दिये। इसी प्रकार किसी गीत में भाई-भावज को देखने-समझने का ही स्नेह-सिक्त भाव है।

इस समस्त विवरण से विदित हो जाता है कि इन गीतों का मूल स्वभाव विनोदात्मक है। फिर भी 'टेसू' के गीतों के गाने वाले झमक के साथ और ठसक के साथ द्वार पर पहुँचते हैं—और पहुँचते ही यह गर्वोक्ति सुनाते हैं—

"टेसू आये धूम से
टका निकारें सूम से"

और यह सच ही है कि जिस द्वार पर टेसू पहुँच जाते हैं, उसे कुछ न कुछ देना ही पड़ता है। झाँझी इतने दर्प से नहीं पहुँचतीं।

टेसू-झाँझी के खेल कार के महिने में दशहरा अथवा पूर्णिमा को समाप्त होते हैं। इसी प्रकार के माँगने के दूसरे गीत 'चट्टा के गीत' हैं। ये चट्टा के गीत 'जन्माष्टमी' के बाद आने वाली चौथ के दिन गाये जाते हैं। टेसू-झाँझी के गीत तो बालक-बालिकाओं के समूह स्वतन्त्र-भाव से स्वयं ही मिलकर गाते हैं, और अपने पास-पड़ौसियों के घरों में माँगने जाते हैं। चट्टा-चौथ विशेष संगठित रूप में होती है। यह गणेश-चतुर्थी मानी जाती है। यह दिन गुरु-पूजन का होता है। गाँवों में पाठशालाओं के अध्यापक इन गीत-टोलियों का आयोजन करते हैं। उनके समस्त विद्यार्थी इस दिन स्वच्छ वस्त्र पहनकर और एक जोड़ी चट्टा लेकर आते हैं। उन्हें साथ लेकर अध्यापक महोदय प्रत्येक विद्यार्थी के द्वार पर जाते हैं। मार्ग में और द्वार पर चट्टे बजाते जाते हैं और उनके साथ गीत गाते जाते हैं। चट्टों के साथ तबले और बेले का भी कोई-कोई प्रबन्ध कर लेते हैं। 'चट्टा' शब्द 'चटशाल' से सम्बन्ध रखता है। ब्रज में 'चट्टा' विद्यार्थी को ग्राम्य की साधारण बोलचाल में कहते हैं। 'सरस्वती' पूजन के एक हिन्दी-मन्त्र में भी 'चटिया' शब्द विद्यार्थियों के लिए आता है: 'तुम्हारे चटिया लख सै साठि। विद्या माँगें हाथ पसारि'। जैसा ऊपर बताया जा चुका है चट्टों की संयोजना अध्यापकों के द्वारा होती है, इसके गीत आदि भी अतः उतने स्वयंभू नहीं होते जितने कि टेसू-झाँझी के। अधिकांश गीतों में 'बसन्तक' नाम की छाप रहती है। ये गीत भी बहुधा अद्भुत पर निर्भर विनोदात्मक होते हैं, वस्तुतः तो विनोद से

भी अधिक हास्ययुक्त इन्हें कहा जा सकता है। एक गीत जो माँगने के लिए गाया जाता है वह यह है :—

"उठ उठ री मोहन की माँ
भीतर ते तू बाहिर आ
गढ़े गढ़ाये रुपिया ला
पंडित जू कूँ पागौ ला
मिसरानी कूँ तीहर ला
चट्टन कूँ मिठाई ला
चट्टा दिंगे बड़ी अशीश
बेटा हुँगे नौ-सौ तीस
आयौ वसंतक सुन चकपैया
अब का देखौ लाओ रुपैया

इन गीतों में बहुत प्रसिद्ध गीत फूहड़ का, नाजुक स्त्रियों का, चूही और बनियों का तथा देवर-भाभी का है। फूहड़ के वर्णन में कवि ने अति करदी है; बिल्कुल घृणोत्पादक चित्र उपस्थित हो जाता है। नाजुक स्त्रियों में एक दूसरी से अपनी नजाकत का वर्णन करती है और एक दूसरी से बढ़कर अपनी नजाकत सिद्ध करना चाहती है। चूही और बनिये के गीत में बनिये को चूहे के भय का वर्णन है। "जब चूही ने दाँत दिखाये। सात-पाँच बनियाँ लुढ़काये"। इस गीत का चरम वहाँ है जहाँ चूही झटका देकर धोती में से कूद कर बिल में चली जाती है। उस समय होश में आकर बनिया कहता है : "कहन लगे अब हारी तू ही।"

यह गीत १४ मात्राओं के आधार पर है। १५-१६ भी हो सकती हैं। इसका स्वरूप मार्ग-गीत (मार्चिङ्ग-साँग) का जैसा है। वह ७ दीर्घ स्वरग्रामों में बाँटकर गाया जाता है। १६ या १५ मात्राओं के गीतों को भी गाने में ७ ग्रामों में समाना पड़ता है। उदाहरणार्थ यह तो इसकी स्वाभाविक गति है :—

बे	टा	हुँ	गे	नौ	सौ	तीस०=१५ मात्रा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
आ	चू	ही	तू	बा	हर	आ =१४ मात्रा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

भीर हुई बनि यों की न्या री =१६ मात्रा

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
१ २ ३ ४ ५ ६ ७

इस गीत में पहली पंक्ति में १५ मात्रायें हैं, जिनमें अन्तिम 'ग्राम' ३ मात्राओं का होता हुआ भी एक दीर्घ स्वर की अनुरूपता रखेगा। दूसरा चरण बिल्कुल ठीक जितने ग्रामों में जितनी मात्राएँ होनी चाहिए उतनी ही रखता है। तीसरे में १६ मात्राएँ हैं। इसमें प्रथम दो ग्राम तीन तीन मात्राओं के हैं। इस प्रकार दो अधिक मात्राऐं पहले दो ग्रामों में समा गयी हैं। यह इस गीत का मूल रूप है।

ब्रज में बालकों के इन गीतों की इतनी चर्चा ही पर्याप्त है। लोरियाँ वे गीत हैं जो बालकों के लिए होते हैं। स्वयं बालक इन्हें नहीं गाते। बालकों से भी अधिक शिशुओं से लोरियों का सम्बन्ध है। शिशुओं को सुलाने के लिए ये लोरियाँ गायी जाती हैं। ब्रज में साधारणतः लोरियों की प्रथा उठ सी गयी है।

अवसरोपयोगी गीतों में तीर्थों के गीतों को लें तो उनमें एक तो साधारण कोटि के वे गीत हैं जो किसी भी तीर्थ यात्रा के समय गाये जा सकते हैं। इनकी संख्या भी बहुत है। साधारणतः कोई भी भक्ति सम्बन्धी भजन इस अवसर पर गाया जा सकता है। फिर भी कुछ विशेष गीत हैं। इन गीतों में गंगा, राम और कृष्ण का उल्लेख आता है। गंगा सम्बन्धी एक गीत में तो गंगाजी की यह शिकायत है कि संसार मुझे दुखी करता है, यहाँ आकर रुदन मचाता है; बाँझ पुत्र माँगती है, विधवा सौभाग्य मांगती है, कोढ़ी निर्मल काया माँगते हैं, अंधे आँखें, वे मैं कहाँ से लाऊँ। पर एक दूसरे गीत में भक्त को पूर्ण विश्वास है कि त्रिवेणी गंगा सब दुख दूर कर देगी। इसी की प्रार्थना और याचना वह करता है।

राम सम्बन्धी गीतों में से तीन विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं। एक में राम जाने का आग्रह कर रहे हैं, सीता रोकती हैं। वह राम से अपने दिन काटने के सम्बन्ध में उपाय पूछती हैं—और अपने अभाव बताती हैं। यह अभाव निकट सम्बन्धियों का ही दिखाया गया है, किसी वस्तु का नहीं। अन्तिम पंक्ति मार्मिक है :—

"कोखि न जाये नँदलाल हमारे मन रामजी बसें
चलत फिरत देखत करतु अजुध्या कौ बासु हमारे मन रामजी बसें।"

दूसरा गीत सीता के पृथ्वी में समा जाने के समय का है। लक्ष्मण और राम वन में प्यासे लव-कुश के पास पहुँच गये हैं। लव-कुश ने जब पानी भर कर लोटा दिया तो जाति पूछने का ध्यान आया। इसी प्रसंग में रामपुत्रों ने बता दिया कि वे सीताजी के पुत्र हैं। उस समय सीताजी बाल सुखा रही थीं, राम को आया देखकर भूमि में समा गयीं। राम बचाने को दौड़े पर सिर के बाल ही हाथ में पड़े।

तीसरे गीत में राम-भरत मिलन की चर्चा है। यह गीत बहुत प्रचलित है; यात्रा के अवसरों में अन्य गीतों से ऊँचे स्वर में इस गीत की यह ध्वनि अनायास ही सुन पड़ती है :—

'उठि मिलि लेउ राम भरत आये।'

इस गीत में स्वर का आकर्षण ही विशेष है, इतना विषय-विस्तार नहीं। विषय तो इतना ही है। "आँगन लिपा है, गजमोतियों के चौक पुरे हैं, हाथी पर बैठकर चारों भाई आये हैं, बाहें पसार कर मिल रहे हैं। नेत्रों से आँसू बह रहे हैं।" इतने लघु विस्तार में ही इस लोकहित के कवि ने अपना मनोरथ स्पष्ट कर दिया है। भरत की पुकार ही राम तक नहीं पहुँचा दी, चारों भाइयों को साश्रु मिला भी दिया है। इस गीत में लोक-गीत की विलक्षणता स्पष्ट विदित होती है। लोक गीतों में बहुधा कुछ बातें बार बार दुहरायी जाती हैं। ये बातें पृष्ठभूमि की भाँति काम करती हैं। केवल एक बात शेष से विशेष कहदी जाती है, वही चुभ जाती है। इस गीत में शेष तो सब पृष्ठभूमि है—वह चुभने वाली पंक्ति है, "नैनन नीर ढरत आये री"। यही गीत का मर्म-स्थल है।

कृष्ण सम्बन्धी गीतों में विषय सामान्य है। कृष्ण के दर्शन की लालसा, उनके रास में सम्मिलित होने का प्रस्ताव, राधा-कृष्ण का स्वरूप, यमुना में जल भरने में संकोच, कदम्ब वृक्ष के नीचे वंशी बजाना—ऐसे ही भाव और विषय इन गीतों में हैं।

एक गीत विशेष गाया जाता है "लै लीजौ हरि को नाम कै आगें आगें गैल कठिन की"। इस गीत में तो यात्रा का भाव प्रतीत होता है, अन्य प्राय: जितने भी गीत हैं, उनमें यात्रा अथवा तीर्थ का कोई आभास नहीं मिलता। गङ्गा-यमुना, राम-सीता, राधा-कृष्ण से वे साधारणत: संबंधित हैं।

ब्रज-भाषा के कुछ विशेष गीतों में ब्रज के विविध स्थानों का उल्लेख मिलता है। इसमें न लोक-कवि की कल्पना है, न कौशल। विविध बनों और कुण्डों के नाम गिना दिये गये हैं।

अब वे गीत आते जो फागुन में होली के नाम से गाये जाते हैं। होली के अवसर पर होली और रसिया का चोली दामन का साथ होता है। सावन में जिस प्रकार स्त्रियों के कण्ठ से स्वर लहरी प्रवाहित होकर आले गीले वातावरण को और भी आर्द्र बनाया करती है, वैसे ही फागुन में मनुष्य का कण्ठरव वसन्त के उन्माद को बढ़ाता है। गीत पर गीत फूटे पड़ते हैं। रात और दिन होली के गीतों का समाँ बँधा रहता है। होली के इन गीतों का प्रधान विषय तो राधा और कृष्ण की होली खेलने का वर्णन होता है, जिसमें अबीर, गुलाल और पिचकारी का उल्लेख विशेष रहता है। 'उड़त गुलाल लाल भये बादर' का गीत उस समय का सत्य चित्र ही देता है। राधा कृष्ण की होली के बहाने और भी रंगरलियाँ इन गीतों में आ जाती हैं। किसी-किसी गीत में तो जैसे शिवजी भी होली खेलने का प्रस्ताव कर बैठते हैं, और हुरियारिन कहती हैं—

'तोते होरी को खेलै तेरी लट में विराजति गङ्ग''

होली के त्यौहार की रूप-रेखा में राधा-कृष्ण और शिव दोनों का ही कुछ न कुछ हिस्सा अवश्य है। इस अवसर पर भाँग आदि नशे के पदार्थों के सेवन की प्रथा का मूल सम्बन्ध 'शिव' से ही माना जा सकता है।

इस समय के गीतों में भी दो सङ्घर्षी लहरियाँ मिलती हैं। एक बहुत उग्र होती है, अत्यन्त ओजमय; जिसके तीव्र स्पन्दनों में मनुष्य के शरीर के अङ्ग-अङ्ग का उत्ताल संचालन होता है, और मानवीय ताण्डव का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। मूलतः इस उग्रभाव की ठीक-ठीक अपने पूर्ण चरम के साथ आगरे का 'पतोला' नामक व्यक्ति ही अभिव्यक्त कर सका है। उसकी होली रजपूती होली कहलायीं, और अत्यन्त प्रिय हुई। दूसरी वह लहरी है जो मृदु, मध्यम गति से चलती है।

इस अवसर पर शिव और राधा-कृष्ण का यह संयोग होना ही चाहिए, यह आकस्मिक नहीं है। दोनों ही प्रजनन और यौन पक्ष के प्रतीक हैं। एक ने प्रजनन और यौन तत्व को मूर्त्त रूप दे

दिया है, दूसरे ने उसको अन्तर्दार्शनिक रूप दे दिया है। शिव और कृष्ण एक ही मूल के दो रूपान्तर हैं; और इस फाल्गुण-मास में होली के अवसर पर इनके रूपों का मूल ऐक्य और उसका रहस्य प्रकट हो जाता है। होली वस्तुतः फसल का त्यौहार है, यह भी सृजन के तत्त्व पर निर्भर करता है। यही कारण है कि होली पर अश्लीलता के नग्न प्रदर्शन होते दिखाई पड़ जाते हैं। होलियों की और होली पर गाये जाने वाले रसियों आदि विविध अन्य गीतों की गिनती नहीं हो सकती। प्रति वर्ष गाँव-गाँव में शतशः होलियाँ बनती हैं। इनमें उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त अन्य अनेक सामाजिक विषयों का भी समावेश हो जाता है। अधिकांशतः गीतों का भाव रसिकता लिये हुए रहता है। रजपूती होली की अनोखी तर्ज में किसी कथा-प्रसङ्ग का एक छोटा सा टुकड़ा ही लिया जाता है, और पाँच-छह पंक्तियों में ही गीत समाप्त हो जाता है। एक उदाहरण देना ठीक होगा :

जाके पाँच पुत्र बलदाई
जुलमु हैगौ मैया, जुलमु है गयौ
तू काहे रही घबराइ
ऐरावत मँगाइ
तो पै दऊँ पुजवाइ
एक करिदऊँ जमीं आसमाँ
सुत अरजुन सौ पाइ
घबराती ऐ
कहि कितेक बात हाती ऐ

फाल्गुन के महिने में साधारण होलियों और रसियों का भंडार खुल जाता है। अनेकों पुराने और नए गीत गाये जाते हैं। इनके मुख्य विषय राधा और कृष्ण हैं। होली की गति का रूप यह है कि यह पहले अत्यन्त मन्द गति से चलती है; फिर तीव्र और अत्यन्त तीव्र हो जाती है। अत्यन्त तीव्रावस्था में कण्ठ स्वर ही ऊँचे से ऊँचा नहीं हो जाता, शरीर का रोम तीव्र गति से थिरकने लगता है। यों तो होलियों में कोई भी विषय आ सकता है, पर 'रजपूती होली' बहुधा किसी प्रसिद्ध कथा के एक छोटे से स्थल को लिये होती है। ऊपर महाभारत का एक स्थल है। एक अन्य होली में राम के निराश-विलाप का। हनूमान संजीवनी लेकर नहीं लौटे, यही राम के विलाप

का स्थल इस होली में है। ऐसे ही मार्मिक कथा-स्थल इन होलियों के विषय बनते हैं। एक और विशेषता अधिकाँशतः रजपूती होली में मिलती है। समस्त होली जैसे किसी एक पात्र का स्वयं अपने मुख से अपनी बात का कथन होता है, आत्माभिव्यक्ति होती है; उत्तम पुरुष प्रधान रहता है। ऊपर की होली में अर्जुन माँ को आश्वासन दे रहा है। एक में राम अपना दुःख प्रकट कर रहे हैं, किसी में शैव्या का विलाप है, किसी में विरहिणी गोपी का।

ब्रज की साधारण होली में मुख्य विषय राधा-कृष्ण की होली का वर्णन होता है; साथ में प्रेम और यौवन की उमँगों का भी उल्लेख रहता है। एक प्रसिद्ध होली में शिवजी से होली खेलने में आपत्ति बताई गई है 'तोसे बब्रजिया से को होरी खेलै, तेरी लट में विराजत 'गंग'। भला ऐसे हुरियारे से होरी में कौन जीत सकता है। इन होलियों में स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का भी चित्रण है; जिनमें बाल-विवाह पर भी आक्षेप ध्वनित हो उठता है "बारौ बलमा रे बारौ बलमा, तगड़ी ऐ घर नारि कै बारौ बलमा"। बालम पढ़ने जाता है, यौवन तङ्ग करता है। बहुविवाह का भी चित्र मिल जाता है—

"अकेलौ बलमा रे अकेलौ बलमा,
घर में द्वै नारि अकेलौ बलमा।"

किस किस को वह संतुष्ट करे। अबीर गुलाल का, रंगभरी पिचकारी का इन होलियों में खूब उपयोग होता है। किसी किसी होली में दार्शनिक तत्व-विवेचन भी मिल जायगा।

इन अवसरोपयोगी गीतों में किसान के पुरहे लेने के समय के गीतों में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। अधिकाँशतः इनके छन्द दोहे होते हैं और उनमें विविध कवियों के प्रचलित दोहे भी पाये जा सकते हैं। बहुधा जो दोहे गाये जाते हैं, वे ये हैं :

बिन्दाबन बानिक बन्यौ भँवर करैं गुंजार।
दुलहिन प्यारी राधिका दूलहै नन्द कुमार॥
—'राम आये'

बिन्दाबन वंशी बजी मोहे तीन्यों लोक।
वे तीन्यों मोहे नहीं सो प्यारे रहे कौन से लोक॥
ब्रज चौरासी कोस में चारि गाम निजधाम।
बिन्दाबन और मधुपुरी बरसानों नन्दगाम॥

बिन्द्राबन सौ बनु नहीं नन्दगामु सौ गाम ।
बंसीवट सौ बट नहीं कृष्न नाम सौ नाम ॥
चकई चकवा द्वै जने इन्हैं न मारै कोय ।
ये मारे करतार के प्यारे रैनि बिछोयौ होय ॥
तू राधा बड़ भागिनी कौन तपस्या कीन ।
तीन लोक तारन तरन सो जग तेरे आधीन ॥
रामनाम सबु कोई कहै जसरथ कहै न कोय ।
एक बार दशरथ कहै सो कोटि जज्ञ फल होय ॥
कागा किस कौ धन हरै, और कोइल किसको देय ।
मीठी बानी बोलि कें प्यारे जगु अपनौ करि लेय ॥
कूआ तेरी मनि बड़ी मनि ते बड़ौ न कोय ।
मनु करिकें रामनु बढ़यौ सो छिन में डारयौ खोय ॥
इकिली लकड़ी नाँय जरै औरु नाँय उजीतौ होय ।
भइया लछिमन मारिकें सो राम अकेलौ होय ॥
—'राम आये'

काम समाप्त होने पर जो शब्द कहे जाते हैं, वे अवश्य सार-गर्भित होते हैं :—

चारि पहर बत्तीस घरी, और जब मालिक नें महरि करी ।
छोड़यौ कूआ देखौ काम, गऊ के जाये करौ आराम ।

'सिला बीनने' के समय के गीतों में भी कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं मिलती । वे आनुष्ठानिक तो हैं नहीं, केवल मन रमाने के हैं; अतः किसी भी विषय को लेकर हो सकते हैं । एक में कौशल्या की कोख की प्रशंसा की गयी है, जिससे राम पैदा हुए और सीता सी बहू आई ।

सिला बीनना समाप्त हो जाने पर खेत में खत्ती गाड़ी जाती है । ऊपर मिट्टी का ढेला रख कर उसकी हलदी से पूजा होती है; उस समय यह गीत गाया जाता है :—

जब तौ बनिया डेली न देतौ
अब कैसें भेली लुटावै लाल
देखौ लाल जा साहब की बानी
जा ठाकुर की बानी
जब तौ किसानु बालि नईं देतौ

अब कैसें बोझ लुटावै
देखौ लाल जा साहिब की बानी
जा ठाकुर की बानी
जब तौ तेली तेलु न देतौ
अब कैसें कुप्पी लुटावै
देखौ लाल जा साहिब की बानी
पाँचौ पीर सरग ते उतरे
पाँचौ अनी अनी भाँति
तुम देखौ लाल जा ठाकुर की बानी
जा साहिब की बानी

इस गीत में अच्छी फसल होने से जो गाँव के सभी व्यवसायियों को प्रसन्नता होती है और फसल के अवसर पर जो उनमें उदारता आजाती है उसका वर्णन पहले की संकोचशीलता से तुलना करके किया गया है। यही नहीं—उस आनन्द की पराकाष्ठा वहाँ दिखाई है, जहाँ अच्छी फसल पर आशीर्वाद देने और उसे अङ्गीकार करने के लिए पाँचों पीरों के स्वर्ग से उतर आने की कल्पना है।

सिला बीन कर जब खेत से प्रस्थान किया जाता है, तब इस अवसर का बधाया गाया जाता है। इस बधाये में सिला बीननेवाली स्त्रियों के मन का आशीर्वाद भरा रहता है :

'रामचन्द्र के दस हर चलियों, लछिमन के बड़ सीर
सीता सिलअनु बीनिए, जौ घोंटून बड़ी बालि
बधायौ मेरे मन रहियौ'

एक दूसरा गीत चिड़िया को लक्ष्य कर फसल से हुई सम्पन्नता में सुख-विभोरता का भाव प्रस्तुत करता है :

हरी ऐ चिरैया ज्यों कहै मैं उपजुङ्गी लछिमन के खेत
हरी ऐ चिरैया ज्यों कहै मैं जैउँगी ब्वाकी धनिश्र के थारु
हरी ऐ चिरैया ज्यों कहै मैं ओढूँगी ब्वाकी धनिश्र कौ चीर
हरी ऐ चिरैया ज्यों कहै मैं पौढूँगी ब्वाकी धनिश्र की सेज

ज्ञान-उपदेश और रसिकता के गीतों के सम्बन्ध में कोई विशेष बात नहीं मिलती। ज्ञान की चर्चा के सभी विषय इन गीतों में आये हैं। उपदेश भी हैं। ईश्वर की विनय भी है। रसिकता के गीतों में प्राय: परकीया प्रेम के नंगे उत्तेजक गीत हैं।

क्वार-कार्तिक में ब्रज में पुरुषों द्वारा 'हीरो' नाम का एक गीत गाया जाया है। एक 'हीरो' उदाहरणवत् यहाँ दिये देते हैं :—

अरे पहलें रे कै कोंनु मनाइयें, औरु कौन कौ लीजै रे नाम
अरे पहलें रे कै रामु मनाइयें और गुरू कौ लीजै रे नाम
अरे कातिक रे कै पैहैलें-रे-अष्ट में औरु राधा कुण्ड कौ रे न्हान
अरे न्हाय लै रे कन्हैया प्यारे सामरे औरु दै गौअन कौ रे दान
अरे अरसठि रे तीरथ कौ रे जलु भरयौ और न्हाइ लेउ अपने रे आप
अरे बच्छारे असुर मारयौ सामरे, और कटि जाइ तेरौ रे पापु
अरे गिरवर कै तेरी रे शिखिरि पै औरु ठाड़ौ नन्द के किशोर
अरे ब्यारि में रे चलते रे फरहरैं औरु, और पीताम्बर के रे छोर
अरे वन्शी रे बजाई कान्हा सामरे औरु गिरवर पहली, रे ओर
अरे महलन रे कै मोही रानी बाछिला अरु, गयौ ए सांकरी रे खोर
अरे मटुकी रे कै फोरी रे लुकटते औरु हस्यौ हार की रे ओर।
अरे राधे रे कै ठाड़ी रे महल पै औरु चितवति चारयों रे ओर
अरे नंद रे बबा कोर सांमरौ औरु जनि कहूँ आमतु रे होइ॥
अरे राधे रे कै ठाड़ी रे महल पै औरु ठाड़ी सुखवै रे केश
अरे कैसे रे सुनहरा रे खिलि रहे औरु भमर वासना रे लेय॥
अरे ब्याहुए रे रच्यौ ए श्रीकृष्ण कौ औरु विरकभान केरे द्वार।
अरे दुलहनि रे बनीऍं रानी राधिका और दुलहा नंदे रे कुमार।
अरे राधा रे कै जी के हात में औरु एक फूल रे सेत।
अरे राधे रे कै पूछै रे कृष्ण ते और, कृष्ण जुबाबु न रे देत॥
अरे गाँड़र रे कैसा है झील में औरु बरु पोखरि की रे पारि।
अरे बेटी रे कै सोहै रे सासुरे और मोरु सरस की डारि।
अरे कारी रे सो लैदै मैया कामरी औरु धौरी लैदै रे गाइ॥
अरे बनशी रे सो लैदै मैया बाजनी ज्याते चौमासौ कटि रे जाइ।
अरे ऊँचौरे कै खेरौ रे दमदमों औरु बरकति आमें के गाइ।
अरे टूटति रे कै आमें रे सेली झूमिका औरु बीनत आमें रे ग्वार
अरे गोधन रे कै माँडूँ रे तू बड़ौ औरु तोते बड़ौ न रे कोय।
अरे तूतौ रे पुजवायौ श्री कृष्ण नें तोय कौनुन जानत रे होय॥
अरे ऊँचौ रे खेरौ रे दमदमों और फौंद फंदारी रे घास।
कै यामें खामें रन के घोड़िला औरु कै भोजा की रे गाय
अरे कैसी रे कहीऍ गूजरु भोजिला और कैसी बाकी रे गाइ॥

अरे भूरी रे कै भूरी गोछन भोजिला और हिरन डराड़ी रे गाइ।
अरे कै लखरे कहीं यें याके जेंगरा औरु कै लख याकी रे गाय
अरे नौलख रे कहियें याके जेंगरा औरु दस लख सुरई रे गाय
अरे कहाँ तो रे कै सोबै भौजिला औरु कहाँ तौ बैठै रे गाय॥
अरे पोरी में कै सोबे गूजरु भोजिला और घेरि मँगाऊँ रे गाइ
अरे नौलख रे कै बेचूँ याके जेंगरा और दस लख सुरई के गाइ।
अरे बेच्यैरे बेचि कें ढेरी करूँ औरु भोजा यै लाऊँ रे छुड़ाय
अरे विंदा के कै वन के रे बिरिछि को औरु भरमनु जानें कोइ॥
अरे डारे रे डार औरु पात पै रे प्यारे राधेई राधे होय।
अरे गोधन रे कै आयौ गंगापार तें औरु सोरों रे घाट।
अरे एक रे दिना तौ काढ़ँ गैल में और फिरि गूजर के रे द्वार
अरे बनसी रे बजाई रे साँभरे औरु गिरवर पहली रे ओर
अरे महलन रे कै मोही रानी राधिका और जङ्गल मोहे रे मोर
अरे दूधै रे बिलोवै रानी राधिका और कान्हा माँखनु रे खाइ
अरे औरु यै रे खबावै मोरा बाँदरा और वंशीवट पै रे जाइ॥
अरे बिरजै रे चौरासी कोस में औरु चारि गाम निज रे धाम।
अरे विंदारे कै वन और मधुपुरी और बरसानों नन्द रे गाम
अरे वे तौरे तीन्यों मोहे नहीं औरु रहे कोंन से रे लोक॥

होरी, रसिया, ज्ञान और रसिकता के गीतों का ब्रज में अखंड भण्डार है। ये सभी गीत लोक के चेतन-मानस की कृति हैं, अतः इनमें लोकवार्त्ता का सहज रूप प्राप्त नहीं होता। बहुत से गीतों में साहित्य में प्रसिद्ध कवियों का भी प्रभाव दिखायी देता है।

उ—प्रबन्ध-गीत

गीतों का अध्ययन समाप्त करने से पूर्व हम यहाँ प्रबन्ध-गीतों की चर्चा कर लेना आवश्यक समझते हैं। ये गीत किसी न किसी कहानी को लेकर चलते हैं। मूलतः ये कहानियाँ ही हैं, पर गेय हैं, अतः गीत का आनंद इनमें भर जाता है, जिससे कहानी और भी रोचक हो जाती है।

प्रत्येक क्षेत्र और अवसर के गीतों में छोटी बड़ी कथा कहीं न कहीं गर्भित मिल ही जाती है। यह कथा कभी-कभी मात्र एक बिन्दु की भाँति भी हो सकती है। जन्ति के गीतों में वह कहीं अत्यन्त लघु वस्तु है—लड़का हुआ नन्द हठ कर रही है नेग के लिए, भाभी कहती

है, मायके की वस्तु नहीं दूंगी यहाँ की बनी लेलो। रूठती नन्द को भाई के कहने से भाभी प्रसन्न कर लेती है। यही छोटा गीत कहीं-कहीं बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है। जगमोहन लुगरा[1] इसी प्रकार का और मूलतः इसी कथानक की तीलियों से बना है। जन्ति के गीतों में यही वस्तु मुख्य है। एक वस्तु जो 'कौमरी' में मिलती है, विशेषतः भाभी की क्षुद्र मनोवृत्ति प्रकट करती है। नन्द के यहाँ वह 'कौमर' नहीं भेजना चाहती है। वहाँ पहुँच जाने पर उन्हें लौटा देने का सन्देश भेज देती है। बहिन सोने की कौमरी लौटा देने को तय्यार है। पर जाति-विज्ञान की दृष्टि से वह प्रबन्ध-गीत रोचक है जिसमें वृद्ध के स्पर्श से ननद के गर्भ रहता है और उसके बछड़ा होता है। भाभी ननद के इस रहस्य को यत्नपूर्वक छिपाती है, अवसर देख कर ही अपने पति को बता कर प्रशंसा पाती है।

विवाह के गीतों में तीन प्रबन्ध गीत विशेष आकर्षक हैं। एक भात न्यौतने का है, जिसमें बहिन भात न्यौतने भाई के यहाँ जाती है। उसका सगा भाई मर चुका है, चचा-ताऊ के पुत्र उसका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते। अन्ततः वह मरघट में जाकर भाई के प्रेत को निमन्त्रण दे आती है। प्रेत आता है, भात चढ़ाता है, अन्त में कोई उसी वृक्ष की पटली डाल देता है, जिस पर वह प्रेत रहता था और जिसकी उसने वर्जना करदी थी। उस पटली के आते ही बहिन से बिना मिले, ठीक उस क्षण पर जब बहिन मिलने के लिए हाथ पसारती है, वह पटली में समा कर लुप्त हो जाता है। इस भात की तुलना 'नरसी के भात' से हो सकती है। 'नरसी' में स्वयं भगवान भात देने आते हैं। कुछ कहानियों में, विशेषतः व्रत की कहानियों में प्रेत की भाँति स्याँप (सर्प) उपकार के कारण एक स्त्री से बहनापा जोड़ लेता है, और उसका भाई की भाँति सम्मान करता है।[2]

भाई का एक बहिन, मौसी की लड़की पर मुग्ध होकर उसीसे विवाह करने का हठ विवाह के एक अन्य गीत में मिलता है। लड़के को बहुत समझाया जाता है, कोढ़ी होने का भय दिखाया जाता है, पर वह हठ पर अड़ा हुआ है। अन्त में लड़की, बिर्जो उसका नाम है, उसके साथ गंगा नहाने को जाती है। गंगा में धीरे-धीरे आगे बढ़ती

[1] देखो इसी पुस्तक का तृतीय अध्याय पृष्ठ १३१।

[2] देखो 'ब्रज की लोक कहानियाँ'—'भइया दोज' की कहानी।

जाती है और लड़के से कहती जाती है, 'अब भी समझ'—अन्त में गंगा में समा जाती है।

प्रातःकाल के गीत में 'दाँतुन' का गीत अद्भुत है। माँ यशोदा ने रुक्मिणी से दाँतुन माँगी, रुक्मिणी ने माँ की अवज्ञा की। माँ की अवज्ञा से असन्तुष्ट होकर कृष्ण-रुक्मिणी को उसके पीहर (पितृ-गृह) पहुँचा आये। अब तो घर की श्री ही फीकी पड़ गई। यशोदा के कहने पर कृष्ण गये और फिर रुक्मिणी को ले आये। ये तीनों तो संस्कार के अनुष्ठान के अङ्गवत् हैं। खेल के अनेक गीतों में 'पूरनमल' भी गा लिया जाता है, पूरनमल पूर्ण प्रबन्ध काव्य है। इस लोक-गीत की कथा-वस्तु में सौतेली माँ के प्रेम-प्रपंच से अपने पुत्रत्व की रक्षा करने का आग्रह प्रधान है। यह कथा-वस्तु बहुत साधारण कथा-वस्तु है। अशोक पुत्र 'कुनाल' और 'पूरनमल' का एक-सा भाग्य है। 'पूरनमल' के लोक प्रचलित कथानक से इस लोक-गीत का कथानक भिन्न है।[1] इसमें तोते ने भेद खोल दिया है, पूरनमल फाँसी पर चढ़ने से पूर्व ही बचा लिये गये हैं। इस लोक-गीत में साम्प्रदायिक छाप नहीं लग पयी। कुनाल और पूरनमल की कथा-वस्तु में यह साम्य है:—

१—सौतेली माँ का सौतेले पुत्र पर मोहित होना।

२—पुत्र का अपने कर्तव्य (धर्म) से न डिगना।

३—सौतेली माँ का क्रोध में उस पुत्र के प्रति प्रतिहिंसा का आचरण।

४—पिता पर भेद खुलना।

इस भेद खुलने की विधि में ही साम्प्रदायिक छाप इन कहानियों में लगायी गई है। कुनाल में भेद उसकी मधुर वाणी ने खोला है। भगवान बुद्ध की जैसी क्षमा के आचरण से कुनाल के नेत्र लौटे हैं, पूरनमल को गुरु गोरखनाथ ने कूप में से निकाला है। इससे यह प्रकट होता है कि यह कथानक अत्यन्त प्राचीन है। लोक-गीत ने उस कथानक की उस अवस्था को सुरक्षित रखा है जिसमें यह अन्तिम धार्मिक छाप नहीं लग पायी। प्रेम-गाथाओं के 'ज्ञानी-शुक' का रूप इसमें है, पर यह 'शुक' भेद खोलने का कार्य करता है, प्रेम का दूतत्व नहीं करता।

[1] देखो यही पुस्तक तृतीय अध्याय; विवाह के गीत; पृ० २०१।

कृष्ण-चरित्र के पद्य भी लोक-गीतों में मिलते हैं। एक गीत में कृष्ण गूजरी से मिलने के लिए उसकी बहिन बनकर स्त्री भेष धारण करके गये हैं। कृष्ण-चरित्र में इस प्रकार के छद्मों का समावेश लोक-वार्ता के प्रभाव के ही कारण है। यह लोक-कल्पना ही है जिसने कृष्ण को कभी 'लिलिहार' बना दिया है ; जैसे इस रसिया में:—

'बनि गये नन्दलाल लिलिहार कै लीला गुदवाइ लेउ प्यारी'

कभी 'मनिहार' बना दिया है, और भी न जाने कैसे कैसे बाने उन्हें दिये हैं।

ब्रज और त्यौहार के गीतों में प्रबन्ध-गीतों का प्राधान्य माना जा सकता है, विशेषतः देवी के गीतों में। इनमें एक 'सुरही' का गीत है। 'सुरभि' गाय का पौराणिक नाम है। सिंह सुरभि को खाना चाहता है, सुरभि कहती है बच्चों को दूध पिला आऊँ, वचनबद्ध होकर सुरभि बच्चों को दूध पिलाती है। बच्चे भी उसी के साथ आते हैं। वे सिंह से कहते हैं, सिंह मामा पहले हमें खाना। सिंह मामा होकर बहिन-भाँजों को कैसे खाए ? सिंहनी भी इस नाते का आदर करती है। यह गीत देवी के गीतों में गाया जाता है, एक आश्चर्य की बात है। इसका भाव बौद्ध-क्षमा से विशेष मिलता जुलता है। एक बौद्ध-जातक का भाव ही नहीं संविधान भी इससे बहुत मिलता-जुलता है। वह जातक है उस शिकारी से सम्बन्धित जो क्रम से तीन हरिण और हरिणियों को मारने के लिए प्रस्तुत हुआ, पर जिन्हें मार नहीं सका। एक ने कहा मैं बालकों को दूध पिला आऊँ, दूसरी ने कहा, पति से मिल आऊँ, तीसरे ने कहा पत्नियों से मिल आऊँ। तीनों आ उपस्थित हुए, जिसका प्रभाव उस शिकारी पर यह पड़ा कि उसने शिकार करना छोड़ दिया। सुरभि और सिंह का उल्लेख पौराणिक राजा दिलीप की कथा में भी आता है। कहा नहीं जा सकता कि यह गीत देवी के वाहन 'सिंह' का स्मरण करने के लिए देवी के गीतों में सम्मिलित किया गया है, अथवा 'सुरभि' के मातृ-भाव के कारण। देवी को माता कहा ही जाता है। यह मातृत्वशक्ति का ही प्रतीक है। यों देवी के भयानक से भयानक रूप से भी यह बौद्ध-क्षमा का भाव, जिस रूप में इस कथा में आया है, अनमिल नहीं है। देवी का भयानक रूप तो असुरों के लिए है, शरण में और परिकर में सम्मिलित हो जाने वाले के लिए देवी की उदारता और कृपा की कमी नहीं रहती।

किन्तु देवी के गीतों में और भी कितने ही कथा-गीत हैं। वे भी महत्वपूर्ण हैं। इन गीतों में एक तो है प्रसिद्ध 'जगदेव का पँवारा'। देवी के गीतों में पँवारों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक ही पँवारा नहीं, कई पँवारे हैं। पँवारे सभी 'अवदान' के रूप हैं। किसी न किसी वीर का चरित्र इनमें रहता है। यों भले ही इनकी कथा-वस्तु पूर्णतः ऐतिहासिक न हो पर, कथा-वस्तु का विन्दु अवश्य ऐतिहासिक होता है। 'पँवारा' के सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह शब्द कहाँ से निकला। 'पँवारा' व्रज के मुहाविरे में तो झंझट, झगड़े, युद्ध का पर्याय हो गया है, विशेषकर ऐसा झंझट जो समाप्त ही न होने पाये 'इस पँवाड़े से बचो'; 'यह कहाँ का पँवाड़ा फैला दिया है?' ऐसा बहुधा कहा जाता है। जो पँवारे व्रज में हमें मिले हैं उनमें उसका प्रयोग युद्ध के लिए हुआ है। यथा—'वास्याइ जी रोसमंत है गए किए जानें खूब पमारे।' तथा 'अमरसिंह ने कियौ पमारौ कहौ तौ गाइ सुनाऊँ' आदि। बुन्देलखण्डन में पँवारे का अर्थ लम्बी कथा का भी होता है। मराठी में यह शब्द 'वीरगाथा' के लिए प्रयुक्त होता है। ये सभी अर्थ 'पँमारे' के वाच्यार्थ अथवा मूल अर्थ नहीं। ये दूसरे अर्थ हैं, जो प्रयोग के कारण इसे मिले हैं। यह बात किसी सीमा तक उचित प्रतीत होती है कि इन गीतों में पहले 'पँवार-परमार' क्षत्रियों की वीर-गाथायें गायी जाती होंगी[१]। ये लम्बी होती होंगी और लड़ाई झगड़ों से परिपूर्ण होती होंगी। फलतः परमारों के गीत होने के कारण ये 'पँवारे' कहलाये। 'आल्हा' के नाम से 'आल्हा', 'ढोला' के वर्णन के कारण 'ढोला' दो अत्यन्त प्रसिद्ध व्यापक गीत इसी प्रकार की नामकरण की प्रणाली पर हैं।

ये जगदेव रासमाला[२] के अनुसार मालवा के राजा उदयादित्य (१०५९-८७ ई०) के पुत्र थे। ये धारानगरी से किन्हीं घरेलू षड्यन्त्रों के कारण बाहर चले गये थे; और जैसा कहा जाता है, ये गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह के यहाँ नौकर हो गये। १८ वर्ष नौकरी करके ये घर लौटे। तब इन्होंने अनेकों पराक्रम किये।

व्रज में जो 'जगदेव का पँवारा' हमें मिला है उसमें यह कहा है—

[१] देखिये लोकवार्ता, जून १९४० के अङ्क में 'जगदेव कौ पँवारौ' पर सम्पादकीय भूमिका।

[२] गुजरात की ऐतिहासिकता कथाओं का संग्रह-ग्रन्थ।

रनधीर ने यज्ञ रचा। भाई-बन्धुओं ने कहा कि जगदेव भाई है, उसे भी बुला लो। जगदेव और उसकी माँ पाटमदे धारा पहुँची। वहाँ 'रनधीर' की माँ 'दीवलदे' ने 'पाटमदे' का उचित सम्मान नहीं किया। माता को दुखी देख जगदेव प्रतिकार के लिए पूर्ण तय्यारी करके रनधीर के दरबार में पहुँचा। वहाँ उससे कहा गया, आपस में पीछे समझना, पहले अपने पिता को छुड़ाकर लाओ। पिता अनबोला रानी के यहाँ बन्दी थे। जगदेव अपनी स्त्री फूलनदे को माँ को सौंप कर चल दिया। आगे बन में पहुँचकर कितने मार्ग फटे, वहाँ देवी ने आकर ठीक मार्ग दिखाया। यह पँवारा अधूरा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर इतने ही आरम्भ से यह विदित होता है कि इसमें और उस पँवारे में जो लोकवार्ता में दिया गया है, जो बुन्देलखण्डी है, बहुत अन्तर है। बुन्देलखण्ड के पँवारे में तो जगदेव ने अपना सिर माँगने पर देवी को चढ़ा दिया है। देवी उसे लौटाने गयी है, पर रानी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया है कि दी हुई वस्तु वापिस नहीं ली जाती। अन्ततः देवी को धड़ में से नया सिर ही पैदा करके जगदेव को जीवित करना पड़ा है। उनके पँवारे में इतिहास और लोकवार्ता का पुट सन्तुलित दीखता है बुन्देलखण्डी में अलौकिकता है, मोरध्वज राजा की प्रसिद्ध कहानी से बुन्देलखण्डी पँवारा टक्कर लेता है। ब्रज के गीत में देवी जगगदेव की सहानता करने को सदा सन्नद्ध है। किन्तु ब्रज में भी 'जगदेव के शीश चढ़ाने की कहानी' अप्रसिद्ध नहीं है। 'जयमल फत्तेसिंह के पँवारे' में आरम्भ की पंक्तियों में अन्य भक्तों के साथ जगदेव का फी उल्लेख है। इस पँवारे में ध्यान देने योग्य पंक्तियाँ ये हैं—

को को अगड़ी हो गया, अगड़ चलाया
अगड़ी राजा जसैमंत, जसमत का जाया
विद्या भोज पवार की जानें जग परचाया

इस पँवारे में कई अन्य पँवारों का उल्ले मिलता है। 'जसमंत', संभवतः 'यशवंत' का अपभ्रंश है, कौन है, यह अभी तक विदित नहीं। राजा भोज जो मालवे के प्रसिद्ध राजा हैं हीं। 'होमपाल' के पँमारे का भी पता नहीं चला है। इसी पँमारे में जिस प्रकार होमपाल का उल्लेख हुआ है उससे यह स्पष्ट है कि होमपाल ने अपने शरीर को देवी के यज्ञ में आहुत कर दिया था। राजा पूरना, पुनः

प्रसिद्ध पूरनमल भक्त है, जिसका उल्लेख इसी अध्याय में वैवाहिक गीतों में हो चुका है। इसकी प्रसिद्ध कहानी पर ब्रज में अनेकों स्वाँगों तथा भगतों का प्रचार है।

इस पँमारे में जयमल-भत्तेसिंह को अमरसिंह का भाई बताया गया है। इसका भी आरम्भ 'अमरसिंह' के प्रसिद्ध कथानक की भाँति है। फत्तेसिंह बादशाह के दरबार में नौकर है। उसका हाल ही विवाह होकर आया है। जैसे-तैसे फत्तेसिंह दरबार में पहुँचता है। वहाँ देर हो जाने के उपलक्ष्य में बादशाह कहता है या तो लड़ाई लो या यह चार चीजें दो। वे चार चीजें ये हैं—संदिला बेटी, दर्याई घोड़ा, मोहन चीता तथा दलपेलन हाथी। फत्तेसिंह ये वस्तु कैसे दे। ये हैं कहाँ? अतः लड़ाई मोल लेनी पड़ी। बादशाह पर जब बहुत मार पड़ी और राठौरों का पक्ष भारी हुआ तो बादशाह ने बतलाया कि उसे यह भेद 'सुरजावती' ने दिया। 'सुरजावती' जैमल-फत्तेसिंह की बहिन लगती थी। आखिर बादशाह से भयानक लड़ाई हुई। 'मअलक' के बछेड़े, दर्याई घोड़े ने भी युद्ध में खूब भाग लिया। जिस प्रकार इस पँवारे में कथा आई है, उससे प्रतीत होता है कि घोड़ा फत्तेसिंह का था, बादशाह ने मोल लिया था। पहले वह बादशाह की ओर से लड़ा, पुनः जब उसे यह बतलाया गया कि बादशाह अनाचार करने के लिए ही चढ़ आया है तो घोड़ा उलटा पड़ गया। बादशाह इसी धोखे से परेशान हो गया। फिर भी यह भाग अस्पष्ट है।

इसमें बादशाह की दर्पोक्ति है कि अखल 'किरारों' और 'ढाकरों' को मैंने मार डाला है; ये संवरवारे (तात्पर्य साँभर वालों से है) किस खेत की मूली हैं। अन्य राजपूत जातियों का भी इसमें उल्लेख है—वे हैं हाड़ा, राठौर, सकरवार, कछवाहे, लड़कड़, झिंगार। यह पमार राठौरों से विशेष सबन्धित हैं।

लोकवार्ता के तत्वों में दर्याई घोड़े का उल्लेख प्रधान है। माता के दूध की शक्ति का बड़ा अद्भुत वर्णन है। माता ने कुचों से दूध की धार छोड़ी तो पत्थर की शिला चकनाचूर हो गयी। कटोरे में दूध रख दिया जाय, यदि वह फट जाय तो जानना कि बेटा मर गया। यह विश्वास भी लोकवार्ताओं की परम्परा में विशेष स्थान रखता है। इसकी एक प्राचीन लम्बी परम्परा है। अनेकों गीतों और

कहानियों में जो देश-विदेश में प्रचलित हैं, इस प्रकार की उक्ति का कोई न कोई रूप मिलता है। कहीं पर फूल रख दिये जाते हैं, उनके मुरझाने पर किसी विपत्ति की सूचना मिलती है। कहीं पानी में खून हो जाने से यह सूचना दी गयी है।

यह पमारा भी हमें इस आश्चर्य में डाल देता है कि आखिर यह क्यों देवी के भजनों में सम्मिलित किया गया है। जगदेव का जिस प्रकार देवी से सम्बन्ध है, उस प्रकार की कोई बात हमें गीत में नहीं मिलती। इसमें तो देवी की सहायता के लिए भी नहीं बुलाया गया है। वस्तुतः यह गीत शक्ति-उपासकों की परम्परा प्रकट करता है। सम्भवतः इसीलिए यह देवी के गीतों में सम्मिलित है। इसी 'पमारे' की भाँति 'अमरसिंह' का साका है। 'अमरसिंह' के साके में अमरसिंह का प्रसिद्ध वृत्तान्त सहज ढङ्ग से दिया गया है।

सरस्वती में पहले शारदा माता का स्मरण है, फिर गुरु उस्ताद की मानता है, पंचपीर और सभी औलियों को माथा नवाया गया है, खेरे की चामुण्डा का भी 'सुमिरन' है। हरि को बीड़ा-बताशे और रेवड़ियाँ चढ़ाई गयी हैं।

फिर गाथाकार ने शुरू किया है:

'अमरसिंह ने कियौ पमारौ कहौ तौ गाइ सुनाऊँ'

और वह आगे कहता है—

'कहाँ ते उत्पन्नि भई, कहाँ ते भई लड़ाई,
दीघ सहर उत्पन्नि भइ, अगरे ते भई लड़ाई।'

अमरसिंह के साके का 'दीघ' से कोई सम्बन्ध नहीं। फिर लोकवार्ता का कवि अपनी जानकारी की सीमाओं में ही वस्तु को ढाल देता है, इसी कारण 'दीघ' शहर का उल्लेख इसमें हुआ है। 'आगरा' तो मुख्य घटनास्थल था ही।

अब कवि ने एक कचहरी का वर्णन किया है। 'कंचन' की कचहरी है, 'बिसकरमा' ने पद्म स्थान-स्थान पर लगा दिये हैं, पानों से बंगला छाया हुआ है:

'जल में खम्भु, खम्भु में जलहल, जामें कमलु बिराजै
जगमग-जोति जरै ठाकुर की सिकिल घिढ़ाघिढ़ बाजै'

यह 'ठाकुर' और कोई नहीं ब्रह्मा है। ब्रह्मा की कचहरी का

ही उल्लेख है, जो अद्भुत रस से संचरित हो रहा है। ये दो पंक्तियाँ और द्रष्टव्य हैं:

'काऊनें लादी लौंग सुपारी, काऊनें लादी राई
कबीर लादी रामनाम बैकुण्ठ की गादी पाई'

अब गाथा आरम्भ होती है। बादशाह तख्त पर आकर बैठ गया। अमरसिंह नहीं दीखते। चुगलखोर ने कहा—अमरसिंह तुम्हारे राव नहीं, वह कभी मुजरा करने आता ही नहीं, मुफ्त में बाईस परगनों का सरदार बना बैठा है। बादशाह क्रोधित हुआ। तुरन्त एक पर एक अहदी बुलाने के लिए भेजे गये। अमरसिंह को समाचार मिला। उसे भोजन भी अच्छा नहीं लगा—

पहलौ ग्रास दियौ धरती कूँ, दूजौ गऊ चढ़ायौ
तीजौ ग्रास दियौ कुत्ते कूँ, चौथौ राम चढ़ायौ
पांच ग्रास कीये राजा ने थारु परे सरकायौ

हीरा पांडे ने बड़े मन से रसोई बनायी थी, पर अमरसिंह को तो आगरे की चिन्ता थी। किसुना नाऊ को साथ लेकर अमरसिंह चल दिया। द्वारपाल ने बात नहीं सुनी तो उसे धक्का देकर दरबार में गया। बादशाह को कोर्निस नहीं की। सलावतखाँ ने कहा—दण्ड अवश्य मिले। सात लाख जुरमाना किया गया। सलावतखाँ से अमरसिंह क्रुद्ध हो गया। एक हाथ में उसका धड़ पृथक कर दिया। बादशाह महलों को उठ गया। अमरसिंह ने वहाँ बहुत पराक्रम दिखाया, अन्त में खेत रहा। अमरसिंह का यह 'साका' टॉड के 'उमरावसिंह' के वृत्तान्त से मिलता-जुलता है। कोई भी लोकगीत किसी भी वृत्तान्त से इतना नहीं मिल सकता। इस पर 'टॉड' का प्रभाव है। यह आधुनिक युग की रचना लगती है। फिर भी ब्रज में अमरसिंह का वृत्त बहुत प्रचलित है। यह चरित्र लोकप्रिय भी बहुत है। इस पर स्वाँग, भगत, जिकड़ी के भजन सभी बनाये गये हैं। ये पमारे अधिकांश कोरियों और चमारों में प्रचलित हैं। 'जयमल-फत्ते' का पमारा जोगियों से सुना गया है। जोगियों से एक और पमारा या साका सुनने को मिलता है—उसको 'मीराशाह की लड़ाई' का नाम दिया जाता है। यह मुसलमान जोगियों में विशेषतः प्रचलित है। इसमें मीराशाह की तारागढ़ से लड़ाई का वर्णन है। इस गाथा में लड़ाई का कारण बड़ा अद्भुत दिया।

औलिया मीराशाह बारह वर्ष के हुए; सो रहे थे; स्वप्न में देखा—

'तारागढ़ की सकति जौ आई, लै गई ऐ ए चमेली कौ हारु जी
हिन्दू चढ़ामें छेरी बोकरा, जापै तुरक चमेली कौ फूल जी
भाई रे भोर भये मीरा जागियो, जाके नांऐं गरे में हारु जी
मेरी अबलक डार चमेलिया, मेरी चमेली को लै जाय जी ?
भाई आजु चमेली लै गया, भाई कलि लै जाय तखत उठाइजी
लै जाइ तखत उठाइ कें सबु मुसलमान की जाय—

यह गीत निर्विवाद साम्प्रदायिक गौरव की प्रतिष्ठा के भाव से रचा गया है। तारागढ़ अजमेर का ही नाम है। अजमेर पर मुसलमान फकीरों ने कैसे आधिपत्य जमाया इसका रोचक, चमत्कारपूर्ण वर्णन इस गीत में है। मीराशाह का कार्य साधने के लिए बीड़ा उठाया है 'रोसना फकीर' ने। उसके पास जादू का झोला है। इसमें स्थान-स्थान पर मुस्लिम धर्म के प्रति आदर प्रकट किया गया है। यह गीत भी बड़ा है। तारागढ़ शक्ति-पूजा का बड़ा स्थान था, वहाँ देवी की जगती ज्योति थी। वहाँ पर पीर-औलिया सहज ही अपना आधिपत्य नहीं जमा सकते थे। तारागढ़ में हिन्दुओं का बहुत जोर था इसका संकेत स्थान-स्थान पर इसमें हुआ है—

'रौसन सैल समजिकै कीजियौ, ग्वाँ हिन्द बड़ौ परगासजी
तोइ कोइ डारै मारिकै ....

यह रौसन जब तारागढ़ पहुँचा तो केवल एक तेली ही कुरानपाठी वहाँ मिला। गूजरियाँ वहाँ दही बेचती थीं। दही के लिए ही रौसन फकीर और गूजरियों में झगड़ा हो गया। यही बारूद में आग लगने की दुर्घटना के समान था। लोकगीत के कवि ने स्वयं कहा है:

होनहार ग्वाँ होत ऐ देखै सकल बजार
आग लगी बारूद में ग्वाँ कौन बुझावन हार
मेरे औलिया खूबु तौ सैदानी जायौ खूबु
आज चलैगी तारागढ़ पै तरवारि

इस प्रकार के पँमारे व्रज में मिलते हैं।

किन्तु देवी के भजनों में प्रबन्धात्मकता लिये हुए केवल पँमारे ही नहीं होते, कुछ और भी ऐसे ही गीत हैं। 'ज्वालाजी का जुझ' पौराणिक कथानक पर है। दानवों का, असुरों का बड़ा जोर था—

बड़े बड़े जोधा चढ़े, इन्द्र चढ़े घनघोरि
बरसैं साल झरैं मरदाने असुर जमाइ रहे जोर
अरी मेरी आदि भमानी।

किसी का वश नहीं चला, तब कृष्ण ने बीड़ा डाला। बीड़ा कौन खाये? बड़ी विकलता थी! तब—

अलख सरीरा औतरे और चकत्ती माय
तन में लुक अगिनि की भभकै सैंसैं कला समाय
अरी मेरी आदि भमानी।

'उजाला' का कैसा यथार्थ चित्र इस लोक-कवि ने दे दिया है। उजाला का युद्ध, वीर और भयानक के साथ, अद्भुत का उदाहरण है। बड़ी विशद कथा है, जो पुराण के ख्यात वृत्त के आधार पर चली है। 'गंगाजी का ब्याह' आख्यानक गीत है। जम्बू-शृगाल गंगाजी पर मोहित हुआ, और विवाह करने के लिए गंगाजी से आग्रह करने लगा। गंगा और स्यार के संवाद बड़े मनोरम हैं।

गंगा जम्बू से कहती है:—

जंबू भारी बन्यौ मलूक, काम अच्छे करि आवै
गाँम सामुइं परै कालु जब तेरौ आवै
बैठै चूतर टेकि कें तेरे कुल कौ जिही सुभाउ
करि ऊपर कूँ थूथरी देइ ऊकरी आय।

जम्बू उत्तर देता है:—

गंगा जा नंगर में जाउँ नगर की दुनियाँ मोहै
पानी पीमन जाउँ देखि पनिहारी मोहै
लूलौ नाऊँ लँगड़ौ नाऊँ बने हात और पाँइ
हमसे कुमरु छोड़िकें गंगे औरु बरौगी काइ?

यह भी प्रसिद्ध पौराणिक कथानक पर बना है। कोई विशेष उल्लेखनीय बात इसमें नहीं मिलती। 'सीता ब्याहुलौ' भी कम प्रचलित भजन नहीं। इसमें कथा-वस्तु प्रसिद्ध रामचरित से भिन्न है, किन्तु लोक प्रचलित वार्ता के अनुकूल है। धनुष यहाँ शिव का नहीं रहा, परशुराम का बाण हो गया है। सीता ने उसे लीपते समय सहज ही उठा लिया। स्वयंवर में यही बाण परीक्षा का साधन बनाया गया है। अधिक भाग रावण की चिन्ता ने ले लिया है। वह उठा भी सकेगा या नहीं उस बाण को! मन्दोदरी ने सलाह दी है कि कुम्भकर्ण

को भेज दो। यह बाण साधारण नहीं, उसकी जड़ें तो पाताल तक पुर रही हैं। राम ही उसे उठा सके। फिर भी इस भजन में ख्यात-वृत्त से बहुत मामूली अन्तर है। यों इसमें भी कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती।

ये प्रबन्ध-गीत यद्यपि वस्तु और स्वभाव में भिन्न हैं, पर एक विशेष सामान्यता इनमें अवश्य है, ये सभी असाधारण पुरुषों से सम्बन्धित हैं, उनके असाधारण कृत्यों का भी इनमें उल्लेख है। यद्यपि इनमें तीन प्रकार के पात्रों का समावेश हुआ है, पर प्रकार भिन्नता होते हुए भी असाधारण व्यक्तित्व अथवा कर्तृत्व के कारण वे एक सूत्र में निबद्ध किये जा सकते हैं। सन्त पात्रों में रोसना, मीराशाह, जगदेव आदि हैं, दिव्य पात्रों में ज्वाला, गंगा, दिव्यादिव्य में सीता हैं। साधारण पात्रों में जयमल-फत्ता, अमरसिंह आदि हैं। इन गीतों में से अधिकांश का विषय युद्ध-वीरता है। गंगा-विवाह और सीता ब्याहुलौ विषय की दृष्टि से अन्य गीतों से भिन्न हैं।

उधर सामन के गीतों में जो प्रबन्ध-गीत मिलते हैं, उनमें प्रेम और रसिकता तथा प्रेम के सत के चित्र विशेष हैं। प्रेम ही जैसे इन गीतों का प्राण है।

इन गीतों की आवश्यक चर्चा इसी अध्याय में ऊपर हो चुकी है।[1] पर 'सरमन' के गीत का उल्लेख तो यहाँ होना ही चाहिए।

सरमन का गीत श्रवणकुमार के चरित्र से सम्बन्ध रखता है। यह गीत भीख माँगने वाले एक विशेष वर्ग के लोग गाते हैं। ये वर्ष में एक बार ही माँगने आते हैं। इस प्रबन्ध-गीत की तर्ज का मुख्याधार वही है जो चट्ट के गीत का होता है। इसमें श्रवणकुमार के प्रसिद्ध चरित्र का उल्लेख है। श्रवणकुमार की स्त्री का चरित्र इसमें सदोष चित्रित किया गया है। यह दुर्भाँति करने वाली स्त्री थी। एक ही पात्र में दो प्रकार के भोजन तय्यार करती थी। एक पति के लिए दूसरा सास-ससुर के लिए। तब श्रवणकुमार दोनों—माता तथा पिता को काँवरि में रख कर तीर्थाटन कराने ले गया। फिर दशरथ के बाण से उसकी मृत्यु हुई, दशरथ को अन्धी-अन्धा ने शाप दे दिया।

किन्तु इन सब गीतों से भी कहीं महान, कहीं, जटिल, कहीं रोचक 'ढोला' नामका लोक महागीत अथवा महाकाव्य है।

---

[1] देखिये यही अध्याय 'सामन के गीत'।

'ढोला' हिन्दी-क्षेत्र का एक प्रसिद्ध लोक महाकाव्य है। 'महाकाव्य' से अभिप्राय यह नहीं है कि यह लिखित है। 'ढोला' अभी तक नहीं लिखा गया, यह ग्रामीणों के कण्ठों पर ही विराज रहा है।[१] अन्य लोक-गीत तो सर्व-साधारण ग्रामीणों में से प्रायः हर एक को याद रहते हैं। किन्तु 'ढोला' का गीत किसी किसी विशेषज्ञ को ही याद रहता है। यह विशेषज्ञ भी प्रत्येक गाँव में नहीं होता, किसी-किसी गाँव में ही होता है।

यह 'ढोला' वर्षा-ऋतु में ही प्रायः सुना जाता है। ढोला साधारणतः 'चिकाड़े' पर गाया जाता है। 'चिकाड़ा' 'सारंगी' की शक्ल का होता है किन्तु बहुत छोटा, लम्बाई में मुश्किल से एक हाथ, एक बालिश्त से भी कम चौड़ा। तीन या चार तार होते हैं। इसका सिर विविध दर्पणों के टुकड़ों से सजा लिया जाता है, जिससे रात में चमकता है। चिकाड़े के साथ के लिए 'ढोलक' और मजीरे होते हैं। एक 'सुरैया' होता है। 'सुरैया' ढोला में बहुत आवश्यक और अनोखा तत्त्व है, जो अन्य लोक-गीतों में इस रूप में नहीं मिलता। आल्हा भी 'ढोला' की भांति गाया जाता है, पर उसमें 'सुरैया' की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'सुरैया' का काम सुर भरना है। ढोला गाने वाला जब पद को समाप्त कर विराम लेता है तो यह सुरैया उसके सुर में सुर मिलाकर आलाप करता रहता है, ढोला-गायक कुछ काल विराम ले लेता है। ढोला 'पैरियों' में विभाजित रहता है। 'पैरी' संभवतः 'प्रहर' से निकला है। एक प्रहर के उपरान्त ढोला गायन बन्द कर दिया जाता है, और एक इंटरवैल या अवकाश दिया जाता है। इस अवकाश में ढोला गाने वाला और सुनने वाले चिलम-तमाखू पीते हैं, अन्य तात्कालिक शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। 'पहरी' डेढ़-दो घण्टे तक चलती रह सकती है। अवकाश में ही ढोला-गायक कोई मनोरञ्जक

[१] इसको लिपिबद्ध करने के कुछ व्यक्तिगत उद्योग हुए हैं, पर वे प्रायः सभी उन लोगों के उद्योग हैं जिन्होंने ढोले के राग को समझ कर अपने शब्दों में उसे ढाल दिया है। ढोला की कुछ पुस्तकें छपी भी हैं। इन छपी पुस्तकों के नाम और लेखक इस प्रकार हैं:— १—प्राचीन अखाड़ा गंगाधर वर्मा फतेपुर ठाकुर गजाधरसिंह भूदेवप्रसाद फतेपुर निवासी कृत 'ढोला राह चिकाड़े में', २—नल चरित्र ढोला चिकाड़े के राह में, छेदालाल करकौली निवासी कृत। कुछ अन्य भी हैं।

लोक-कहानी कहकर सुनाते हैं। २५-३० मिनट के अवकाश के उपरान्त दूसरी पहरी आरम्भ होती है। एक बैठक में अधिक से अधिक तीन पहरियाँ हो सकती हैं।

यों 'ढोला' उत्तरी भारत के मध्य देश में, यू० पी०, राजपूताना में किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है, किन्तु 'ब्रज' में वह जिस रूप में प्रचलित है, वह अनोखा है। राजपूताना में तो ढोला और मारू की कहानी अत्यन्त लोक प्रिय है। इसको साहित्य में भी स्थान मिल गया है। 'ढोला मारूरा दूहा' राजस्थानी का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। श्यामाचरण दुबे के 'छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय' में 'ढोला' दिया गया है। यह ढोला लोक-गाथा है, और ग्रामीणों के कण्ठ से भाषा में उद्धृत कर दिया है। यह लोक गीत है। यह 'ढोला मारूरा दूहा' की भाँति साहित्यिक रचना नहीं है। इस 'लोक गीत' में केवल ढोला के साथ मारू के गौने का वर्णन है; और प्राधान्य है 'रेवा' नाम की जादूगरनी का, जो ढोला पर मोहित थी, उसे अपने जादू से अपने वश में रखती थी और उसके यत्नों को विफल कर देती थी। अन्त में बड़ी कठिनाई से ढोला उससे पिण्ड छुड़ाने में सफल हो सका।

एक और प्रकार का 'ढोला' ब्रज में प्रचलित है। स्त्रियों में, स्त्रियों द्वारा ही गाया जाता है। किसी माँगलिक अवसर पर, जब माँगलिक और खेल के गीत गाये जा चुकते हैं, तब चलते समय घर से बाहर आकर अन्त में ढोला गाया जाता है। ऐसे एक ढोले का उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

ए चंदा तेरी निरमल कहिये चाँदनी रे चंदा,
राजा की रानी पानी नीकरी।
अरे कुअटा ! तेरे ऊँचे नीचे घाट रे, अरे कुअटा,
छोरा को धोवै धोवती।
अरे छोरा, द्वै मारू बेंगन तोरि ला, रे छोरा,
तौजूँ मैं धोऊँ तेरी धोवती।
अरे छोरी, तेरे गोबर सनि रहे हाथ री, अरे छोरी,
दागु लगैगौ मेरी धोवती।
अरे छोरा, मेरे मँहदी रचि रहे हाथ, अरे छोरा,
रँग रँग चूए तेरी धोवती।

अरे छोरी, तू अति की भौतु मलूक री, अरे छोरी,
इतनी बड़ी तौ क्वारी चौं रही ?
अरे छोरा ! मोकूँ अच्छिम ढूँढ़ौ पच्छिम रे, अरे छोरा,
हमारी जोड़ी के हजारी ढोला ना मिले।
अरे छोरा, तू अति कौ बड़ौ मलूक रे, अरे छोरा,
इतनों बड़ौ तौ क्वारौ चौं रहौ ?
अरी लाली ! मेरे मरि गये मय्या बापु री, अरी छोरी,
भइया भरोसे क्वारे हम रहे।
अरी छोरो ! अब चलि दै सोरों घाट री (देस-बिदेस री),
अरी लाली,
माँ चलि कें डारें भाँवरी।
अरे छोरा ! माँ बहुत जुरिंगे लोग रे, अरे छोरा,
मोकूँ आवैगी लाज री।

ऐसे ढोला गीत अनेकों हैं। लोक-गाथा के 'ढोला' और ब्रज के स्त्री-गीत ढोला की व्युत्पत्ति में अन्तर प्रतीत होता है। ढोला व्यक्ति का नाम होते हुए भी 'दूलह' 'दुर्लभ' से बना प्रतीत होता है। दूसरा 'ढोला' 'दोल' से निकला है, जिससे ब्रज की 'डोलना' क्रिया बनी है, यही ढोला चलते चलते गाये जाने वाला 'ढोला' हो गया। किन्तु हमें तो यहाँ लोक-गाथा ढोला पर विचार करना है।

ढोला महाकाव्य का सार-भाग इस प्रकार है—

१—नरवर का राजा प्रथम (पिरथम) था। उसकी रानी मंझा थी। जब वह गर्भवती हुई तो उसे कलंक लगाकर बधिकों को दे दिया गया कि जाओ, इसको मार कर इसकी आखें निकाल लाओ। बधिकों को मंझा पर दया आगयी। उन्होंने हिरण को मार कर उसकी आँखें निकाल लीं, मंझा को जंगल में छोड़ दिया। उस विकट बनी में मंझा को दर्द आरम्भ हुए। हींस पादपों के सुरक्षित कुञ्ज में, 'हींस बिरे' में, नल का जन्म हुआ। जन्म के समय देवी ने और वैमाता ने आकर नल के सब संस्कार किए। दूसरे दिन उस बनी में होकर एक वणिक सपरिवार वाणिज्य करके अपने नगर को लौट रहा था। बच्चे के रोने की आवाज सुनकर वह सतर्क हुआ। उसने हींस बिरे में से मंझा को वस्त्र देकर निकाला। उसे धर्म-बहिन माना और उसके बच्चे को अपना भान्जा।

२—सेठ के दो लड़कों के साथ खेलता खेलता नल बड़ा हुआ। विविध विद्यायें सीखीं, उसके दो धर्म-मामा व्यापार करने जहाज पर चढ़कर चल दिये। जहाज एक अनजाने द्वीप में जाकर लगा। उस समय समुद्र के किनारे भूमासुर राक्षस की लड़की 'सार-फाँसे' लेकर मन बहलाने आयी थी। जहाज को आता देखकर वह घबड़ा कर भागी, उस समय एक गोट उसकी जल्दी में वहीं रह गयी। जहाज किनारे पर लगा, सेठ के लड़कों के हाथ वह गोट लग गई। वाणिज्य करके जब वे लौट आये तो 'गोट' उन्होंने राजा प्रथम को भेंट में दी। उस गोट को देख कर राजा प्रथम ने कहा कि इसके साथ की और गोटें भी लाओ अन्यथा दण्ड मिलेगा। नल ने वह भार लिया और छः माह की मुहलत माँगी। नल ने फिर जहाज लदवाया, जहाज उसी द्वीप पर लगा। नल घूमने अकेला ही निकल गया। एक जगह एक बुढ़िया बैठी थी, वह वैमाता थी। उसने नल को बताया कि मैं जूड़ी लगा रही हूँ, और तेरी जूड़ी मोतिनी से जोड़ दी है। उसी ने बताया कि इसी द्वीप के दाने भौमासुर की वह बेटी है। उस किले के द्वार पर एक बड़ी भारी पटिया है, उसे हटाने पर भीतर का मार्ग मिलेगा। नल ने दुर्गा की सहायता से किले की पटिया सरका दी, वह दो टूक हो गई। नल भीतर गया। मोतिनी और नल दोनों एक दूसरे पर विमोहित हो गये।

भौमासुर दाने के आने पर मोतिनी ने नल को जूड़े में मोम की मक्खी बनाकर रख लिया। रात में दाने के सो जाने पर मोतिनी ने नल के साथ सार-फाँसे खेले, पर दाने की आँख खुल गई। वह ऊपर मोतिनी को देखने चला, मोतिनी को भी पता चल गया। उसने नल को फिर मक्खी बनाकर जूड़े में रख लिया। दाने ने पूछा किसके साथ सार-फाँसे खेल रही थी? मोतिन ने कहा—देवलोक की अप्सरा आयी थी, आपको आता देख उड़ गयी है। दाना चला गया। सुबह ही मोतिनी ने दाने से पूछाः आपके प्राण कहाँ हैं? दाने ने कहा—मैं सहज में नहीं मर सकता, नल नाम का आदमी ही मुझे मार सकता है। सात कोठरियाँ पार करके एक अखैबर का पेड़ है, उस पर एक पिंजड़ा टँगा हुआ है, उसमें एक बगुलिया है। उस बगुलिया में मेरे प्राण हैं। नल ने दाने के जाने पर सात कोठरियाँ पार कीं, उनमें से एक में कट्टर घोड़ा था, एक में वासुकि नाग बन्दी था, एक में घोड़े

का चाबुक था। इसी प्रकार प्रत्येक कोठरी में कुछ न कुछ था। कोठरियाँ पार करके वृक्ष मिला। युक्ति से उसने पिंजड़ा उतार लिया। बगुलिया हाथ में ले ली, तभी दाने का सिर धमका। नल ने बगुलिया मार डाली, दाना मर गया। मोतिनी से नल का विवाह हुआ। बैमाता और दुर्गा ने दोनों का विवाह सम्पन्न कराया।

मोतिनी और चौपड़ को लेकर नल जहाज पर आया। जहाज चल पड़ा। लक्खी सेठ के लड़कों की नीयत बिगड़ गयी। उन्होंने नल को समुद्र में ढकेल दिया, मोतिनी और गोटों को लेकर घर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर प्रचारित किया कि हम मोतिनी और गोटों को लाये हैं, नल तो डूब गया। सेठों ने गोटें और मोतिनी राजा प्रथम को दे दीं। मोतिनी ने कहा कि मैं छः महीने तक किसी से बात नहीं करूँगी।

नल पानी में डूब कर पाताल में गया, वहाँ वासुकी नाग मिला। उस नाग की नल ने भौमासुर दाने के यहाँ से बन्दि छुड़ायी थी, अतः वासुकी ने बड़ा सत्कार किया। उसने उसे एक किनारे पहुँचा दिया। वासुकी ने नल को एक अँगूठी दी जिससे वह अपना रूप परिवर्त्तन कर सकता था। नल वृद्ध बनकर नरवर पहुँचा। वहाँ मोतिनी ने नल-पुराण सुनाने के लिए बड़े बड़े पण्डितों को निमन्त्रण दिलवाया था, पर कोई नल-पुराण न सुना सका। वृद्धरूप में नल ने वहाँ जाकर नल-पुराण सुनाया। नल ने राजा प्रथम से मोतिनी प्राप्त की। नल-पुराण सुन कर ही प्रथम को विदित हुआ कि मंझा जीवित है और पराक्रमी नल उसी का पुत्र है। प्रथम स्वयं जाकर मंझा को ले आया।

अब गङ्गा दशहरा का दिन आया। प्रथम और मंझा स्नान करने गये। वहाँ फूलसिंह पंजाबी ने प्रथम और मंझा को कैद कर लिया। झगड़ा इस बात पर चला कि कौन पहले नहाये। फूलसिंह पंजाबी जादू जानता था। उसने प्रथम की सब सेना को पत्थर बना दिया। नल और गूजर मोतिनी के साथ चले। मोतिनी ने अपने जादू से पिता माता को मुक्त कराया।

नल राजा हो गया। एक दिन हंस ने आकर दुमैंती का वर्णन किया, वह राजा भीम की बेटी थी। दुमैंती के निमन्त्रण को नल अस्वीकार नहीं कर सका और मोतिनी से छिपकर स्वयंबर में गया। उसमें देवगण भी आये। इन्द्र ने नल को दूत बनाकर भेजा। दुमैंती का निश्चल अटल था कि वह नल को वरेगी। सब देव नल का बेश

बनाकर बैठे। दुर्गा ने दुमैंती की सहायता की। दुमैंती ने नल को वरा। जब दुमैंती को लेकर नल नरवर पहुँचा, मोतिनी नल से यह कह कर कि तुमने दूसरा म्हौर सिर पर रख अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण किया है, पछाड़ खाके गिर पड़ी और मर गयी।

इन्द्र आदि देवता तो नल पर प्रसन्न हुए थे, पर देवताओं का अपमान शनिश्चर देवता नहीं सह सके। उन्होंने नल को दुःख देने का बीड़ा उठाया।

एक अवसर देखकर शनिश्चर नल के शरीर में प्रवेश कर गया। नल अपने छोटे भाई पुष्कर से जुए में सर्वस्व हार गया। नल और दुमैंती राज्य छोड़ कर चल दिये। अनेक आपत्तियाँ झेलते झेलते पिंगल जा पहुँचे। पिंगल के रघुनन्दन अथवा गंगू तेली ने दोनों को अपने यहाँ आश्रय दिया। नल के पहुँचने से तेली अत्यन्त समृद्ध हो गया, यहाँ तक कि तेली की और पिंगल के राजा बुध की दाँत-काटी रोटी हो गई। बुध के यहाँ तभी एक दावत का प्रसंग आ गया। उसमें तेली का समस्त कुटुम्ब न्यौता गया। तेली का समस्त कुटुम्ब नल पर बैलों को पानी पिलाने का भार सौंप कर दावत खाने के लिए चले गये। नल बैलों को पानी पिलाने भँवर ताल पर ले गया। वहाँ सिपाहियों ने उसे रोका तो लड़ाई हो गयी। उसने चार हजार सिपाही मार डाले, दो जीवित सिपाहियों की पीठ से पीठ भिड़ा उनके गले में सावर की बेड़ी डाल दी। राजा के पास समाचार पहुँचा। राजा ताल पर तेली के साथ आया। वह साबर बड़े बड़े पहलवानों से भी सीधी नहीं हुई। नल को बुलाया गया। दुर्गा की कृपा से उसने पैर की ठोकर से ही यह सावर तोड़ दी। तब राजा ने नल की सब खता माफ कर दी। तेली की मित्रता बुध से बढ़ी, बुध से सार-पाँसे खेलने लगे। गंगू तेली सब हार गया। बावन कोल्हू, सब धन, बारह हजार घोड़े। नल ने कहा—अब खेलने जाओ, अभी तो एकसौ चार बैल, घोड़ों की साज, फुलबारा महल मौजूद है। नल ने अपने पांसे दिये। कह दिया, पहले तो दुर्गा का स्मरण करना और फिर जब पाँसे फेंको तो मन में ही कह देना—'चल रे नल के पाँसे'—इस विधि से तेली जीतता गया, जब अपना सब जीत लिया तब बुध ने मारवाड़ का परगना रख दिया। तेली उमंग में जोर से कह गया—'चल रे नल के पाँसे।' बुध चौंका, तब उसने नल को बुलवाया, और उससे पाँसे खेले। वहीं दोनों ने अपनी स्त्रियों

के गर्भ दाँव पर चढ़ाये । नल जीता । यह हुआ कि एक के लड़की हो या एक के लड़का तो उन दोनों का सम्बन्ध कर दिया जायगा । नल के ढोला हुआ, बुध के मारू । बुध ने मारू की सगाई ढोला के यहाँ भेज दी । पर यह सम्बन्ध बुध के परिजनों को पसन्द नहीं आया । शादी के लिए कई शर्तें रखी गयीं । पहली यह कि नल जंगली मानुस-खाने घोड़े पर चढ़े । घोड़ा निकाल कर लाया गया । नल ने पहचान लिया कि यह दानेवाला कट्टर घोड़ा है, इस घोड़े को उसने विपत्ति पड़ने पर छोड़ दिया था । घोड़े ने नल को पहचान लिया । नल उस पर सवार हो गया, सारी सभा चकित हो गयी । तब उससे कारे गौंड़े लाने के लिए कहा गया । कारे गौंड़ जिस वन में थे, उसमें दानों का राज्य था । नल कट्टर घोड़े पर चढ़कर, दुर्गा की सहायता से दानों को जीतकर गौंड़े लाया, और दानों के राजा को पकड़ लाया । उसे दरवाजे में चिनवा दिया । दाने ने कहा, जब ढोलकुमार इस दरवाजे से निकलेगा, मैं उस पर गिर पड़ूँगा उस समय तो ढोला का विवाह मारू से हो गया ।

एक दिन दुमैंती ने नरवर की ओर मेह बरसते देखा । उसने नल से कहा : आज तो नरवर की दिशा में बादल हो रहे हैं । शायद हमारे दिन अच्छे आने वाले हैं । चलो, अपने देश चलें । नल और दुमैंती वहाँ से चले उन्होंने पहला पड़ाव करसलपुर किया, दूसरा भीषमपुर । भीषमपुर के राजा ने मालिन के कहने से अपने चार वीर भेज कर ऊपर तम्बू फाड़ कर दुमैंती को उठवा मँगाया । प्रातः यह देखकर नल ने दुर्गा का स्मरण किया । दुर्गा ने कहा, चलो लड़ा जाय । पर कोई और उपाय करलो तो अच्छा है । अब नल ने वासुकी का स्मरण किया । वासुकी के मन्दिर के चौरासी घण्टे बजने लगे । वासुकी ने नागों की सेना भेज दी । नागों की सेना भीषमपुर चल पड़ी घर-घर में भय छा गया । भीषम राजा को नाग ने जाकर डस लिया । जब दुमैंती हाथ में आ गई तो नल के कहने से भीषम का विष सर्प ने खींच लिया ।

यहाँ से आगे चलने पर और भी कष्ट पड़े, अन्त में नल और दुमैंती फिर एक दूसरे से अलग हो गये । दुमैंती फिर एक सेठ के साथ विदर्भ पहुँची, अपने पिता भीम के पास । नल को मार्ग में सर्प ने डस लिया । जिससे उसका शरीर काला पड़ गया, बाँहें छोटी हो गयीं ।

वह कर्कोटक सर्प नल का हितैषी था। उसने नल को एक जोड़ा कपड़ा दिया और कहा, जब आवश्यकता पड़ जाय तब इन वस्त्रों को पहनना, तुम्हारा रूप पूर्ववत् हो जायगा। नल कोशल में ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँचा। वहाँ से उसे दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर की सूचना मिली। वह ऋतुपर्ण के साथ विदर्भ गया। वहाँ दमयन्ती ने नल की परीक्षा करके देख लिया कि यह नल ही है, तब वह उसके पास पहुँची। नल भी अपने पूर्वरूप में आ गया। तब नल ने पुष्कर को फिर जुए के लिए आमंत्रित किया। इस बार पुष्कर सब हार गया। नल ने अपना राज्य सँभाला।

ढोला अब विवाह योग्य अवस्था का हो गया था। उसके गौने का सन्देश पिंगल भेजा गया। नल चला, तब मार्ग में रेवा नाम की जादूगरनी ने उसे बन्दी बना लिया। बड़े कौशल से करिहा (ऊँट) की सहायता से वह बहुत दिनों बाद रेवा के फन्दे से छूट कर भागा। पिंगल पहुँचा। वहाँ यह शर्त रखी गयी कि वह सिंहद्वार से आये। ढोला को उस द्वार का समाचार मारू ने पहुँचवा दिया था। ढोला बड़े असमंजस में था। करिहा ने कहा चलो, मैं सब देख लूँगा। ढोला जब द्वार के पास पहुँचा तो वह डिगमिगाने लगा। पर करिहा इतनी तीव्र गति से उसमें होकर निकला कि ढोला तो निकल गया, द्वार करिहा की पिछली टाँगों पर गिरा। ढोला गौना कर लाया।

इस कथा में नल के एक भतीजे किशुनलाल के विवाह का वर्णन और जोड़ दिया गया है। किशुनलाल के विवाह में ढोला भी गया। मार्ग में चँदना और चुनिया जादूगरनी मिल गयीं। उन्होंने दोनों को चुरा लिया और अपना-अपना वर बनाना चाहा। तब नल ने बड़े कौशल से दुर्गा, मोतिनी और वासुकी आदि की सहायता से उन्हें मुक्त करा के किशुनलाल का विवाह कराया।

यह ढोला ढंग से कराया जाय, और ढोला गानेवाला रुचि से गाये तो एक महीने में भी कठिनाई से समाप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह ढोला अभी तक भी केवल कण्ठ पर विराजमान है। जैसा सभी लोक-गाथाओं के साथ होता है, इसमें एक सूत्र में कितनी ही कहानियाँ पिरोयी हुई हैं, और ये कहानियाँ यथार्थ में जब विश्लेषण करके देखी जायँगी तो अलग अलग वर्ग की और अलग

अलग समय की विदित होंगी, पर वे सब 'नल' के माध्यम द्वारा एक कहानी का अंग बन गयी हैं।

सबसे पहली कहानी नल के जन्म की है। यों तो इस कहानी का बीज पौराणिक साहित्य में भी मिल जाता है। दशरथ ने निपुत्री होने पर यज्ञ किया, और यज्ञ की चरु-खीर से सन्तान का जन्म हुआ, किंतु नल-जन्म में खीर का स्थान तो चावल ने ले लिया है, यज्ञ-पुरुष का स्थान तपस्वी ने। तपस्वी द्वारा सन्तान-प्राप्ति का लोक-गाथाओं में हमें बहुत प्राचीन विश्वास मिलता है। गुरु गुग्गा (गूगा) के जन्म की कथा बहुत कुछ नल के जन्म की कथा से साम्य रखती है।

राजा जेवर भी निपुत्री हैं। बच्छल (बाछल) उनकी सबसे प्यारी रानी है। दोनों गुरु गोरख की सेवा करते हैं। बच्छल की बहिन कच्छल धोखा करती है। पर बच्छल को अन्त में गोरख का वरदान मिल जाता है। जो कार्य नल की कथा में पुरोहित गंगाधर करता है, गूगा में राजा की बहिन साबिरदेई करती है। बहिन के भड़काने पर राजा बच्छल को कलंकिनी समझकर घर से निकाल देता है। इसका साम्य दोनों कहानियों में है। गूगा की पूजा राजपूताना में तथा पश्चिमी यू० पी० में और पूर्वी पंजाब में होती है। यही जाहरपीर के नाम से भी विख्यात है। गूगा का उल्लेख टाड, मालकम और इलियट ने किया है।[१]

कथा-सरित्सागर में उदयन और वासवदत्ता को भी आरम्भ में पुत्रहीन बताया गया है। नारद के उपदेश से दोनों शिव की उपासना करते हैं। शिव पहले तो स्वप्न में प्रकट होकर पुत्र होने का आशीर्वाद देते हैं, फिर स्वप्न में जटाधारी साधू के वेष में आकर वासवदत्ता को एक फल दे जाते हैं। 'नरवाहन दत्त' के जन्म की यह भूमिका है।

दूसरी कहानो मोतिनी से विवाह की है। राक्षस-कन्या के विवाह से संबन्धित कहानियाँ विश्व भर की लोक-गाथाओं में मिलती हैं। कथा-सरित्सागर में शृंगभुज ने भी राक्षस की कन्या से विवाह किया था। इसमें भी राक्षस-पुत्री ने हर प्रकार से शृंगभुज की रक्षा

[१] लीजेण्ड्स ऑव पंजाब, टेम्पल लिखित भाग १; देखिये इसी तीसरे अध्याय में पृ० २३४ से पृ० २४० तक 'जाहरपीर' की जोति का वर्णन।

की थी। मारवे की एक कहानी है 'दानव—जिसके शरीर में प्राण नहीं थे'। इसमें बटन एक अंडे को तोड़कर दानव को मार डालता है और दानव की लड़की से विवाह करता है। यहाँ दानव के प्राणों का पता लगाने में उसकी लड़की ही सहायता देती है। (दी माइथालॉजी आव आर्यन नेशन्स. कौक्स लिखित पृ० ७६।)

इसी बीच में वासुकी और नागों की कहानी भी आ जाती है। कथा-सरित्सागर में नल-दमयन्ती की जो कहानी दी हुई है, उसमें भी एक कर्कोटक नाम का नाग उसकी सहायता करता है, पर ढोला के लोकगाथाकार ने बड़े कौशल का उपयोग किया है। उसने वासुकी नाग को भूमासुर दाने के बन्धन से मुक्त कराके नल को वासुकि का पगड़ी पलटा यार बना दिया है और उसे मणियों की वह माला दिला दी है जिससे वह पानी को फाड़ता हुआ पाताल में चला जाता है। 'यार होय तौ ऐसो होइ' जैसी कहानी में अथवा बंगाली फकीरचन्द की कहनी में सर्प को मारकर वह मणि प्राप्त की गयी है, पर यहाँ तो मित्रता के नाते नल गया है। वासुकी की मैत्री ने नल को कई स्थानों पर सहायता दी है।

फिर कहानी में 'गंगा स्नान और फूलसिंह पंजाबी' की घटना है। तब वह मुख्य घटना आती है जो महाभारत और कथा-सरित्सागर में मिलती है, और जिसे विद्वान् महाभारत से भी पुरानी कहानी बतलाते हैं : 'नल और दमयन्ती' का स्वयंवर, तथा नल पर कलि का कोप, नल पर विपत्ति। इसमें ढोलाकार ने एक परिवर्तन कर दिया है। कथा-सरित्सागर में नल के एक लड़का इन्द्रसेन और लड़की इन्द्रसेना आपत्ति का आक्रमण होने से पूर्व ही पैदा हो जाते हैं। ढोलाकार ने ढोला का जन्म पिंगल में कराया है। नल की 'औखा' के समय में ढोलाकार ने और भी कितनी ही रोचक घटनाओं का समावेश कर दिया है, जिसमें नल की दुर्दशा और विपत्ति का अत्यन्त करुणा पूर्ण चित्र ही नहीं उपस्थित होता, नल के शौर्य का भी कहीं-कहीं अच्छा वर्णन आ जाता है। दमयन्ती की पति-भक्ति चमक उठती है। मोतिनी के शाप से नल का कोढ़ी हो जाना—विपत्ति में कोढ़ में खाज के समान है। नल का तेली के यहाँ रहना, वहाँ राजा बुध के हजारों सिपाहियों को मार डालना, उससे पूर्व ही दमयन्ती का गोनदपुर के राजा के यहाँ रह कर नल की प्रतीक्षा में सदावर्त बाँटना,

फिर पिंगल में ढोला का जन्म होना, मारू से विवाह, नल का उसके लिए दानों से युद्ध करके काले गौंड़े लाना—ये सब बीच की घटनाएँ हैं, जो नल और दमयन्ती साहित्य में मिलने वाले वृत्त के बीच में ढोलाकार ने सम्मिलित करके दी हैं। 'नल' से और ढोला से कोई सीधा सम्पर्क नहीं। नल रामचन्द्र से भी पूर्व का व्यक्तित्व है। रामायण महाभारत से भी पूर्व की कहानी है उसकी, और 'ढोला' मारू का मारवाड़ी किस्सा बहुत बाद का मध्य युग का है, किन्तु ब्रज के लोककथाकार ने नल के साथ उस कथा को बड़े कौशल से जोड़ दिया है। नल इन सब आपत्तियों के उपरान्त फिर अपना राज्य प्राप्त कर लेता है; तब ढोला के गौने का प्रश्न उपस्थित होता है। यहाँ 'रेवा' नाम की जादूगरनी उपस्थित होकर गौने की यात्रा को चमत्कारक बना देती है। ढोला और रेवा का यह कहानी छत्तीसगढ़ी लोक-गाथा में भी मिलती है। (छत्तीसगढ़ी लोक-गाथा: श्यामाचरण दुबे लिखित) जादूगरनियों के प्रभाव की बात और उसकी कहानियाँ हिन्दी-क्षेत्र में ही नहीं, अन्य भाषाओं के क्षेत्र में भी मिलती हैं, और इनका मूल भी अत्यन्त प्राचीन है। नल के भतीजे की कहानी बाद में और जोड़ दी गयी है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि नल की कथा में जो अनेक कहानियाँ जुड़ी हुइ है, वे विभिन्न युगों की हैं और उन सबका ऐतिहासिक मूल्यांकन करना कठिन है, कठिन ही नहीं असम्भव है। इन कहानियों में वे सब तत्त्व भी मिलते हैं जो इन्हें प्रकृति की घटनाओं का रूपक सिद्ध कर दें। ऐसे तत्त्व भी मिलते हैं जिससे प्रकृति की प्रजनन-प्रक्रिया का रूपक सिद्ध हो। इनकी व्याख्या से यह भी प्रकट होता है कि लोक-गाथा के विचारकों ने जिस रूपरेखा को पूर्व ऐतिहासिक काल में निर्मित माना है, वह भी इसमें सुरक्षित है। पर यहाँ हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं।

ढोला यथार्थ में लोक-मानस की प्रतिभा का ही परिणाम है। उसने विविध प्रचलित कहानियों को लेकर बड़े कौशल से चूल बिठाकर महागाथा प्रस्तुत कर दी है। आरम्भ की कितनी ही घटनाओं का बीज आगे, अन्त में चलकर प्रतिफलित होता है, उदाहरणार्थ ढोला के ऊपर पिंगल के राजा बुध के द्वार का गिरना सभी प्रचलित ढोला मारू की कहानियों में मिलता है, और इन स्फुट कहानियों में

यह नहीं प्रकट होता कि क्यों वह द्वार ढोला पर गिरा। पर लोक-मानस प्रत्येक व्यापार के अन्दर एक कार्य-कारण-परम्परा का अनुभव करता है, जहाँ वह कारण का प्रत्यक्ष लौकिक रूप नहीं उपस्थित कर सकता, वहाँ वह उसे विधाता से जोड़ देता है। वह विधाता को भी अपनी कहानी में प्रत्यक्ष खींच लाता है। ढोला में ढोलाकार ने कल्पना की कि नल कारे गौंड़े लेने गया। लक्खी बन में वहाँ के दानव राज को पकड़ लाया, दानवराज को द्वार में चिनाया गया, बस दानवराज ने तभी कहा कि वह ढोला पर गिरेगा। इसी प्रकार इन्द्र और नल के उदार अनुदार व्यवहार की, पूरी कार्यकारण परम्परा भी ढोला में विद्यमान है। ऐसी ही परम्परा वासुकी नाग से सम्बन्धित है।

यों ढोला की यह गेय गाथा आदि से अन्त तक सुसम्बद्ध और सुगठित है। कथा की रूपरेखा तो सभी ढुलैयाओं में प्रायः समान मिलती है, पर उनकी कथन भिन्न-भिन्न है। कथन की भिन्नता में ही ढोलाकारों की व्यक्तिगत प्रतिभाओं का परिचय मिलता है। अन्य गेय लोक-गाथाओं में मौखिक होते हुए भी इतना महान परिवर्तन नहीं मिलता। ढोला में ढोलाकर के व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। वह चिकाड़े पर ढोले की तर्ज बनाये रहता है, पर उसमें वर्णन की विशदता, रस का संचार, घटना कौतूहल का विस्तार, काफियाबन्दी तथा ढोला से भिन्न अन्य तर्जों का उसमें समावेश कर उसे एक रसता के दोष से मुक्त करने का कौशल अपनी निजी प्रतिभा के बल से दिखाता है। ढोले की तर्ज का मूल रूप यह है—पहले अत्यन्त मन्द और मन्थर गति से प्रत्येक अक्षर का पूर्ण और स्वतन्त्र उच्चारण करते हुए निम्नतम ध्वनि में वह ढुलैया गाता है:—

गुरु उस्ताद सुमिरि लउँ अपनौंऽऽऽ
सुमिरूँ सारद माई
तोइ सुमिरि फिर कौनें ऐं सुमिरूँ
जसुदा जी के कुमर कन्हाई,
सुमिरूँ ब्रह्मा, बिस्नु, महेस,
गवरी गनपति सुमिरूँ लाड़िले।
जिन दीनी मोइ बुद्धि बिसेस।

गनपति चरनन बलिहारी,
मैं तेरौइ धरि रह्यौ ध्यानु
सिवसंकर से पिता,
गवरि जिनकी महतारी।
गवरी के सुत,
गिरिजा के लाड़िले
नेंक,
राखि सभा में आइकें मानु
तोइ सुमिरि फिर कौ नें सुमिरूँ ऽऽऽ......
मेरी राखि पंचन में लाज

फिर इसी को द्रुत गति से उतार-चढ़ाव के साथ गाया जायेगा, यह रूप साधारणतः 'सुरसती' (सरस्वती-वन्दना) का है। सुरसती कहने के बाद तुरन्त ही कथा-भाग आरम्भ हो जाता है।

उसमें साधारण रूप यह मिलता है—

ब ड़े प र भा त क र न कौ प ह रौ ऽ ऽ ऽ
राजा पिरथम नें अपनौ घोड़ा सजवायौ
सब सिंगारु करयौ घोड़ा कौ,
औरु
सोने कौ जड़ाऊ जीन धरवायौ।
जमकिम्बनौ ऐ असवाऽर
नरवर वारौ गढ़पतीऽ
कैसें खेलन जातु सिकार।

(यहाँ तक यह अरथाने के ढङ्ग से कहा जाता है, अर्थात् ताल स्वर में बाँधकर और गाकर नहीं, वरन् मौखिक किन्तु मन्द गति से। इससे आगे फिर चिकाड़े के स्वर में स्वर मिलाकर विलंबित गति से गाया जाता है।)

करी चलिबे की त्यारी,
औरु दीनों ऐं हुकमु सुनाइ
सार ते सँग लगि लीबौ स्वानु सिकारी
घोड़ा हाँकि दियौ छत्रधारी,
हौंनहार बलवान कबआहि टरै ढ़ारी।

इत-उत देखतु जाय अगारी भंगिनि आई।
औरु तीन पोत गई थूकि पौंमते धूरि उड़ाई।
घोड़ा पै सोचै छत्तरधारी,
भंगिनि पीठि फेरि भई ठाड़ी—
राजा मन में रह्यौ ऐ विचाऽरि
नरवर वारे भूप नें घोड़ा दीऔ ऐ पिछमनौं अपनौं ऽऔंऽ डाऽरि।
सो घोड़ा तो घुड़सार लगायौ

(यह लय में और तीव्र स्वर में कहा जाता है, फिर तुरन्त ही स्वर ऋषभ पर करके, चिकाड़ा बन्द कर दिया जाता है।)

राजा बैठ्यो कचहरी जोरि कै
सोच रह्यौ छाइ,
(इसके बाद फिर द्रुतगति में और एक साँस में गाया जाता है)
नरवर वारे भूप ने अब नौकर लीयौ ऐ बुलाइ।
कहि रह्यौ हीयौ खोलि,
चिंता भंगी की घरवारी ऐ, ए लाऔ सिपाही नेक जल्दी बोऽलि
सुनत खैम अब नौकरु धायौ,
पल ना करी अवार, द्वार भंगी के आयौ।
औरु भंगी लियौ बुलाइ;
अपनी घरवारी ऐ भेजि दै नेंक ब्वाइ लै आऊँ संग लिवाइ।
कहा कहि आई जानें तेरी घरवारी
और बोलि रहे ब्वाइ छत्तुरधारी—
इतनी सुनि कें भंगी घर अपने में धँसि गयौ।
भंगिनि लई बुलाइ,
कहा कहि आई भूप ते मेरे माऊँ तिरिया बाहि।
सो तोइ बोलिवे कूँ आयौ सिपाही
आजु नरवर वारे भूप कौ,
अब कहि कैसें होइ
आपु मरैगी नारि हमारी
मेरे जामें लै बैठेगी ब्याहता मोइ।
सबरी भाई पेट की खोली,
(फिरि) भंगी ते भंगिनि बोली,

अम्बखास कूँ अबई जाऊँ
द्वै द्वै ख्वाब जाइ करि आऊँ
कै राजा मोइ मरवाइ देऽगौ,
नहीं वचन ते राजा ऐ हराऊँ
सब संख्या ऐ छोड़ि दै,
घर बैठें मौज उड़ाइ.... ।
इतनी कहि कें, भंगिनि धाई
नैंक न कीनी देर संग नौकर के आई।
धरयौ कचहरी में पाँय
नरवर वारे भूप कूँ सो दीयौ ऐ सीसु नवाइ।
अब राजा नें बात सुनाई १
मोइ नारि मारग में पाई २
तीनि मोत गई थूकि—३
पास ते धूरि उड़ाई ४
दीजौ भेद बताइ, ५
जौ तू खैरि जीय की चाहै, ६
सबरौ हालु सुनाइ। ७

छन्द की दृष्टि से इसे मिश्र छन्द माना जा सकता है, जिसमें पहले दो चरण या अधिक सोलह मात्राओं के होंगे, तीसरा ग्यारह का, चौथा तेरह का, पाँचवा फिर ग्यारह का, छठा सोलह का, सातवाँ स्थायी के रूप में ग्यारह मात्राओं का। पहले, दूसरे, चौथे और छठे चरण का दीर्घान्त (गुरु) होता है, जिसमें से पहले, दूसरे और चौथे की प्रायः तुक मिलती है, तीसरे और छठे बेतुके होते हैं, पाँचवें और सातवें की तुक मिलती है और ये चरण लघ्वन्त होते हैं, जिनमें जगण (ISI) होता है।

यह अवस्था साधारण प्रवाहमय ढोला-गीत की होती है, इसमें आरम्भ के दो चरण (१,२) संतुलित होते हैं, उनके साथ चाहे जितने संतुलित चरण प्रभाववर्द्धन अथवा कथा संचरण के लिए आ सकते हैं। इस साधारण प्रवाहमय गीत को अरथाने, अर्थात् बहुत धीरे-धीरे बिना ताल-स्वर और वाद्यों का संयोग किये काव्य-पाठ के ढङ्ग में गाया जा सकता है। फिर विलम्बित गति में गया जाता है, फिर द्रुत में। इसके बीच-बीच में अन्य तर्जें भी आ मिलती हैं, उदाहर-

णार्थ नल के विवाह के अवसर पर ढोलावाला अवसर पाकर ज्यौनार गाने लगता है, गारी गाने लगता है; कहीं मलहार का पुट आ जाता है, कहीं 'निहालदे' का। ये तर्जें इस प्रवाह में आकर और भी सुन्दरता बढ़ा देती हैं, सोने में सुगन्ध का काम देती हैं। कवित्त और रसिया भी अच्छे फब जाते हैं।

यह लोक-महाकाव्य इतना विशद है और इतनी विविधता से युक्त है कि इसमें लोक-ज्ञान का अनन्त कोष भर जाता है। जब शकुनों का वर्णन कवि करने लगता है तो सब प्रकार के शकुनों का उल्लेख कर जाता है। जब सेना का वर्णन करने लगता है, उसके सब अंगों का उल्लेख कर जाता है। महाकाव्य के लिए जिस प्रकार की विशदता की आवश्यकता होती है, वैसी ही विशदता इसमें भी मिलती है। इन सबका वर्णन पुस्तक-ज्ञान के आधार पर नहीं होता, परम्परा-प्राप्त ज्ञान-भण्डार के द्वारा होता है। फलतः इसमें अनेक प्राचीन रीतियों का उल्लेख भी है। किसी राजा के हाथ में जब विवाहित स्त्री पड़ जाती है तो वह छः महीने की अवधि माँगती है और उस दिन तक यदि उसका पति न मिले तो वह विवाह करने को प्रस्तुत हो सकती है। यद्यपि समस्त काव्य में इस अवधि का उल्लङ्घन कहीं भी नहीं हुआ, ठीक अवधि समाप्त होने के दिन ही नायक वहाँ आ पहुँचा है—इस प्रकार स्त्री के पतिव्रत्य की आदि से अन्त तक रक्षा की गई है, और समस्त कथा सुखान्त ही रही है, फिर भी अवधि की बात उस प्राचीन परम्परा की ओर संकेत करती है, जिसका उल्लेख प्राचीन धर्मशास्त्रों में मिलता है। विवाह-पद्धति बहुधा गन्धर्व है, स्वयंवरों का भी उल्लेख है। प्रेम दोनों पक्षों में मिलता है। यह प्रेम गुण और रूप श्रवण द्वारा और प्रत्यक्ष दर्शन से अनायास उत्पन्न होने वाला है। पिशाच-विवाह का उपक्रम तो मिलता है, पर वह सफल कहीं नहीं हो पाया। मनुष्य-बलि से कहानी भरी हुई है. एक बार नहीं अनेक बार देवी को बलि देने की बात कथा में आयी है, पर कथाकार ने बलि बचा दी है। बलि देने की समस्त तैयारियाँ हो जाने पर, ठीक अवसर पर देवी की कृपा के फलस्वरूप ही बलि से रक्षा की गयी है। यह बलि देने वाली बहुधा जादूगरनियाँ ही हैं।

इस कथा में दो सम्प्रदायों का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। एक तो गोरख-सम्प्रदाय का, दूसरा शाक्तों का, दुर्गा-पूजकों का। 'गोरख-

मत्स्यनाथ की तो परम्परा की कहानी की रूपरेखा है। किन्तु इस समस्त कथा-वस्तु को दुर्गा-पूजकों ने अपने मतानुकूल कर लिया है और गोरख का नाम कहीं भी नहीं आता, यहाँ तक कि आरम्भ का 'तपस्वी' जो स्पष्ट ही 'गोरख' है, उसको भी कथाकार ने कोई नाम नहीं दिया। नल की जीवन-कथा बचपन, जन्म से लेकर अन्त तक दुर्गा की कृपा की कथा है। अनेक भयानक सङ्कट आते हैं, उनमें नल दुर्गा की ही सहायता से विजय प्राप्त करता है। भिन्न-भिन्न ढुलैयों ने अपनी रुचिभिन्नता के कारण कहीं-कहीं भगवान दर्शगाय को भी स्थान दिया है, नारद आदि को भी सहायता के लिए भिजवाया है, अर्थात् वैष्णव रूप भी देने की चेष्टा की है, जिसके कारण कृष्ण, इन्द्र सम्बन्धी सङ्घर्ष की प्रतिध्वनि भी कहीं-कहीं मिल जाती है, पर दुर्गा की सहायता बिना कथा पूरी नहीं हो पाती। दुर्गा के मन्दिर में भक्त की पुकार से हलचल मच जाती है, और वह तुरन्त अपने सिंह पर चढ़ कर योगिनियों, भूतों-पिशाचों, लांगुर को लेकर विकट अवसरों पर नल की सहायता को पहुँच जाती है। नल से दानौंगढ़ के महल की पटिया नहीं हटती, दुर्गा आकर बल देती है। नल पैदा होने को है, दुर्गा तथा वैमाता आकर जनाती है। दानों से युद्ध करने में तो दुर्गा की सहायता की प्रत्यक्ष आवश्यकता है। इस प्रकार दुर्गा की मान्यता, उसकी भक्त पर कृपा, उसकी भक्त को सङ्कट से उबारने की तत्परता का भाव ढोला-महाकाव्य में पद-पद पर विदित होता है। फिर भी यह भावना इतनी सङ्कीर्ण और संकुचित नहीं है कि एकदम साम्प्रदायिक प्रतीत होने लगे। वह नल की इष्ट है, पर दूसरों पर भी भरोसा किया गया है, और उसका भी सुफल मिला है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि समस्त काव्य आस्तिक-बुद्धि से ओत प्रोत है, और आस्तिक भाव पैदा करता है, पर वैदिक अथवा साम्प्रदायिक रूप से नहीं आस्तिकभाव की लौकिक अभिव्यक्ति का भाव विशेषतः यह महागीत प्रकट करता है।

पारस्परिक व्यवहार की मानवीय मर्यादा के आदर्श इस काव्य में पद-पद पर मिलते हैं। स्त्रियाँ सभी सच्चरित्र हैं, वे प्रेम करती हैं, वे जादूगरनियाँ हैं, और अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिए सब कुछ कर सकती हैं पर प्रेम और पति-धर्म को अवश्य निवाहती हैं, और उनका यह धर्म उनकी सहायता करता है। पुरुष सभी वचनों पर

दृढ़ रहने वाले और वचनों के लिए प्राणों का पण लगा देने वाले हैं. जहाँ वे अपने वचनों के कारण भूल कर गये प्रतीत होते हैं वहाँ वे उससे हटते नहीं : हाँ, यह चेष्टा करते अवश्य मिलते हैं कि वह व्यक्ति या पुरुष वचन की पूर्ति माँगने से पूर्व ही किसी विधि से मार्ग से हट जाय। वचनभङ्ग का कोई न कोई दुःखद परिणाम अवश्य मिलता है : मोतिनी ने नल से वचन करा लिया था कि वह मुकट बाँधकर दूसरा विवाह न करेगा. पर नल ने विवश होकर दमयन्ती से विवाह किया, मोतिनी ने तुरन्त प्राण त्याग दिये, और इस विश्वासघात के फलस्वरूप नल कोढ़ी हो गया। मैत्री का बड़ा पवित्र रूप मिलता है। पगड़ी पलट जाने पर ही यथार्थमैत्री होती है और तब एक मित्र के लिए दूसरा मित्र सर्वस्व तक समर्पण करने को तैयार मिलता है। नल ने बचपन में गूजर (मनसुख) से पगड़ी पलटी, वह हर समय नल की सहायता को सन्नद्ध रहा। वासुकी को ऐसा ही मित्र बनाया, वह भी सङ्कट के अवसर पर काम आया।

पर इस काव्य का सबसे बड़ा आकर्षण इसमें है कि हर स्थान पर राजा का वैभव तो बताया गया है, पर प्रजा की निर्भीकता भी साथ ही साथ मिलती है। भंगिन ने जिस ढङ्ग से उत्तर दिया, और जैसा व्यवहार दिखाया, वह एक उदाहरण है। ऐसे अनेकों स्थल हैं, और इससे भी अधिक आकर्षण की बात यह मिलती है कि नल के जिस चरित्र का वर्णन इसमें आता है वह राजसी नहीं, उसके राजा होने के समय का उल्लेख तो बहुत कम है। वह वनों में, जंगलों में भटकने वाला मिलता है। कभी किसी सेठ के यहाँ पाला जाता है, कभी किसी तेली के घर आश्रय लेता मिलता है, उसका दुःख-सुख साधारण जन का-सा दुःख-सुख है। वह विवाह अकेला करता है, कोई उसके साथ नहीं, पास नहीं। अकेला वह दानवों को मारता है, अकेला शिकार खेलने जाता है। उसके जब पुत्र पैदा होता है तो कोई सहायता करने वाला नहीं। तेली के रहतवा के रूप में साधारण नागरिक से भी हीन अवस्था में है। नल का समस्त चरित्र, इसलिए करुणा से परिपूर्ण है। पर दिव्य-शक्ति-संयुक्त है, और आस्तिकता से पूर्ण है। उसका दुर्गा में विश्वास उसे अनेकों सङ्कटों से मुक्त करता है। यही कारण है कि जन-जन नल की कथा में अपनी भावनाओं का प्रतिबिम्ब ढोलाकार की वाणी के द्वारा मुखरित होता अनुभव करता

है। तिलस्माती, चमत्कारपूर्ण कथा-प्रवाह में भी लोक की भावानुभूतियाँ स्वाभाविक रूप में इस में अभिव्यक्त मिलती हैं।

इस लोक-काव्य का आरम्भ कब से हुआ, इसका ठीक-ठीक विवेचन अभी नहीं हो पाया, न हो ही सकता है। ब्रज में इसके तीन प्रसिद्ध गवैये थे, तीनों ही जिला मथुरा के रहने वाले थे। इनमें सबसे प्रसिद्ध ऊँचे गाँव का गढ़पति था। किसी-किसी का कहना है कि गढ़पति के गुरू ने ही यह ढोला रचा था। गढ़पति की मृत्यु अभी कुछ वर्ष पूर्व हुई है जिससे यह विदित होता है कि अधिक से अधिक इसका निर्माण ४०-५० वर्ष से अधिक पहले का नहीं, किन्तु यह संभव नहीं कि यह मौखिक साहित्य जो शिष्य-परम्परा के द्वारा ही फैलता है, इतना शीघ्र समस्त ब्रज में विख्यात हो जाय। दूसरा प्रसिद्ध दुलैया बरौली का मौहरसिंह था, और तीसरा बढ़हार का चन्दना। इन तीनों लोक-गायकों और लोक-कवियों के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है। गढ़पति के सम्बन्ध में तो एक रोचक बात यह कही जाती है कि वे कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे, उन्हें जेल हो गई; जेल में उनसे ढोला सुनाने के लिए आग्रह किया गया; जेलर आदि भी आये। गढ़पति ने प्रथम और मंझा के गङ्गा-स्नान का वर्णन किया, जिसमें फूलसिंह पञ्जाबी ने इन दोनों को बन्दी बना लिया था। गढ़पति ने जेल का ऐसा चित्र उपस्थित किया कि वहाँ जेल के सभी बन्दी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने वहीं जेल-अधिकारियों के विरुद्ध जिहाद बोल दिया। जैसे-तैसे वे अनुशासन में आये। इससे ढोला की शक्ति का पता लगता है। एक मत यह मानता है कि 'लोहबन' के 'मदारी' ने ब्रज में इस महा गीत का आरम्भ किया।[1] मदारी के ढोला की मूल वस्तु इतनी बड़ी नहीं थी। वह भी ढोला-मारू की मारवाड़ी कथा जैसी ही थी, जिसमें 'ढोला और मारू' की प्रेम गाथा ही कही गया है। मदारी का मूल ढोला अब लुप्त हो चला है। मदारी की परम्परा का एक वृद्ध लोहबन में अभी कुछ महीने पूर्व जीवित था, उससे मरते-मरते भी मदारी के ढोले का कुछ भाग सुनकर हमने लिखवा लिया। उसका परिचय यहाँ देने से उसकी शैली और वस्तु का ज्ञान हो जायगा।

[1] मदारी का परिचय अध्याय २ पृ० ६६ पर इसी पुस्तक में दिया जा चुका है।

मदारी का ढोला—प्रत्येक ढोला 'सुरसुती' अथवा 'सरस्वती' स्तवन से आरम्भ होता है। मदारी ने अपनी 'सुरसुती' में देवी की स्तुति की है :—

"परवत पै ठाड़ी भई ओढ़ि दखिनरौ चीर
आधानूं मोइ भेंटिलै, मेरे ओंसी जनम के बीर
सुर बिन मिली ऐ न काऊ साहिब मेरे सुरुसुती
और गुरु बिन मिलै न ज्ञान,
जल बिन हंसा न्यों तजै, जैसे अन बिन तजै पिरान
सुमिरि सुमिरि नल आदि भमानी
हिरदे में बोलै माता अमिरत बानी
जौ नल सुमिरै मोय
हिंगुलाज[1] वारी ईसुरी संकट आड़ी क्यों न होय।
नगरकोट में अबला जी कौ सर[2] रच्यौ
और जस के बाजे ढोल
कौल निबाहन ईसुरी, पांड़ेन ते बोले बोल।
ब्वाई दिना ते तेरे रूठे पाँचों पण्डवा[3]

[1] हिंगुलाज बिलोचिस्तान में समुद्र-तट से प्रायः बीस मील ऊपर अघोर अथवा हिंगुल अथवा हिंगोल नदी पर 'हिंगुला' नाम के पर्वत के एक छोर पर है। यह देवी के बावन पीठों में से एक है। यहां पर 'सती' का ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहाँ दुर्गा महामाया या कोट्टरी के नाम से विख्यात है। देखिये "दी ज्याग्रफिकल डिक्सनरी आव एंचिएंट एण्ड मेडीवल इण्डिया' नन्दोलाल दे कृत। पृ० ७५। इस गीत में इस हिंगलाज वाली माता का नाम 'ईसुरी' दिया गया है।

[2] पौराणिक मत से नगरकोट में सती का एक स्तन गिरा था।

[3] पांचों पण्डवा से अभिप्राय महाभारत के प्रसिद्ध युधिष्ठिर पांडवों से है। देवी से इन पांडवों के सम्बन्ध की चर्चा लोकगीतों में बहुधा मिलती है। इसमें कोई संदेह नहीं प्रतीत होता है कि ये 'देवियाँ' आर्यों से पूर्व की संस्कृति से सम्बन्ध रखती हैं। (ई० एं० सितम्बर १८८१, पृ० २४५। दी विवाह। मदर्स और लोकलगॉडिसेज आव इण्डिया—लेखक मेजर ई० डवल्यू० वेस्ट)। किन्तु इन हिन्दी गीतों में तो देवी पूजा के नये पुनरारोहण की सूचना मिलती है। प्रायः सभी ऐसे बड़े गीतों में 'देवी' के प्रति भक्ति प्रकट की गयी है। और वह संकट में सहायता करती दिखायी गयी है। इस नयी देवी पूजा को पांडवों की ख्याति से बल ग्रहण करना पड़ा है। महाभारत के पांडवों की इस युग में बड़ी

बैठे बर की छाँह,
आपु मनामन तू गई, सौ दै दै लाई आड़ी बाँह
पच्छि करै तौ उन पाँचौन की सी कीजियौ ।"

इस प्रकार 'सरस्वती' द्वारा 'देवी' की स्तुति करके कवि कुछ अपने सम्बन्ध में कहता है :—

मेरौ हुतनु लोहबनु गाम
जो तौ बन चौबीसनु में ऊ अन्तिमु धाम ।
किसुन कुण्ड ढिंग ठाकुरु द्वारौ
जामें सिर को पिंडो,
जामें बाबा गोपीनाथ कीला करें
धन्नि मदारी तेरो भागि
ढोला तौ तैंनें अजब बनायौ
कीयौ माता भमानी कौ जापु
गाम गाम तेरे चेला चाँटे
पहलें सुरसती हम तोईऐ अलापें
तेरी सूरतिऊ छिपि जाय ।
भगत मदारी बाबा देवी के प्यारे[1]
तेरी कीरति कहूँ न जाय ।
इन्द्रलोक ते उतरी अपछरा
धरि डोला में तोइ परमधाम कूँ लैगई —

इसके उपरान्त कथा इस प्रकार है:—

बाग कौ ढोला—मारू ने पहले गङ्गाधर तोता नल के पुत्र ढोला के पास भेजा उसे रेवा ने बन्दी कर लिया। रेवा भी ढोला की विवाहिता थी। मारू से शैशव में विवाह हुआ था, रेवा से युवावस्था में। मारू ने पुनः एक बंजारे के हाथ विवाह का चीर भेजा जिसमें ढोला-मारू के विवाह का सन्देश था। यह चीर ढोला

प्रतिष्ठा थी। तभी पाँचों पाण्डवों को देवी का भक्त और सेवक बताया है जाहरपीर के गीत में ऊपर हम देख चुके हैं कि किस प्रकार गोरखनाथ ने पाण्डवों को परेशान किया है। यह भी पाण्डवों को क्षुद्र सिद्ध करके नाथ का महत्व स्थापित करने के उद्योग के फलस्वरूप हुआ है।

[1] मदारी वास्तव में देवी का भक्त था, ढोले में देवी की प्रधानता मिलती है। ढोला भी देवी की पूजा के पुनराहरण का पोषक काव्य माना जाना चाहिए।

की दृष्टि में आगया और वह मारू को पाने के लिए विकल हो गया। रेवा पर उसे क्रोध आया, उसके लातें मारकर उसका अपमान किया। वह अपनी सासु के पास प्रातः ही पहुँची। वहाँ जब सास ने इससे प्रातः आने का कारण पूछा तो उसने कहाः—

आजु राति कूँ तौ मोकूँ सासुलि बदरा फटि गयौ।
इन पिय कबऊ न दीनी गारि।
मारे-मारे लातनु गुड़हर कीयौ पलिका ते नीचे दीनी डारि
गिंगल वारो के वोर चलत ए आइकें बलमजी कौ सबु मन मोह्यौ।
राति दिवस मोइ बिसरतु नाँओ, तानि कें दुपट्टा आजु इकिलौ सोयौ।
अपने बेटा ए लै समझाइ
राति-द्यौस और दिन चारिक में ढोला गढ़ पिंगुल कूँ जाय।
तू जो कहति ए दरवाजे में कालु ए।

दमयन्ती ने अपनी विवशता प्रकट की—

"बारौ होतौ तौ बहू रेवा लेती बरजि कें,
औरु समरथ बरज्यौ न जाइ,
कूआ होय ताइ पाटिए, कोइ समदु न पाट्यौ जाइ।"

अब रेवा शृङ्गार करके पति के पास गयी, उसे सोते से जगाया। उसे विवाह से पूर्व की बातें स्मरण दिलाई। कहाँ तो यह प्रतिज्ञा की थी कि:—

कै धन ब्याहुँगो रेवा रानी, नई मेरी जायगी छिनक में जानि
तीन दिना और तीन राति दाँतिनि नांइ फारी

और कहाः—

"अब तोइ लगै धन मरमनि प्यारी।" किन्तु कुछ पता भी है वहाँ—

तेरौ दरवाजे में कालु
नल राजा के कुमर जो अब कहि मेरौ कौन हवालु।
भौति अजहाँ तौ मेरी सासु के बेटा मति मरै।

—किन्तु ढोला का निश्चय अटल था। वह बिना मारू को लाये नहीं मानेगा। चार दिन तक तो किसी न किसी प्रकार रेवा ने ढोला को रोक लिया। एक दिन वह खिरक में जा पहुँचा। इतने करहे

(ऊँट) बँधे हुए थे। उनसे पूछा कि किसके गले में रेशम डोर बाँधू, कौन मुझे मारू से मिला सकता है? सब करहे हार गये, किसी ने साहस नहीं किया। सोबे का करहा था, उसने यह कार्य स्वीकार किया। अन्य करहों ने ढोला को समझाया कि वह उसकी बातों में न आये। यह बीच में ही तुझे धोखा दे जायगा—सोबे वाले करहे ने ढोला को पुनः आश्वासन दिया। तब ढोला ने 'सुघड़' बुलवाकर उस करहे का शृङ्गार कराया:—

पंकरि बाग ढोला नल सुत ज्ञानी जाकूँ न्यारे खिरक में लेगयौ
सुघड़ लयौ बुलवाय
सोबे वारे करहुला जाकौ सबु सिंगार बनाय।
चारयौ पाँय सुघड़ करहा के पैंजन डारे।
और सिर सोहैं सिंदूरे की टोपी
मोहरे में हीरा लाल सम्हारे।
सौने की नाक नकेल, कलंगिनु गुहि दिए मोती झब्बा न्यारे।
चाँदी की नागि हमेल, गुदी में द्वै घंटारे।
गल चौरासी बाँधी जंग
सोबे वारौ करहुला मनों उड़ैगौ पवन के संग।
सौने की जीन जड़ाऊ कांठी
हरी बनात बनैचा पियरे
जानें जय सावरि कौ तंगु लयौ।
लगि रहे झारि हिलब्बी काच
नल राजा के कुमर नें मनि जोरि धरी है महताप।
बैठक पै रेशम के लच्छा
करहा के माथे नगु दिपै
द्वै सौने के गज गाह धुक-धुकी पै दरसतु हीरा—
और रेशम डारी झूल, पनैवा पियरे
बैठक पै तौ डारे गलीचा।
जाकी झबियन भरी मकतूल
करहा कुमरजी नें ऐसौ सजायौ, कांठी धरी ध कमल कौसौ फूल
रतन पौंयड़े पोंदुन पै झब्बा रेशमी
मौहरे में लगाइ दये काच
हेलक पै हीरा दिपै मनु जोरि धरी महताप।

छोटी छोटी झबिया करहा के डारीं कंसरें।
जाकी हीरनु जड़ी किनोर
साँचे साँचे नग जड़े, झर फूटि रही पे चारों ओर।
राखि रकेब करी तैंयारीं।"

इस प्रकार करहे का शृङ्गार अभी पूरा न हो पाया था कि रेवा को सूचना मिली और वह आ पहुँची। उसने करहे को फटकारा। करहे ने कहा तू मेरा एक पैर घायल कर दे। महिने भर में घाव पुरेंगे, तब तक तू ढोला को समझा लेना। रात में भी दृष्टि रखना कहीं लँगड़े पर ही तंग न कस दिया जाय। यथा-परामर्श करहा लँगड़ा कर दिया गया। ढोला ने जब यह देखा तो बड़ा निराश हुआ। पर करहे ने कहा—घबड़ाओ मत आधी रात पर मुझ पर सवार होकर चल पड़ो। आधीरात होने पर करहे पर चढ़ कर ढोला नरवरगढ़ से चल पड़ा। रेवा को समाचार मिला। वह उठी और शोर मचाया। तब गंगाधर तोते ने कहा कि मुझे छोड़दे तो मैं ढोला को लौटा लाऊँ। मैं उससे कह दूँगा कि मारू मर गयी। रेवा तोते की बातों में आगयी और उसने तोते को छोड़ दिया। तोता मारू का था। वह ढोला के पास पहुँच गया—और

नल सुत ज्ञानी और भूरी जायौ करहा,
मारू कौ गंगाधर सुअना, इन तीनिनु कौ जुग मिल्यौ।
दिन फूलत पिंगुल पहुंचे जाय—

ये तीनों दिन फूलते पिंगलगढ़ पहुँच गये। वहाँ कवि ने पहले मारू की एक झलक दिखायी है:—

मरमति बरतु रही ऐ पून्यौ कौ जो तौ ठाड़ी महल लहराय।
क्यों मेरी साथिनि बिना भेद कहूँ होइ न सगाई।
और परदेसी की प्रीति उरवसी पलरन में ब्याही।
मेरौ सुअना गयौ सो तौ है गयौ खीरु,
दूजैं मेरौ लाखा बंजारौ ऊ लै गयौ चीरु।
खबरि न आई, भई लोग हँसाई, मेरौ गयौ ऐ पटंबर गाँठि कौ।
ब्याही तौ ब्याही राजा बुध की बेटी तो ते जगु कहै।
हमनें तेरौ कबहु न देख्यौ भरतार
गढ़ पिंगुल के बीच में तैनें मारी ऐ हमारी राह बाट।
करम लिख्यौ तेरे जोगु भोगु कैसें पियऊ कौं पावै।

बारह बारह बर्स गईं बीति कहौ जी कोई काए कूँ आवै।
तैनें मारी ऐ हमारी ऊ राह-बाट
लरि लरि कें और झगरि झगरि कें घर बैठें ऐं हमारे भरतार
आपु सरीखी राजा बुध की बेटी हम करीं।
सुनि साथिनि कौ बचनु, कुमरि कौ अँसुआ ढरक्यौ नेह जूँ
जाके सुरमा की धुबि गईं रेख,
गढ़ पिंगल के बीच में मोय हरि नें दीयौ उपदेस।
कंचन देही कछू रही न काम की यामें भसम रमाऊँ
और चीरु फार गुलु गुदरी सिमाऊँ
धरि जोगिनि कौ भेसु
एक दिन देखुङ्गी पति लै बुड़ाऊ कौ देसु।
जाऔ री सहेली तुम घर अपने कूँ, सुख बिलसौ बलम के सोहिले
इनकी एच्छि करिंगे जसरथ के लाड़िले, इन बिगरन काए कूँ देइंगे।
करहा कौ असवार
नल राजा कौ कुमर जी मेरी महल तरहटी निकर्यौ आजु
बैठि झरोका में मरमनि देखन लागी।
बड़ौ सुघड़ असवार आजु आयौ महमानी।
जिअ कै काऊ कौ भैया बीर
कै काऊ भैना जि चतुर नारि कौ ऐ पीउ
आजु अनौंखौ मेरी गढ़ पिंगुल में बाहुर्यौ।
मेरे उठतु करेजा पै डाहु
नल राजा के कुमर जी जानें कब बगदिंगे भरतार
लरजि लरजि और गरजि गरजि में मारू बा पकी छाति पै जाइ गिरी।"

मारू को इस प्रकार व्यथित दिखाकर कवि ढोला को बाग में ले गया है।

ढोला ने बाग में करहा छोड़ दिया। करहा अत्यन्त भूखा-प्यासा था।

तीन दिना की भूख
भूरी जायौ करहुला जानें सब खाए सहतूत

बाग बीच एक बारह द्वारी
और पास केसरि की क्यारी
ढिंग लौंगन के पेड़
उनकू पै छाइ रही नागरि बेलि
वाहु बेलि, चम्मेल, केतकी सब चुनि खाई
जाकौ जब पानी पै चित गयौ।
करहा पे तीनि दिनों की प्यास
सोचे बारौ करहुला ठाड़ौ कुअटा की करै तलास
घूमतु घूमतु तौ कुअटा पै भलन्यौ जाय कें—
बागमान मालिन की बेटी फूल चुनन फुलवारी में आई।
इस माली के नें जोरी पे ढेंकुरी
भरि भरि कें जल-घड़ियाँ लुढ़काई।
आति माली कहै किलकार।
मालरजा की छोहरी ज्या करहा कूँ दौरि बिड़ार।
जिहू करहा मेरे पानी कूँ फोरै
और फेर बगदि फुलवारी पे तोरै।
माली की करहा कूँ मारति जाय।

इस प्रकार मालिन की करहे से भेंट हुई। करहे ने 'ढोला' का संवाद सुनाया। मालिन प्रसन्न होकर पानी भर कर ढोला के पास पहुँची। ढोला ने पानी पृथ्वी पर लुढ़का दिया और कहा—

"धन्नि तिहारी रीति धन्नि जिह बूझ बड़ाई।
बिना जानि पहँचानि नीर दौंतिन कूँ लाई।

हम परदेसी राजकुमार
गढ़ पिंगुल के बीच में हम उतरे नौलखा बाग।
जल प्यावै धनि मरमनि रानी नहीं औरु बँभेजा चलि बँधें"

मालिन अत्यन्त प्रसन्न मन दो हार लेकर महलों में पहुँची और ढोला के आने का संवाद दिया। मारू ने तारो को बुलाकर असली भेद का पता लगाने बाग में भेजा। तारो मारू का रूप धरकर गयी। तोता आम की डाली पर था। उसने ढोला को बताया कि इस डोले में कौन आरहा है? तारो ने हाथ में लोटा लेकर ढोला से कहा—

"बारह बर्स में तुम बगदेऔ मेरी चूक कहाई।
कहियत ए परवीन जाति घर मालिनि ब्याही॥

जानत नाँएे रानी और राउ
जो तौ मेरौ पलरी पलरन करि लै गए ब्याहु ।
दागु लगायौ तैनें अपने कुल कूँ, दूजें कछवाएन के गोत कूँ"
इस आक्षेप का उत्तर ढोला ने हाथ में लोटा लेते हुए दिया--
"इतने बचन सुने ढोला नें या के जल कौ लोटा लैलियौ ।
नेंक लेंत लपट तेरे लोटा में आई
कै जनमी तू जाति गड़री कै तेरी माता नें धाय तें लगाई ।
तू ऐ गड़रिया की धीअ
पानी तौ तेरौ ओटतु नाएँ मेरी बीर जीउ ।
जलु प्यावै धन मरमनि रानी नई और बँघेजा चलि बँधें ।"

तारा ने यह सुनकर नल और दमयन्ती की दीन दशा का उल्लेख किया तो क्रुद्ध होकर ढोला ने तारो में कोड़े जमा दिये । अब तो वह सच्ची बात कह गयी । तारो ढोला के पास से सीधे अपने घर गयी । मारू ने तारो के पास जाकर समाचार लिए । अब मारू स्वयं तय्यार हो गयी । यहाँ लोक-कवि ने मारू के रूप और भूषा का वर्णन किया है—

ताते से पानी मरमनि धरयौ ततैरा, सीरे लीए समोय ।
हंस कुमरि मारू पद्मिनी जामें न्हाय लई बदन झकोरि ।
चन्दन चौकी लई डारि कुमरि नांइनि बुलवाई ।
तेलु फुलेल संग लीएं आई ।
लंबे लंबे केस कनफटी चुपटे,
चतुर नारि गुहि दाबी बेंनी
सूआ सारी नाँक तनक बनी फुलकी पै पैनी ।
बेंदा दिपै लिलार
बुध राजा की मारवै जैसें ससि निकरयौ फोरि पहाड़ ।
थोरे ई थोरे जाके होट तमोलिन बसि रही ।
बीर भमर कौ मारू पतिभरता नें पहरयौ घाँघरौ
ओढ्यौ दखिनी चीरु
चादरि पाँइ मूँड़ते ओढ़ी जा कौ झिलमिल करै सरीर ।
रेशम अँगिया अङ्ग में रमाई
लगोएं चुनीन की कोर कै माँझिनि जामें हरी ऐं दरियाई ।
नग खोंपा में चारि

बुध राजा की मारवै जाके हियरा पै अजब बहार
बीच बीच में काच हिलब्बी यामें द्वैनग सांचे जड़ि रहे।
जाई में लगि बुझि जाय
कै बन्दि खोलै मेरौ आदि सरीरी नँई जाई में बिरह समाँय।
मोहर छाप तौ जापै रजपूतन की ठुकि रही।
सिर गूँदी पै सीसफूल माँथे पै बैंदी
सोहें सोने के तरिका नौंह भरि सुरमा सारि कौ।
सोहैं गुदी में नौलखा हार
हरी-हरी चुरियाँ, बजनी मुँदरी, बाजूबन्द, खपला जाकैं गजरें
लहजा लै रहे।
कांच हिलब्बीं कौ हात आइनौं, मारू बदन निहारै आपनौं
कञ्चन बरन सरीरु
देखि रूप राजा बुध की बेटी नैननु में ते बरसै नीरु।
चंदरमा तो ते बादु करूँगी मैं पिउ की बिहूनी मारवै।
रूप दयौ सबु मोय
तीन लोक के कर्तमकर्ता, मैं कहाँलै सराफूँ बैरी तोय।
ऐसे पुरख ते जूरी दीनी मेरी खबरि व्याहते नाँइ लई।

मारू ने शृङ्गार किया। माँ से कहकर अपनी सहेलियों सहित डोलों में बैठ कर बाग में गयी। वहाँ अपनी सहेलियों से कहा कि ऐसी कौन है जो ढोला को पानी पिला आये? पहले नांइनि तैयार हुई। तोते ने ढोला को बता दिया कि नांइन आरही है। नांइन की भी वही दशा हुई जो तारो की हुई थी। बातें भी वैसी ही हुईं। कोड़े की चोट से व्याकुल होकर वह मारू के पास आयी। नांइन के पश्चात् बनैंनी (वणिक वधू) ने बीड़ा उठाया। बनैंनी नायिका का यह वर्णन लोक-कवि ने ढोला से कराया है :—

"जाति बनैंनी दारी ढीलौ बाँधे घाँघरौ
मारि न जानै सैन
देखि विराने लाल कूँ नीचे कूँ लटकाय दए अपने नैन'

इसको भी कोड़े खाने पड़े। पर तोते ने ढोला को समझा दिया कि "हौलैं दीजो चौधरी, नई सारे सेठानी जायगी प्रान गमाय"। ढोला से प्राण बचाकर सेठमल सेठ की धीय माय के पास लौट आयी। तब ब्राह्मणी की तय्यार हुई। ब्राह्मण-पुत्री को आते देख तोते

ने ढोला को बताया—

अम्म डार ते तोता नें बताई।
अबकें नीरु मिसुरानी लाइ।
बिरफै गारी न देइ सुनाय।
पीपर की चौखटि न लगावै सारे आधान ते नारि मरि जाय
साँची मानिजा बात
पाँच असरफी दीजौ मिसुरानी एं पाछें ते जोरि दीजो हात।
इतनी दई सुनाय

नल ने ऐसा ही किया। ब्राह्मणी लौट कर मारू के पास गयी और कहा कि यह बीसों बिसे ढोला है। तुम्हीं जाकर पानी पिलाओ। अब मारू स्वयं अपनी सहेलियों के साथ ढोला के पास पहुँची। तोते ने बता दिया कि जो मैले भेष में है वही तेरी पतिव्रता मारू है। ढोला ने मारू से पूछा ऐसा मैला भेष क्यों बना रखा है :—

"सबरी सहेली पतिभरिता मारू तेरी ऊजरी
तू चों मैले भेस
कै नंगर धोबी नहीं कै साबनु नाएँ तेरे देश।"

मारू ने उत्तर दिया :—

"मन के त्यागि विचार
बारह बर्स गई बीति कें पिया बिन सब फीके परे सिंगार।"

तब बातों में ही पहेलियाँ बुझाकर मारू ने ढोला की परीक्षा ली। मारू और ढोला के ये उत्तर-प्रत्युत्तर हुए।

"धौरो सौ गाढ़ौ केसरिया बलमा मैं कहूँ।
याइ मोरि कें लगाय दै मेरे अङ्ग
लाख दुहाई बुध बाबुल की रथ जोरि चलूंगी तेरे संग।"
"धौरेई धौरे एक धोबी धोवै कापड़े
धौरोई बगुला पाँखु
इक धौरी मोइ रखतु ऐ तेरी नवल गुदी में पद्मिनी हाँखु।
याऊ ऐ न मानै तो तेरे मुख में बतीसी खिल रही।"
"रातौ सौ गाढ़ौ केसरिया बलमा फिर कहूँ
मोरि कें लगाय दै मेरे अङ्ग
लाख दुहाई बुध बाबुल, रथ जोरि चलूंगी तेरे संग।"
"रातेई राते एक दिन की मुँदनी पै बादरा

राते ई सैमरि फूल
इक रात्यौ मोय रखतु ऐ तेरी माँगनु भरयौ सिन्दूर
याऊ न मानों तौ तेरी नथ में राती लालरी''
जाऊ में जानेंगी भूंड
चम्पा बाग के बीच में तेरे मारि कें उड़ाइ दूंगी टूँक।'

इन उत्तरों से मारू को निश्चय हो गया कि यही ढोला है। वह ढोला से बाहर पानी लेकर आयी। उसने ढोला से कहा अपने 'सत' का परिचय दो। ढोला ने कहा मेरे पास सत कहां से आया? रेवा से विवाह कर लिया है। तुम अपनों सत दिखाओ कच्चे कुल्हड़ में कच्चा सूत बाँध कर पानी कुए में से खींच कर पिलाओ तो पानी पीऊँगा।' ये सामग्री मँगायी गयी। मारू ने सूत को संबोधन करके कहा—

''ऐंठि मैंठि धन देति मरोरा
सुनि सुनि रे मेरे सूत के डोरा
तेरी मेरे सुसर पै पाग, दुमैंती पै तेरौई ओरा
तेरी ऐ सुसर पै पाग
चम्पा बाग के बीच में लज्जा राखै सूत सिरदार
तू बनि रह्यौ मेरे हात
राधा, रुकिमिनि सीता सी भमानी उनऊ कें लिपिटि रह्यौ डोरा गात।
तो से को बलमान
जिमं फाँस तेरी बनें, लङ्का बाँधि लए हनुमान।
हनुमत बाँधि लए लङ्का में तौ का बड़ा हमारौ मौंय बँधै''

× × × ×

मदारी के ढोले में जहाँ मदारी के सम्बन्ध में भी हमें कुछ विदित होता है, वहाँ ढोला की वर्णन-शैली का भी प्रत्यक्ष परिचय मिल जाता है। किस प्रकार कुशल कथाकार की भाँति लोक-कवि लोक-विश्वासों के आधार पर किसी भी योग को टालता चला जाता है; और सुनने वाला जब हर बार यह आशा करता है कि अब इस बार मारू अवश्य ढोला के पास पहुँच जायगी, और दोनों वियोगी

[1] हीर रांझे में भी राँझा ने हीर से ऐसे ही पानी खींच कर पिलाने के लिए कहा है। हीर ने भी इसी प्रकार अपने सत का परिचय दिया है।

मिलेंगे, तभी हर बार वह निराश होता है। इस प्रकार धैर्य की कड़ी परीक्षा करता है; साथ ही जहाँ धैर्य की सीमा पहुँची दीखती है, वहीं कुछ अद्भुत प्रसङ्ग उपस्थित कर देता है। पहले तो भली प्रकार यह परीक्षा करनी ही चाहिए थी कि यह ढोला ही है, या कोई छली। तब 'सत' की परीक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। वह 'सत' मारू को ही नहीं दिखाना पड़ा, ढोला को भी दिखाना पड़ा। इस परीक्षा-विधान में इसने नाँइन, बनैनी, बामनी आदि नायिकाओं के वर्णन का भी अवसर निकाल लिया है। प्रेम-गाथा का प्रसिद्ध तोता यहाँ भी निरन्तर उपस्थित है; ढोला को वही मार्ग बता रहा है।

यह तोता तो स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले ढोला-विषयक एक छोटे लोक-गीत में भी मिल जाता है। उस छोटे गीत में भी मारू ने चिट्ठी देकर ढोला के पास सन्देश भेजा है। ढोला करहा पर चढ़ कर आया है, उसका धूमधाम से स्वागत-सत्कार हुआ है। लोक-गीत का आने वाला नायक बिना लपझप सिकी पूरियाँ खाये कैसे रह सकता है? आखिर मारू की बिदा का भी दृश्य इस छोटे गीत में आ ही गया है, सम्भवतः उसीको प्रस्तुत करना इस लोक-कवि को अभीष्ट था। इस गीत में ढोला-मारू की कथा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसका घरेलू वातावरण। मारू ननद है, उसकी भावज से लड़ाई हो गयी है। माँ से पूछती है मारू, मेरा विवाह कहाँ हुआ है? तब वह पत्र भेजा है। जब मारू बिदा हो रही है तब की ये पंक्तियाँ जो इस गीत की अन्तिम पंक्तियाँ हैं कितनी मार्मिक हैं—

"लाड़ो भौतु रही रे प्यौसार
तिहारे भटकि मरे ऐं भरतार
लाड़ो झटपट करौ सिंगार
भैया मिलि लेउ हियरा लगाय
बेटी तौ जाँत्यै सासुरे
भावज मिलि लेउ घुँघटा पसारि
तिहारे तौ मन के चीते है गये
भावज मिलि लेउ मुँहड़ौ सकोरि
घूँघट तौ रोओ मन हँसौ
लाड़ो करि दई तैयारी ससुरारि की
चली ऐं अपने देस कूँ।"

ढोले के समान ही जाहरपीर और जगदेव के गीत हैं, पर ये न तो इतने रोचक बन सके न इतने लोक प्रिय। इनका विशेष प्रभाव भी जन-जीवन में नहीं दीखता। उधर ढोला स्त्रियों के गीतों का भी साधारण विषय बन गया है।

ढोला महागीत के उपरान्त किसी अन्य प्रबन्ध-गीत की चर्चा रुचिकर नहीं हो सकती, पर दो छोटे-छोटे प्रबन्ध-गीतों का उल्लेख तो कर देना ही उचित है। इनमें से एक है 'लव-कुश जन्म'। सीता को बन में बिलखता देखकर एक चिड़िया के करुणा जागृत हुई—

"उड़ी विहङ्गम चिड़ी जाय सीता समझाई"—इस चिड़िया ने सीता को बताया कि बन में एक बाल-यती रहते हैं, तुम वहाँ शरण लो। चिड़िया ने मार्ग बतलाया। सीता मढ़ी में घुस गयी, द्वार पर शिला जमा दी। बाल-यती का ध्यान टूटा, देखें तो मढ़ी का द्वार ही नहीं दीखता। शिला खोलना उनके वश की बात नहीं। सीता ने कहा मेरे पुत्र बन में हुए हैं। अयोध्या में होते तो द्रव्य लुटाये जाते, भले ही बुरी थी पर ननद साँतिए रखतीं, कौशिल्या मङ्गलाचार करतीं। बाल-यती ने कहा बेटी, चिन्ता मत करो, उनसे कम यहाँ भी न होगा।

"कहै धरवाऊँ साँतिए
कहै तौ मङ्गलाचार
कै नीसान पुराऊँ बेटी
तपसीन के दरबार"

लोक-वार्त्ता में पशु-पक्षियों का जो रूप रहता है, वह इस गीत में भी विद्यमान है। शिला का उल्लेख भी लोक-वार्त्ता की परम्परा है। कितनी ही कहानियों में शिला की ऐसी आन मिलती है। इनमें साहित्य में वर्णित 'लव-कुश' जन्म से कितना सर्वथा भिन्न वातावरण है। बन-प्रदेश का सुनसान-एकान्त कवि ने कैसा इस गीत में 'चिड़ी' के द्वारा अङ्कित कर दिया है? तापस-आश्रम भी तापस-आश्रम ही मिलता है। इतना सहज और साधारण होते हुए भी इसका वर्णन आकर्षक है। दूसरा गीत यहाँ दिया जाता है, पूरा—जैसा मिला है वैसा ही। यह गीत एक लोक-कथा को ही गीत के माध्यम से प्रकट कर रहा है। यह जैसे 'हिरनावती' कहानी का एक अंश हो:

राजा की रानी गरभ ते
तौ जे नौ, जे दस माँस, गरभ पूरे भये ।
सासु ननदिया जगाइऐ, और जिठानी जगाइए ।
ए बहु देउ कुठीला में मूँड़, कोठी में पाँय आँखिन पट्टी बाँधिए,
ए ज्वाकें जबर भये हीरालाल, ललन घूरे डरवाइए ।
ज्वानें काँकर पाथर धरे एँ लाइ, महल उदासी छाइए ।
बाहिर ते आये राजा नाह, "अम्मा महल उदासी चों छाइए ।"
"बेटा तिहारी धन काँकर पाथर जनमिए, महल उदासी ज्योंभई ।"
बीर गैल में निकरी ऐ मालिअरे की धीअ ।
धोइ पोंछि लाला गोदी लै लए, राजा के महल में क्रोध-विरोध
माली कें अनन्द बधायने ।
जब र कुमर भए एक बरस के, सरकि रसोइन जाँय ।
जब र कुमर भये द्वै रे बरस के खेलन द्वार पै जाँय ।
जब र कुमर भये तीनि बरस के माँटी के खेल बनाइऐ ।
जब र कुमर भये चारि बरस के बाहिर तमासौ देखन जाँय ।
राजा नें हुकमु चढ़ाइऐ, "जा रानी ऐ रथ में, जा रानी ऐ रथ में जोरिऐ ।"
जब रे कुमर भए पाँच बरस के रथ कौ तमासौ देखन जाँय ।
जब रे रथु कुण्डनु आयौ, माटी के घुड़िलिनु लै लाला पहुँचिये
"अरे रथवान के बधिवा ऐ अलग हटाइ, मेरे घुड़िला पानी पी रहे ।"
"हटि रे बालक हट मानिए, माँटी के घुड़िलन पानी न पीइऐ ।"
"अरे रथ मुगल गमारिया, बय्यरि रथ में न जोरिये ।"
बागन ते मालिन बोलिऐं, "बेटा रथ कौ तमासौ कहा देखिऐ ।
तेरी मय्या रथ में जुरि रहीं ।"
"अन्नु न खाँऊँ मैया पानी न पीऊँ जाकौ भेद बताइए ।"
अन्नु जु खाऔ बेटा पानी जौ पीऔ, मैं सबरौ भेद बताइए ।
लाला तिहारी रे माय गरभतें ते, गरभ पूरे भये ।
जब और जिठानी जगाइए ।
लाला जब रे तुम भये हीरालाल, ताई नें घूरे डरवाइये ।
काँकर पाथर लाइ धरे, राजा नें हुकमु चढ़ाइए ।
तिहारी मैया रथ में जोरी ऐ ।

लाला हम निकरे गैल जु आपनी, धोय पोंछि गोदी लए।
जब रथ गैलन आयौ, "रथमान रथ कूँ ड्याई से डाटिए।"
और जलदी ते देउ खुलवाइ।
"कोखि नाएँ बेटा, पाठि नाएँ भय्या, मेरौ रथ किननें डाटिए"
"मैया ताते सारे पानी धरवाइ, मेरी मैया ऐ उबटि न्हवाइऐ।"
"कौन रजन के तुम बेटा औ कहियौ, कहाँ तुमारौ गामु।
कौन मातु तुमें जनमिरे और कहा पिता कौ नामु।"
छोटौ ललनु मेरौ नाम ऐ बागन बिच मेरौ गामु।
मालिन मेरी माय और पिता कौ नामु न जानिऐ।
छूटत दूधन धार, ललन जी के मुख परी।
"मालिन तोइ डारूँ मरवाय, जाओ अरथु बताइए।"
"राजा काए कूँ डारौ मरवाय, धूरन लाल जु पाइऐ।
तुम राजा असलि गमार, कहूँ काँकर पाथर नाँइ जनमिए।"
राजा कुमरु जौ गोदी लै लए, लाला कुमरु सुनामत बात।
'राजा आधौ राजु मालिन कूँ दीजिऐ, जिन मेरौ जनमु सम्हारिए।
ताई ऐ चौराहे पै देउ गड़वाय गुरु रे लपेटि कुत्ता छुड़वाइए।
मेरी मैया ऐ दुख जो दीजिऐ।"

यह प्रबन्ध-गीतों का संक्षिप्त अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि लोक-जीवन अपने छोटे और बड़े भावों को प्रकट करने में कितना सक्षम है। गीत मानव-जीवन की प्रत्येक गति के साथ रमा हुआ है। इसमें उसकी जाति-परम्परा के भाव, उसका स्वभाव, उसकी कल्पना, उसके विश्वास, उपचार-अनुष्ठान सभी का मर्म अभिव्यक्त हो रहा है। गीत लोक-जीवन के मार्मिक चिह्न हैं।

चतुर्थ अध्याय

लोक-कहानियाँ

(अ) पूर्व पीठिका

भारत में लोक-कहानियाँ—लोक-गीत की चर्चा करते हुए, हमने कुछ लोक-कहानियों का भी परिचय प्राप्त किया है। 'ढोला' प्रबन्ध-गीत लोक-कहानी ही है। लोक-कहानियाँ गेय ही नहीं होतीं, मौखिक वार्त्ता अथवा गद्य रूप में भी होती हैं, यह हम द्वितीय अध्याय में भली प्रकार देख चुके हैं। इस अध्याय में ऐसी ही कहानियों पर विशेष विचार करना है। आज ब्रज में जो लोक-कहानियाँ प्रचलित हैं, वे जैसा प्रायः सभी लोक-साहित्य का स्वभाव है, बड़ी गहरी जड़ें रखती हैं। उनकी परम्परा देश-विदेशों में भी देखी जा सकती है, और अपने देश में भी उनका एक इतिहास पाया जा सकता है। कहानियों का यथार्थ इतिहास तो उनके विकास की विविध अवस्थाओं का निरूपण करके यह प्रकट करने में है कि कौनसी कहानी कब, कहाँ से, क्यों उदय हुई और कैसे? किन-किन अवस्थाओं में विकृत-संस्कृत होते-होते आज के रूप में आयी है। यह कार्य बहुत महत्व का तो है ही, बहुत भारी भी है और एक व्यक्ति का नहीं अनेकों का वर्षों का परिश्रम ही इस दिशा में कुछ सफलता दिला सकता है। यहाँ तो हम बहुत संक्षेप में इस विषय की रूपरेखा का ही परिचय दे सकते हैं।

लोक-कहानियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति—भारतवर्ष कहानियों का देश माना गया है। ये लोक-कहानियाँ प्रायः समस्त भारत में ही नहीं समस्त संसार में व्याप्त मिलती हैं। जो ब्रज में

मिलती हैं, वे बंगाल, बुन्देलखण्ड, दक्षिण भारत में ही नहीं, जर्मनी, इटली आदि में भी मिलती हैं। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने यह माना है कि इन कहानियों का मूल उद्गम् भारत में हुआ। यद्यपि इस मत को सभी विद्वानों ने ग्रहण नहीं किया है, बाद में ऐसे भी व्यक्ति हुए जिन्होंने कहानी का उद्गम अन्य प्रदेशों में भी सिद्ध करने की चेष्टा की, फिर भी इस विवाद से भी भारत का महत्व कम नहीं हुआ। भारत में लोक-कहानियों की 'साहित्यिक' अभिव्यक्ति की एक परम्परा विद्यमान मिलती है। प्रथम अध्याय में हम धर्म-गाथा से लोक-गाथा और लोक-कहानी के उद्गम की कुछ चर्चा कर चुके हैं। वेद विश्व-साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक है। उसके कितने ही वृत्त कहानी के रूप में हैं। यहाँ कहानियाँ भी हैं[1] और कहानी के बीज भी हैं[2]। भारत में जो यह विश्वास प्रचलित है कि पुराण वेदों की व्याख्या करते हैं, विना पुराणों के वेद समझे नहीं जा सकते, यह बिल्कुल निराधार नहीं। लोक-दृष्टि से वैदिक देवों की व्याख्या पुराणों में देखी जा सकती है। इस सबसे यही सिद्ध होता है कि वेदों की बीज कहा-नियाँ ही पुराणों की कथाओं में पल्लवित-पुष्पित हुई हैं। इस प्रक्रिया में बहुत कुछ उलट-फेर हुई, इसमें सन्देह नहीं। वेदों में जिन देवताओं का विशेष महत्व था वे गौण हो गये, जो गौण थे वे महत्वशाली हो गये। यही नहीं ब्रह्मदेव, शंकर, लक्ष्मी, पार्वती, कुबेर, दत्तात्रेय जैसे नये देवता भी प्रकट हुए और पुराण-कथा में लोक-वार्त्ता के प्रभाव को सिद्ध करने लगे। इस नये प्रभाव के कारण वैदिक देवताओं का कहीं-कहीं अपमानजनक चित्रण भी हुआ। यह सब विकासावस्था की ही परिणतियाँ हैं। इन सबके मूल, जिनके आधार पर पुराण कथायें पल्लवित हुई, प्रायः वेदों में देखे जा सकते हैं। विशेषतः उन लोक-वार्त्ताओं के मूल जिनका सम्बन्ध सौर-परिवार से है; भले ही यह सम्बन्ध 'शब्द' की अर्थ-शक्ति के श्लेष के कारण ही क्यों न हुआ हो। वैदिक साहित्य में वेद ही नहीं, आरण्यक, ब्राह्मण और उप-निषद् सभी सम्मिलित होते हैं।

वैदिक बीज : वरुण—यदि समस्त वैदिक साहित्य को लिया जाय तो वेद की ऋचाओं के बीज से एक पूर्ण कथा का विकास

[1] देखिये हिन्दी में प्रकाशित 'वैदिक कहानियाँ'

[2] देखिये प्रथम अध्याय।

इस साहित्य में भी मिल जाता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में 'वरुण' की वह प्रार्थना ली जा सकती है जो शुनःशेप ने की है। ऋग्वेद में इसका कोई वृत्त नहीं मिलता। आगे उपनिषदों तक पहुँचते-पहुँचते इसका एक अच्छा कथानक बन गया है। इसमें 'वरुण' ने हरिश्चन्द्र को रोहित इस शर्त पर दिया कि वह अपना पुत्र उसे प्रदान कर देगा। रोहित उत्पन्न हुआ, वरुण ने उसे कई बार टाला अन्त में रोहित बन में चला गया। वहाँ अजीगर्त को कुछ गौएँ देकर शुनःशेप को उसने रोहित के स्थान पर बलि देने के लिए क्रय कर लिया। कुछ और गायों के लोभ में अजीगर्त स्वयं ही शुनशेःप की बलि चढ़ाने के लिए तत्पर हो गया। विश्वामित्र ने उसे अपना पुत्र बनाया और वरुण से प्रार्थना कर मुक्त कर दिया। यह कथा बड़ी महत्त्वपूर्ण है। राज्याभिषेक के अवसर पर इस वेदांश का पाठ इसके अर्थगौरव को और भी बढ़ा देता है[1]। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों से शुनःशेप के बलिदान की कहानी तो वैदिक साहित्य में ही प्रस्तुत हो गई। लोकवार्ता में इसने और भी रूप बदला। यदि अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो यही कहानी 'सत्य-हरिश्चन्द्र' की प्रसिद्ध लोक-गाथा बनी है। प्रायः नाम सभी वैदिक हैं। हरिश्चन्द्र हैं ही, रोहित रोहिताश्व हो गया है, विश्वामित्र बदल नहीं सके। वैदिक कहानी के मूल में दो तत्त्व थे, विश्वामित्र का का शुनःशेप के पक्ष में हरिश्चन्द्र के यज्ञ का विरोध। इससे लोकवार्ता को यह सूत्र मिला कि विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के विरोधी थे। रोहित बन-बन मारा-मारा फिरा, वरुण जब तब आकर अपनी बलि माँगने लगा। इस तत्त्व में बहुत परिवर्तन हुआ। आगे वैदिक देवताओं का जो विकास हुआ उसमें 'वरुण' का कोई स्थान नहीं रहा; कहानी में भी वह स्थान कैसे रहता। 'वरुण' हरिश्चन्द्र से बलि माँगता था, उसका स्थान 'विश्वामित्र' को ही मिला। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र से बार-बार दक्षिणा माँगने आते हैं। 'रोहित' का बन-बन डोलना, हरिश्चन्द्र के सकुटुम्ब काशी जाने के रूप में बदला। दूसरा प्रधान-तत्त्व है 'रोहित' के स्थान पर शुनःशेप की बलि की तय्यारी, कुछ ही क्षण शेष हैं कि उसकी बलि करदी जायगी तभी विश्वामित्र आदि की प्रार्थना से वरुण द्वारा उसकी मुक्ति। लोक-गाथा या धर्म-गाथा में रोहित ही शुनःशेप बना है, उसे सर्प ने काटा है, वह मर गया है। अजीगर्त और बलि का

[1] विलियम ऐच० राबर्सन लिखित 'दी गोल्डन लीजेंड आफ इण्डिया की भूमिका

काण्ड लोक-गाथा के ब्राह्मण और सर्प के रूप में हो गया है। यहाँ भी देवताओं ने उसे प्राणदान दिया है।

आगे के विकास में मूलतः यही 'वरुण'-कथा 'सत्यनारायण' की कथा में बदली है। दोनों के प्रधान तत्त्व यहाँ तुलना की दृष्टि से दिये जाते हैं—

१—हरिश्चन्द्र वरुण से पुत्र की याचना करता है, वरुण उसे पुत्र देता है। किन्तु यह वचन ले लेता है कि वह उस पुत्र को वरुण को दे देगा।	१—सेठ पुत्र-कामना से सत्य-नारायण की पूजा का सङ्कल्प करता है।
२—पुत्र होता है, वरुण माँगता है। हरिश्चन्द्र उसे कभी कोई बहाना बना कर कभी कोई बहाना बना कर टालता जाता है।	२—पुत्री होती है। सेठ कथा को टालता जाता है। कभी किसी बहाने, कभी किसी बहाने।
३—रोहित वरुण से बचने के लिए घर छोड़ कर बन में चला जाता है।	३—पुत्री का विवाह हो जाता है। अब जामातृ ने रोहित का स्थान ले लिया। सेठ जामातृ के साथ व्यापार के लिए वहाँ से बाहर चला जाता है।
४—रोहित कोई चारा नहीं देखता तो अपने स्थान पर शुनःशेप की बलि देने को प्रस्तुत होता है।	४—कई सङ्कटों के बाद सत्य-नारायण की मानता करते हुए जब ये घर लौटते हैं, तो जामातृ के साथ नाव पानी में डूब जाती है।
५—विश्वामित्र आदि की प्रार्थना से प्रसन्न वरुण शुनःशेप के रूप में रोहित को मुक्त कर देता है।	५—कथा द्वारा पूजा की सविधि पूर्णता से प्रसन्न सत्यनारा-यण जामातृ को पुनः प्रकट कर देते हैं।

देवताओं के विकास में 'वरुण' विशेषतः जल के देवता ही रह गये हैं। सेठ की कहानी में अधिकांशतः सत्यनारायण की कृपा की अभिव्यक्ति जल में ही हुई है। लोक-वार्ता में कथा की सृष्टि करने वाला

'सत्यनारायण'[1] में हमें उसी 'वरुण' के दर्शन कराता मिलता है।

इससे और आगे इस कथा के 'पुत्र-दान' वाले अंश ने तो एकानेक रूप ग्रहण किये हैं। 'वरुण' का स्थान कहीं किसी देवता ने ले लिया है, कहीं किसी सिद्ध पुरुष ने। जिस सम्प्रदाय ने इस कथा-वस्तु को ग्रहण किया उसने अपने अनुकूल ही 'वरुण' के स्थान पर किसी अपने इष्ट को स्थानापन्न कर दिया। गोरखपन्थियों के प्रभाव से प्रभावित कहानियों में यह कार्य सिद्ध ही करते मिलते हैं, बहुधा स्वयं गोरख या उनके कोई पहुँचे शिष्य। किन्तु ब्रज में प्रचलित एक कहानी में लोक-मानस ने इस 'वरुण' को दानव का रूप भी प्रदान कर दिया है। दाना बाबाजी बनके आता है, पुत्र का वरदान देता है, पर कहता है पुत्र मुझे देना पड़ेगा। आखिर बाबाजी पुत्र का क्या करेगा? वरुण को तो उसकी बलि दी जाती, बाबाजी वरुण तो हो नहीं सकता। तब वह उसे खायेगा, मनुष्य को खाने वाला 'दानव या दाना'। लोक-मानस में कहानी की रूप-रेखा ठीक हो गयी, और 'वरुण' को यहाँ 'दाना' बनना ही पड़ा। अब वह 'तेल के कड़ाह' में पका कर उस बालक को खायेगा। उस बालक से सात परिक्रमायें भी करायेगा। 'दाना' तो बना, पर लोक-मानस उसे भी धार्मिक कर्म-काण्डी बना गया। यह दाना वह दाना नहीं जो अन्य कहानियों में मनुष्यों को यों ही बिना किसी अनुष्ठान के मार-मार कर खा जाता है। 'तेल का कड़ाह' यज्ञ का प्रतीक है, सात परिक्रमा उसे और भी धार्मिक रंग दे देती हैं। इस कहानी में कहीं तो वह बालक मारा जाता है, और बाद में उसका बड़ा या छोटा भाई आकर उसे पुनरुज्जीवित करता है, दाने को मारता है, कहीं स्वयं बालक ही दाने को अपने स्थान पर तेल के कड़ाह में डाल देता है, और यहाँ वरुणत्व के

[1] 'सत्यनारायण' शब्द में भी 'वरुण' का अर्थ दीखता है। 'सत्य' और 'ऋत' वेद में 'अनृत' के विरुद्ध भाव रखते हैं। ऋत वेदों में प्रायः तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है : तीनों अर्थ परस्पर सुसम्बद्ध हैं। एक अर्थ ऋत का 'सत्य' भी है; तभी जो सत्य नहीं है उसे 'अनृत' कहा जाता है। वरुण 'ऋत' का स्वामी है, ऋत का रक्षक, ऋत का उद्गम (ऋतस्य, २, २८, ५) कहा गया है। 'नारायण' शब्दतः 'नार+अयण' है। यह 'सिन्धुपति' का पर्याय माना जा सकता है। वेद में 'सिन्धुपति' शब्द मित्र और वरुण दोनों के लिए आया है।

द्योतक 'मणि मूँगा' हमें मिल जाते हैं। वह दाना कड़ाह में पड़ते ही मणि-मूँगा में परिणत हो जाता है। बालक हर दशा में शुनः शेप की भाँति ही मुक्त हुआ है। किसी-किसी उदार लोक-मानस ने उस बाबा जी को दाना न बनाकर जादूगर ही बना दिया है, वह बालक वहाँ विद्या सीखता है और अन्त में अपनी विद्या से अपने गुरु बाबाजी से झपटें करके और उसे मार कर अपने माता-पिता के पास आ जाता है। वरुण में दानवत्व का आरोप भी अकारण नहीं; उनका बीज ऋग्वेद में आये शब्दों में हमें मिलता है। वरुण के लिए वेद में 'असुर' शब्द का प्रयोग हुआ। भाषा-वैज्ञानिक जानते हैं कि यह 'असुर' जेन्दावस्ता का 'अहुर' है जो 'अहुरमज्द' नाम से जरथुस्त्र मतावलम्बियों के लिए 'वरुण' जैसा ही प्रधान देवता है। 'असुर' शब्दार्थतः शक्तिशाली व्यक्ति को कहा जायगा; किन्तु 'सुरों' के विरोध में आगे चलकर 'असुरों' की जो कल्पना हुई उससे यह शब्द राक्षस और दानव का अर्थ देने लगे तो आश्चर्य की बात नहीं। वरुण को ऋग्वेद ने मायिन भी बताया है, 'प्रति यचष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात।" यही मायावी वरुण कभी बाबाजी बन जाय, और जादू आदि के विविध चमत्कार दिखाये तो अपने विकास के मार्ग से दूर नहीं पड़ेगा। यह 'वरुण' की कहानी का एक रूप है। इनमें वरुण का उल्लेख कहीं भी प्रत्यक्ष नहीं हुआ। किन्तु ब्रज में एक ऐसी भी कहानी मिलती है, जिसमें इस देवता का नाम भी सुरक्षित है। यह कहानी 'कार्तिक' में 'कार्तिक-स्नान' के अनुष्ठान में स्त्रियाँ कहती सुनती हैं। यह कहानी 'वरन विंदाक' की कहानी कही जाती है। यह 'वरन' 'वरुण' के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? विंदाक तो 'वृंदारक' है ही। 'वरन विंदाक' की कहानी में निम्नलिखित मुख्य बातें हैं:—

१—एक राजा की बेटी : फूलों से तुलती : कार्तिक स्नान करती पर वरन-विंदाक की कहानी न सुनती : इस पर 'वरन-विंदाक' रुष्ट हुआ।

२—दूसरे दिन इस देवता ने जल में इसका पैर छू दिया। अब वह फूलों से पूरी न तुली : इससे देवता का क्रोध विदित हुआ।

३—देवता से प्रार्थना की : वह प्रसन्न हुआ : उसने प्रायश्चित बताया।

४—प्रायश्चित यह था :

राजा की वह बेटी अपने भाई को साथ लेकर, काले कपड़े पहन, सबका उपहास सहते हुए धारा नगरी की यात्रा करे : धीरे-धीरे कपड़े सफेद होने लगेंगे। वहाँ पत्थर के किवाड़ मिलेंगे। उन्हें खोलने पर जल के घड़े और ध्वजा मिलेंगी। पानी पीये नहीं। ध्वजा लेकर दोनों लौटें। उपहास सहते आयें। ध्वजा मुफ पर चढ़ायें। कपड़े सफेद होने लगेंगे, कलङ्क छूट जायगा।

५—यही उन्होंने किया, और कलङ्क से मुक्त हुए।

'वरन' शब्द के अतिरिक्त इस कहानी की ऊपरी रूपरेखा में 'वरुण' सम्बन्धी कोई बात नहीं दीखती। सत्यनारायण की कथा के तन्तुओं में तो 'शुनःशेप' की कहानी के तन्तुओं से किसी सीमा तक सादृश्य भी था, यहाँ वह भी नहीं मिलता। कुछ बातें अवश्य 'वरुण' की ओर संकेत करती हैं। इस कहानी के 'वरन विंदाक' का भी जल से सम्बन्ध है। यह भी राजा की बेटी के 'सत' के द्वारा उसके धर्म ऋत् का प्रतिपालक है, क्योंकि उसके रुष्ट होने पर राजा की बेटी जो फूलों से तुलती थी, न तुल सकी। यहाँ भी देवता अपना उचित भाग न पाने के कारण रुष्ट हुआ है। इस रोष का मूल वह वैदिक भाव है जो 'वरुण' को व्रत-अभिरक्षक मानता है : "वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभिरक्षते सदा", यह न्यायकर्त्ता है 'धृतव्रत' है। रानी की बेटी फूल से न तुल सकी, उसने सोचा मैंने क्या पाप किया है—जैसे वेद के इस मन्त्र का भाव ही यहाँ ज्यों का त्यों लोकवार्त्ता में विद्यमान हो :

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुर यं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ।

[ऋ० ७, ८८, ३]

यह भी असंदिग्ध है कि वरुण प्रार्थना से संतुष्ट होता है, और अपराध का प्रायश्चित चाहता है। प्रायश्चित कर लेने पर वह प्रसन्न होता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद में हमें वे बीज और विन्दु, और किसी सीमा तक उनका विकास मिलता है, जो संसार की लोक-वार्त्ता और लोक-कहानी के एक विशद भाग का

मूलाधार है। अनेकों लोक-कहानियों का मूल, वेदों के द्वारा सौर-देवताओं में पाया जा सकता है, पाया भी गया है।[1] हम यहाँ इतने विस्तार से इस विषय की चर्चा नहीं कर सकते। कुछ प्रमुख वैदिक-कहानियों की रूप-रेखा ऊपर प्रथम अध्याय में तथा यहाँ प्रस्तुत करदी गयी है। मैक्समूलर तथा उसकी शाखा के विद्वानों का यह अभिमत है कि इन वैदिक दिव्य देवताओं की कहानियाँ, वेदों से भी पुरानी हैं। इन वार्त्ताओं का मूल ढाँचा विविध आर्य-परिवारों के एक दूसरे से पृथक होने से पूर्व ही गढ़ा जा चुका था। यह हमारी शोध का विषय नहीं। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वेदों में जो संकेतात्मक उल्लेख हैं उनसे तत्संबन्धी उस काल में ज्ञात किसी कहानी के विकसित रूप का ही पता चलता है। वेदों में अनेकों कथायें हैं। वरुण, इन्द्र, सूर्य, उषा, आदि के संबन्ध में वैदिक कथाओं का कुछ उल्लेख यहाँ हुआ ही है। 'अश्विन' जो बाद में अश्विनीकुमार हो गये की कथा कम आकर्षक और विचित्र नहीं।[2] वेदों में जो आख्यान मिलते हैं उनसे तो विद्वानों ने नाटक के मूल की कल्पना की है।[3] इन आख्यानों में से प्रसिद्ध आख्यान हैं पुरूरवा तथा उर्वशी का, यम-यमी का। अगस्त और लोपामुद्रा की कहानी भी इसी वर्ग की है। वेद और वैदिक-साहित्य की इन कहानियों को हम उपनिषद्-काल से पूर्व की कह सकते हैं। उपनिषदों में इसे कुछ नया रूप मिलता है।

उपनिषद-कहानी—गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद, सत्यकाम जाबाल, प्रवाहण तथा अश्वमति की कहानियाँ उपनिषद्-युग में मिलती हैं। वैदिक-काल की कहानियाँ किसी न किसी रूप में यज्ञ की विधि और अनुष्ठान से अथवा स्तुतियों (जैसे दान-स्तुतियाँ) से सम्बन्धित थीं। विविध देवताओं के कृत्य ही इन कहानियों के विशेष विषय थे। उपनिषद्-काल की कहानियों में यह अलौकिकता और आनुष्ठानिक स्वरूप नहीं मिलता। देवताओं का स्थान राजा या

[1] देखिये 'दी माइथालाजी आव दी आर्यन नेशन्स', लेखक रेवरंड सर जी० डब्ल्यू कॉक्स तथा इस पुस्तक का प्रथम अध्याय।

[2] देखिये 'घटेज़ लैक्चर्स ग्रान ऋग्वेद' अध्याय ३, पृष्ठ ७० तथा व्याख्यान आठवाँ, तथा नवाँ।

[3] 'वैदिक आख्यान' लेखक जे० बी० कीथ० तथा 'दी संस्कृत ड्रामा' लेखक वही।

ऋषिपुत्र ने ग्रहण किया है। इन उपनिषदों में 'दृष्टान्त' कहानियों का भी उपयोग हुआ है। केन उपनिषद में आई दिव्य पुरुष सम्बन्धी रोचक कहानी कौन भूल सकता है। कठोपनिषद् भी स्वयं एक कहानी है, जो हिन्दी में अपने दार्शनिक पक्ष को गौण करके 'नासिकेतोपाख्यान' के रूप में सदल मिश्र द्वारा संस्कृत से अनुवाद द्वारा लायी गयी है। उपनिषद् युग प्रबल चिन्तन का युग था। फलतः 'कहानी' के निर्माण की प्रेरणा इस युग में दुर्बल हो गयी थी। किन्तु इस युग के बाद जो युग आता है, उसने तो कहानी को इतना महत्व दिया कि वही सब प्रकार के भावों का माध्यम बन गयी। यथार्थ में 'कहानी' की वास्तविक प्रतिष्ठा इसी युग में हुई।

रामायण-महाभारत—यह युग रामायण-महाभारत का युग कहा जा सकता है। रामायण और महाभारत पौराणिक-युग के पूर्वगामी महाकाव्य हैं। रामायण और महाभारत के स्वभाव में बहुत अन्तर है। रामायण प्रायः एक ही सुसम्बद्ध कथानक है। इतना होते हुए भी सन्दर्भ की भाँति इसमें भी कई कहानियाँ और विरोधी मिलती हैं। 'गंगावतरण' तथा 'गौतम पत्नी अहल्या' की दो प्रसिद्ध कहानियाँ तो बालकाण्ड में ही मिल जाती हैं। और भी छोटी-बड़ी कहानियाँ इसमें मिलती हैं। 'महाभारत' तो कहानियों का बृहत्-कोष ही है। इसमें कहानियाँ मूल कथा सूत्र से घनिष्ठतः सम्बद्ध नहीं। उसमें एकानेक उद्देश्य और अभिप्राय वाली अनेकानेक कहानियाँ हैं, जो कहीं तो मुख्य कथा-वस्तु की प्रासंगिक वस्तु का काम देती हैं, कहीं दृष्टान्त की भाँति हैं। कहीं पूर्वेतिहास के रूप में हैं, और इनके द्वारा नीति और राजनीति, धर्म और समाज, प्रेम और मर्यादा के न जाने कितने सत्य और तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। इस महाभारत में इतिहास और लोकवार्त्ता के तथ्य इतने घुले-मिले हैं कि उसके पात्रों के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी सन्देह होने लगता है। ऐसे विचारों का यह परिणाम है कि कुछ विद्वान कृष्ण, युधिष्ठिर आदि को काल्पनिक अनैतिहासिक व्यक्ति मानते हैं। 'महाभारत' का हमारे यहाँ अत्यन्त महत्व है। धर्म और समाज का तथा हमारे इतिहास और विश्वास का यह स्रोत है। अनेकों महाकवियों को इसमें से अपने काव्यों के लिए अखण्ड सामग्री और प्रेरणा प्राप्त हुई है। हमें यहाँ इसके ऐतिहासिक मूल्य का विचार नहीं करना है। हम यहाँ यह भी नहीं कहना चाहते कि महा-

भारत आदि से अन्त तक मात्र कहानी-कथा का ही संग्रह है। किन्तु लोक-वार्त्ता का रूप उसमें प्रकट हुआ है, यह निर्विवाद है। उसमें प्रधान वस्तु के साथ दृष्टान्त स्वरूप अनेकों आख्यान और उपाख्यान आये हैं। ये आख्यान और उपाख्यान महाभारत से भी पहले की लोक प्रचलित कथायें ही हैं। वनपर्व में 'नल' की कथा ऐसी ही है। इस कथा का उपयोग युधिष्ठिर को दुःख में धैर्य और आशा जागृत करने के लिए किया गया है। इसी प्रकार शान्तिपर्व में विशेष उपदेशों को हृदयङ्गम कराने के लिए कहानियों और उपाख्यानों को दृष्टान्त स्वरूप दिया गया है। उपाख्यानों का महाभारत में क्या मूल्य है इसे तो महाभारत की साक्षी से ही समझा जा सकता है। आदि पर्व १|१०२ में कहा गया :—

> चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्।
> उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है महाभारत के एक लाख श्लोकों में से २४००० श्लोक में प्रधान वस्तु है। शेष '७६०००' में उपाख्यान हैं। एक चौथाई मूल कथा को तीन चौथाई उपाख्यानों के साथ महाकवि ने पल्लवित कर 'महाभारत' का निर्माण किया है। महाभारत में एक नहीं अनेकों लोक-वार्त्ता के रोचक तत्व मिलते हैं, जो विविध रूपों में विविध लोक-वार्त्ताओं और कथाओं में मिल जाते हैं। 'कर्ण' का नदी में बहाये जाना, उसका सूत द्वारा पालन वह सूत्र है जो अनेकों ब्रज की कहानियों में आज भी मिलता है। 'हिरणावती' की कहानी में ही नहीं, एक लोक-गीत-कहानी में भी एक राजा की रानी के पुत्र को उसकी सपत्नियाँ घूरे पर फिकवा देती हैं, उसे कुम्हार पालता है। वीर विक्रमादित्य की एक कहानी में भी इसी प्रकार उस लड़की के पुत्र को सपत्नियाँ घूरे पर फिकवा देती हैं जिसने यह भविष्यवाणी की थी कि उसके जो लड़का होगा वह लाल डालेगा। इन कहानियों में घूरे का उल्लेख है, अन्य कई कहानियों में इसी प्रकार नदी का भी उल्लेख है। भीम की कहानी तो लोक-वार्त्ता की सार्वभौम संपत्ति है। भीम से विकल होकर कौरवों ने उसे विष खिलाकर गंगा में पटक दिया। भीम पाताल में नागों के लोक में जा पहुँचा। सर्पों ने उसे काट लिया। अब तो एक विष ने दूसरे को नष्ट कर दिया। भीम जग पड़ा, उसने सर्पों को खूब मारा। वासुकि ने इस पराक्रमी मानवी बालक को

देखने की उत्कण्ठा उदय हुई। वासुकि के साथ आर्यक भी था। आर्यक भीम की माता का प्रपितामह था। वह वासुकि का भी अत्यन्त प्रिय था। वासुकि ने आर्यक के इस सम्बन्धी को मनचाही वस्तु भेंट करने की इच्छा प्रकट की। आर्यक ने कहा कि भीम को आप अमृत पी लेने दें। भीम ने आठ कटोरे यह शक्तिप्रद जल पीया। जल में गिरकर सर्प-लोक पहुँचने की वार्त्ता एक में नहीं, अनेकों कहानियों में मिलती है। 'वासुकि' के प्रसन्न होकर कुछ देने की बात भी साथ ही रहती है। ब्रज की प्रसिद्ध लोक-गीत कहानी 'ढोला' में इसी प्रकार समुद्र में फेंक देने पर नल वासुकि के पास पहुँचा है। वहाँ उसने वह अँगूठी प्राप्त की है जिससे वह अपने मनोनुकूल चाहे जैसा रूप धारण कर सकता है। 'नाग पंचमी' की कहानियों में भी साँपों के भाई बनने की बात आती है। इसी प्रकार अनेकों लोक-वार्ता के परिपक्व तन्तु महाभारत में मिलते हैं, जिनके प्रयोग से महाभारत के महाकवि ने अपने प्रकृत कथानक को अद्भुत और रोचक बनाया है।

महाभारत की भाँति पुराणों में भी कथा साहित्य का अखण्ड-भण्डार भरा पड़ा है। पर जैसा हम पहले अध्याय में कह चुके हैं; इनमें लोकवार्त्ता का अंश रहते हुए भी ये धर्म-गाथायें ही हैं। इनसे भारत की भावनाओं का घनिष्ठ धार्मिक सम्बन्ध है।

बृहत्कथा—कथा-साहित्य की दृष्टि से शुद्ध लोक कहानियों का बृहत् संग्रह गुणाढ्य की पैशाची में लिखी 'बड्डकहा' है। यह बृहत्कथा आज अप्राप्य है। इसका संस्कृत अनुवाद 'कथा सरित्सागर' के रूप में आज तक मिलता है। यह ग्रन्थ वास्तव में कथाओं का सागर ही है। इसमें अति प्राचीन प्रचलित कहानियों का संग्रह है। महाभाष्य[1] में एक महाकाव्य, तीन आख्यायिकाओं और दो नाटकों का उल्लेख मिलता है। आख्यायिकायें ही लोक-कथायें हैं। ये लोक-कथायें हैं—वासवदत्ता सुमनोत्तरा, और चैत्ररथी। 'वासव-दत्ता' यथार्थ में उदयन की कथा का मूलाधार प्रतीत होती है। 'कालिदास' ने मेघ को बताया है कि जब वह उज्जयनी में पहुँचेगा तो उसे वहाँ 'उदयनकथा' कहने वाले वृद्ध मिलेंगे[2]। कथासरित्सागर का संक्षिप्त

[1] महर्षि पतञ्जलि-कृत महाभाष्य।

[2] उदयनकथा कोविद ग्रामवृद्धान्—मेघदूत।

विवरण यहाँ दे देना उचित प्रतीत होता है। कथा-सरित्सागर में अठारह खण्ड हैं, जिनमें १२४ अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय पूर्व पीठिका है। शिवजी ने एकान्त में पार्वतीजी को कहानियाँ सुनाईं। पार्वतीजी ने यह निषेध कर दिया था कि कोई भी उस समय उनके पास न जाय। किन्तु शिव के एक गण पुष्पदन्त ने छिप कर वे कहानियाँ सुन लीं। अपनी स्त्री जया को उसने वे कहानियाँ सुनादीं। जया ने पार्वती को वे फिर जा सुनाईं, तो रहस्य खुला। पार्वती ने रुष्ट होकर पुष्पदन्त को शाप दिया कि वह पृथ्वी पर मनुष्य योनि में जन्म ले। माल्यवान ने उसके पक्ष में कुछ कहना चाहा तो उसे भी वही शाप मिला। पार्वतीजी ने बताया कि एक यक्ष शापवश कुछ काल के लिए पिशाच बन गया है, जब पुष्पदन्त की उससे भेंट होगी, और उसे अपनी पूर्वस्थिति का स्मरण हो आयेगा, तब यदि वह पुष्पदन्त शिव से सुनी कहानियाँ उस पिशाच को सुना देगा तो अपने दिव्य-स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। माल्यवान इन्हीं कहानियों को उस पिशाच से सुनकर मुक्त हो जायगा।

पुष्पदन्त ने वररुचि का अवतार लिया, माल्यवान हुआ गुणाढ्य। वररुचि अनेकों आश्चर्य-जनक घटनाओं में से होता हुआ उस पिशाच से मिला। उसे वे कहानियाँ सुना कर शाप मुक्त हुआ। इसी प्रकार गुणाढ्य पिशाच से मिला, उससे वे कहानियाँ सुनीं, उन्हें पैशाची में लिखा और सातवाहन राजा को भेंट-स्वरूप देने लेगया। राजा ने उन्हें स्वीकार नहीं किया, तो पशु-पक्षियों को सुना-सुना कर एक-एक पृष्ठ जलाने लगा। तब राजा ने महत्त्व समझ कर उस ग्रन्थ को बचाया और संस्कृत में लिखाया। इस प्रकार गुणाढ्य भी मुक्त हुआ। यही कथायें सरित्सागर की कथायें हैं। इस अध्याय में कितनी ही रोचक और महत्वपूर्ण बातें मिलती हैं। वररुचि और पाणिनि दोनों वैय्याकरण थे। उनके सम्बन्ध में किम्बदन्तियों का कुछ उल्लेख इसमें है। पर लोक-वार्त्ता की दृष्टि से वररुचि की पत्नी 'उपकोशा' की कथा महत्व की है।

पाणिनि से परास्त होने पर वररुचि को बड़ा क्षोभ हुआ। वह व्याकरण की सिद्धि के लिए हिमालय में महादेव की तपस्या करने चला गया। घर का प्रबन्ध अपनी पत्नी को सौंप गया। उपकोशा

गङ्गा स्नान को आया करती थी। उस पर राज पुत्र के गुरु, कोतवाल (नगर-रक्षकों का अधिकारी) तथा राजपुरोहित की दृष्टि पड़ी और सभी उन्मादग्रस्त हो गये। उसने उन्हें अलग-अलग समय अपने घर आने का निमन्त्रण दे दिया। जिस महाजन के पास रुपये जमा कर दिये गये थे, उपकोशा ने जब उससे रुपये माँगे तो वह भी वैसा ही प्रस्ताव कर बैठा। उपकोशा ने सबसे अन्त का समय उसे भी दे दिया। अब उसने इनके दण्ड की व्यवस्था की। पहले राजगुरु आये, उन्हें अँधेरे कमरे में ले जाकर स्नान कराने के बहाने तेल-कालौंच से खूब पोत दिया। तब तक राजपुरोहित आ धमके और राजगुरु को एक मंजूषा में बन्द कर दिया गया। इसी प्रकार राजगुरु और नगर रक्षक के साथ किया गया। तब महाजन हिरण्यगुप्त आया। वह उसे तीनों मंजूषाओं के पास ले गयी और उससे यह घोषित कराया कि वह उस सम्पत्ति को जो उसका पति उसके पास रख गया है दे देगा। उपकोशा ने तीनों मंजूषाओं को संबोधन करके कहा कि हिरण्यगुप्त की इस प्रतिज्ञा को हमारे तीनों देवता सुनलें। तब उस महाजन को भी कालौंच से पोता गया तब तक सवेरा होने लगा और नौकरों ने उसे घर से बाहर नङ्ग-धड़ंग निकाल दिया। उपकोशा प्रातःकाल राजा के यहाँ गयी और महाजन पर अपना अभियोग उपस्थित किया। राजा ने महाजन को बुलाया। उसने कहा मैंने कोई भी धन नहीं पाया। उपकोशा ने मंजूषा के देवताओं की साक्षी दिला दी। महाजन मंजूषा की वाणी से भयभीत हुआ। उसने सम्पत्ति लौटा देने का वचन दिया। मंजूषा सभा में ही खोली गयीं; तीनों रसिकों का उपहास हुआ। उन्हें देश निष्कासन का दण्ड मिला। यह कहानी अत्यन्त लोक प्रिय कहानी है। यूरोप और फारस में बहुत काल से लोक कथा के रूप में प्रचलित है।[1] ब्रज में यही कहानी रूपान्तरित होकर ग्रामीण वातावरण के अनुकूल बन गयी है: और इसका नाम हो गया है 'ठाकुर रामपरसाद'

[1] स्काट ने 'ऐडीशनल अरेबियन नाइट्स' में यह कहानी 'लेडी आव कैरो एण्ड हर फोर गैलेण्टस' के नाम से दी है; और 'टेल्स एण्ड अनैक्डोटस' में 'मेरचेण्टस वाइफ एण्ड हर सूटर्स' के नाम से। 'अरौरा' के नाम से यह फारसी कहानियों में मिलती है। यूरोप में कहीं इसका नाम कंस्टण्ट डु हैमिल', अथवा ला डेम कुइ अट्रर अन प्रिट्रे, अन प्रिवोट् एट अन फारेस्टियर'

दूसरी महत्व की बात है वररुचि के गुरुभाई इन्द्रदत्त का योग-विद्या के द्वारा अपने शरीर को छोड़ कर राजा नन्द के मृत शरीर में प्रवेश कर जाना। आत्मा का एक शरीर छोड़ कर दूसरे में जाना भारतीय लोक कहानियों में बहुधा आता है। वीर विक्रमाजीत की कहानी में तो इसका विशेष उल्लेख है।

दूसरे भाग में कौशाम्बी के राजा उदयन के पराक्रमों तथा उज्जयिनी की राजकुमारी वासवदत्ता से उसके विवाह का वर्णन है। तीसरे भाग में मगध की राजकुमारी से उसके विवाह का वृत्त है; चौथे भाग में वासवदत्ता के नरवाहनदत्त नामक पुत्र के उत्पन्न होने की कहानी है। नरवाहनदत्त के साथ ही उदयन (वत्स) के मन्त्रियों के भी पुत्र उत्पन्न हुए। ये नरवाहनदत्त के सखा और मन्त्री बने। पाँचवें भाग में एक ऐसे मनुष्य का वृत्त है, जिसने अपने पराक्रम से विद्याधर योनि में जन्म लिया। विद्याधरों के राजा का भी वर्णन किया गया है, क्योंकि भविष्यवक्ताओं ने यह सूचना दी है कि नरवाहनदत्त भी विद्याधरों का राजा बनेगा।

इन अध्यायों में देवस्मिता की कहानी ध्यान देने योग्य है। गुहसेन और देवस्मिता एक दूसरे को अत्यन्त प्रेम करते हैं। गुहसेन को काम से बाहर जाना पड़ता है। स्वप्न में शिवजी इन्हें एक-एक लाल कमल का फूल देते हैं। इस फूल से उसकी पवित्रता की परख हो सकती है। जब उनके चरित्र में मलिनता आयेगी फूल कुम्हिला जायगा।[1] गुहसेन से उसकी पत्नी के सत की प्रशंसा सुनकर कुछ मनुष्य उसकी परीक्षा लेने चल पड़े। उन्होंने एक वृद्धा भिक्षुणी को इस कार्य सम्पादन के लिए नियुक्त किया। इस वृद्धा ने देवस्मिता से हेल-मेल बढ़ाया। यह एक कुतिया को साथ ले जाती थी। उसकी आँखों में मिर्च भर देती थी जिससे आँसू निकलते रहते। देवस्मिता ने रोने का कारण पूछा। उसने बताया, कि पहले जन्म में यह कुतिया और मैं एक ब्राह्मण की पत्नियाँ थीं। ब्राह्मण बहुधा बाहर जाया करता था, तब मैं तो मन की मौज के अनुसार एक मनुष्य के साथ रमा करती थी, यह पातिव्रत और संयम से रहती थी, फलस्वरूप मैं तो स्त्री बनी और यह कुतिया। पूर्व जन्म की याद कर रोती है। देव-

[1] जिस प्रकार यहाँ कमल का उपयोग हुआ है, उसी प्रकार 'सत' की परख के लिए और भी उपाय अन्य कहानियों में उपयोग में आते मिलते हैं।

स्मिता चक्र को ताड़ गई। उसने बुढ़िया से कहा वह उसके लिए कोई प्रेमी बताये। बुढ़िया एक-एक करके चारों को उसके यहाँ पहुँचा आई। देवस्मिता ने उन्हें धतूरा पिलाकर बेसुध किया और हरएक के माथे पर कुत्ते के पंजे से दाग कर दिया। उस वृद्धा भिक्षुणी के उसने नाक-कान काट लिए। चारों व्यापारियों के चले जाने पर देवस्मिता ने उनका पीछा किया, राजा की सभा में जाकर उसने उन चारों को अपना भृत्य सिद्ध किया। इस कहानी में कुतिया का जिस रूप में उल्लेख हुआ है, कुछ वैसा ही अनेकों पाश्चात्य कहानियों में हुआ है।[1] यह कहानी अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुई है।

शक्तिदेव की कहानी भी अद्भुत है। वर्द्धमान की राजकुमारी उसी पुरुष से विवाह करना चाहती है जिसने 'स्वर्ण नगर' देखा हो। शक्तिदेव उस नगर को देखने के लिए चल पड़ता है। एक साधु के पास पहुँचता है वह उसे अपने बड़े भाई के पास भेज देता है। वहाँ से उसे किसी द्वीप पर जाने को कहा जाता है। समुद्रयात्राओं में उसका जहाज डूबता है, वह एक स्थान पर भँवर में फँस जाता है; उसमें से वह एक वट वृक्ष की लटकती शाखा को उछलकर पकड़ लेने पर ही बच जाता है। वटवृक्ष पर से उसे गरुड़ ले उड़ता है और स्वर्णनगर में पहुँचा देता है। वह विद्याधरियों का देश है। वहाँ उसका स्वागत होता है। सबसे बड़ी विद्याधरी उसे अपना भावी पति बनाती है, किन्तु विवाह के लिए माता-पिता की आज्ञा आवश्यक है। वे विद्याधरियाँ वह आज्ञा लेने चली जाती हैं। शक्तिदेव अकेला रह गया है। उसे यह समझा दिया गया है कि वह मध्यवर्ती भवन में न जाय। उसकी उत्सुकता बढ़ जाती है। आदेश की अवहेलना करके वह उसमें जाता है। वहाँ उसे तीन सुन्दरियों के शव मिलते हैं। एक उनमें से उसी वर्द्धमान सुन्दरी का शव है। वह बड़े आश्चर्य में पड़ता है। आगे बढ़ कर उसे एक कसाकसाया घोड़ा मिलता है। वह उसे ठोकर से पास के तालाब में गिरा देता है। शक्तिदेव तालाब से बाहर निकलता है तो देखता है कि वह अपने उसी वर्द्धमान नगर में है। वर्द्धमान की राजकुमारी को वह इस नगर का विवरण बताता है।

[1] देखिए ऐच० ऐच० विल्सन के संस्कृत साहित्य विषय के लेखों का दूसरा भाग तथा टॉनी सम्पादित कथासरित्सागर अध्याय १३ के अन्त की टिप्पणी।

वह राजकुमारी वास्तव में विद्याधरी थी, उसका शरीर वह शव के रूप में वहाँ देख आया था। उसके शाप की अवधि समाप्त हो गयी। वह उड़ गयी। शक्तिदेव उसे पाने के लिए पुनः स्वर्ण नगर की खोज में चला। उसे मार्ग में दो और विद्याधरियों से विवाह करना पड़ा। वह स्वर्ण नगर में पहुँचा तो वहाँ उसे वही वर्द्धमान सुन्दरी मिली। उससे तथा विद्याधरियों की रानी से उसका विवाह हुआ। वे सब उसे अपने पिता के पास ले गयीं। वह विद्याधरों का राजा था। उसने शक्तिदेव को विद्याधरों का राजा बना दिया।

यह कहानी भी पूर्व और पश्चिम में अत्यन्त लोक-प्रिय हुई है। कुछ ऐसी ही कहानी जैन-कथाओं में प्रचलित है, जिसका अंग्रेजी में संग्रह और अनुवाद जे० जे० मेयर महोदय ने 'हिन्दू-टेल्स' नाम से किया है। ब्रज में इसी कहानी के अनुरूप कई कहानियाँ हैं। किसी किसी कहानी में इस कहानी का कुछ अंश ही मिल जाता है। 'राजा-चन्द की कहानी' में वृत्त के ऊपर बैठने से, वृत्त द्वारा ही एक दूर नगर में पहुँच जाने की बात मिलती है। 'बेजान सहर' की कहानी में 'राजकुमार' गरुड़ पक्षी के द्वारा ही 'अखैबर' के पास पहुँचाया जाता है। होमर के 'ओडसी' महाकाव्य में भी 'यूलिसीज' समुद्र की भँवर में फँसने पर इसी प्रकार एक वृक्ष पर चढ़कर बचा है। 'तंबोली की लड़की' की ब्रज प्रचलित कहानी में तंबोली की लड़की उसी से विवाह करना चाहती है जो 'बेजान नगर का' हाल बतायेगा। यह घटना 'शक्ति-देव' की घटना से मिलती है।' जिस प्रकार 'स्वर्ण नगर' का हाल सुनकर कनक रेखा अपने मूल को प्राप्त कर लेती है और जैसे-जैसे तंबोली की लड़की वृत्त सुनती जाती है, पत्थर की होती जाती है। इन दोनों कहानियों का और भी बहुत साम्य है। तंबोली की लड़की भी अप्सरा थी, जिसका वास्तविक शरीर 'बेजान नगर' में रहता था। राजकुमार अन्त में उसे प्राप्त ही कर लेता है। झील में गिरने पर दूसरे लोक में पहुँच जाने की बात भी कई कहानियों में है। हितोपदेश के कंदर्पकेतु में भी ऐसी ही घटना है।[1]

छठे खंड में कलिंगसेना की पुत्री का नर वाहनदत्त से विवाह होने का वृत्त ही प्रधान है। कलिंगसेना वत्स से विवाह करना चाहती

---

[1] राल्सटन की 'रशियन फोक टेल्स' में इस घटना के यूरोपीय संस्करणों का उल्लेख है।

है। पर वत्स और विवाह करना नहीं चाहता, दो पहले ही कर चुका है। विवाह किया जाय या नहीं इस सम्बन्ध में कलिंगसेना और उसकी सखी विद्याधरी में जो विचार होता है उसमें कितनी ही कहानियाँ दृष्टान्त स्वरूप दी जाती हैं। अन्त में एक विद्याधर वत्स का रूप धारण कर आ जाता है, कलिंगसेना का उससे विवाह हो जाता है। उनके जो पुत्री होती है उसका विवाह नरवाहनदत्त से होता है। इस खंड की कहानियों में से एक तो मूर्ख ब्राह्मण की उस स्त्री की है जिसने पिशाच से अपने पति को बचाया था। अट्ठाइसवें अध्याय में राजा गुहसेन के राजकुमार और व्यापारी ब्रह्मदत्त के पुत्र की मित्रता की कहानी का मूल अंश ब्रज की 'यारु होइ तौ ऐसो होइ' से ही नहीं मिलता अन्य कहानियों से भी मिलता है। केवल कुछ अन्तर है। ब्रज में भैया दौज की कहानी में भी ऐसे ही सङ्कटों का उल्लेख है। दरवाजे के गिरने की घटना दोनों में समान है। कथा सरितसागर की कहानी में हार और आम का उल्लेख है। ब्रज की कहानियों में वृक्ष की शाखा के गिरने का उल्लेख है। सागर की इस कहानी में मंत्री-पुत्र ने आने वाले संकटों को विद्याधारियों से सुना है। उन्होंने ही क्रुद्ध होकर अभिशाप के रूप में ये संकट डाले है। 'यारु होइ तौ ऐसो होइ' में ये पक्षियों से सुने गये हैं। मित्र को राजकुमार की रक्षा के लिए अन्तिम बार राजकुमार के अन्तरंग भवन में भी जाना पड़ता है। सागर की कहानी में तो राजकुमार को प्रत्येक छींक पर 'ईश्वर की कृपा याचना' करने के लिए मित्र की खाट के नीचे छिपना पड़ा। उसे वहाँ से निकलते ही वह राजकुमार देख सका, 'यारु होइ तौ ऐसो होइ' में आने वाले साँप से बचाने के लिए वह मित्र वहाँ गया है। साँप का विष रानी के ऊपर पड़ा है, उसे पोंछने के उपक्रम में राजकुमार ने मंत्री पुत्र को संदेह में पकड़ा है। तात्पर्य यह कि यह कहानी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ब्रज की प्रचलित लोक-कहानी सागर की कहानी से पुरानी परम्परा में विदित होती है।

'हरिशर्मा' की कहानी, जो कथा सरित्सागर में बीसवें अध्याय के अन्त में आयी है ब्रज की लोक कहानियों में सगुनी कोरिया की कहानी बन गई है। ब्रज की लोक कहानी में 'नींदरिया' ने जो काम किया है, वही यहाँ 'जिह्वा' ने किया है। सागर की कहानी में स्थूलदत्त के जामातृ का घोड़ा ब्रज की प्रचलित कहानी में कुम्हार का

गधा बन गया है ।[1]

सातवें खण्ड में नरवाहनदत्त और एक विद्याधरी के विवाह की कहानी प्रधान है। यह विवाह हिमालय के शिखर पर होता है। विवाह हो जाने पर जब दम्पत्ति लौट कर घर आते हैं, तब कौशाम्बी में तो विद्याधारी रत्न-प्रभा ने अपने भवनों के द्वार अपने राजा के सभी मिलने वालों के लिए खोल दिये। उसने कहा स्त्री का सतीत्व उसके मन से होता है। इसके पक्ष में उसने एक दृष्टान्त दिया, तब कहानियों का क्रम आरम्भ हो गया। राजा के मित्रों ने भी स्त्री-स्वभाव को प्रकट करने के लिए कहानियाँ कहीं। इन कहानियों में भी स्त्री-चरित्र पर विविध प्रकाश डाला गया है। इसी खंड में वर्द्धमान के राजकुमार शृङ्गभुज की कहानी है। शृङ्गभुज ने एक सारस के तीर मारा, वह भागा। शृङ्गभुज उसके पीछे गया। वह सारस भयानक राक्षस था। शृङ्गभुज रक्त-विन्दुओं के सहारे टोह लगाता इस राक्षस के यहाँ जा पहुँचा। उसकी पुत्री से इसका प्रेम हो गया। उसकी सहायता से अनेकों कष्ट झेलकर और अनेकों परीक्षाएँ पार कर के शृङ्गभुज रूप-शिखा को लेकर घर लौटा। इस कहानी के विविध तन्तुओं से बनी पश्चिम तथा पूर्व में एकानेक कहानियाँ मिलती हैं। ब्रज क्षेत्र में कहानी के नायक को पुड़ियाँ मिलती हैं। एक पुड़िया छोड़ देने से तूफान उठता है—एक से आग, एक से पानी इन्हीं साधनों से नायक दानों और डाहिनों से अपनी रक्षा कर पाता है।

आठवें खण्ड में वज्रप्रभ नाम का विद्याधरों का राजा नरवाहन-दत्त को अभिवादन करने आता है। नरवाहनदत्त विद्याधरों के दोनों प्रदेशों का सम्राट होगा, इसीलिए यह राजा अपने भावी सम्राट से भेंट करने आया। यह एक क्षेत्र के सम्राट सूर्यप्रभ की कहानी सुनाता है कि किस प्रकार मानव-योनि में जन्म लेकर भी वह विद्याधरों के एक

[1] ग्रिम की संग्रहीत कहानियों में डाक्टर आल्विस्सेंड की कहानी इस कहानी से मिलती-जुलती है। इस कहानी का मंगोलियन, रूपान्तर 'सिद्धिकुर' में सुरक्षित है। बेनफी के मतानुसार इस कहानी का वास्तविक रूप लिथुअनियन अवदान में है। इस लिथुअनियन कहानी में हरिशर्मा का स्थान एक दरिद्र झोंपड़ी में रहने वाले ने ले लिया है। यह कहानी हेनरीकस पेबलियस (१५०६) के 'फेसिटी' में भी है। यहाँ ब्राह्मण का काम कोयले-जलाने वाले को मिला है। देखो—टानी का कथा सरित्सागर पृ० २७४–२७५।

चेत्र का सम्राट हो सका। इसमें आकाश और पाताल के विविध लोकों में कहानीकार कथा-सूत्र को ले गया है। असुर भय का इन कहानियों में विशेष भाग है।

नवें खण्ड में कुछ कहानियाँ तो नरवाहनदत्त और अलङ्कारावती के कुछ काल के वियोग में धैर्य प्रदान करने के लिए हैं। इनका अभिप्राय यह है कि वियुक्त हो जाने पर प्रियजनों का पुनः मिलना असम्भव नहीं। कुछ कहानियाँ अन्य प्रासङ्गिक विषयों की पुष्टि के लिए हैं। वीरवर की कहानी स्वामिभक्त सेवक का आदर्श प्रस्तुत करती है। यह कहानी भी बहुत लोकप्रिय है। हितोपदेश में भी आया है। वीरवर ने राजा विक्रमतुङ्ग के जीवन के लिए प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्र को दुर्गा पर चढ़ा दिया, उसकी पुत्री ने भाई के वियोग में प्राण दिये, स्त्री दोनों बच्चों के साथ जल गयी। वीरवर भी अपना बलिदान देने को प्रस्तुत हुआ तभी दुर्गा ने राजा को शतायु होने का वरदान देकर तथा उसके पुत्री-पुत्र और स्त्री को जीवन दान देकर वीरवर को सन्तुष्ट किया। लखटकिया की कहानियों का आरम्भ इसी कहानी की भाँति होता है। इसी खण्ड में राम-सीता, लव-कुश की कहानी आयी है; और अन्त नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कहानी से हुआ है।

दसवें खण्ड में अन्य कहानियों के साथ हमें वे कहानियाँ मिलती हैं, जो पञ्चतन्त्र की कहानियाँ कही जा सकती हैं। इन कहानियों का इतिहास बड़ा रोचक है। ये भारत से संसार के विविध भागों में गयी हैं। यूरोप में 'पिल्पे' की कहानियों के नाम से चलती हैं। 'कलील वा दमना' भी इन्हीं कहानियों का संग्रह है। बेनफी ने तुलना करके यह सिद्ध किया है कि 'कथासरित्सागर' में कहानियों का पञ्चतन्त्र की अपेक्षा अधिक प्राचीन रूप मिलता है। इस खण्ड की अधिकांश कहानियाँ ऐसी ही हैं, ये विविध देशों में अनेक रूपों में फैल गयी हैं। ये कलील वा दमना, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, अनवारी सोहिली, तूतानामा, बहार-दानिश में संग्रहीत हैं; इसी खण्ड में 'बन्दर' और शिशुमार (मकर) की कहानी है। ब्रज की लोक कहानी में भी इसका रूपान्तर मिलता है। इसी खण्ड में प्रसिद्ध ठग घटकर्पर की कहानी है, जिसके तन्तुओं से बनी ठग-शिरोमणियों की कई कहानियाँ ब्रज में मिलती हैं।

ग्यारहवें खण्ड में वेला की कहानी है। बेला का विवाह एक व्यापारी के पुत्र से हुआ है। उनको अनेकों आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं। प्रेमगाथा की एक आरम्भिक रूपरेखा इसमें है। समुद्र में जहाज डूबने से ये बिछुड़ते हैं और पुनः मिलते हैं।

बारहवें खण्ड में ऐसी कई कहानियाँ आयी हैं जिनमें मनुष्यों को जादूगरिनियों ने पशु बना लिया है। इस खण्ड का प्रधान कथा-सूत्र अयोध्या के कुमार मृगांकदत्त का उज्जयिनी की राजकुमारी से विवाह है। विवाह होने से पूर्व ही मृगांकदत्त का पिता उससे छूट कर उज्जायिनी को चल पड़ता है। मार्ग में एक तपस्वी एक नाग से वह तलवार मन्त्र बल से प्राप्त कर लेना चाहता है जिसे पाने से परामानवीय शक्तियाँ मिल जाती हैं। वह उन युवकों की सहायता चाहता है। तपस्वी सिद्धि के समय भ्रमित हो जाता है, नाग उसको नष्ट कर देता है और इन युवकों को शाप देता है कि ये बिछुड़ जायँगे। ये बिछुड़ कर फिर मिलते हैं और तब अपनी-अपनी कहानियाँ कहते हैं। यही संविधान दण्डी के दशकुमार चरित्र में है। इसी खण्ड में वे प्रसिद्ध कहानियाँ भी आती हैं जो 'वैताल पच्चीसी' का विषय है जो हिन्दी में भी रूपान्तरित हुई हैं।

तेरहवें खण्ड में दो ब्राह्मण युवकों के पराक्रम का वर्णन है। इन्होंने गुप्तरूप से एक राजकुमारी और उसकी सखी से विवाह किया है। चौदहवें खण्ड में नरवाहनदत्त एक और विद्याधारी से विवाह करता है। पन्द्रहवें में वह विद्याधरों का सम्राट बनता है। सोलहवें खण्ड में वत्स के स्वर्गारोहण का वृत्त है। वत्स अपने साले गोपालक को राज्य दे जाता है। गोपालक अपने छोटे भाई पालक को राज्य दे जाता है। पालक एक चांडाली के प्रेमपाश में फँस जाता है। उससे विवाह तभी हो सकता है जब उस चांडाल के घर ब्राह्मण भोजन करें। शिव के कहने से ब्राह्मण उस चांडाली के यहाँ भोजन करते हैं। वह चांडाल विद्याधर था और ब्राह्मणों के भोजन कराने पर ही वह शाप से मुक्त हो सकता था। सत्रहवें और अठारहवें खण्ड में वे कहानियाँ हैं जो नरवाहनदत्त अपने मामा गोपालक को काश्यप-आश्रम में सुनाता है। सत्रहवें का मुख्य विषय मुक्ताफलकेतु नामक विद्याधर और पद्मावती नाम की गन्धर्व कुमारी की प्रेम कथा है। अठारवें में उज्जयिनी के राजा महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य या विक्रमशील

सम्बन्धी कहानियाँ विशेष हैं।[१]

कथा सरित्सागर की इस संक्षिप्ति से इस सागर के रत्नों का यथार्थ मूल्य नहीं आँका जा सकता। यह लोक-कहानियों का संग्रह है इसमें कोई सन्देह नहीं। इसमें भारतीय कहानी के सभी तन्तु-सूत्र हमें मिल जाते हैं। बहुत-सी प्रचलित कहानियों की कथासरित्सागर से तुलना करने पर कभी-कभी तो ऐसा विदित होता है कि लोक-कहानी जो अब हमने संग्रह की हैं, वह कथा सरित्सागर के समय भी प्रचलित होंगी, और कथा सरित्सागर-कार ने उसे अपने कथा प्रबन्ध में स्थान देने के लिए कुछ हेरफेर किया है; और यह भी प्रकट होता है कि वह हेरफेर भी कोई विशेष अच्छा नहीं हुआ। 'यारु होइ तो ऐसौ होइ' कहानी का जो उल्लेख हमने ऊपर किया है, वह एक उदाहरण है। 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' का कथानक बहुत पुराना है, अन्यत्र वही कथानक स्वतन्त्र रूप से मिलता है, सागर वाला नहीं मिलता।

कथासरित्सागर की भाँति के भारतीय साहित्य में अनेकों ग्रन्थ मिलते हैं और इनमें से अधिकांश में धार्मिक उद्देश्य निहित हैं। कथा-सरित्सागर भी साम्प्रदायिक भावना से मुक्त नहीं है। शैव और शाक्त भावनाओं का इसमें प्राधान्य है। शिव और देवी की पूजा और बलि इनके दिये वरदान तथा विद्याधरत्व प्राप्त करना ये सभी साम्प्रदायिक दृष्टि की पुष्टि करते हैं। ऐसी ही विलक्षण दिव्यतापूर्ण कहानियाँ जैनियों के साहित्य में मिलती हैं। कथासरित्सागर के विद्याधर विद्या-धरियाँ आदि शिव-परिकर की हैं, जिन परिकर की नहीं।

बौद्ध-साहित्य में 'जातक' कहानियों का संग्रह मिलता है। जातक कहानियाँ भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की कथायें हैं। इन कहा-नियों में राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, श्रमिक, पशु-पक्षी सभी आ जाते हैं। भगवान बुद्ध ने स्वयं ही ये कहानियाँ विविध अवसरों पर अपने अनुयायियों को सुनाई हैं। बहुधा ये कहानियाँ भी किसी पृच्छा के समाधान के रूप में दृष्टान्त की भाँति हैं, जिन्हें भगवान बुद्ध ने निजत्व के भाव से अभिमण्डित कर अनुयायियों को सुनाया है। इन सभी कहानियों में नीति का उपदेश प्रधान है। इनके अध्ययन से

[१] कथा सरित्सागर की यह संक्षिप्ति ऐच ऐच विलसन के 'हिन्दू फिक्सन' नाम के निबन्ध के आधार पर दी गयी है। उसमें प्रस्तुत लेखक ने स्वयं टॉनी के कथा सरित्सागर के आधार पर आवश्यक संशोधन कर दिया है।

विदित होता है कि अधिकांश कहानियाँ ऐसी हैं जो भगवान बुद्ध के समय में सर्वसाधारण में प्रचलित थीं।[१] उन्हें ही सुनाते हुए, उपदेश की उनके द्वारा पुष्टि करायी और अन्त में जिस पात्र को उपदेश का यथार्थ माध्यम बनाया गया है, उसी को भगवान बुद्ध ने पूर्वजन्म में अपना ही अवतार बना दिया। इन जातकों में कुछ विद्वानों की सम्मति में तो रामायण से भी प्राचीन कहानियाँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ दशरथ-जातक की कहानी रामायण से पूर्व की वस्तु है। इन कहानियों का वातावरण साधारण, स्वाभाविक और मानवीय है। पशु-पक्षियों का उल्लेख हुआ है, उनसे सम्बन्धित कहानियाँ हैं पर उनमें प्रायः आकाशीय, वायवी, अलौकिक और दिव्य भाव नहीं मिलता। पञ्चतन्त्राख्यान की जैसी शैली है, पर न उसकी सी जटिलता है, न उलझन है। यथासम्भव सुबोध और सरल किन्तु प्रभावोत्पादक ढङ्ग से कहानी कह दी गयी है। चुटकलों, कहानियों दृष्टान्तों का श्रवण करने वाले व्यक्तियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

विनय पिटक से आरम्भ करें तो इस ग्रन्थ में खण्डकों में जिन नियमों और विधियों का विधान प्रस्तुत किया गया है, उनके साथ

१—एनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड ऐथिक्स—७ वाँ खण्ड, पृ० ४९१ में स्पष्ट लिखा है कि बौद्धों ने 'कभी-कभी तो शुद्ध अवदान बनाये भी हैं, किन्तु बहुधा उन्होंने कोई तन्त्राख्यान, परियों की कहानियाँ अथवा रोचक चुटकले ही लिये हैं; उन्होंने उन्हें धार्मिक प्रचार की दृष्टि से संशोधन पूर्वक अपने अनुकूल बना डाला है। पुनर्जन्म और कर्म के सम्बन्ध में बोधिसत्व का एक उत्तम साधन इनके हाथ में था, जिससे वे किसी भी लोक-कहानी अथवा साहित्यिक कहानी को बौद्ध अवदान में रूपान्तरित कर सकते थे।

२—बृहत कथाकोश की भूमिका पृष्ठ १६ में डा० आदिनाथ नेमीनाथ उपाध्ये भी यही मत प्रकट करते हैं: "सम आव दी स्टारीज दैट केम टू बी पुट इन्टू दी जातक फार्म और आलरेडी फाउण्ड इन दी सुत्तस ऐज सिम्पिल टेल्स, इफ दे आर स्ट्रिप्ड आव दी पर्सनैलिटी आव बोधिसत्व एण्ड स्पेशल बुद्धिस्ट आउट लुक एण्ड टर्मिनालाजी, वी फाउण्ड दैट दियर कान्टेण्टस इन्क्लूड फेबिल्स फेयरी टेल्स। अनेकडोटस, रोमांटिक ऐडवंचरस टेल्स, मोरल स्टोरीज ऐण्ड सेइंग्स एण्ड लीजेण्डस। दीज हैव बीन ड्रान फ्रॉम दी कामन स्टाक आव इंडियन फोकलोर विच टू यूटिलाइज्ड बाई फिरेण्ट रिलीजस स्कूल्स इन दियर ओन वे।"

उनसे पहले उनकी भूमिकास्वरूप जो वर्णन दिया गया है वह कहानी के समकक्ष है। छुल्लवग्ग में कितने ही प्रशंसनीय घटनाचक्र हैं। इनमें बौद्धधर्म में मत-परिवर्तन द्वारा सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के विवरण, कुछ स्वयं भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। सारिपुत्त, मोग्गल्लान, महापजापति, उपालि, जीवक आदि की कहानियाँ इसी में हैं। सुत्तपिटक के दीघनिकाय और मज्झिमनिकाय में बुद्धिजीवन सम्बन्धी कितनी ही स्फुट कहानियाँ हैं। 'पयासीसुत्त' एक संवादात्मक आख्यान माना जा सकता है; और कितनी ही गाथायें तथा अवदान हैं, जो किसी धार्मिक सिद्धान्त अथवा नीति को अभिव्यक्त करती हैं। छन्न और अस्सलायन आदि की कथाओं में तथ्य और सत्य का भी कुछ आधार मिलता है। अंगुलिमाल डाकू अपनी वृत्ति छोड़कर भिक्षु बना और अर्हत पद प्राप्त कर सका; महादेव ने जैसे ही अपने बाल सफेद होते देखे, संघ में सम्मिलित हो गया। रथपाल ने संसार का त्याग किया और सांसारिक सुखों और आकांक्षाओं को संयमित रखा—ये सुन्दर कथायें भी इसमें हैं। कर्म-सिद्धान्त को सिद्ध करने वाली कहानियों का संग्रह विमानवत्थु और पेटवत्थु में मिलता है। दूसरे लोक में सुख अथवा दुख का कारण इसी जन्म के सद्सद् कर्म होते हैं। थेर-गाथा और थेरीगाथा में शान्ति की आकांक्षा रखने वाले भिक्षु और भिक्षुणियों की आत्माओं की आध्यात्मिक स्वीकारोक्तियाँ हैं।

उपरोक्त साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में अवदान (अपदान) भी हैं। ये पावन-चरित्र पुरुषों और स्त्रियों की कहानियाँ हैं; इनमें भी कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को पुष्ट किया गया है। अवदान में भी जातक की भाँति भूत और वर्त्तमान दोनों ही जन्म की कथायें रहती हैं, पर अवदान जातक से इस बात में भिन्न है कि जातक में तो केवल बुद्ध के जीवन की ही कहानियाँ रहती हैं। पर अवदानों में बहुधा किसी अर्हत की कथा रहती है। सन्तों और भिक्षुओं की कहानियाँ भी इसमें मिल जाती हैं। ये उत्तम पुरुष में कही गयी हैं। इनमें से बहुत सी कहानियों का आधार ऐतिहासिक है। इनमें सारिपुत्त, आनन्द, राहुल, खेमा, गोतमी की आत्म-कथायें हैं। ये बौद्धसङ्घ के स्तम्भ माने जाते हैं। यही नहीं, बुद्धघोष तथा धर्मपाल जैसे भाष्यकारों ने भाष्यों में एकानेक कहानियों का उल्लेख

उदाहरण और दृष्टान्त के रूप में दिया है।

जैन-साहित्य में तो बौद्ध-साहित्य से भी अधिक कहानियों का भण्डार मिलता है। ये कहानियाँ कुछ तो धर्म के सिद्धान्त ग्रन्थों में आयी हैं, ये बहुधा तीर्थङ्करों तथा उनके श्रमण अनुयायियों तथा शलाका पुरुषों की जीवन-झाँकियों के रूप में जहाँ तहाँ मिल जाती हैं। कहीं-कहीं इन ग्रन्थों में किसी कथा का संकेत-मात्र मिलता है। आचारांग और कल्पसूत्र में महावीर के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। नेमीनाथ और पार्श्वनाथ के सम्बन्ध में भी इनमें कुछ वृत्त मिल जाते हैं। 'नाया धम्म कहाओ' में अनेकों दृष्टान्तस्वरूप रूपक कहानियाँ (पैरेबल) भी हैं। एक उदाहरण द्वारा इन रूपक कहानियों की रूप-रेखा समझी जा सकती है : एक सरोवर है, यह कमलों से परिपूर्ण है। इसके मध्य में एक विशाल कमल है। चार दिशाओं से चार मनुष्य आते हैं, वे उस विशाल कमल को चुन लेना चाहते हैं। अपने प्रयत्न में वे सफल नहीं होते। एक भिक्षु सरोवर तट पर कुछ शब्दोच्चार करके ही उस विशाल कमल को प्राप्त कर लेता है। यह 'सूयगदम्' की रूपक-कहानी है। इसका अर्थ है कि जैन-साधु ही राजा का सान्निध्य सरलता से पा सकता है; अन्य नहीं। विशाल कमल राजा का प्रतीक है। उत्तराध्ययन में भी ऐसी ही कहानियाँ मिल जाती हैं। इन ग्रन्थों में कृष्ण, ब्रह्मदत्त, श्रेणिक आदि विख्यात कथा-चक्रों के नायक महापुरुषों से सम्बन्धित अवदान भी हैं। सूयागदम् में शिशुपाल, द्वीपायन, पाराशर आदि का भी उल्लेख है, 'उवासगदसाओं' में दस श्रावकों की कथायें हैं। अन्तर्गद दशाओं में उन स्त्री-पुरुषों के विवरण हैं जिन्होंने तीर्थङ्करों के अनुयायी बन कर संसार त्यागा और मुक्ति प्राप्त की। अणुत्तरोव-वाइय दसाओं' में तपस्या और उपवासों से स्वर्ग प्राप्ति की कहानियाँ हैं। 'निरयावलियाओ श्रेणिय' (श्रेणिक) के पुत्र 'कुणीय' (कुणीक) की कहानी विस्तार-पूर्वक दी गयी है, कथिवा और पुष्फिया में क्रमशः महावीर और पार्श्व द्वारा धर्म में दीक्षित जिन व्यक्तियों में विविध वर्गों को प्राप्त किया उनका वृत्त है। विवागसूयम् में पाप और पुण्य के फलों को दिखाने की चेष्टा की गयी है : इसके पहले भाग में पाप तथा कुकृत्यों के फल का निदर्शन कराने वाली दस कहानियाँ हैं। दूसरे भाग में एक ही कहानी विस्तारपूर्वक दी गयी है, जिसमें पुण्य का फल दिखाया गया है। पैरणों में भी

साधु पुरुषों और श्रमणों की कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों का मूल उद्देश्य यह है कि इन महापुरुषों के शरीर को किसी ने जलाया, किसी ने टुकड़े-टुकड़े किया फिर भी ये दृढ़ रहे, कीड़े-मकोड़ों ने शरीर छलनी कर दिया, फिर भी इन्होंने उस कष्ट को अनुभव नहीं किया।

धर्म के दस सिद्धान्त-ग्रन्थों पर 'निज्जुत्तियाँ' हैं, कुछ स्वतंत्र भी हैं, जैसे पिंड, ओघ और आराधना निज्जुत्तियाँ (निर्युक्तियाँ) ये निर्युक्तियाँ, सिद्धान्त-ग्रन्थों पर लिखे भाष्य माने जा सकते हैं। सिद्धान्त-ग्रन्थों में जिन कथानकों का नामोल्लेख हुआ है, उनका विस्तार पूर्वक विवरण इन निर्युक्तियों में मिल जाता है। साथ ही इनमें अन्य कथानक भी आये हैं, और कुछ कथानकों का नामोल्लेख मात्र है। फलतः इनकी व्याख्या के लिए बाद में चूर्णियाँ, भाष्य और टीकायें लिखी गयीं। इनमें उन कथानकों को आवश्यक विस्तार से देकर उनके मर्म को स्पष्ट किया गया है।

इस प्राचीन साहित्य से बोज लेकर बाद में जिनसेन, गुणभद्र, हेमचन्द्र आदि ने संस्कृत में, शीलाचार्य, भद्रेश्वर आदि ने प्राकृत में, पुष्पदन्त ने अपभ्रंश में, चामुण्डराय ने कन्नड़ में बड़ी-बड़ी कहानियाँ खड़ी करदी हैं। इनके ये ग्रन्थ 'पुराण' कहे जा सकते हैं।

यहाँ पद्म-चरिअ[1] या 'पद्म-चरित्र'[2] और वसुदेवहिंडि[3] का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। पहले का सम्बन्ध रामचरित्र से है, दूसरे का कृष्ण से। रामचरित्र के जैन-साहित्य में दो रूप मिलते हैं। वे दो प्रकार की प्रचलित लोक-कहानियों के आधार पर बने हैं। वसुदेवहिंडि तो 'बृहत्कथा' के समकक्ष है। कृष्ण-चरित्र के सूत्र के आधार पर अनेकों कहानियाँ पिरोई हुई हैं। इन कहानियों में विद्याधरों और उनके चमत्कारों का समावेश हो जाने से ये अत्यन्त रोचक हो गयी हैं। जिनसेन का हरिवंशपुराण संस्कृत में तथा धवल का अपभ्रंश में वासुदेवहिंडि के समकक्ष है। इस प्रकार के वे ग्रन्थ हैं जिनमें जीवनधर, यशोधर, करकंडु, नागकुमार और श्रीपाल के चरित्रों का वर्णन है। साथ ही ऐसी कहानियाँ भी हैं। जिनमें गृहस्थों और साधारण पुरुषों की कहानियाँ दी गयी हैं—ये कथा, आख्यान और चरित्र संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में ही नहीं हिन्दी में भी उपलब्ध हैं।

[1] लेखक विमल, [2] लेखक रविसेन, [3] संघदास।

एक वर्ग ऐसे ग्रन्थों का है जिनमें धार्मिक कहानियाँ रोमांटिक रूप में प्रस्तुत की गयी हैं, तरंगवती, समराइच्चकहा, उपमितिभव प्रपंच कथा ऐसे ही ग्रन्थ हैं। इसी वर्ग में वे कल्पित कहानियाँ भी हैं जिनके द्वारा अन्य धर्मों के सिद्धान्तों और गाथाओं पर आक्रमण किया गया है। हरिभद्र का 'धूर्त्ताख्यान'; हरिषेण का 'धर्म-परीक्षा' ऐसे ही हैं।

परिशिष्ट-पर्वन, प्रभावकचरित, प्रबन्ध चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में अर्द्ध-ऐतिहासिक धर्मानुयायियों की कहानियाँ दी गयी हैं। राजा, महाराजा, प्रसिद्ध सन्त, लेखक, सेठ-साहूकार आदि इन कहानियों के प्रधान विषय बने हैं।

कथा कोशों का एक विशाल समूह जैन लेखकों ने रच डाला है। इन कोशों का अभिप्राय विविध अवसरों के योग्य सुन्दर-सुन्दर उपयुक्त कथाओं का संग्रह कर देना है जिससे धर्म प्रचारक को सिद्धान्त-पुष्टि और प्रभावोत्पादन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाय। ऐसे ही संग्रह व्रत-कथाओं के भी हैं, ऐसे सोलह कोषों का परिचय-डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये एम० ए०, डी० लिट् ने 'बृहत् कथा-कोश की भूमिका में दिया है।[1]

हिन्दी का वस्तुतः जैनियों की इस कथा-परम्परा से ही सीधा सम्बन्ध उसके आरम्भ-काल में था। हिन्दी में लिखित साहित्य में लोक-कथा और लोक-वार्ता सम्बन्धी जो ग्रंथ खोज में मिले हैं। अब यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय दे देना उचित प्रतीत होता है। इससे वेदों से लेकर हिन्दी के समय तक के लोक-साहित्य के रूप का पूर्ण किन्तु संक्षिप्त विकास समझा जा सकेगा।

आ—हिन्दी में लोकवार्त्ता-कहानी

अभी इस साहित्य के उस भाग पर विचार नहीं करेंगे जो बहुत उच्चकोटि का है, और अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहाँ हम यह देखेंगे कि क्या हिन्दी की खोज में कोई ऐसी सामग्री मिली है जिसमें लोक-वार्ता की परम्परा मिलती हो। और जब हम हस्तलिखित ग्रंथों की शोध के पन्ने पलटते हैं तो हमें आश्चर्य में पड़ जाना पड़ता है। अनेकों पुस्तकें हैं जो इस लोकवार्ता को प्रकट करती हैं। यहाँ हम संक्षेप में

[1] जैन साहित्य का यह विवरण यहाँ डा० अ० ने० उपाध्ये की भूमिका के आधार पर ही दिया गया है।

सभी का लेखा-जोखा दिए देते हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से हम उन पुस्तकों को साधारणतः सात विभागों में बाँट देते हैं। एक है लोक-कहानी का। इस वर्ग में वे पुस्तकें आवेंगी जो लोक-प्रचलित कहानियों को कहानियों के लिए ही रखती हैं। दूसरा है धर्म-महात्म्य कथा—इस वर्ग में ऐसी कहानियाँ आती हैं जो या तो (अ) किसी व्रत से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। जब तक यह कहानी न सुन ली जाय व्रत पूर्ण नहीं होता। जैसे गणेश चौथ की कथा या (आ) ऐसी कथायें जो किसी व्रत के महात्म्य को प्रकट करती हैं। (इ) या ऐसी कथ।यें जो साधारणतः ऊपर के प्रकार में नहीं पर जिनका धार्मिक महत्व हो, उनसे कोई पुण्य लाभ हो। तीसरे वर्ग में वे कथायें आयेंगी जो 'अवदान' अथवा (Legends) कही जाती हैं। चौथे वर्ग में वीर-गाथायें अथवा (Ballads) हैं। पाँचवें में साधु-कथा (Hageological) हैं। छठे में पौराणिक कथायें (Mythological) हैं। सातवाँ वर्ग उन पुस्तकों का होगा जिनमें विविध लौकिक संस्कारों का उल्लेख पाया जाय। एक आठवाँ वर्ग 'विविध' का हो सकता है। [संलग्न तालिका देखिये]

कहानियों में सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, माधवानल, कामकंदला, कथा चारदरवेश, हितोपदेश, माधव-विनोद, शुकबहत्तरी प्रसिद्ध कहानियों से सम्बन्ध रखते हैं। माधव-विनोद में मालती-माधव की कहानी है। मूल ढोला तथा सेंटा का ढोला—ढोला मारू की कहानी से सम्बन्धित है। मूल ढोला—ढोला की तर्ज में नहीं है। इसके लेखक नवलसिंह ने ढोला की शैली से मिलती-जुलती शैली के साहित्यिक छन्द को अपनाया है। उसने लिखा है :—

"आनक दुंदिभ सुतुकौं सुमिरि हियै धरि ध्यान।
कहौ मूल ढोला रुचिर हित ढोला रुचियान॥
ढोला गावें जोग छन्द रोला तजवीजौ।
ढोला ही सो झपट लटक गावत में कीजौ॥
चौथी तुक कौ अन्त अर्ध दुहराके गावो।
तापै अच्छर चारि अर्थ के मिलवत आवो।
द्वे पै स्वर विश्राम ठहर कर राघत जाई।
ढोला कैसौ धीम प्रगट जह रीति जगाई॥

पंमाइच पंजरी ताल तबला बजवानौ।
निज रुचि कौ चातुर्ज करत औरहु कौ जानौ॥

गोला की सहायता से ढोला का दृश्य उपस्थित करने की लालसा कवि में है। ढोले को उसने साहित्यिक रूप देने का उद्योग किया है। इससे ढोले की व्यापक प्रियता भी विदित होती है। इन ढोलों में ढोला-मारू ही की कहानी है। वर्त्तमान में ढोला के पिता नल की औखा (कष्ट) का जो वर्णन बढ़ गया है, उनका उल्लेख नहीं। मूल-ढोला से विदित होता है कि ढोला बढ़ाकर भी गाया जाता था। विक्रम-विलास, किस्सा, कथा-संग्रह, मनोहर कहानियाँ विविध कहानियों के संग्रह हैं। किसी किसी में तो १०० कहानियाँ तक हैं। इन सबका विस्तृत विवेचन यहाँ अनावश्यक है। कनक मंजरी[1] की कहानी (रचना-काल १६२३ से १७७७ के बीच) की संक्षिप्ति यह है।

रतनपुर में धनधीर शाह थे। कनकमंजरी उसकी स्त्री थी। शाह समुद्र की यात्रा को गया तो एक तोता-मैना उसको बहलाते थे। उसका हार स्नान करते समय एक कौआ ले गया। इस हार को देख कर एक राजकुमार उस पर आसक्त हो गया।[2] अनूप दूती ढूँढ़ने को भेजी। भिखारिणी बनी; दुःखिनी से भीख न लेना उसने ठहराया। पति प्रवास का हाल पूछ लिया, दूसरे दिन पान-मिठाई बाँटी, कनकमंजरी से कहा कि ये चिन्ताहर की पूजक एक तपस्विनी का प्रसाद है। और वहाँ जो चिंताहर की पूजा करता है, उसका उसके प्रिय से मिलन हो जाता है। कनकमंजरी चिंताहर की पूजा के लिए चली। मैना ने रोका, किन्तु उसने एक न सुनी। दूसरे दिन एक दूती तपस्विनी बनकर उसे पूजा को ले जाने लगी। उसी समय तोते ने महावर डाल दिया और कनकमंजरी को रजस्वला बताकर पाँच दिन ठहराया। पाँच दिन के बाद उसने कहा :—

[1] लेखक—काशीराम, राजकुमार लक्ष्मीचन्द के लिए बनायी गयी।

[2] हार को देखकर हार पहनने वाली पर आशक्त होने की घटना कुछ अद्भुत है। अन्यत्र एक कहानी में चील तो हार को सर्प समझकर ले गयी है, किन्तु उस हार से मोहित होने की बात नहीं हुई। लखटकिया की एक कहानी में पैर की जूती देखकर मोहित होने की बात मिलती है। बालों को देखकर तो सभी कहानियों के नायक मोहित हुए हैं।

पीपा गये न द्वारिका, बदरी गए न कबीर।
भजन भावना से मिले, तुलसी से रघुवीर॥

और घर में ही पूजा कराई। तोते ने एक दृष्टान्त देकर कुसंगति और जल्दबाजी का परिणाम बताया। दूसरे दिन अनूप आई तो कनकमंजरी ने कहा 'चिन्ताहर घटमाही'। वह गई और एक नाव बनवा लाई। सारिका ने एक दृष्टान्त देकर उसे चढ़ने से रोका। राजकुमार ने सिंहलपुर को फौज ले जाने की डौंडी पिटवाई। अनूप ने उसे पति के पास जाने को तैयार किया। सारिका ने छींक दिया। साहूकार आया। हार दिखाकर राजकुमार ने कनक को कलंकित बतलाना चाहा। तोता हार को लेकर उड़ आया। दूती के नाक कान कटे। प्रेमी मिल गये।

कनक मंजरी कहानी में लोक वार्त्ता के अत्यन्त प्रचलित कई तत्त्व मिलते हैं। कौए द्वारा हार उड़ा ले जाना, हार को देख कर एक राजकुमार का मोहित होना—दूती का नियुक्त किया जाना, मैंना द्वारा बार-बार दूती के चक्र से बचाना, तोते का हार लेकर उड़ जाना जिससे राजकुमार उसके द्वारा कनक मञ्जरी को लांछित न कर सके। ये सब घटनायें इसी रूप में अथवा रूपान्तरित होकर शतशः कहानियों में मिलती हैं।

राजा चित्रमुकुट की कथा तो प्रायः इसी रूप में ब्रज में प्रचलित है, और अन्यत्र भी मिलती है। खोज में मिली पुस्तक की कथा का संक्षिप्त रूप यह है:—

राजा चित्रमुकुट के १०,००० रानी थीं, ६०० पुत्र थे। शिकार खेलते में रास्ता भूले। छाँह में बैठे, इतने में एक व्याध ने एक हंस को फन्दे में फँसाया। राजा ने बलात् उसे छुड़ा दिया। वह हंस राजा के साथ ही महल में आया। रानी मिलने आईं। एक रानी ने पूछा—'मैं तुम्हें कैसी लगती हूँ'। राजा ने कहा 'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ'। इस पर हंस हँस पड़ा। राजा ने हँसने का कारण पूछा तो उसने कहा तुम ऐसी ही रानी के चेरे हो गये। इसी बात पर मैं हँसा। ऐसी के हाथ का तो पानी न पिये। हंस ने राजा से चन्द्रभान की बेटी चन्द्रकिरन का वर्णन किया। राजा ६०० पुत्रों सहित योगी बन कर उसकी खोज में निकला। समुद्र किनारे पहुँचे। अकेला राजा हंस पर चढ़ कर समुद्र पार अनूपनगर में पहुँचा। हंस के द्वारा चन्द्र-

करन से मेंट की। विवाह हुआ। रानी के गर्भ रहा। हंस पर चढ़कर आ रहे थे कि एक टापू में लड़का हो गया। राजा सूतिकागृह की सामग्री लेने गये। सोंठ, घृत, अग्नि लेकर लौट रहे थे कि हंस के पङ्खों पर अग्नि और घी गिर गया, वह जल गया। उसी दिन उस नगर का राजा मर गया। मन्त्रियों ने इसी राजा को गद्दी दी। वहाँ चन्द्रकिरन टापू पर पत्तों के सहारे जीने लगी। एक व्यापारी जहाज पर आया। चन्द्रकिरन को अपने घर ले गया। रानी व्यभिचार को राजी न हुई। उसने उसे वेश्या के हाथ बेच दिया। लड़के को व्यापारी ने रख लिया। बालक बड़ा हुआ। वेश्या इसे धनिक जान उसे उसकी माँ के पास ले गई। माँ का दूध उतर आया। लड़के को उसने सब कथा सुना दी। लड़का व्यापारी को पकड़ राजा के पास ले गया। सब कथा सुनकर राजा ने अपने बेटे को छाती से लगाया। चन्द्रकिरन ने हंस का हाल पूछा। उसकी हड्डियाँ निकालीं; जल छिड़का और कहा यदि मैं निर्दोष हूँ तो जी उठ। वह जी उठा। चन्द्रमुकुट उसी मृत राजा के पुत्र को गद्दी दे कर वहाँ से चला। इस पार आकर अपने ६०० बेटों से मिला।

उसमान की चित्रावली भी प्रसिद्ध है। उसे श्रीगणेशप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी के कवि और काव्य' भाग ३ में सम्मिलित कर लिया है। यह सूफी कवियों की 'प्रेम गाथाओं' की कोटि की है। यद्यपि उसमान ने यह दावा किया है कि—

कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई॥
कहौं बनाय जैस मोहि सूझा। जेहि जस सूझ सो तैसे बूझा॥

किन्तु इस चित्रावली की कहानी के प्रमुख-तत्त्व इधर-उधर लोकवार्त्ताओं में बिखरे मिलते हैं। उन्हीं से लेकर यह चित्रावली उसमान ने 'उपाई' है।

सूफी प्रेम आख्यान काव्य के समकक्ष ही मृगेन्द्र कवि की प्रेम-पयोनिधि (रचना-काल सं० १६१२ ई०) है। इसका संक्षिप्त वृत्त यहाँ दिया जाता है:—

जगतप्रभाकर नाम का एक राजकुमार था। उसने एक तोते से राजा सहपाल की कन्या का रूप वृत्तान्त सुना। वह उस पर मोहित हो गया। उसके दरबार में एक शशिकला नाम की स्त्री थी। उसी की सहायता से राजकुमार सफल मनोरथ हुआ। फिर सहपाल की

कन्या का दुखित होना, मन्त्री-पुत्र का उसको धोखा देना, किसी योगी की सहायता से दुख छूटना, और फिर किसी पिशाच और यक्ष के द्वारा क्लेश पाना आदि दुःखद घटनाएँ हैं। फिर उसी तोते से मिलना और उसकी सहायता से अपनी प्रिया को प्राप्त करना। मन्त्री सुत का वध करना और राज्याभिषिक्त हो सुख से राज्य करना।

इस कहानी में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है। सूफी प्रेम आख्यान की परम्परा की क्षीण-काव्य आवृत्ति मात्र है।

चन्दन और मलियागिरि रानी की कहानी अम्बा, आमिली, सरवर और नीर की कहानी के समकक्ष है। सरवर और नीर ज्यों के त्यों इसमें हैं। यह भी प्रसिद्ध प्रचलित कहानी है।

चन्दन राजा और मलियागिरि रानी का सौन्दर्य वर्णन, कुलदेवता का राजा चन्दन को भविष्य कष्ट से आगाह करना। राजा चन्दन का और रानी का अपने दोनों पुत्रों सहित कनकपुर पहुँचाना, रानी का जङ्गल में लकड़ी चुनने जाना और एक सौदागर से भेंट होना, सौदागर का आसक्त होना और अपने नौकरों द्वारा रानी को मँगाना; सौदागर और रानी की बातचीत; सौदागर का जहाज चला देना; राजा चन्दन रानी मलियागिरि सरवर और नीर का पृथक्-पृथक् कर देना, लड़कों का पालन-पोषण होना और अन्य राजा के यहाँ नौकर होना, सौदागर का उस स्थान पर पहुँचना, दोनों भाइयों का आपस में अपनी विपत्ति वर्णन करना। अन्त में सबका मिल जाना।

'रसरत्न' (रचना-काल १६१६ ई०) यथार्थ में लोकवार्त्ता अथवा कहानी की पुस्तक नहीं। यह रसों का वर्णन करने के लिए लिखी गयी है। रसों का वर्णन करते हुए 'कथा विषय वह माहात्म्य' वर्णन करते हुये सूरसेन और रम्भा की प्रेमकहानी लिखी गई है। यह कहानी भी लोक-कहानियों के आधार पर है, इसमें सन्देह नहीं यह इसकी संक्षिप्ति देखने से ही विदित हो जाता है।

'कथा विषय वह माहात्म्य' में वर्णन है—वैरागढ़ के राजा सोमेश्वर का पुत्रार्थ काशी जाना और शिव-भक्ति करना—पुत्र उत्पत्ति, पंडितों का भविष्य कथन—चम्पावती नगरी और वहाँ के राजा का वर्णन, पुत्रार्थ देवी की उपासना—विजयपाल के यहाँ कन्या जन्म—कन्या का बालपन, यौवन वैस सन्धि वर्णन—सूरसेन और रम्भा में स्वप्न द्वारा

प्रेम उत्पन्न—आकाश वाणी, वैद्य उपचार—सखी का उन्माद—मदना सखी का संवाद—रम्भा का पुनः स्वप्न देखना—मदना सखी का कुमार को खोजने का प्रयत्न।—सूरसेन का विरह। 'चित्रकार का वैरागढ़ पहुँचना तथा नगर वर्णन, कुँअर से मिलाप करना—रम्भा का चित्र दर्शन-चित्रकार का पयान।

मृगावती का उल्लेख भी जायसी, उसमान आदि ने प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ के रूप में किया है। यह भी सूफी ढङ्ग की प्रेम कहानी मानी जा सकती है।

इस प्रकार हमें अबतक की शोध में प्राप्त लोक कहानियों का संक्षिप्त परिचय हो जाता है। ये कहानियाँ, कहानियों की दृष्टि से ही लिखी-पढ़ी गयीं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

दूसरे प्रकार का लोक-वार्त्ता साहित्य जो ग्रन्थ-रूप में खोज में मिला है 'धर्म-महात्मय-कथा' सम्बन्धी है। ये ग्रन्थ कई विभागों में रखे जा सकते हैं—इनमें पहले तो ऐसे ग्रन्थ हैं जो धार्मिक-व्रत के अनुष्ठान के प्रधान अङ्ग हैं। उदाहरण के लिए 'गणेश जू की कथा'। गणेश-चतुर्थी को गणेशजी की प्रसन्नतार्थ व्रत रखा जाता है। इस व्रत का फल बिना कथा सुने नहीं होता। व्रत-कथा तथा चन्द्रमा के उदय पर जल चढ़ाना ये इस गणेश-चतुर्थी के धार्मिक अनुष्ठान के प्रधान अङ्ग हैं। ऐसी कथाएें दो सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखने वाली मिली हैं। एक हिन्दुओं की, दूसरी जैनों की। हिन्दुओं की कथायें कम मिली हैं। वे ये हैं—

१—श्री गणेश जू की कथा
२—श्री सत्यनारायण की कथा
३—यम द्वितीया की कथा
४—पूर्णमासी और शुक्र की वार्ता
५—शिव व्रत कथा
६—एकादशी महात्म्य
७—हरतालिका कथा

शेष निम्न ग्रन्थ जैनियों के व्रतों से सम्बन्धित हैं—

१—अनन्तदेव की कथा
२—लघु आदित्यवार कथा
३—पंच कल्याणक व्रत

४—आदित्यवार कथा
५—निशिभोजन त्याग व्रत-कथा
६—शील कथा
७—श्रुत पंचमी कथा
८—रोहिनी व्रत की कथा
९—आकाश पंचमी की कथा
१०—रविव्रत कथा
११—रवि कथा

इनमें एक वर्ग ऐसे ग्रन्थों का है जो 'माहात्म्य' से सम्बन्ध रखते हैं, अथवा किसी व्रत का महत्व और आवश्यकता बताते हैं। ये अनुष्ठान के अङ्ग नहीं विदित होते। इनमें ये ग्रन्थ आ सकते हैं। १ सूर्य महात्म्य, २ व्रत-कथा कोष। इनमें से व्रत-कथा कोष जैन-ग्रन्थ है। कुछ वे ग्रन्थ हैं जो धर्म के प्रचार की दृष्टि से उपयोगी हैं। इसमें किसी विशेष धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है। ऐसे ग्रन्थ बहुधा जैन-धर्म की महत्ता के द्योतक हैं। संयुक्त कौमुदी भाषा, वारांगकुमारचरित, नर्मद सुन्दरी, पद्मनाभि चरित्र में जैन धर्म का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। 'मोहमरद की कथा' जैसे ग्रंथ में धर्म के मर्म की सूक्ष्म परीक्षा की कहानी दी गयी है। 'चण्डी-चरित्र' भी धार्मिक महत्व की पुस्तक है। यह दुर्गापाठ का अनुवाद है।

एक बहुत बड़ी संख्या उन ग्रंथों की है जो धार्मिक-अनुष्ठान अथवा उसके माहात्म्य से तो संबंधित नहीं, पर जो धार्मिक दृष्टि से लिखे गये हैं। वे धर्म-ग्रन्थों में गिने जा सकते हैं, और उनका स्वभाव पुराणों से मिलता जुलता है। उनका विषय अँग्रेजी शब्द माइथालाजी से अभिव्यक्त किया जा सकता है। ये ग्रन्थ या तो किसी पुराण के अथवा उसके किसी अंश के अनुवाद हैं, अथवा पुराणों से लिए किसी विषय पर स्वतन्त्रता पूर्वक लिखे गये हैं। इन सबके विषय उनके नामों से विदित हैं। इनमें से आदि पुराण जैनियों का पुराण है। महा-पद्मपुराण भी उन्हीं का है। धर्म संपद की कथा में युधिष्ठिर संवाद महाभारत से लिया हुआ है। जैमुन कथा में जैमिनी अश्वमेध का विषय है। हरिश्चन्द्र की कथा कहीं कहीं आदित्यवार की कथा का अङ्ग मानी गयी है। नासकेत कठोपनिषद के नचिकेता का हिन्दी में आवर्त्तन है। चण्डीचरित्र प्रसिद्ध दुर्गापाठ का अनुवाद है। नृसिंह-

चरित्र में नृसिंह अवतार का, बहुला-कथा में 'भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत कांदुला व्याघ्र सम्वादे' बहुला कथा का, सुदामाजी की बारहखड़ी में सुदामाचरित्र का, श्रवणाख्यान में श्रवणकुमार के चरित्र का, नृगोपाख्यान में राजानृग के चरित्र का, शिवसागर में नारद-चरित्र, देवी-देव-चरित्र, गङ्गाचरित्र, जालन्धर कथा, तुलसी चरित्र, सावित्री चरित्र आदि का, वीर-विलास में महाभारत के द्रोण पर्व का, उषा-चरित्र में उषा-अनिरुद्ध की कथा का, प्रद्युम्न चरित्र में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र का, सुन्दरी चरित्र में राजा सुरथ और समाधि वैश्य के संवाद द्वारा देवीजी की उपासना के फल तथा देवी-चरित्र का वर्णन है। 'आदि पुराण' (रचना-काल १८६७ ई०) में निम्न विषय है:

गंधिल नामक देश का राजा अतिबल—उसका पुत्र महाबल-पुत्र को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ले लेना। महाबल का प्रताप-स्वयं बुद्धि इसका मन्त्री उसे विविध कथा सुनाकर धर्म की ओर ले जाता है। मंत्री का सुमेरु पर जाना—आदित्य गति और अरञ्जय नामक दो साधुओं का आगमन—मंत्री का अपने स्वामी का अदृष्ट पूछना—साधुओं के भव्य होने की इस भव से दसवें भव में होने की भविष्य-वाणी—राजा जंबू द्वीप का प्रथम जिन हुआ—सिंहपुर नगर के श्री सेन राजा की सुन्दरी नाम्नी स्त्री से दो पुत्रों की जयवर्मा और श्री वर्मा की उत्पत्ति—श्रीवर्मा को राज्य-प्राप्ति—जयवर्मा का बन जाकर मुनि होना—विद्याधर के वैभव की इच्छा करना—उसी समय सर्प द्वारा डसा जाना—उसका महाबल होकर उन्हीं भोगों का भोगना—उसका ललितांग देव होकर विषय भोग करते हुए पुनः योग की ओर दृष्टिपात करना—ललितांग की कान्ति का मन्द हो जाना—शोक—स्वर्गीय सज्जनों द्वारा शोक-विनाश—मित्र द्वारा उसका सोलहवें स्वर्ग में पहुँचना। उत्कल षेट नगर के राजा वज्रबाहु की रानी वसुन्धरा से इसका जन्म होना—स्वयंप्रभा देवांगना का भी इसी समय जन्म होना—राजा को स्वप्न में अपनी पत्नी तथा उसके पति के पूर्व भव का वृत्तान्त जानना—उसकी पुत्री ब्रजजंघ का विवाह—उसकी बहिन अनुधरी का चक्रवर्ती के पुत्र अमित तेज से विवाह—वज्रजंघ का विरक्त हो जाना—कुटुम्बियों का शोक—इत्यादि—

यह महा ग्रन्थ जैनियों का आदि पुराण है। इसके मूल लेखक जिन सेनाचार्य हैं।

'महापद्मपुराण' (रचना-काल १७६६ ई०) में जैनियों की दृष्टि से राम-चरित्र का वर्णन है। इसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

मङ्गलाचरण आदि + बर्द्धमान स्वामी का वर्णन—द्वितीय अधिकार लोक-स्थिति—सूर्य चन्द्रवंश की उत्पत्ति—आदिनाथ का वर्णन—सगर पुत्रों की कथा—नरक स्वर्ग का वर्णन—रामणादि की पूर्ण जीवन कथा—

तीसरा महाधिकार—राम बनवास

चौथा महाधिकार—राम रावण युद्ध

पाँचवाँ महाधिकार—लवकुश का वृतान्त

छटवाँ महाधिकार—राम का निर्वाण-गमन

राम-चरित्र और जैनियों में बहुत मान्यता है, इसे सभी जानते हैं। हिन्दी की एक अत्यन्त पुरातन रामायण स्वयंभू की रामायण है, जिसके उद्धार करने का श्रेय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को है। यह 'स्वयंभू रामायण' अनेकों स्थानों पर जैनियों के यहाँ मिलती है। यह यथार्थ में उनके पुराण का प्रधान विषय है। प्रह्लाद-चरित्र में हिरण्यकश्यप तथा प्रह्लाद-चरित्र है। राम-पुराण रामचरित ही है। बहुला व्याघ्रसंवाद और बहुला-कथा का एक ही विषय है। भविष्य पुराण से लिया गया है। सुखसागर-शुकसागर है। सुधन्वा कथा में अर्जुन और उसके पुत्र सुधन्वा के युद्ध का वर्णन है। सीता-चरित्र, हनुमान-चरित्र विख्यात हैं—पांडव यशेन्दुचन्द्रिका में महाभारत की संक्षप में सम्पूर्ण कथाएँ हैं। इसी प्रकार महादेव विवाह, उर्वशी तथा पुरन्दर माया आदि पुराणों से लिए हुए विषयों पर कथायें हैं।

यहाँ तक हमने ग्रन्थ रूप में मिलने वाले कथा-कहानी साहित्य की उन शाखाओं पर विचार किया है, जिनके ग्रन्थ अधिक मात्रा में मिलते हैं। किन्तु इस प्रकार खोज में मिलने वाले ग्रन्थों में 'सन्त-कथा' सम्बन्धी चार ग्रन्थ हैं। इनमें किसी महात्मा के चरित्र का वर्णन होता है। कबीर, नामदेव, पीपा, यशोधरा आदि के चरित्रों का इन ग्रन्थों में वर्णन है। किन्तु ये जीवन-चरित्र नहीं कहे जा सकते। इनमें जीवन के ऐतिहासिक वृत्त की अपेक्षा, उनके सम्बन्ध में प्रचलित लोक-प्रवादों का विशेष समावेश होता है। उसके चमत्कारों का

अद्भुत वर्णन इनमें होता है। ऐसे वर्णन लोक-वार्त्ता का ही अङ्ग माने जाते हैं। इसी प्रकार तीन ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें किसी वीर पुरुष के वीर-चरित्र का वर्णन किया गया है। ऐसे चरित्र जब लोक-वार्ता पद्धति में लिखे जाते हैं तो अवदान या लीजेण्डस् कहलाते हैं। 'हरदौल' बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध वर्चस्वी महापुरुष हुआ है। घर-घर उसकी पूजा होती है। 'पन्ना वीरमदे की बात' में पन्ना और विक्रमदेव का वर्णन है। इनसे भिन्न वे रासो हैं जिनमें लोक-वार्त्ता ने भी कुछ साहित्यिक धरातल प्राप्त कर लिया है, और वीर पुरुषों का चरित्र-वर्णन रस-परिपाक की दृष्टि से किया गया है। इनमें गेयत्व भी हो सकता है। ऐसी रचनायें वीर-गाथायें कहलाती हैं। 'खान खवास की कथा' ऐसी ही रचना है।

शेरशाह और उसकी बेगम का वर्णन—शेरशाह का अपनी बेगम को पादने पर निकाल देना—बेगम गर्भवती—एक खिद्मतगार के यहाँ रही—वहाँ खां खवास का जन्म—साधू से आशीर्वाद मिलना—शेरशाह का खां खवास को ओहदेदार बनाना—बयाना की रानी की कथा जो कर नहीं देती थी—युद्ध में बादशाही सेना का हारना—अन्त में सेना सहित खां खवास का जाना—भीषण युद्ध—रानी को घेर लेना—सेना का भागना—रानी का खां खवास को अपनी ओर मिला लेना। शेरशाह की मृत्यु—सलेमशाह को गद्दी—खां खवास की उसके विरुद्ध रहने की प्रतिज्ञा।

खवास की दान-वीरता का वर्णन—सलेमशाह के बुलाये हुए मन्त्री पर बेगम का आसक्त हो जाना—मन्त्री से अपनी इच्छा प्रकट करना—मन्त्री का निषेध करना—बेगम की बादशाह से मन्त्री के दुष्टाचरण की शिकायत—मरवाने की आज्ञा—मन्त्री का खां खवास की शरण में जाना—सलेमशाह की बयाने पर चढ़ाई—बादशाही सेना विचलित—बादशाह की हार—खां खवास को आदर से सेना में बुलाना—खां खवास को घेर लेना—बादशाह का उससे सिर माँगना—उसका दे देना—बादशाही सेना की खुशी—बयाने वालों का दुख, खां खवास की स्त्री और पुत्र का मरना—सलेम को धिकारना।

कृष्णदत्त रासा (रचना-काल १८४४ ई०) भी इसी कोटि की रचना है। उसका विषय-परिचय इस प्रकार है:—महमूदअली खाँ

को नवाब ने शरवार देश इजारे में दिया—पाँडे गोंडा के महमूदअली से मिल गये और रामदत्त पाँडे भिनगा पर चढ़ा ले गये।

कृष्णदत्तसिंह के चचा उमरावसिंह का वर्णन—और दूसरे चाचाओं का वर्णन—पृथ्वीसिंह के पुत्र क्षेत्रपालसिंह और हरभक्तसिंह का वर्णन तथा उमरावसिंह के पुत्र युवराजसिंह का वर्णन—क्षेत्रपालसिंह के पुत्र अर्जुनसिंह हुए—म्लेच्छों ने हमला किया सेना का वर्णन—युद्ध—महमूदअली के साले का मारा जाना—सेना का भागना—पुनः युद्ध की तय्यारी—७ दिन का युद्ध—बाग का युद्ध—नवाब का पुनः सेना भेजना—नाजिम के भाई के युद्ध का वर्णन—गर्गवांशियों की सहायता से युद्ध करना—भिनगा नरेश का भागना—गोंडा नरेश ने भिनगा राज को मेल करने के लिए पत्र लिखा—उस समय गोंडा में अमानसिंह राजा थे—मेल होने पर फौजी सरदारों के साथ पहाड़ में शिकार खेलने चले गये फिर बदअमली होने से नवाब ने नाजिम को कैद कर दिया और कृष्णदत्तसिंह को राजा बनाया।

कुछ ऐसे ग्रन्थ भी हैं जिनमें विविध संस्कारों से सम्बन्धित लोकाचारों का वर्णन भी है। 'ठाकुरजी की घोड़ी' में विवाह के अवसर पर घोड़ी चढ़ने के समय के आचार का वर्णन और गीत हैं। 'राम कलेवा' में विवाह में कलेवे के अवसर पर होने वाले आचारों का उल्लेख है। उदाहरणार्थः "राम विवाह में राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि का कलेवा करने जाना—वहाँ लक्ष्मी, निधि, सिद्धि सरहज से हास विलास के प्रश्नोत्तर।" यह राम के विवाह के प्रसंग से जोड़ दिया गया है। 'षट रहस्य' में भी राम-विवाह का आश्रय लेकर छः वैवाहिक आचारों का वर्णन है। इसका संक्षिप्त विषय-परिचय यह है:—राम का देवियों के पैर लगने के लिए सखियों का कहना, बत्ती मिलाना, लहकौरि खिलाना, कलेवा करना, ज्यौनार, सखियों और राम का संवाद, हास-विलास।

'बना' में 'बरना' दिये हुए हैं। बरना भी विवाह के लिए तय्यार हुए 'वर' को कहते हैं। उसी पर रचनाएें इस पुस्तक में हैं।

कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं जैसे अजभान की कथा, बिसह कथा, अन्तरिया की कथा जिनका उल्लेख ऊपर के वर्गों में नहीं हुआ। इनमें से अन्तरिया की कथा बुखार को दूर करने के तान्त्रिक उपचार से सम्बन्ध रखने वाली कथा है।

यह अब तक खोज में प्राप्त लोक-वार्त्ता सम्बन्धी ग्रन्थों का साधारण विवरण है। अब उनमें से कुछ विशेष ग्रन्थों का कुछ विषय सम्बन्धी संक्षिप्त परिचय यहाँ दे देना इसलिए आवश्यक है कि उससे कुछ उन बातों का पता चल सकेगा जो आज के लोक-प्रचलित मौखिक वार्त्ता में भी जहाँ तहाँ मिलती हैं।

कहानियों में 'माधवानल कामकंदला' (रचना-काल ६६१ हिजरी) की कथा अत्यन्त प्रचलित है। इसकी जो प्रति मिली है वह १५८३ ई० की लिखी है। आलम कवि की लिखी हुई है। माधव ब्राह्मण और कामकन्दला वेश्या के प्रेम की गाथा है। यह वीर विक्रमादित्य की अनेकों कहानियों में से एक है। कहीं-कहीं लोक में प्रचलित कहानियों में केवल विक्रमाजीत का तो नाम रह गया है, माधव तथा कामकन्दला का नाम लुप्त हो गया है। इसका संक्षिप्त वृत्त इस प्रकार है:—

पुहपावती नगरी का एक गोपीचन्द राजा था। उसके दरबार में एक गुणवान ब्राह्मण माधवानल था। एक दिन वह स्नान कर तिलक लगा कर वीणा से कुछ गान करने लगा। नगर की सब स्त्रियाँ विमोहित हो गईं। एक स्त्री विशेष मोहित हुई। एक दिन वह अपने पति को भोजन करा रही थी। इतने में माधव गान करता हुआ उस गली में से आ निकला। स्त्री ने भोजन थाली की जगह धरती में परोस दिया। पति के कारण पूछने पर उसने कहा कि मैं माधव के गान से मोहित हो गई हूँ। पति ने नगर के सब आदमियों को एकत्रित करके राजा से पुकार की कि या तो माधव को निकाल दो या हम नगर छोड़ देंगे। राजा ने माधव को निकाल दिया। दस दिन पीछे माधव कामवती नगरी में पहुँचा जहाँ कामकन्दला नामक वेश्या रहती थी। राजा के दरबार में वह शृङ्गार करके पहुँची। माधव भी चला। माधव को द्वारपालों ने रोका; वह वहीं बैठ गया। दरबार में बारह मृदङ्ग बज रहे थे। एक मृदङ्गी का एक अँगूठा न था। माधव ने इस मृदङ्गची के द्वारा तालभङ्ग होने की बात द्वारपाल के द्वारा राजा से कहलाई। परीक्षा करने पर राजा ने जाना कि उसके मोम का अँगूठा है। माधव को बुला कर राजा ने उसका सम्मान किया। वेश्या की कला से प्रसन्न हो माधव ने जो कुछ राजा से पाया था सब वेश्या को दे दिया। राजा ने क्रुद्ध होकर उसे नगर से निकल

जाने की आज्ञा दे दी। वेश्या मोहित हो गई थी। वह उसे अपने घर लाई। दूसरे दिन भी वेश्या ने वह छिपा कर रखा। तीसरे दिन माधव बिदा हुआ। दोनों को दुख हुआ। वह विक्रमादित्य की उज्जैन नगरी में गया। राजा के शिवमन्दिर में एक दोहा लिख आया। राजा उस ब्राह्मण की खोज करने लगा। ज्ञानमती स्त्री ने उसे मन्दिर में पाया और राजा के पास ले गई। राजा ने उसका सम्मान किया और समझाया कि वेश्या की प्रीति स्थिर नहीं रहती, वह धन की प्रीति है। पर माधव न माना। विक्रम ने राजा कामसेन पर चढ़ाई की। कामवती के पास डेरा डाल कर राजा वेश्या की परीक्षार्थ गया और कहा कि माधव तेरे वियोग में मर गया। उसने भी प्राण त्याग दिये। जब माधव ने वेश्या के प्राण त्याग की बात सुनी तो उसने भी प्राण त्याग दिए। राजा भी इन दोनों प्रेमियों का बध करा कर जीवित नहीं रहना चाहता था। वह भी चिता बना कर जल मरने को तैयार हुआ। राजा के अधीन कुछ बेताल थे। वे आये। पाताल से अमृत लाये और माधव को जिला दिया। विक्रमादित्य वैद्य बन अमृत लेकर गये और वेश्या को जिला दिया और उसे अपना परिचय भी दिया। विक्रम ने श्रीपति क्षत्री को राजा कामसेन से वेश्या माँगने के लिए भेजा। कामसेन ने कहा युद्ध करके लेलो। चार पहर लड़ाई हुई। कामसेन हारा; सन्धि हुई और कामकन्दला विक्रमादित्य को दे दी। माधव को कामकन्दला दी और राजा अपने नगर में आया। राजा ने उसे अपना मन्त्री बनाया, जागीर दी। माधव सुखी रहने लगा।

चित्रावली—(रचनाकाल सं० १६१३) की कहानी में कितने ही चमत्कारपूर्ण अंश हैं। इस कहानी का आधार निश्चय ही लोकवार्ता है। यह जायसी के पद्मावत तथा आलम की कामकन्दला की भाँति ही प्रेम गाथा है। 'चित्रदर्शन' से प्रेम उदय हुआ है। और उसके लिए अनेकों कष्ट उठाने पड़े हैं। उसका संक्षिप्त कथा-परिचय यह है:—

नैपाल का राजा धरनीधर पँवार कुल का क्षत्री था। राजा के सन्तान न थी, तप के लिए वह जंगल जाने लगा। मंत्रियों ने घर पर ही शिवाराधना की सलाह दी। शिव-पार्वती ने आकर परीक्षार्थ उससे सिर माँगा। राजा सिर देने को तैयार हुआ। शिव-पार्वती ने एक पुत्र होने का बरदान दिया जो योग साधेगा और किसी स्त्री से प्रेम भी करेगा। पुत्र हुआ, उसका नाम सुजान रखा गया। वह गुण-

निधान था। एक बार शिकार खेलने में रास्ता भूल गया। हार कर एक पर्वत की मढ़ी में जा सोया। वह एक देव का स्थान था। उसने इसकी रक्षा की। इसी समय देव का एक मित्र आया और उसने रूपनगर में चित्रावली की वर्षगाँठ का वर्णन किया। उससे भी चलने के लिए कहा। वे कुमार को भी साथ ले उड़े और उसे चित्रावली की चित्रसारी में सुलाकर स्वयं उत्सव देखने लगे। राजकुमार की आँखें खुलीं, चित्रावली का एक चित्र वहाँ देखा। राजकुमार ने अपना भी एक चित्र बनाकर उसके पास रख दिया और सो गया। सबेरे देव उठा कर उसे ले आए। जब वह जगा तो चित्रावली के प्रेम में विह्वल हो गया। सेवक लोग ढूँढ़कर उसे राज में ले गये पर वह विरह में बेसध रहा। सुबुद्धि ब्राह्मण ने युक्ति से सारा हाल जाना। ये दोनों उसी मढ़ी पर जाकर रहे। अनशन जारी कर दिया। चित्रावली भी चित्र देखकर मोहित हो गई। उसने अपने नपुंसक भृत्यों को उसे ढूँढ़ने भेजा। एक यहाँ भी आ पहुँचा। एक चुगल ने कुमारी या हीरा से चुगली कर दी। उसने उस चित्र को धो डाला। कुमारी ने उस कुटीचर को उसका सिर मुड़वाकर निकलवा दिया। वह कुमर से मिला। उसके साथ कुमर रूपनगर पहुँचा। शिव-मन्दिर में दोनों का साक्षात् हो गया। इसी अवसर पर कुटीचर ने उसे अपना शत्रु मान कर उसे अन्धा कर एक पर्वत की गुफा में डाल दिया। वहाँ एक अजगर उसे निगल गया किन्तु उसकी विरहाग्नि से व्याकुल हो उसे फिर उगल दिया। बन में घूमते हुए एक हाथी ने उसे पकड़ा। उस हाथी को एक सिंह ले उड़ा। हाथी ने भी इसे छोड़ दिया। समुद्र तट पर एक बनमानस मिला जो इसके रूप पर मोहित हो गया। जड़ी-बूटी लगा कर नेत्र ठीक कर दिए। फिर घूमता हुआ सागरगढ़ में जा पहुँचा। वहाँ के राजा सागर की फुलवारी में यह विश्राम कर रहा था कि कौला आ गई। वह भी मोहित हो गई। जोगी जिमाने के बहाने उसने बुलाया। भोजन में हार डाल कर उसे चोर साबित कर लिया और उसे बन्दी बना दिया। एक राजा कौलावती की रूप-प्रशंसा सुन कर उसे लेने को चढ़ आया। सुजान ने उसे हटा दिया। और कौला से चित्रा-मिलन की प्रतिज्ञा करा ब्याह कर लिया। इधर चित्रा ने फिर वही पहले वाला योगी कुमार की खोज में भेजा। सुजान कौला को लेकर गिरनार यात्रा को गया

था। वह फिर उसे रूपनगर ले आया। उसे सीमा पर बिठा कर कुमारी से कहने गया। इसी अवसर पर कथक ने, जो सागर का निवासी था, राजा को सोहिल राजा के युद्ध का गान सुनाया। सुन कर राजा को कन्या-विवाह की चिन्ता हुई। राजा ने चार चितेरे राजपुत्रों के चित्र लाने को भेजे। रानी ने चित्रा को उदास देख कर उदासी का कारण पूछा। उसने तो बहाना किया किन्तु एक चेरी ने दूत भेजने का हाल सुना दिया। इसी समय वह दूत आ रहा था। रानी ने उसे बीच ही में पकड़ लिया। इधर बिलम्ब होने से राजकुमार चित्रा का नाम लेकर पागल-सा हो दौड़ने लगा। राजा ने हाल सुना। राजा ने गुप्त रूप से उसे मारने के लिए एक हाथी छोड़ दिया। कुमार ने उसे मार डाला। तब राजा उसे मारने को चढ़े। इसी अवसर पर एक चितेरा सागर से कुँवर का चित्र लेकर पहुँचा। सोहिल के मरने का समाचार कह कर चित्र दिखाया। चित्र इसी कुमार का था। राजा ने उससे अपनी चित्रा ब्याह दी।

कौला ने एक हंस मिश्र को दूत बना कर भेजा। कुमार ने अपने पिता और कौला का स्मरण कर बिदा माँगी और सागर आकर कौला को भी बिदा कराया। जगन्नाथपुरी होते हुए अपने देश को गये। माता अन्धी हो गई थी। पुत्र के आगमन से उसके नेत्र खुल उठे। राजा ने पुत्र गद्दी पर बिठाकर भजन करना आरम्भ कर दिया। कुमार राज्य भोग करने लगा।

इस कहानी के विश्लेषण से हमें इसके कथा-विधान में निम्न तत्वों की संयोजना मिलती है :

१—दैवी तत्व : अ—शिव-पार्वती का आना, सिर की भेंट माँगना, वरदान देना।

आ—देवी की मद्दी, सुजान को उड़ाकर रूपनगर में ले जाना, ले आना।

२—अद्भुत-विलक्षण-तत्व—अ—सुजान को अजगर लीलता है, विरह की अग्नि से व्याकुल हो उगल देता है।

आ—पुनः उसे हाथी पकड़ता है, हाथी को सिंह ले उड़ता है। हाथी पर्वत पर छोड़ देता है। बनमानुस उसे

बनौषधि से सूझता कर देता है।
इ—पागल सुजान का हाथी को मारना।
ई—अन्धी माता का पुत्र आगमन से दृष्टि पाना।

३—चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम—सुजान तथा चित्रावली में।

४—प्रत्यक्ष-दर्शन से प्रेम—अ—बनमानस का,
आ—कौला का।

५—मिलन और विवाह में विविध बाधाएँ—अ—कुटीचर द्वारा।
आ—मा द्वारा।
इ—पिता द्वारा, जो सुजान पर युद्ध करने चढ़े।

६—चित्र द्वारा विवाह का मार्ग खुलना—युद्ध के लिए आरूढ़ राजा चित्र पाकर सुजान से चित्रा का विवाह करने को सन्नद्ध।

७—मुख्य-विवाह से पूर्व एक और विवाह—कौला से।

८—नायक का अन्धा किया जाना, तथा पुनः एक वेग के माध्यम से औषधोपचार से पुनः दृष्टि पाना—अ—कुटीचर द्वारा अन्धा किया गया।
आ—बनमानस ने प्रेम में पड़कर औषधोपचार से नेत्र अच्छे किये।

'राजाचन्द की बात' एक नया ग्रन्थ अभी मिला है। उसमें एक छोटी-सी कहानी भर है। यह ब्रजभारती के एक पुराने अंक में प्रकाशित हो चुकी है। अगरचन्द नाहटाजी ने ब्रजभारती के एक अंक में एक लेख द्वारा यह बताया है कि चंद की बात जैन साहित्य में बहुत प्रचलित है।

इस कहानी में—

(१) चन्द का शिकार में मार्ग भूलना और एक बुढ़िया के पास पहुँचना ऐसा तत्त्व है जो एकानेक कहानियों में मिलता है। बुढ़िया 'बह माता' है जो जूड़ी बाँधती है।

(२) चन्द की माँ कामरू मन्त्र जानती है। पीपर उड़ता है,

उन्हें गिरनेरी पहुँचाता है और लाता है। पीपल का वृक्ष बातें भी करता है। मन्त्र से उड़ने की शक्ति के कितने दृष्टान्त मिलते हैं। यहाँ मन्त्र से वृक्ष को उड़ाया गया है। यह उड़न खटोले, या उड़नी खड़ाउओं, या काठ के घोड़े के समकक्ष है।

(३) वास्तविक वर काना है, सुन्दरी कन्या परिमलाच्छ के लिए विवाह के अवसर पर सुन्दर वर दिया जाय। वास्तविक वर के स्थान पर चन्द को वर बनाया गया।

(४) सासु-बहू घर जाकर राजा चन्द पर जब विवाह के चिह्न देखती हैं तो भयभीत होती हैं। बहू राजा को तोता बनाकर पिंजड़े में रख लेती है। लीला तागा बाँध देती है।

(५) परिमला वियोग में पागल, पवन-दूत बनाती है। सूआ बनकर आये चन्द से भी संदेश कहती है।

(६) परिमला ने लीला तागा तोड़ा। दोनों मिले।

(७) सासु-बहू दोनों चील बनकर उड़ गयीं। परिमला बाज बनकर उन्हें दबा लायी। राजा चन्द ने एक तीर से दोनों को मार दिया।

पहली दृष्टि में यह कहानी मात्र कहानी प्रतीत होती है। कोई आध्यात्मिक रूपक नहीं लगती। किन्तु कुछ संकेत कहानी में ऐसे हैं जो उसे स्पष्ट ही रूपक सिद्ध करते हैं। फिर भी कहानी का लोक-कहानी की दृष्टि से भी कम मूल्य नहीं है। कई ऐसे तत्त्व इसमें विद्यमान हैं जो लोक-वार्त्ता की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति हैं।

धर्म और महातम्य सम्बन्धी कुछ पुस्तकों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ कुछ अन्य का विवरण दिया जाता है :—

आदित्यवार की कथा का संक्षिप्त यह है:—

काशी में मतिसागर नामक श्रेष्ठी के होने का वर्णन तथा अपनी स्त्री सहित उनकी श्रद्धा जैन-धर्म में होना—आठ पुत्र होना।

एक मुनि का आगमन—सेठानी का उनसे आदित्य व्रत के विषय में पूछना—मुनि का आसाढ़ में रविवार के दिन सत्य संयम-युक्त व्रत करने का विधान—नव वर्ष तक पालन करने का आदेश—आदेश ठीक पालन न हो सकने के कारण हानियाँ।

पुत्रों के विछोह से सेठानी का विकल होना। एक मुनि से उनके आने के विषय में पूछना—मुनि का सेठानी का ध्यान व्रत की

ओर आकर्षित करना—व्रत करना—पुत्रों को उन्नत अवस्था में प्राप्त करना—

इन व्रत-कथाओं में प्रायः सभी में विशेष 'तिथि' अथवा 'वार' को व्रत रखने का महातम्य वर्णन है। विवाह, पुत्र-प्राप्ति, धन-प्राप्ति जैसे फल व्रत रखने से मिलते दिखाये गये हैं। व्रत में विघ्न डालने वाले को कष्टों का सामना करना पड़ा है। व्रत रखने वाले के संकट दूर होते दीखते हैं। 'श्रुत पंचमी' की कथा[1] में सेठ धनपति की कथा है। मुख्य उद्देश्य है श्रुत पंचमी के व्रत से खोए हुए पुत्र का मिलना। सुरेन्द्र कीर्ति विरचित 'रविव्रत कथा' में उस मस्तसागर सेठ की कहानी है, जिसने अपनी स्त्री के रविव्रत लेने की निन्दा की, फलतः सब धन नष्ट होगया। पुनः लड़कों द्वारा व्रत साधन करके पूर्व समृद्धि मिली। आकाश पंचमी[2] का व्रत रखने से एक स्त्री लिंगभेद कर पुरुष रूप में जन्म ग्रहण करती है। निशिभोजन त्याग व्रत कथा[3] में अत्यन्त प्रचलित लोक-कहानी के एक तत्त्व का उपयोग है। पत्नी के निशिभोजन त्याग पर शैव पति रुष्ट होता है। वह सर्प लाकर पत्नी के गले में डालता है। वहाँ वह हार हो जाता है। पति के गले में वह सर्प बनकर उसे डस लेता है। पत्नी फिर उसे जिला लेती है। 'धर्म परीक्षा'[4] में जैन और ब्राह्मण धर्म का विवाद है, जिसमें ब्राह्मणों को परास्त हुआ दिखाया गया है। 'पुण्यार्णव कथा'[5] तो पुण्यकथाओं का छोटा कोश है। 'रुक्मांगद की कथा'[6] में एकादशी व्रत का महात्म्य बताया गया है। बहू से लड़ाई हो जाने के कारण बुढ़िया को एकादशी का उपवास करना पड़ा था, इसी उपवास के प्रताप से उसके स्पर्श से उस मोहिनी का रुका हुआ रथ चल पड़ा था, जिस मोहिनी को इन्द्र ने छल करके रुक्माङ्गद के राज्य में एकादशी व्रत बन्द कराने भेजा था। 'बन्दीमोचन कथा' अ-जैन है। काशी की बन्दी देवी की पूजा से पुत्र प्राप्ति का इसमें उल्लेख है। सुदर्शन लिखित 'एकादशी

---

[1] लेखक ब्रह्मरायमल, रचना काल संवत् १६३३।

[2] लेखक खुसाल कवि, रचना काल संवत् १७८५।

[3] लेखक भारामल।

[4] लेखक मनमोहनदास, रचना संवत् १७०५।

[5] लेखक रामचन्द्र, रचना संवत् १७६२।

[6] लेखक सूरदास कवि।

महात्म्य'[1] में प्रत्येक मास की एकादशी व्रत का फल बताने के लिए एक कथा दी हुई है। उदाहरणार्थ कुछ अंश की संक्षिप्ति यहाँ दी जाती है :

अगहन शुक्ला एकादशी की उत्पत्ति, कृष्ण अर्जुन संवाद, देवासुर संग्राम, विष्णु का गुफा में छिपना, स्त्री का गुफा से निकल कर राक्षस को मारना, वह एकादशी थी।

माघ कृष्णा एकादशी के व्रत का नियम उसका इतिहास, एक ब्राह्मणी की नारायण द्वारा परीक्षा, भिक्षा माँगने पर मिट्टी डालना, उसको स्वर्ग होना, केवल मिट्टी का घर मिलना, नारायण का खाली मकान देने का कारण बताना, मुनि-नारियों का उसे व्रतदान का फल प्रदान करना, उसके घर में सब कुछ हो जाना।

एकादशी व्रत का नियम इतिहास, पतित और अभिशप्त गन्धर्व और पुष्पवती अप्सरा का पिशाच पिशाची होना, एकादशी के अज्ञात व्रत से उनका उद्धार।

फागुन शुक्ल पक्ष की एकादशी का नियम सुरथ का एकादशी के प्रभाव से शत्रुओं का नाश।

चैत्र कृष्ण एकादशी—एक ऋषि की तपस्या देख कर और इन्द्रासन जाने के भय से इन्द्र का विघ्न डालना। मुनि का स्त्री के साथ ५७ वर्ष निवास, ज्ञात होने पर स्त्री को मुनि का अभिशाप, एकादशी व्रत से दोनों का कल्मष दूर होना।

चैत्र शुक्ल एकादशी—नागपुर के ललित नामक पुरुष का अपनी पत्नी ललिता के एकादशी व्रत करने से फल, पति देने से ललित का शाप मोचन।

बैशाख कृष्ण एकादशी—लखनपुर के राजा हरिसेन के एक चमार द्वारा एकादशी का फल प्राप्त करने पर एक गदहा बने हुए ब्राह्मण का उद्धार।

बैसाख शुक्ल एकादशी—सेठ के पापी बेटे का एकादशी व्रत से उद्धार।

ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी—एक अप्सरा का विमान बेंगन के धुँए से नीचे गिरा, एक एकादशी को भूखी दासी के फल से ऊपर चढ़ा।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी—गन्धर्व ज़िन्द हुआ, एकादशी व्रत के

[1] रचना संवत् १७७०।

महात्म्य सुनने से राजकुमार हुआ, एकादशी से उसका उद्धार।

आसाढ़ कृष्ण एकादशी—एक कुष्ठी ब्राह्मण का उद्धार।

आसाढ़ शुक्ल एकादशी—बलि की कथा, इस प्रकार सभी एकादशियों का वर्णन।

फिर सब का फल, इनमें पौराणिक कथायें दी गयी हैं।

'गणेश चतुर्थी' की कथा की भी कई पुस्तकें मिली हैं। सत्य नारायण की कथा भी मिली है।

इन व्रत और उनके महात्म्य की कथाओं के साथ ही अन्य धार्मिक आख्यायिकाओं का भी कुछ परिचय देना आवश्यक है। जिनमें धर्माचरण करने वाले महापुरुषों के अद्भुत पराक्रमों का उल्लेख है, जो पौराणिक कोटि के ग्रन्थ कहे जा सकते हैं।

'प्रद्युम्न चरित्र' में कृष्ण-रुक्मिणी विवाह के उपरान्त प्रद्युम्न जन्म और दैत्य द्वारा प्रद्युम्न के चुरा लिए जाने तथा उसके पश्चात् प्रद्युम्न के विविध चमत्कारों के प्रदर्शन का इसमें वर्णन है। मोहमर्द राजा[1] की कथा जगन्नाथ की लिखी हुई है। इसमें नारदजी द्वारा राजा मोहमर्द की परीक्षा का वर्णन है। राजा, स्त्री तथा पुत्रवधू किसी को भी पुत्र मरने का शोक नहीं हुआ यह दिखाया गया है।

सुन्दरदास लिखित 'हनुमान चरित्र'[2] हनुमानजी की अद्भुत कथा लिखी गई है। मुख्य भाग महेन्द्र विद्याधर की पुत्री अञ्जनाकुमारी और राजकुमार पवनञ्जय के संयोग और हनुमान के उत्पन्न होने से सम्बन्ध रखता है। बाद में शूर्पणखा की पुत्री अनङ्ग पुष्पा और सुग्रीव की पुत्री पद्मरागी से हनुमान का विवाह कराया गया है। रावण-युद्ध में राम की सहायता का भी उल्लेख है। हनुमान जी का यह वृत्त रामायण आदि के ज्ञात वृत्त से बहुत भिन्न है। जैन दृष्टि ने जिस रूप में इन कहानियों को अपनाया, उसी का एक रूप इसमें भी मिलता है। इसी प्रकार 'बलि-वामन' की हिन्दू-पुराण प्रसिद्ध कथा का एक जैन संस्करण हमें विनोदीलाल कृत 'विष्णु-कुमार की कथा'[3] में मिलता है। इसमें बलि उज्जयिनी के राजा के

[1] रचना सं० १७७६।

[2] रचना सं० १६१६।

[3] प्रतिलिपि सं० १९५५ सन् १८९८।

चार मन्त्रियों में से एक प्रमुख मन्त्री हो गया है। इसकी संक्षिप्ति यह है:—

उज्जयिनी के राजा सिवाराम के चार मन्त्रियों द्वारा एक जैन मुनि की अविनय होना, मुनि ने उन सब को कील दिया, राजा का उनको प्राणदण्ड की आज्ञा देना, मुनि का उन्हें क्षमा करना, राजा का देश निकाला देना, मन्त्रियों का हस्तनापुर के राजा पदुम के यहाँ पहुँचना। एक शत्रु को वश में लाकर सात दिन का राज्य पाना, वहाँ पर उन्हीं मुनि की श्रद्धा न करना। विष्णुकुमार की सहायता से कष्ट से मुक्त होना। विष्णुकुमार का वामन रूप धर कर बलि मन्त्री (चारों में श्रेष्ठ) को छलना, उन चारों का श्रावक व्रत धारण करना। 'वारांगकुमार चरित्र'[1] जैन पुराण है। जैनियों में वारांगकुमार का चरित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। सातवीं शताब्दी (ईसवी) में जटासिंहनन्दी नाम के कवि ने संस्कृत में भी 'वारांग चरित' लिखा था। इस प्रसिद्ध चरित्र की उक्त हिन्दी ग्रन्थ के आधार पर संक्षिप्त रूपरेखा यह है:—

कान्तपुर नगर के राजा धर्मसेन की रानी गुनदेवी के गर्भ से वारांगकुमार का जन्म—वाणिकों ने राजा धर्मसेन से आकर कहा कि समृद्धिपुरी के राजा धृतिसेन की पुत्री 'गुनमनोज्ञा' कन्या आपके पुत्र के योग्य है—मंत्रियों से परामर्श, अन्त में सभी प्रस्तावित कन्याओं से विवाह का निश्चय, सब राजाओं का अपनी-अपनी कन्या लाकर वारंग से वहीं विवाह।

जिन गणधरों के आगमन की सूचना वनमाली द्वारा—राजा का वहाँ जाना, जैन धर्म का उपदेश, पुत्र सहित राजा का श्रावक व्रत लेना, नगर में आना।

वारांग कुमार को राज्य देना, राजकुमार का दुष्ट मन्त्री के सिखाये हुये घोड़ों के द्वारा एक सघन वन में पहुँचना, एक तालाब के पास पहुँचना, मगर ने पैर पकड़ा, जिन की कृपा से बचना, भीलों का मार्ग दर्शन, एक बनजारे से मिलना, राजकुमार को उसे 'सागरबृद्धि' राजा के पास ले जाना, उसकी रक्षा भीलों आदि से, उस सेठ की कन्या से विवाह, ललितपुर निवास।

उधर राजा धर्मसेन का विलाप, सुखेन को राज्य दे देना।

[1] लेखक कंजद्दग, रचना संवत् १८१४।

मथुरापुर के राजा ने ललितपुर के नरेश से हाथी माँगे, मना कर दी, मथुरेश की चढ़ाई, वारांगकुमार की सहायता से मथुरेश की पराजय।

ललितपुर के राजा का अपनी पुत्री सुनन्दा का उससे ब्याह करना, दूसरी लड़की मनोरमा का भी प्रस्ताव अस्वीकृत—

राजा धर्मसेन पर शत्रुओं का आक्रमण—राजा का अपनी ससुराल समाचार भेजना—जहाँ वारांगकुमार था, राजा का वारंग को पहचान लेना, मनोरमा का विवाह भी होना। ससुर जमाई का कान्तपुर आना. राजकुमार का गद्दी पर बिठाया जाना, पिता के शत्रुओं का पराजित करना, अनर्तपुर पर चढ़ाई करना, हार मान कर वारंग मे अपनी पुत्री विवाह देना, वारंग का जैन-धर्म स्वीकार करना, वारंग के पुत्र का जन्म और उसका विवाह।

वारंग का विरक्त होना, सब का मुनि की दीक्षा लेना।

जिस प्रकार इस 'वारांगकुमार चरित' में मन्त्री के द्वारा सिखाये हुए घोड़े वारांगकुमार को वन में संकट में डालने के लिए ले जाते हैं, उसी प्रकार एक दूसरे चरित्र में भी ऐसे सिखाये घोड़े का उल्लेख हुआ है। उसमें भी राजा का वह सिखाया हुआ घोड़ा बन में ले जाता है। यह चरित्र 'पद्मनाभि-चरित्र' है। यह भी प्रसिद्ध जैन-कथानक है। 'संयुक्त कौमुदी भाषा'[1] तो नाम से ही स्पष्ट 'संयुक्त कौमुदी' का अनुवाद है। कार्तिक शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को कौमुदी महोत्सव की महिमा को लेकर मथुरा के राजा उदितोदय और अर्हद्दास की आठ भार्याओं की कहानियाँ हैं। यह भी प्राचीन कथा है। संयुक्त कौमुदी मूल कब लिखी गयी होगी इसका तो पता नहीं चलता, पर 'अर्हद्दास कथानक' हमें जैन कथा कोशों में मिल जाता है।[2] इन कोशों के कथानकों का मूल बहुत प्राचीन है। इसमें सन्देह नहीं। परमल्ल का 'श्रीपाल चरित्र'[3] लोक-वार्त्ता की दृष्टि से इसलिए महत्व पूर्ण है कि इसमें हमें कई घटनायें मौखिक लोक महाकाव्य 'ढोला' के अन्तर्गत 'नल' के सम्बन्ध में प्रचलित मिलती हैं। 'श्रीपाल चरित्र' की संक्षिप्ति यह है:—

[1] लेखक जोधराज मोदी, रचना : सं० १७२४।

[2] देखो हरिषेणाचार्य रचित वृहत् कथा-कोश में ६३ वां कथानक।

[3] रचना काल : संवत् १६५१

रानी को स्वप्न—राजा का यशस्वी पुत्र होने का कथन—गर्भ की दशा वर्णन—श्रीपाल का जन्म, राजा बना, चक्रवर्ती हो गया। राजा को कुष्ठ, वीरदमन को राज्य देकर वन को चला जाना, सात सौ कुष्ठी साथियों का भी जाना।

उज्जैन नरेश पहुपाल की पुत्री मैना, छोटी मैना का जैन चैत्यालय जाना, बड़ी का गुरू से विद्याध्ययन, जैन मुनि से मैना की शिक्षा, बड़ी का कौशाम्बी के राजा से विवाह, छोटी मैना का राजा से कर्म के विषय में विवाद, उसका निकाल देना।

राजा को जंगल में कुष्ठी राजा से मिलना, मित्रता, कुष्ठी ने उसकी पुत्री माँगी, विवाह हो जाना। मैना का जन्म-पर्यन्त सेवा करने का कथन, जिनकी प्रार्थना करके मैना ने कुष्ठ अच्छा किया।

जिनेन्द्र के कथनानुसार श्रीपाल की मा का उसके पास आना, आने का समय निर्दिष्ट करके श्रीपाल का कहीं जाना, विद्याधर से मिलाप, विद्याधर की मन्त्र-सिद्ध करने में श्रीपाल की सहायता, विद्याधर ने जल-तारिणी और शत्रु-निवारिणी विद्याएँ दीं।

श्रीपाल का निर्जन वन में पहुँचना, एक बणिक के जहाज का अटकना, बलि के लिए श्रीपाल का पकड़ा जाना, श्रीपाल के छूते ही जहाज चल दिया। सेठ उसे साथ ले चला, धन दिया, बेटा पाना, चोर मिलना, श्रीपाल का उन्हें बाँध लेना।

हंस-द्वीप—कनककेतु राजा की स्त्री कंचन के चित्र विचित्र दो पुत्र और रैन मंजूषा नाम की तीसरी पुत्री का वर्णन, विवाह के लिए सहस्रकूट चैत्यालय के फाटक को हाथ से खोलने की शर्त, श्रीपाल का वह कृत्य करना, विवाह, सेठ का रैन मंजूषा के लिए श्रीपाल को समुद्र में गिरा देना, रैन मंजूषा की प्रार्थना, चार देवियों का प्रकट होकर सेठ को दण्ड देना, श्रीपाल को तैरते हुए कुंकुम द्वीप में पहुँचना वहाँ के राजा की पुत्री से विवाह, जिसकी शर्त थी—जा समुद्र में तैर कर आवे, विवाह करे। सेठ का उसी नगर में पहुंचना, सेठ का भांड़ों का तमाशा करा उसे भांड़ सिद्ध कर मरवाने की आज्ञा दिलवाना, गुणमाला का राजा से युद्ध समाचार कहलाना और श्रीपाल की मुक्ति, श्रीपाल का सेठ को क्षमा कर देना, सेठ का हृदय फट कर मर जाना।

मुनिराज की भविष्यवाणी के अनुसार श्रीपाल का विवाह

कुण्डलपुर के राजा मकरकेतु की पुत्री चित्ररेखा से होना, बाद में कंचनपुर के राजा वज्रसेन की पुत्रियों से विवाह, कुंकमपट के राजा का सोलह सौ पुत्रियों से व्याह, सबको ले कुंकमद्वीप लौटना, अपनी प्रथम स्त्री मैना सुन्दरी से किए हुए वचनों को पूर्ण करने के लिए उज्जैन नगरी पहुँचना, प्रातः सब स्त्रियों को बुलाना, मैना को पटरानी बनाना।

मैना सुन्दरी के कथनानुसार उसके पिता को कंबल ओढ़ कुल्हाड़ी लेकर बुलाना, उसका भयभीत होकर आना, कर्म का महत्व समझना, जैन धर्म स्वीकार करना।

मैना के पिता ने श्रीपाल को अपनी राजधानी में बुलाया, श्रीपाल का श्वसुर से आज्ञा लेकर अपनी जन्मभूमि में जाना, मार्ग में चम्पावती क राजा वीरपाल से युद्ध, मल्लयुद्ध में श्रीपाल की विजय, वीरदमन का जैन धर्म मानना—

मैनासुन्दरी के धन्यपाल नामक पुत्र—१२१०८ पुत्र होने का कथन, राजा का दीक्षित होकर वन को जाना, पुत्र को राज्य देना, मुनिराज से भेंट, उनसे उपदेश, तप, मुक्ति।

इस कथा में छोटी पुत्री मैनासुन्दरी का कर्म के संबंध में पिता से विवाद हो जाने पर निकाले जाने की घटना तो लोकवार्त्ता की साधारण घटना है, जो ब्रज की कहानी में भी मिलती है। ब्रज की कहानी में राजा ने छोटी लड़की को इसलिए निकाल दिया था कि वह कहती थी कि मैं भाग्य का दिया खाती हूँ। एक कहानी में राजा ने अपनी ऐसी भाग्यवादिनी पुत्री का ऐसे राजकुमार से विवाह कर दिया था, जिसके पेट में साँप प्रवेश कर गया था, और जिसके कारण राजकुमार मरणासन्न हो रहा था। मैनाकुमारी ने इस कहानी में 'जिन' की कृपा से राजकुमार श्रीपाल का कुष्ट दूर कर दिया है। कोढ़ी, अथवा लुंज या अंगहीन से विवाह होने का वृत्त देश विदेश में एकानेक कहानियों में मिलता है। ब्रज की कहानी में राजा विकरमाजीत पर दुख भञ्जनहार अंगहीन है, उसके हाथ-पैर काट दिये गये हैं, राजकुमारी उसी को बरती है। इसी प्रकार अटके जहाज का श्रीपाल के छू देने से चल पड़ने का उल्लेख भी इसी कहानी की विशेषता नहीं। एकानेक कहानियों में यह घटना भी मिलती है। सहस्रकूट चैत्यालय के फाटक को हाथ से खोलना और ढोला में

'मोतिनी' के लालच में सेठ मामाओं ने नल को समुद्र में गिरा दिया है, यहां रैन मंजूषा के लिए श्रीपाल को समुद्र में गिरा दिया गया है।

'धन्यकुमार चरित्र'[1] भी ऐसी लोकवार्ता सम्बन्धी सामग्री रखता है। दीवारों के बदले में गाड़ी ईंधन खरीदना, ईंधन के बदले में मेष, मेष के बदले में चार अधजले पाये खरीदना। फिर उन जले पायों में चार लाल निकलना, लोकवार्ता की साधारण वस्तु है, जिसका उपयोग जैन कहानीकार ने अपने नायक के चरित्र को रोचक बनाने के लिए किया है। धन्यकुमार के पहुँचने से बाग का हरा हो जाना भी उस लोक-परम्परा में है जिससे अपेक्षित व्यक्ति के आने की सूचना मिलती है।

शोध में प्राप्त इन ग्रंथों के विवरण से हमें यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि अधिकाँश कहानी-साहित्य जैन है। इनमें प्राचीन जैन-परम्परा के समस्त लक्षण हमें मिल जाते हैं।

सभी जैन-कहानियाँ 'धर्मोपदेशता' का अङ्ग मानी जानी चाहिए। जैन धर्मोपदेक धर्मोपदेश के लिए प्रधान माध्यम कहानी को रखता था।[2] इन कहानियों में 'मनुष्य' के वर्तमान जीवन की यात्राओं का ही वर्णन नहीं रहता, मनुष्य की 'आत्मा' की जीवन कथा का भी वर्णन मिलता है।[3] आत्माओं को शरीर से विलग कैसे-कैसे जीवन-यापन करना पड़ा, इसका भी विवरण इन कहानियों में रहता है। 'कर्म' के सिद्धान्त में जैसी आस्था और उसकी जैसी व्याख्या जैन कहानियों में मिलती है, उतनी दूसरे स्थान पर नहीं मिल सकती। कहानी अपने स्वाभाविक रूप को अक्षुण्ण रखती है, यही कारण है कि जैन कहानियों में बौद्ध जातकों की अपेक्षा लोकवार्ता का शुद्ध रूप मिलता है। अपने धार्मिक उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए जैन-कथाकार साधारण कहानी की स्वाभाविक समाप्ति पर एक 'केवलिन' को अथवा सम्यग्द्रष्टा को उपस्थित कर देता है, वह कहानी में आये दुःख-सुख की व्याख्या उनके पिछले जन्म के किसी कर्म के सहारे कर देता है। इसी विधान के कारण जैन कहानियों का जातकों

[1] लेखक खुसाल कवि।

[2] देखिए 'हर्टल' का निबन्ध, 'आन दी लिटरेचर आव दी श्वेताम्बराज आव गुजरात'।

[3] ए० एन० उपाध्ये, बृहत्कथाकोष की भूमिका।

से मौलिक अन्तर हो जाता है। यद्यपि रूपरेखा में ये कहानियाँ भी बौद्ध कहानियों के समान हैं। वह मौलिक अन्तर यह हो जाता है कि जैन कहानियाँ वर्तमान को प्रमुखता देती हैं, भूतकाल को वर्तमान के दुख सुख की व्याख्या करने और कारण-निर्देश के लिए ही लाया जाता है। बौद्ध जातकों में वर्तमान गौण है, भूतकाल, पूर्वजन्म की कहानी प्रमुख होती है। जैन कहानियों के इसी स्वभाव के कारण उनमें कहानी के अन्दर कहानी मिलती है, जिससे कहानी जटिल हो जाती है। हिन्दी में इतनी जैन-कहानियाँ लिखी गईं किन्तु वे प्रकाश में नहीं आ सकीं। किन्तु आगे का वह साहित्य जो प्रकाश में आया, सूफियों का प्रेमगाथा साहित्य था। प्रेमगाथा-काव्य की एक लम्बी परम्परा हिन्दी में मिलती है। इस परम्परा के सबसे अधिक चमकते सितारे मलिक मुहम्मद जायसी हैं। पद्मावत के काव्य के कारण उनका यश बड़ा है। इस परम्परा में हमें लोक-कहानियों का उपयोग हुआ मिलता है। इन कहानियों की साधारण रूपरेखा यह रहती है:—

'अ' राजकुमार है। उसे स्वप्न, चित्र, चर्चा (गुण अथवा दर्शन) आदि से एक राजकुमारी से प्रेम हो जाता है। इस प्रेम को दूत, तोता या अन्य कोई और पुष्ट करता है। राजकुमार राजकुमारी के विरह में जलता हुआ उसकी खोज में चलता है। तोता या अन्य दूत उसकी सहायता करता है। अनेकों कठिनाइयाँ झेलता हुआ वह प्रेयसी के स्थान पर पहुँचता है, विविध चमत्कारों और पराक्रमों के प्रदर्शन के उपरान्त वह प्रेयसी को प्राप्त कर लेता है। उनके मिलन में फिर बाधायें आती हैं, अन्त में वे फिर मिलते हैं।

इन गाथाओं में इतिहास का जो पुट मिला है, वह सब लोक-वार्ता का सहायक ही है और अपनी ऐतिहासिकता खो बैठा है। उदाहरण के लिए 'जायसी' के पद्मावत की कथा को लिया जा सकता है। सूफियों की प्रेमगाथायें ही नहीं सूर का कृष्ण-चरित्र और तुलसी का रामचरित्र धर्म के माध्यम बने, पर वे लोकवार्ता से परिपूर्ण हो गये हैं। कृष्ण और राम के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों और उनके आदर्श पर भारतीय विद्वानों में जो चर्चा चलती रही है उससे यह भले ही न कहा जा सके कि राम और कृष्ण मात्र काल्पनिक व्यक्तित्व हैं, ये कभी हुए ही नहीं थे, पर इतना तो निस्संकोच कहा जा

सकता है कि इनकी कथाओं में सामयिक आवश्यकताओं तथा लोकवार्त्ताओं के प्रभाव से अनेकों परिवर्तन हुए हैं, और अब उनके कृत्यों में जो आद्भुत्य है वह सब लोक-वार्त्ता की देन है। कहानियों के क्षेत्र में जैनों के साथ सूफियों की रचनायें मिलती हैं। किन्तु राम और कृष्ण की धर्मगाथाओं के आ जाने पर अन्य कोई भी कहानियाँ अथवा गाथायें ठहर नहीं सकती थीं। फलतः हिन्दी में दो चरित्रों पर साहित्य-क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया गया। यों कुछ अन्य प्रकार की कथाओं को कहने के भी प्रयत्न किये गये, जैसे जोधराज ने 'हम्मीर-रासो' लिखा। यह पूर्वजों के गौरव-वृद्धि के लिए लिखा गया किन्तु इसमें भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता की अपेक्षा लोकवार्ता का समावेश हो गया है। हम्मीर और अलाउद्दीन के जन्म की कहानी ही अलौकिक है, फिर महिमा के निकाले जाने की कल्पना लोकवार्त्ता से मिली है। इसी प्रकार और भी कितनी ही बातें हैं। भारतेन्दु-काल से साहित्यकारों का ध्यान दूसरी ओर रहा, पर लोक-साहित्यकार फिर भी लोक-वार्ता की रचना में और पुरानी परम्परा में प्रवृत्त रहा। लोक-कवि ने स्वांग लिखे, इनके विषय थे गोपीचन्द भरथरी, आल्हा के मार्मिक स्थल, संत-बसन्त, मोरध्वज लीला, स्याहपोश, लैला-मजनू, हरिश्चन्द्र। यह ध्यान देने की बात है कि साहित्यकार ने जिन कथाओं को लिया, लोक-रचयिता ने उनसे हाथ भी नहीं लगाया।

नये युग के आरम्भिक स्तम्भ भारतेन्दुजी में लोकवार्ता का भी पूरा उपयोग है। हरिश्चन्द्र की कथा को भी लोकवार्त्ता का रूप मानना ठीक होगा। 'धर्मगाथा' होते हुए भी उसमें लोक-गाथा की मात्रा विशेष है। 'अंधेर नगरी बेबूझ राजा' तो केवल वार्त्ता ही है।[1]

यह एक सूक्ष्म दिग्दर्शन है, जिससे हिन्दी में लिखित लोक-कहानी की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है। हिन्दी-क्षेत्र की ब्रजभाषा प्रमुख माध्यम रही थी, उसकी भी ये परम्परायें हैं। इन साहित्यिक

[1] ईलियट महोदय ने 'रेसेज आव नॉर्थ वेस्टर्न प्राविन्स आव इंडिया' में बताया है कि 'अंधेर नगरी बेबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा' यह कहावत हरभूमि (भूसी) के हरबोंग राजा के सम्बन्ध में प्रचलित है। मछन्दरनाथ और गोरखनाथ ने ऐसा प्रपञ्च खड़ा किया कि हरबोंग राजा स्वयं फाँसी पर चढ़ कर मर गया। अन्य अद्भुत बातें भी इस राजा के राज्य और न्याय की दी गयी है। देखिये उक्त पुस्तक का पृष्ठ २६१।

परम्पराओं के साथ और बाद में अब मौखिक लोक-कहानी पर विचार करना समीचीन होगा।

इ—ब्रज की कहानियाँ : विविध रूप

कथा-कहानियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में प्राचीन और नवीन दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है। प्राचीन शास्त्रकारों में से भामह ने 'कथा' और 'आख्यायिका' का उल्लेख किया है। दण्डी में भामह से साम्य है। आनन्दवर्द्धनाचार्य ने कथा के तीन और भेद माने: १—परिकथा, जिसमें इतिवृत्त मात्र हो, रस परिपाक के लिए जिसमें विशेष स्थान न हो, २—सकल कथा और ३—खण्ड-कथा। अभिनवगुप्त ने परिकथा में वर्णन वैचित्र्य युक्त अनेक वृत्तान्तों का समावेश आवश्यक माना है। सकल-कथा में बीज से फल पर्यन्त तक की पूरी कथा रहती है। खण्ड-कथा एक-देश प्रधान होती है। हेमचन्द्र ने 'सकल-कथा' को चरित का नाम दिया है। उदाहरण में 'समरादित्य-कथा' का उल्लेख किया है। 'उप-कथा' में 'चरित' के अन्तर्गत किसी प्रसिद्ध कथान्तर का वर्णन रहता है। 'चित्रलेखा' को हेमचन्द्र ने उप-कथा माना है। हरिभद्राचार्य ने एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने सामान्य कथाओं को चार भागों में बाँटा है। १. अर्थ-कथा, २. काम-कथा, ३. धर्म-कथा और ४. संकीर्ण-कथा। अर्थ-कथा का विषय अर्थ-प्राप्ति होता है। काम-कथा प्रेम कथा है। धर्मकथा की परिभाषा में सिद्धर्षि ने लिखा है।

"मोक्षकांक्षैकतानेन चेतसाभिलषन्ति ये
शुद्धां धर्मकथामेव सात्त्विकास्ते नरोत्तमाः"

और 'संकीर्णकथा' का यह लक्षण दिया है—

ये लोक द्वय सापेक्षाः किञ्चित्सत्त्वयुताःनराः।
कथामिच्छन्ति संकीर्णां ज्ञेयास्ते वर मध्यमाः।

ये सब भेद तो मुनि-मानस के माने जाने चाहिए। लोकमानस में ऐसी कोई भेद-वृत्ति नहीं मिलती। वह तो अपनी आवश्यकतानुरूप विविध कहानियों को कहता-सुनता रहता है। लोक-कहानियों का वर्गीकरण तो उसके उपयोग, अवसर और अभिप्राय की दृष्टि से ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से हम दूसरे अध्याय में विस्तृत विचार कर चुके हैं। यहाँ तो अब उन वर्गों पर ही विचार करना है।

कथायें—पहले 'कथा' वर्ग को ही लिया जाय। धार्मिक अभिप्राय से जो कथा कही सुनी जाती है उसे 'कथा' कह सकते हैं। कथावाचक पण्डित का इसमें पूरा हाथ रहता है। ऐसी कथाओं के दो रूप मिलते हैं। एक तो साहित्य में समादृत है। यह पूर्ण 'चरित' अथवा 'सकल-कथा' के रूप में होता है। 'राम-कथा' ऐसी ही कथा है। दूसरी कथा साहित्यकार को उतना आकर्षित नहीं कर पाती। यह कथा भी पंडितों अथवा पुरोहितों के द्वारा ही कही जाती है, पर इसे 'चरित' नहीं कहा जा सकता। इन कथाओं में पौराणिक आस्था तो होती है, पर ऐतिहासिक विश्वास नहीं होता। ब्रज में ऐसी दो कथायें विशेष प्रसिद्ध हैं। सत्यनारायण की कथा तथा गणेशजी की कथा। 'सत्यनारायण की कथा' तो महात्म्य कथा है। सत्यनारायण व्रत रखने से क्या फल मिलता है, न रखने से क्या होता है, इसी को 'सत्यनारायण' की कथा में विविध वृत्तों से प्रकट किया गया है। 'गणेश-कथा' में तीन भाग हैं—एक में शिव-पार्वती का कलह, पार्वती का एकान्त-सेवन, दूसरे में गणेश जन्म। शरीर के मैल के पुतले में प्राण-संचार, उसका द्वारपाल बनना। शिव से युद्ध, सिर कट जाना, पार्वती का विलाप, हाथी का सिर लगा कर जीवित करना। तीसरे में गणेश जी के बुद्धि-वैभव का वर्णन। स्वामी कार्तिक से तुलना, पर गणेश की विजय। यह पौराणिक वृत्त है और धर्मगाथा है। इसमें कितने ही अर्थ हैं, साथ ही लोकवार्ता की ही बातों का इसमें समावेश है। 'मैल का पुतला बनाकर प्राण-संचार' और 'कटे धड़ पर हाथी का सिर रख कर सजीव करना' ये दो विशेष बातें इसमें साधारण लोकवार्ता के तत्व को प्रकट करती हैं। इन कथाओं पर ब्रज का कोई विशेषाधिकार नहीं। हिन्दू धर्म की पौरोहित्य-प्रणाली इन कथाओं को सर्वत्र प्रचलित किए हुए है। ये एकानेक लिखित रूप में विद्यमान हैं।

व्रत की कहानियाँ—इनके उपरान्त 'व्रत के अङ्ग' वाली वे कहानियाँ हैं जो बहुधा स्त्रियों में प्रचलित हैं। वे स्त्रियों के व्रत-अनुष्ठान के अङ्ग होती हैं। अध्याय तीन के (इ) भाग में व्रत के संक्षिप्त विवरण में यह बताया जा चुका है कि किन व्रतों के साथ कहानी आवश्यक है। ऐसी कहानियाँ निम्नलिखित हैं:

(१) नागपञ्चमी की कहानी, (२) भैया पाँचें की कहानी,

(३) दूबरी सातें की कहानी (४) ओघ द्वादशी की कहानी (५) अहोई आठें की कहानी (६) करवाचौथ की कहानी (७) शिवचौदस की कहानी (८) सोमवार की कहानी (९) रविवार की कहानी (१०) शनिवार की कहानी (११) शुक्रवार की कहानी (१२) बृहस्पतिवार की कहानी (१३) बुधवार की कहानी (१४) मंगलवार की कहानी (१५) अनन्त चौदस की कहानी (१६) भैया दौज की कहानी (१७) दिवाली की कहानी, (१८) सकट चौथ की कहानी।

वृत्त और भाव—इन कहानियों के वृत्त में विशेष भाव परिव्याप्त मिलता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये व्रत और अनुष्ठान किसी कामना और फल-प्राप्ति के लिए किये जाते हैं। ये कामनायें तथा फल लौकिक हैं। इनमें आध्यात्मिक भाव नहीं मिलते। घर-गृहस्थ में जिन बातों की आवश्यकता रहती है, जो अभाव खटकते हैं उनकी प्राप्ति की कामना कहानी कहने के साथ रहती है। इसमें अशुभ परिणाम का निवारण तथा कल्याण की दृष्टि से देवताओं को प्रसन्न करने की बात भी रहती है। इन कहानियों में जो भाव व्याप्त हैं:—(१) भाई-बहन के प्रेम और कल्याण का भाव—यह भाव नाग-पञ्चमी, भैया पाँचें, भैया दूज की कहानी में है। (२) पुत्र-प्राप्ति—यह भाव अहोई आठें की कहानी में है। (३) सौभाग्य-प्राप्ति—यह भाव दूबरी सातें, करवा चौथ, सोमवार की कथा में है। (४) धर्म और समृद्धि की प्राप्ति—यह भाव सबसे अधिक कहानियों में है, दिवाली की कहानी, सकट चौथ, मंगल, बृहस्पति, रविवार की कहानियाँ इस भाव से युक्त हैं। (५) देवताओं के महात्म्य का भाव—यह भाव वैसे तो प्रतिदिन के देवता की प्रत्येक कहानी में है पर शुक्र और शनि की कहानी को छोड़कर अन्य कहानियों में इन देवताओं के रूप का वर्णन है। (६) स्त्री की मान-रक्षा का भाव—यह शिव चौदस की कहानी में है। (७) पूर्व जन्म के पाप के फल-भोग और उसके निवारण का भाव—यह भाव अनन्त-चौदस की कहानी में है। (८) गाय की हत्या के प्रायश्चित का भाव—यह ओघद्वादशी की कहानी में अभिव्यक्त हुआ है। इन कहानियों के अन्त में प्रायः एक 'आशीर्वादात्मक' वाक्य रहता है। यदि कहानी का परिणाम 'शुभ' है तो कहा जाता है कि "जैसो वाकूँ भयो वैसो सब काहू कूँ होइ।" यदि कोई अशुभ परिणाम होता है तो कहा जाता है कि "जैसा उनको हुआ वैसा किसी

को न हो।" ये सभी कहानियाँ जीवन में आशावादी भाव और आस्था उत्पन्न करने वाली हैं।

सर्प—इन कहानियों के वृत्त पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि 'सर्प' कई कहानियों में अभिप्राय की भाँति आया है। नाग-पंचमी की कहानी में एक स्त्री 'सर्प' की प्राणरक्षा करती है।[1] इस कृतज्ञ भाव से सर्प उस स्त्री को अपनी बहिन मान लेता है। वह भाई की भाँति अपनी उस बहिन को बुलाता-चलाता है और उसके अभावों को दूर करता है। भैया-पाँचें की कहानी इसी नागपंचमी की कहानी का शेषांश है। बहिन को अपने माने हुए भाई के प्रति भी कितना गहरा प्रेम हो जाता है। यह इससे विदित होता है। बहिन अपने भाई की झूठी सौगन्ध कभी नहीं खा सकती, यह भी इसी कहानी ने बताया है। दूबरी सातें की कहानी में 'सर्प' पति रूप में आया है। स्त्री अपनी अनधिकार चेष्टा में दूसरे के बहकावे में आकर वर्जित बात पूछ बैठती है, फलतः वह अपने पति को खो देती है। अन्त में एक वृद्धा की बताई विधि से सर्पों के राजा को दूध पिला कर प्रसन्न करके वह अपने पति को पुनः प्राप्त कर लेती है।

स्याहू—अहोई आठें की कहानी में 'स्याहू' का उल्लेख है। 'स्याहू' के सम्बन्ध में ब्रज के गाँवों में प्रचलित मत यह है कि यह एक स्याँपिन है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी यह असम्भव नहीं। सर्प से साँप, स्याँपु, स्याँउ, स्याऊ, स्याहू यह निरुक्ति हो सकती है। अहोई आठें को जो भित्ति-चित्र स्त्रियाँ पूजने के लिए बनाती हैं उनमें भी सर्प-आकृतियाँ बनाई जाती हैं। दिवाली के उपरान्त प्रतिपदा को सूर्योदय से पूर्व ही 'स्याहू' का पूजन स्त्रियों के द्वारा किया जाता है। गोबर का एक गोल चोथ बीच में रख लिया जाता है। सींकों के सिर पर रुई के फूल लगाकर उन सींकों को उस गोबर में चारों ओर गाड़ देते हैं। इस पर एक दीपक जला दिया जाता है। स्याहू को यदि सर्प ही माना जाय तो यह उसके मणिधर फण का प्रतीक हो सकता है। यह भी हो सकता है कि यह 'स्याहू' 'स्यावढ़' हो सर्प नहीं। दीपा-वली 'शस्य' का त्यौहार है। शस्य की जो ढेरियाँ 'भूमि-गणेश' के

[1] यही कहानी काठियावाड़ के भावनगर से मिली है। इसमें नागिन प्रसन्न हुई है। और स्त्री को अपनी बेटी बनाया है।

निमित्त बनाई जाती हैं वे उजरी या स्यावढ़ कहलाती हैं।[1] कुछ भी हो अहोई आठें की कहानी की 'स्याहू' 'साँपिन' ही है। उसे स्याही माता भी कहा गया है। एक स्त्री से मिट्टी खोदते समय फावड़े से अनजाने ही अंडे-बच्चे कट गये।[2] उनकी माँ अब प्रतिवर्ष उस स्त्री के बच्चे ले जाया करती, इस प्रकार प्रति अहोई आठें को उसे रोना-पीटना पड़े। उसकी ननद, दौरानी, जिठानी ने उसका नाम 'सद्रोमर्ना' रख लिया। उसके इस दुःख से करुणा-कातर हो एक बुढ़िया[3] ने उपाय बताया कि आने वाली 'अहोई आठें' को तू किसी नाँद में कढ़ी, किसी में कुछ, किसी में कुछ पका के रख लेना।[4] बिटौरा में पुत्र जनना। आधी रात को स्याहू माता आयेगी, उसके जूँए देखना, उससे कानों की तुरपुती या तरकी माँग लेना। तेरे बच्चे जी उठेंगे। उसने ऐसा ही किया, और उसके बच्चे उसे मिल गये।

इन कहानियों में तो सर्प पात्रों की भाँति आये हैं। 'भइया-दौज' की कहानी में रात्रि में भइया के लिए लड्डू या रोटी बनाने के लिए आटा पीसते समय आटे में सर्प पिस गया। इस आशंका से कि भाई कहीं वे लड्डू खा न ले, बहिन भाई के पीछे पीछे गयी। तभी उसे भाई पर आने वाली भावी विपत्तियों की सूचना मिली तो वह

[1] देखिए:—सर हेनरी ऐम० ईलियट० की 'मेमोयर्स आन द हिस्ट्री, फोक-लोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन आव दी रेसेज आव दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आव इण्डिया'। भाग १ पृष्ठ ३११ की पाद टिप्पणी।

[2] ये अण्डे-बच्चे 'स्याहो' के ही थे। अकबरपुर से पातीरामजी ने जो कहानी संग्रह की है उसमें ये 'चकोल-चकवा' के लिखे गये हैं। लोहबन की में स्याँपिन के लिखे गये हैं। अकबरपुर की कहानी में किसी भ्रम से ही ये 'चकोल-चकवा' के बच्चे हो गए हैं। आगे उसमें भी स्याहो द्वारा प्रतिकार की बात कही गई है।

[3] लोहबन वाली कहानी में दो नाँदों में दूध भर कर रखने की बात है। एक में मीठा दूध, दूसरी में नमकीन। कहीं-कहीं इस 'अभिप्राय' का उल्लेख ही नहीं किया गया।

[4] किसी-किसी कहानी में बुढ़िया ने तो केवल इतना बताया है कि पड़ोस की एक गाय की स्याहू से मैत्री है। उसकी सेवा कर। उस स्त्री ने गाय की मन लगाकर सेवा की। प्रसन्न होकर गाय ने स्याहू को प्रसन्न करने का उपाय बताया।

उसके साथ ही चल दी। गाली देती हुई वह गयी। उसने आने वाली आपत्तियों से भाई के प्राण बचाये। भैया-दौज की यह कहानी अद्भुत और मर्म-स्पर्शी है। सौभाग्य-प्राप्ति की कहानी में 'करवा-चौथ' की कहानी का विशेष स्थान है। करवा-चौथ का त्यौहार ही 'सौभाग्य' का त्यौहार है। भाई बहिन का प्रेम इस कहानी में मूल-वृत्त का आधार-साधन है। भूखे भाई बहिन के साथ ही भोजन करते थे। करवा-चौथ के दिन बहिन विना चन्द्रमा को अर्घ्य दिये भोजन नहीं करेगी। भाइयों ने पेड़ पर चढ़ कर एक चलनी में दीपक रख बहिन को चन्द्र-दर्शन का धोखा दिया। बहिन का व्रत खंडित हो गया, फलतः वहिन के पति की मृत्यु हो गयी। बहिन ने पति के शव के चारों ओर जौ बो दिये और उस शव की रक्षा करती रही। अन्ततः उसने दूसरी करवा चौथ को अपने पति को पुनरुज्जीवित कर लिया। इस कहानी के दो रूपान्तर मिलते हैं। एक में वह पति के शव पर उगी 'घास' को उखाड़ने लगी। सब घास उखाड़ ली, केवल आँखों के ऊपर की रह गयी। तभी बाँदी आ गयी, उसने कहा मैं ही उखाड़े देती हूँ। बाँदी उखाड़ने लगी, रानी सो गयी। अंतिम घास उखड़-आने पर पुरुष उठ बैठा। बाँदी रानी बनी, रानी को बाँदी बनालिया। गुड़िया-गुड्डे की कहानी के द्वारा रानी ने यथार्थ-वृत्त अपने पति को सुना दिया। दूसरे रूप में बहिन अपने पति के शव को अपने मायके ले गई। वहाँ छोटी भावज से उसने सुहाग माँगा। उसकी छिंगनी अँगुली में अमृत था। अँगुली चीर कर उसने अमृत शव के मुख में डाल दिया, वह जीवित हो गया। धन और समृद्धि की कामनावाली कहानियों में एक कहानी, दिवाली की कहानी में तो युक्ति से लक्ष्मी को वश में किया गया है। भाट और भाटिनी ने राजा से यह वरदान माँग लिया है कि दिवाली के दिन उन्हीं के घर में दीपक जलेगा और किसी के घर में नहीं जलेगा। सर्वत्र अँधेरा था केवल भाट के घर में प्रकाश था। लक्ष्मी सर्वत्र अंधकार देखकर भाट के ही यहाँ आई। भाट ने उसे उस समय तक घर में नहीं घुसने दिया जब तक कि लक्ष्मी ने यह वचन न दिया कि वह उनके जीवन-पर्यन्त उन्हीं के रहेगी। मंगलवार की कहानी में हनूमान की सेवा के फल-स्वरूप दरिद्र ब्राह्मण को यह वरदान मिला कि उसके घर में सवा पहर कंचन बरसेगा। एक बनिया यह सुन रहा था। उसने ब्राह्मण से अपना मकान बदल लिया। अब

ब्राह्मण इस प्रतीक्षा में कि सोना बरसेगा. पर सोना न बरसा। बनिया बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह हनूमानजी के मन्दिर में आया और मूर्ति में एक लात मारी। लात मूर्ति में चिपक गयी। वह तब छूटी जब उसने हनूमानजी के कहने से उस दरिद्र ब्राह्मण को और धन दिया। इसमें भक्ति का फल तो दिखाया ही गया है, हनूमान जी के स्वभाव की भी झाँकी मिल जाती है, और लोभ का दुष्परिणाम भी। ऐसी ही एक 'सकट चौथ' की कहानी है। दरिद्र जिठानी अत्यन्त दुखी है। सकट चौथ का दिन है। उसके पति ने भी उसे मारा है, फिर भी सकट-गोसाईं की पूजा उसने की है। रात में सकट गोसाईं आते हैं। उस के दरिद्र उपहार को स्वीकार करते हैं, वे उसके मकान में चारों कोनों में मल-विसर्जित करते हैं, और उस अभागिन के ललाट से पोंछ जाते हैं। प्रातः उठने पर उस अभागिन, को अपने घर में कंचन भरा दीखता है। जहाँ जहाँ सकट गुसाईं ने मल विसर्जन किया था, वह मल कंचन बन गया था। उसके ललाट पर भी सोना जगमगा रहा था। पति-पत्नी ने भर भर डला कंचन बटोरा। एक डला भरें दो डले पैदा हो जायँ। द्यौरानी ने यह देखा तो आगामी सकट-चौथ को उसने भी जिठानी की नकल की। सकट गुसाईं उसके भी आये, पर दूसरे प्रातः घर भर मल से भिनभिना रहा था। मल उठाये न उठता था। सकट गोसाईं ने जब उनसे यह वचन ले लिया कि वे अपने धन का आधा अपने जेठ-जिठानी को दे देंगे तब उन्होंने मल-माया समेटी। इसमें भी ईर्ष्या का दुष्परिणाम दिखाया गया है। वास्तव में दुखी पर भगवान कृपा करता है। सकट-चौथ की एक कहानी और कही जाती है। उसमें कुम्हार के उस अवे की कहानी है जो बिना बालक की बलि लिए पकता ही नहीं था। एक ब्राह्मणी के इकलौते पुत्र की इसके लिए बारी आयी। वह ब्राह्मणी सकट-चौथ का व्रत रहती थी। उसने अपने पुत्र को कुम्हार के यहाँ भेजा। बालक को अवे में बैठा कर चारों ओर जौ बो दिये। अवा तीन दिन में पक गया। बालक जीवित निकल आया। जौ हरे हरे खड़े थे। इन कहानियों से यह विदित नहीं होता कि ये सकट देवता कौन हैं। सकट नाम भी शुद्ध नहीं। यह 'संकट' है। चौथ का सम्बन्ध गणेश से है। गणेश संकट के देवता हैं ही। फलतः संकट देवता से अभिप्राय गणेश जी से है। बृहस्पति देवता की कहानी में बृहस्पति के व्रत रखने

से सम्पन्नता प्राप्ति का उल्लेख है। कोई विशेष देवता सम्बन्धी वृत्तान्त नहीं है।

रविवार की कहानी अद्भुत है। सूरजनारायण की माँ थी और बहू थी। बहू कुछ काम नहीं करती थी। सूरजनारायण आधा धन स्त्री और बहू को, आधा शेष सृष्टि को देते। घर में तब भी टोटा रहता। सूरजनारायण ने बहू को खेलने को कण्ट्र दिये। वह घर-घर घूम आयी, सब काम में व्यस्त, किसी ने उसके साथ खेलना स्वीकार ही नहीं किया। बहू का भी मन काम करने में लगा। अब धन बढ़ने लगा। इन्होंने यज्ञ किया सूरजनारायण साधु बन कर आये। भिक्षा माँगी, सूरजनारायण के आसन पर बैठ कर, उन्हीं के थाल में खाना माँगा। उन्हीं के पलंग पर सोने का आग्रह। पेट के दर्द में सूरजनारायण की बहू के हाथ से चूर्ण चाहा। सूरजनारायण ने अपना रूप अपनी स्त्री और माँ को दिखाया। ठीक भाव से यज्ञ किया गया है या नहीं यह परीक्षा लेने इस रूप में आये थे। इसके एक अन्य रूपान्तर में साधू आया है, उसने सूरजनारायण की बहू के पेट पर हाथ फेरा है, वह गर्भवती हुई, पुत्र हुआ। सूरजनारायण ने कहा यह पुत्र किसका? मेरा होगा तो गंगासागर की धार में से निकल जायगा। वह निकल गया। इस प्रकार साधू को आरम्भ से ही सूरजनारायण का रूप नहीं बतलाया। लड़के की परीक्षा के व्याज से उसे प्रकट किया है। इस कहानी में काम करने से समृद्धि होती है, यह दिखाया है। एक कहानी में यज्ञ के स्थान पर कार्तिक में राई-दमोदर की पूजा का वर्णन है। दोनों में भाव यही है कि मन-कर्म-वचन से ही कोई मन्त्र या पूजा होनी चाहिए। पूर्व-जन्म के कर्म के फल से अनन्त चौदस की कहानी का सम्बन्ध है। एक व्यक्ति अनन्त भगवान की खोज में चला है। उसे मार्ग में कितने ही प्राणी तथा वस्तुयें मिली हैं, वे अपना दुःख उससे कहती हैं और कहती हैं अनन्त भगवान से पूछना कि हमारे लिये क्या है? अनन्त भगवान उनके पूर्व जन्म का वृत्त बता देते हैं और उससे मुक्ति का मार्ग भी बता देते हैं। उदाहरण के लिये दो नदियाँ लड़ रही हैं, उनका पानी कोई नहीं पीता। अनन्त भगवान बताते हैं कि वे पूर्व-जन्म की दौरानी-जिठानी हैं। वे आपस में लड़ती थीं, एक-दूसरे के काम नहीं आती थीं, तभी आज वे लड़ रही हैं और उनका पानी कोई नहीं पीता।

तुम एक का पानी दूसरे में, और दूसरी का पहली में डाल देना, उनका पानी बहने लगेगा, और तुम पानी पी लेना फिर सब पीने लगेंगे। इस विधि से कर्म-विपाक से मुक्ति मिली। 'शिव चौदस' की कहानी में यह बतलाया गया है कि मनुष्य और स्त्री के पेट पर पहले 'परिया' थी। उसे उठा कर देखा जा सकता था कि पेट में क्या है? पार्वती गरीब माता-पिता की पुत्री थीं। उसने शिवजी के लिये जो माँग-जाँच कर चावल-शक्कर का प्रबन्ध कर दिया, पार्वतीजी ने वही मोटा-झोंटा खाया, किन्तु शिवजी से कहा जो तुमने खाया वह मैंने। पार्वतीजी के सो जाने पर शिवजी ने पेट की परिया उघार कर देखा तो उन्हें भेद विदित हो गया। पार्वतीजी से उन्होंने कहा तो वे बहुत दुखी हुईं। तभी से पेट की परिया उघरनी बन्द हो गयी। इसमें स्त्री की मानरक्षा का भाव व्याप्त है, अन्य कोई नैतिक उद्देश्य नहीं। शिवजी पार्वतीजी से सम्बन्धित सोमवार की कहानी है। इसमें शिवजी ने पार्वतीजी के कहने से एक सेठ-सेठानी को बारह बरस के लिए सन्तान दी। वह लड़का मामा के साथ काशी पढ़ने गया। मार्ग में एक काने वर के स्थान में उसे वर बनाकर उसका विवाह हुआ। वह लड़की के चीर पर लिख गया। लड़की उसीकी होकर रही। वह काशी में पढ़ा। बारह वर्ष जिस दिन पूरे हो रहे थे उस दिन उसने ब्राह्मण-भोज किया। ठीक समय जब कि ब्राह्मण भोजन के लिए बैठे उसकी मृत्यु। काशी में शोर मच गया। पार्वती ने आग्रह करके उस स्त्री की आधी उम्र उसे देकर उसे जीवित किया। सभी प्रसन्न हुए। इसमें पार्वती की करुणा प्रकट हुई है। इसी प्रकार शुक्र देवता की कहानी में सूक डूबते स्त्री की विदा कराने का निषेध है। एक पुरुष सूक डूबते स्त्री को बिदा कराके ले चला। वह मार्ग में पानी लेने गया तो शुक्र उसका सा वेष बना कर उसके रथ को ले चले। वह पुरुष पीछे से आया। अब दोनों में स्त्री के लिए झगड़ा। गाँव के न्याय में भेद खुला। शुक्र ने रहस्य बतलाया। शनि की कहानी में शनि के आने पर दुःख होना अनिवार्य है, यह प्रकट किया गया है। एक ब्राह्मण को ढाई साल का शनि, एक राजा को ढाई दिन का। ब्राह्मण शनि के प्रकोप से बचने एक नदी के किनारे तपस्या करने गया। राजा के दो राजकुमारों के शिर कट गये। किसने काटे यह ढूँढने दूत निकले। ब्राह्मण नदी के पास दो तरबूज बह कर

आये, राजकुमारों के शिर बन गये, दूत पकड़ ले गये। फाँसी का दण्ड। शनि ने रहस्य बताया। 'आसमइया प्यास मइया' की भी एक कहानी कही जाती है। इसमें एक बहू ने चार डोकरियों का न्याय किया है। चार डोकरियाँ थीं भूख मइया, प्यास मइया, नींद मइया, आस मइया। इनमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ था कि कौन सबसे बड़ी। बहू ने आसमइया को सबसे बड़ा बताया। उसके पैर पूजे। 'आशा' का यह 'माता' रूप लोकवार्त्ता के अनुरूप है और जन-जीवन में आशावादिता का सञ्चार करता है।

कुछ अनुसन्धान—इन कहानियों में देवी-देवताओं का यह रूप हमें नहीं मिलता जो धर्मगाथाओं में दिया हुआ है। इन कहानियों के द्वारा इस धार्मिक लोकवार्ता और धर्मगाथा का अन्तर स्पष्ट देख सकते हैं। देवताओं के कार्य में विलक्षणता तो है, या वे देवता अपने व्यक्तित्व में बहुत ही साधारण व्यक्ति के रूप में आये हैं। शिव, गणेश, हनुमान, सूर्य सभी का रूप अत्यन्त साधारण है। शिव पार्वती के पेट की परिया उघार कर देखते हैं सन्तुष्ट नहीं होते, गणेश मल-माया फैलाते मिलते हैं, हनुमान बनिया का पैर ही पकड़ लेते हैं। सूर्य अपनी माँ-स्त्री के बीच में बहुत ही साधारण हो गया है। धर्मगाथाओं के देवताओं में जो दिव्यता का ओज सदा वर्तमान रहता है, वह लोकवार्ता में, भले ही वह धार्मिक लोकवार्ता ही क्यों न हो, नहीं रह जाता।

सर्प सम्बन्धी कहानियों में सर्प को देवता की भाँति नहीं उपस्थित किया गया। उनमें मानवीय कृतज्ञ-भाव दिखाया गया है। वे रूप बदल कर मनुष्य हो सकते थे यह इन कहानियों से सिद्ध है। भूमिगर्भ में उनके बड़े-बड़े भवन थे, उनमें सब कोई नहीं जा सकते थे। साधारण सर्प-वार्ताओं में सर्पमणि के साथ जल-मार्ग से अपने पाताल-प्रदेश को जाते हैं। यहाँ सर्प के बिल का उल्लेख है। केवल 'दूबरी सातें' की कहानी में प्रसङ्गवश सर्प और जल का सम्बन्ध प्रकट किया गया है। पुरुषवेषी सर्प से जब उसकी स्त्री उसकी जाति पूछती है तो वह पानी में जाकर ही अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है। हमें जो दूबरी सातें की कहानी ब्रज में प्रचलित मिली है, वह अधूरी-सी लगती है। उसका पूर्वभाग यह बतलाता है कि सर्प किस प्रकार पुरुष बना। इस कहानी का सम्बन्ध उस दुखिया से है

जिसने अपने पति को प्रसन्न करने के लिए यह कह दिया था कि उसके पुत्र हुआ है, यद्यपि वह बाँझ थी। इस झूठ को वह बनाये ही चली गयी, यहाँ तक कि विवाह-सम्बन्ध भी पक्का हो गया। राजकुमार की बारात भी चल पड़ी, माँ साथ गयी, पर रो रही थी कि अब आगे कैसे विवाह होगा। बारात एक तालाब के किनारे रुकी वहीं सर्प ने दुखी होकर उस माँ के पुत्र का रूप धारण कर माँ को प्रसन्न किया। सर्प राजकुमार का विवाह हो गया। वह सर्पिणी थी, जो अपने पति का वियोग न सह सकने पर उसे पुनः प्राप्त करने आई थी। उसी राजकुमारी को जाति पूछने के लिए विवश किया। राजकुमार ने कहा कि उसकी जाति न पूछे, पूछने पर पछताना पड़ेगा, पर त्रियाहठ जो ठहरी। तब वह पानी में जाकर सर्प बना। इस पूर्ण कहानी का मूल वेद की 'भेकी' वाली कहानी में हो सकता है। 'भेकी' एक सुन्दरी राजकुमारी थी। एक राजकुमार उस पर मोहित हो गया, उससे विवाह करना चाहा। भेकी ने कहा मुझे स्वीकार है किन्तु आप कभी मुझे पानी की बूँद भी न देखने देंगे। उसने स्वीकार कर लिया। एक दिन बहुत क्लान्त होकर राजकुमारी ने पीने का पानी माँगा। राजकुमार अपनी प्रतिज्ञा भूलकर जल उसके सामने ले गया, वह लुप्त हो गयी। वेदों में उदय होते सूर्य को जल-तट पर बैठे भेक से तुलना दी गई है। भेकी की कहानी सूर्य के उदय और अस्त की कहानी है।[1] यह भेकी लोकवार्त्ता में अनेकों रूप ग्रहण कर चुकी है। यही सर्प राजकुमार के रूप में इस कहानी में आया है। जल से निकला, जल में विलीन हुआ।

अोघट्टादशी की कहानी में राजा द्वारा खुदवाये तालाब में उस समय जल आता है। जब उसे इकलौते पुत्र और उसकी पुत्रवधू की बलि दी जाती है। इस बलि का उल्लेख मदारी के ढोले के अन्तिम भाग में भी हुआ है।[2] मनुष्य बलि का एक रूप सकट-चौथ की कहानी में भी है, यद्यपि इस कहानी में सकट देवता की कृपा से उस बालक की रक्षा हो जाती है। अबे में से बालक के जीवित निकलने

[1] देखिये बिलियम टाइलर आलकॉट, ए० एम० लिखित, 'सनलोर' आव आल एजेज' पृष्ठ १२१।

[2] देखिये इसी पुस्तक का दूसरा अध्याय, पृष्ठ १०४।

की घटना प्रह्लाद की कहानी में बिल्ली के बच्चों के जीवित निकलने से मिलती है।

अहोई आठें में स्यापिन अथवा स्याहू द्वारा स्त्री के छः-सात बच्चों का अपहरण का भाव कुछ दूरान्वेष से वृत्र की वैदिकवार्ता में मिल जाता है। पर वस्तुतः वही भाव है, यह आग्रहपूर्वक नहीं कहा जा सकता। सर्प वृत्र है यह तो निर्विवाद है, वह स्त्रियों का अपहरण करता है, यह साँपिन बच्चों का अपहरण करती है। वृत्र से स्त्रियों की मुक्ति इन्द्र करता है। यहाँ वह स्त्री ही स्याँपिन को प्रसन्न कर उसकी तुरपुती में बन्द बालकों को प्राप्त कर लेती है।

अनन्त चौदस की कहानी का संविधान 'जैन' कहानी का संविधान है। इसमें पूर्वजन्म का विवेचन जैन प्रणाली सिद्ध करता है। 'अनन्त' की व्याख्या भगवान का एक नाम मानकर हम कर सकते हैं, पर जैनियों में 'अनन्त' नाम के एक प्रसिद्ध तीर्थङ्कर हुए हैं। इसी कहानी में नदियों की वार्त्ता मानसरोवर और रावनह्रद के सम्बन्ध में प्रचलित एक तिब्बतीय वार्त्ता से मिलती है।

भैयादूज की कहानी का संविधान 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ' के अन्तर्राष्ट्रीय कथा-विधान से मिलता है। इसमें मित्र का कार्य बहिन ने किया है। वह भाई से पृथक होकर जब पानी पीने जाती है तब भाई पर आने वाली विपत्तियों का ज्ञान उसे होता है। ब्रज में प्रचलित भैयादूज की सभी कहानियों में ऐसा लगता है कि कुछ छूट गया है। वह तालाब के किनारे पर देखती है कि शिलायें गढ़ी जा रही हैं। वह बढ़ई से या ग्वारिया से पूछती है कि किसके लिए ये गढ़ी जा रही हैं। वहाँ उसे विदित होता है कि 'अनकोसी के भइया' को। अब शिला का ज्ञान तो उसे यहाँ से हुआ। वृक्ष के गिरने, सर्प के आने, पानी के सूखने का पता, वह कैसे जान सकी? इनके निराकरण का उपाय उसे कहाँ मिला? यहाँ अवश्य ही कहानी की एक वार्त्ता लोक-कथाकारों ने भुला दी है और वह ब्रज भर में भुला दी गयी है। धोबिन अथवा कुम्हारिन के गदहों की लीद उठा कर धोबिन कुम्हारिन की बात और भायला प्राप्त करने और धोबिन कुम्हारिन की उँगली में अमृत होने की बात इस कहानी में अनोखी है। यह कहीं-कहीं प्रचलित है; कहीं-कहीं यह कहानी इसकी अपेक्षा नहीं रखती। बहिन सर्प को मुकट में देख लेता है और उसमें सुइयाँ छेद कर सर्प को मार

देती है, इस संस्करण में सर्प के काटने और भाई के मरने पर धोबिन कुम्हारिन की अंगुली से अमृत डालने की आवश्यकता ही नहीं रही।

दिवाली की कहानी भी भारत भर में प्रचलित विदित होती है। इण्डियन एन्टिक्वेरी इसी कहानी का रूपान्तर जो अन्य प्रान्तों में प्रचलित है, दिया हुआ है। यहाँ तक व्रत के अङ्ग वाली कहानियों के साथ महात्म्य-बोधक कहानियों का भी परिचय दिया जा चुका है।

उपदेशात्मक कहानियाँ—गाथायें

चमत्कार की प्रवृत्ति—व्रत की कहानियाँ तो धार्मिक अनुष्ठान का अङ्ग हैं, किन्तु इन कहानियों के अतिरिक्त ऐसी भी कहानियाँ मिलती हैं जिनमें 'धर्म-भाव' रहता है। इन कहानियों में देवी-देवताओं का उल्लेख रहता है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य की चर्चा रहती है, सद्-असद् का विवेचन रहता है। इनमें कोई न कोई उपदेश गर्भित रहता है। ऐसी कहानियों को देव-विषयक कहानी भी कहा जा सकता है। बहुधा इनमें किसी न किसी देवता का उल्लेख रहता है। अन्य कहानियाँ भी इसके अन्तर्गत आ सकती हैं। हम निम्नलिखित कहानियों को 'गाथा' कह सकते हैं। १—नारद और भगवान कौ खेल, २—कर्म-लक्ष्मी कौ वाद, ३—धर्म की कथा, ४—नारद कौ घमण्ड दूरि करयौ, ५—करम और लच्छिमी, ६—राजा विक्रमाजीत, ७—राजा अम्ब, ८—भाग्य बलवान। इनके अतिरिक्त भी लोक में अन्य ऐसी ही कहानियाँ प्रचलित मिल सकती हैं, जिन्हें 'गाथा' कहा जा सके। हम यहाँ इन्हीं कहानियों द्वारा इस प्रकार की कहानियों के स्वरूप को समझने की चेष्टा करेंगे। इन कहानियों में हमें कई प्रवृत्तियाँ कार्य करती मिलती हैं। एक प्रवृत्ति है भगवान के चमत्कार को प्रस्तुत करने की। 'चमत्कार श्रद्धा उत्पन्न करने का साधन है। 'नारद और भगवान कौ खेल' इसी चमत्कार-प्रवृत्ति से बनी है। नारद और भगवान आँखमिचौनी खेलने निकलते हैं। भला, मनुष्य ही खेल जानता है, भगवान क्या खेलना नहीं जानते? नारद छिपते हैं उन्हें तो भगवान पकड़ लेते हैं; बिना प्रयास ही। कहानी में कहा गया है कि भगवान ने आखें नाम मात्र को बन्द कीं, वे देखते रहे कि नारद कहाँ छिप रहे हैं और वहीं जाकर उन्हें पकड़ लिया। पर क्या भगवान कभी आखें बन्द कर सकते हैं? यत्न करने पर भी ऐसा नहीं हो सकता कि भगवान से कोई भी

छिपा रह जाय। कोई स्थान ऐसा नहीं जो उन्हें ज्ञात नहीं, जो उनसे दूर है। लोकवार्त्ताकार ने यही अभिप्राय इस कहानी से प्रकट किया है। उधर नारद ने आँखें बन्द कीं तो भगवान एक बालक बन गये और मार्ग में अँगूठा पीने लगे। भगवान को बालक बनने और अँगूठा मुँह में देने का बड़ा चाव है। इसकी साक्षी पुराणों में है। प्रलय में भगवान मुँह में अँगूठा देकर वट के पत्ते पर प्रलयकालीन समुद्र में अक्षयवट के नीचे तैरते रहते हैं। इस कहानी में भी भगवान बालक बन गये हैं। नारद उन्हें ढूँढ़ने निकलते हैं। पर क्या भगवान को पा सकते हैं? भगवान जब छिपना चाहें तो उन्हें कौन पा सकता है? नारदजी उस बालक के पास से कई बार निकल जाते हैं, पर पहचान नहीं सकते। अब भगवान अपनी लीला आगे बढ़ाते हैं। एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी उस अनाथ बालक को ले जाते हैं, उसे अपना पुत्र बना लेते हैं। गाँव वाले ब्राह्मणी के चरित्र पर सन्देह कर उसे गाँव से निकाल देते हैं। वे दूसरे गाँव में चले जाते हैं। भगवान् बड़े होकर कुएँ पर पानी भरते हैं। कहानी का यहाँ तक का मध्य भाग 'नारद' को भुलाए हुए है। खेल समाप्त हुआ नहीं है, अतः नारदजी ढूँढ़ने में लगे हुये हैं। जहाँ-तहाँ भगवान को ढूँढ़ने के लिए भ्रमण कर रहे हैं। जब भगवान बड़े हो गये और कुएँ पर पानी भरने आ सके तब नारदजी से मुठभेड़ हुई। नारदजी क्या अब भी भगवान को पहचान सकते हैं? भगवान उन्हें टोकते हैं, उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं नारद फिर भी नहीं पहचान पाते। तब भगवान उन्हें विमोहित करते हैं। पहले उनमें प्यास पैदा करते हैं। फिर भूख। सूर्य की गर्मी से रोटी सेक कर खिलाते हैं। इस अन्तिम चमत्कार से ही नारद भगवान को जान सकते हैं।

तुलना की प्रवृत्ति—'कर्म-लच्छिमी कौ वाद' तथा 'करम और लच्छिमी' में तुलना द्वारा ऊँच-नीच निर्णय की प्रवृत्ति है। इन प्राप्त कहानियों में विवाद 'कर्म और लक्ष्मी' में ही है। दोनों कहानियों में लक्ष्मी हारती हैं। 'कर्म' ऊँचा स्थान पाता है। पर दोनों कहानियों का ढङ्ग एक दूसरे से भिन्न और अनूठा है। पहली कहानी में तो दोनों का विवाद सुलझाने भगवान विष्णु सबको मृत्यलोक ले पहुँचते हैं। वहाँ एक दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ आसन जमाते हैं। उनका चक्र ऐसा चलता है

कि उस दरिद्र ब्राह्मण पुत्र का विवाह राजपुत्री से हो जाता है। इस विवाह के लिए भगवान को दैवी चमत्कारों का भी उपयोग करना पड़ता है—१. वे धूल फेंक कर महल खड़ा कर देते हैं; २. बढ़िया भोजन के थाल मगा लेते हैं; ३. एक कोठार में मोती पैदा कर देते हैं। विवाह हो जाने पर लोग कहते हैं कि 'भाई, इसका तो कर्म चेत गया' इस प्रकार लक्ष्मी से कर्म को बढ़ कर सिद्ध किया गया है। दूसरी कहानी में लक्ष्मी भी स्वयं एक घसियारे को कृतार्थ करना चाहती हैं। तीन बार वह घसियारे को कुछ गिन्नियाँ देती हैं। तीनों बार उस घसियारे के हाथ से गिन्नियाँ निकल जाती हैं। एक बार चूहे अपने भिटे में ले जाते हैं। दूसरी बार नहर में गिर पड़ते हैं, तीसरी बार घर से एक स्त्री चुरा ले जाती है—इस प्रकार लक्ष्मी के तीन उद्योग व्यर्थ गये, तब कर्म ने कहा अब मुझे कृपा करके देखने दो। कर्म ने जाकर उसे कुछ गिन्नियाँ दीं। उसके मिलते ही चूहे के भिटे वाली गिन्नियाँ भिटे के रेत के साथ बाहर आ गयीं, नहर सूख गयी थी उसकी गिन्नियाँ भी मिल गयीं, पड़ोसिन भी भयभीत होकर वे गिन्नियाँ चुपचाप यथास्थान रख गयी। इस प्रकार कर्म को लक्ष्मी पर विजय दिखायी गयी है। भाग्य की प्रधानता दिखाने वाली एकानेक कहानियाँ हैं पर सबसे महत्त्वपूर्ण यह कहानी है जिसमें राजा की सात लड़कियों में से एक ने यह कह दिया है कि मैं आपका दिया नहीं खाती, अपने भाग्य का खाती हूँ। राजा उसका विवाह एक अत्यन्त असमर्थ व्यक्ति से कर देता है। यह व्यक्ति अनाथ की भाँति कुष्ठगलित एक जंगल में पड़ा हुआ था। राजा की बेटी ने सावधानी से अपने पति के रोग का कारण ही न जान लिया, उसको दूर करने का उपाय भी जान लिया और बहुत-सी सम्पत्ति भी प्राप्त कर ली। कुछ समय में ही वह राजा की भाँति वैभवशालिनी हो गयी। अपने पिता को निमन्त्रित कर उसने अपने भाग्य का चमत्कार उसे दिखाया। इस कहानी में पूर्व-कहानियों की भाँति न तो 'भाग्य' कहीं स्वयं पात्र बना है और न इसमें तुलनात्मक प्रवृत्ति ही है। केवल 'भाग्य' का वैभव अवश्य दिखाया गया है। इस कहानी में 'सर्पों का उपयोग' 'अभिप्राय' की भाँति हुआ है। कुष्ठगलित राजकुमार की वह दुर्दशा इसलिए थी कि आग से पीड़ित सर्प को राजकुमार ने पेट में शरण दी थी। उसे वहाँ इतना सुख मिला कि फिर निकलने का विचार ही त्याग दिया। उसी

से राजकुमार कोढ़ी हुआ। इस पेट के सर्प की किसी भूगर्भस्थ सर्प से बातें हुईं। एक ने दूसरे के नाश का उपाय बता दिया। राजकुमारी यह सब सुन रही थी। उसने चँदियों का पानी राजकुमार को पिला कर पेट के सर्प को गला कर मल द्वारा निकाल दिया। राजकुमार भी अच्छा हो गया। खौलता तेल बिल में डाल कर भूमि में गढ़ा धन प्राप्त किया।

भक्ति-महात्म्य दिखाने की प्रवृत्ति—'धर्म की कथा' और 'नारद कौ घमण्ड दूरि करयौ' जैसी कहानियों में भक्तों की भक्ति का मर्म और उन पर सुदेवों की कृपा का रहस्य प्रकट किया गया है। साधारणतः इन कहानियों में भक्तों की परीक्षा का भाव प्रधान हुआ है। 'धर्म की कथा' में राजा धर्मात्मा है। एक साधु आकर उससे कहता है या तो धर्म दो या राज-पाट दो। राजा धर्म नहीं छोड़ता, राजपाट छोड़ देता है। तब धर्म स्त्री का रूप धारण कर विपत्तिकाल में राजा के साथ उसकी स्त्री की भाँति रहता है और उसके सम्मान की रक्षा करता है। इस कहानी में मूल अभिप्राय: वहाँ आया है जहाँ इस धर्मात्मा राजा ने जिस राजा के राज्य में वह रहता था उससे भी बढ़कर उसके समस्त राज्य की दावत की। यह दावत धर्म के दैवी चमत्कार के कारण ही सम्भव हो सकी। दावत का अभिप्राय एकानेक कहानियों में हमें मिलता है। ऋषि यमदग्नि ने इसी प्रकार 'सुरभि' के प्रताप से सहस्रबाहु की समस्त सेना का सत्कार किया था इसी प्रकार ब्रज की साधारण लोक-कहानी में ऐसी कढ़ाही, अथवा बटलोई अथवा थैली का उल्लेख मिलता है, जिससे मनचाहे पदार्थ मनचाही मात्रा में मिल जाते हैं। किसी कहानी में यह वस्तु जिन्नों द्वारा दी गयी है, कहीं शिवजी द्वारा। यह अभिप्राय अन्तर्राष्ट्रीय है। कथासरित्सागर में पाटलिपुत्र के स्थापक पुत्रक ने असुर मय के दो पुत्रों से तीन वस्तुएँ छल कर प्राप्त कीं—१ पदत्राण, २ दण्ड, ३ एक पात्र : यह पात्र मनचाही वस्तु दे सकता था। पदत्राण अथवा खड़ाऊँ से चाहे जहाँ उड़कर जा सकते थे। दण्ड से जो लिख दिया जाता वही हो जाता। ग्रिम के द्वारा संग्रहीत 'फेयरी टेल्स' में 'क्रिस्टल बाल' शीर्षक कहानी में मनोवांछा पूर्ण करने वाली टोपी का उल्लेख है। बहारदानिश की एक कहानी में दण्ड के स्थान पर थैली का उपयोग हुआ है। जहाँदार थैली के साथ प्याला और खड़ाऊँ भी

हस्तगत कर लेता है। इसी प्रकार मंगोलिया, नार्वे, अरब, सिसली, हँगेरी, स्वीडेन आदि कितने ही देशों की कहानी में यह अभिप्राय विविध रूप में मिल जाता है।[1]

दूसरी कहानी में भगवान तथा नारद संसार प्रदक्षिणा को निकले हैं। उन्होंने एक भक्त की परीक्षा ले डाली है। वे साधुओं के वेष में चले हैं। भक्त की परीक्षा के लिए पहले तो वे उसके एक बैल को मरा दिखाते हैं, फिर दूसरे को, फिर बच्चों को, फिर स्त्री को, पर भक्त तो साधुओं का सत्कार करेगा ही। जब सभी मृतक दीखते हैं तो वह स्वयं भगवान के पीछे हो लेता है। मार्ग में जब वह भगवान के लिए पानी लेने कुएँ पर जाता है तो भगवान तो नारदजी के साथ अपना मार्ग लेते हैं, वह भक्त एक नये झंझट में फँस जाता है। कुएँ में रस्सी फाँसते ही वह बन्दर ने पकड़ ली। बन्दर और साँप के साथ सुनार को उसने कुएं में से निकाला। बन्दर और साँप ने निकलते समय और मुक्त होते समय यह परामर्श दिया था कि सुनार को न निकाले। उसी सुनार ने अपने मुक्तिदाता को बन्दीगृह में डलवा दिया। बात यह हुई कि उस भक्त को मूत्र-त्याग करते समय पृथ्वी में दबे आभूषण मिल गये। सुनार को अपना हितैषी समझकर वह उन आभूषणों को उसके पास ले गया। वे आभूषण राजा की बेटी के थे, जिनकी चोरी हो गयी थी—सुनार ने राजा को सूचना देदी और चोरी के अपराध में वह बन्दीगृह में डाल दिया गया। इस संकट से सर्प ने उसे मुक्त किया। उसने सर्प को स्मरण किया, वह आया। उसने राजा को डस लिया। राजा को वह भक्त ही अच्छा कर सका। इस उपकार के प्रतिकार-स्वरूप राजा ने उसे छोड़ दिया और लड़की विवाह भी कर दिया।

कहानीकार भक्त को भगवान और नारदजी से इस व्यतिक्रम द्वारा दूर ले जा चुका है। अब कैसे उनसे मिलाये और कहानी का अन्त ठीक करे। सर्प अपने उपकार का बदला दे चुका है। बन्दर रह गया है। भक्त को एक दिन मार्ग में बन्दर मिल गया। बन्दर ने अपने उपकारी को एक अमर फल दिया। पर एक अमर फल से क्या हो?

[1] देखिये टानों के कथा सरितसागर भाग प्रथम के पृष्ठ १४ पर पाद-टिप्पणियाँ तथा कॉक्स महोदय की पुस्तक 'दी माइथालाजी आव दी आर्यन नेशन्स' के पृष्ठ ९३ तथा १९२–१९६ की पाद-टिप्पणियाँ।

राजा की बेटी अपने माता-पिता को भी अमर कराना चाहती है। वह किसान बन्दर से दूसरा अमर फल माँगने पहुँचा। वह उसे नारद जी के पास ले गया, नारदजी भगवान विष्णु के पास ले गये। भगवान विष्णु ने उसे 'दर्शराय' की सैर करने को कहा। यहीं पट एकदम परिवर्त्तित हो गया। वह देखता है कि उसके बैल जीवित बँधे हैं, लड़के खेल रहे हैं, स्त्री भोजन बना रही है, वे साधु भोजन कर रहे हैं। वह अपने घर में है।

वृत्त निष्ठा की प्रवृत्ति—यह कहानी लोक मेधा के कौशल का एक अनौखा रूप प्रस्तुत करती है। इसमें कई कहानियों के जोड़-तोड़ है। एक कहानी है साधुओं के पीछे किसान के चल देने की। उसकी परीक्षा की, यह मूल कहानी है। इसमें प्रासंगिक कहानियाँ दो और हैं—कुँए से मुक्त किए जाने वाले तीन प्राणियों की, और अमरफल की। कुँए में से पशुओं और एक मनुष्य को निकालने की कहानी एक पृथक कहानी है और समस्त आर्य-प्रदेशों में प्रचलित है। श्रीमती बर्न की ४७ वीं कहानी की रूप रेखा इस कहानी से मिलती है।[1] जैन कहानियों में भी ऐसी एक कहानी है।[2] ब्रज में अन्यत्र भी इसी अभिप्राय से युक्त कहानी मिलती हैं। उसमें निकलने वाले पशु भिन्न हैं।[3] वे सभी अपने ढङ्ग से अपने उपकारी को सम्पन्न बना देते हैं ?[4] सुनार उसे धोखा देता है। इन कहानियों में बन्दर द्वारा अमर फल की बात नहीं आती। 'अमर फल' अन्य लोक कहानियों में भी आया है। उनमें 'अमरफल' का उपयोग 'स्त्री-चरित्र' का रहस्योद्घा-

[1] देखिये 'श्रीमती बर्न की' 'ए हैंड बुक आव फोक-लोर'।

[2] देखिये जे० जे० मेयर की—जैन कहानियाँ।

[3] ब्रज की एक कहानी में यह उपकार कुँए में से निकाल कर नहीं किया गया। बहेलिया के हाथों से हंस, शेर, कौआ और जाट सो-सो रुपये देकर मुक्त किये गये हैं। सुनार का कार्य जाट ने किया है। जाट अपने मित्र को देवी पर बलि देने को तैयार हैं। कौऐ तथा अन्य पशुओं ने उसे इस संकट से बचने में सहायता दी।

[4] ब्रज की इस कहानी में सर्प ने जिस प्रकार किसान को बन्धन से मुक्त कराया है, उसी ढङ्ग की घटना 'गुरु गुग्गा' की कहानी में मिलती है। (टेम्बल महोदय की 'दी लीजेन्ड्स आव पंजाब') तथा 'ढोला' महागीत में भी ऐसी घटना मिलती है।

टन करने के लिए हुआ है। पहले वह अमर फल राजा के पास आता है। राजा उस फल को अपनी स्त्री को देता है। वह चाहता है कि उसकी स्त्री अमर रहे। स्त्री अपने प्रेमी को देती है, वह अपनी अन्य प्रेमिका को, इसी प्रकार चलता हुआ 'अमड फल' पुनः राजा के हाथ में आ जाता है। यहाँ इस कहानी में 'अमरफल' से भक्त नारद और भगवान विष्णु के पाप पहुँचाया गया है। राजा अम्ब की कहानी भी इसी प्रकार भक्त की महिमा दिखाने के लिए है। किन्तु राजा अम्ब और विक्रमाजीत की कहानियों में भक्ति से अधिक व्रत-निष्ठा के लिए कष्ट सहन करने पर व्रत से न डिगने की प्रवृत्ति विशेष है। राजा अम्ब अपना राज्य साधु अथवा ब्राह्मणों को दे देता है। वह धर्मात्मा है। राज्य त्याग कर स्त्री और दो पुत्रों सहित घर से निकल पड़ता है। (१) पहले भड़भूजा के यहाँ रहते हैं। (२) रानी को एक जहाजवाला सेठ उठा ले जाता है। (३) राजा वहाँ से नदी पार अपने बच्चों को ले जाना चाहता है। एक को उस पार उतार आता है, लौटते समय स्वयं डूब जाता है। इस प्रकार चारों बारहबाट हो जाते हैं। (४) राजा एक नगर में पहुँचता है। वहाँ का राजा मर चुका है। (५) तोता छोड़ा जाता है वह अम्ब को राज्याधिकारी बताता है। (६) उसकी रानी भी वहीं है। (७) दोनों भाई धोबी ने पाले। (८) बड़े होकर उसी राज्य में सिपाही बने। (९) अब चारों एक स्थान पर। किन्तु एक दूसरे को नहीं पहचानते। (१०) पुत्रों के कहानी कहने पर एक दूसरे से मिले। इस कहानी का मर्म इस दोहे के द्वारा प्रकट किया जाता है :—

'कित अम्बा कित आमली, कित सरवर कित नीर।
ज्यों ज्यों परती आपदा, त्यों त्यों सहै सरीर॥

कुछ हेर-फेर से यही कहानी बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। वहाँ इस दोहे का यह रूप है—

कँह अम्ब् कँह आमली, कँह सरवर कँह नीर।
कँह रानी कमलावती, कँह राजा रणधीर॥
सत पकड़े सत रहत है, सत छोड़े सत जाय।
सत की बाँधी लक्ष्मी, बहुरि मिलेगी आय॥

यहाँ 'अम्बा' देश का नाम 'आमजो' अमजदारी, राजा का नाम रणधीर, रानी का कमलावती है। शेष कहानी यही है। बुन्देल-

खण्डी कहानी का आरम्भ कुछ भिन्न है। फकीर भीक माँगता है, पर राजा से प्राप्त अन्न वह एक स्थान पर एकत्र करता है, उसे खाता नहीं। खाता है साधारण प्रजा से मिला हुआ। राजा को समाचार मिलता है तो वह फकीर से कहता है तुम थोड़े से सन्तुष्ट नहीं तो बहुत सा माँगलो। फकीर राज्य माँग लेता है। राजा उसे दे देता है। ब्रज की कहानी में राजा नित्य हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराता है, अन्त में सोचता है कि इस प्रतिदिन की परेशानी से तो अच्छा है राज्य ही ब्राह्मणों को दे दिया जाय। वह राज्य ब्राह्मणों को दान कर देता है। वीर विक्रमाजीत की कहानी में विक्रमाजीत पर-दुख-भञ्जन करने का व्रत लिए है। वे एक एक ब्राह्मण के शनि को अपने ऊपर ले लेते हैं। चोरों के अपराध को अपने सिर पर ओढ़ लेते हैं, लुञ्ज-पुञ्ज कर दिये जाने पर भी वह माली और तेली का उपकार करते हैं। इस कहानी में राजा विक्रमाजीत के विवाह की घटना, उसको मारने का षडयन्त्र और उसमें चमत्कार प्रदर्शन प्रासंगिक कहानियाँ हैं। धर्म, कर्म लक्ष्मी और ईमान के झगड़े का न्याय तो कहानी के न्याय के अनुकूल राजा विक्रमाजीत के सब अङ्गों की पूर्ति करने के लिए किया गया है। एक एक देवता से राजा अपना एक-एक अङ्ग प्राप्त कर लेते हैं। इस कहानी में आने वाला कुछ अभिप्राय बहुत प्रचलित है। जैसे लुञ्ज-पुञ्ज राजा को देखने राजकुमारी का आना और उसकी सेवा करना। इस अभिप्राय में राजकुमारी का राजा का प्रेम स्पष्ट प्रकट नहीं किया गया है, किन्तु अन्यत्र मिलने वाले इसी प्रकार के अभिप्राय में इस प्रेम का उल्लेख है। अयोग्य और घृण्य व्यक्तियों में स्त्रियों के प्रेम की कहानियाँ एक नहीं अनेक हैं। काश्मीर की एक सौदागर की कहानी में रानी फकीर से प्रेम करती है, ब्रज के सामन के एक गीत में भी एक स्त्री एक साधू से प्रेम करती है। ब्रज की एक दूसरी कहानी में भी इसी प्रकार साधु से प्रेम करनेवाली रानी का वर्णन है। बौद्ध जातकों में रानी कन्नरा एक लुञ्ज-पुञ्ज ऐंचकताने घृण्य-पुरुष के प्रेम में आबद्ध है। कथासरित्सागर में शशिन की स्त्री की कहानी में स्त्री को कोढ़ी से प्रेम है। एक दूसरी कहानी राजा सिंहाक्ष की स्त्री के सम्बन्ध में है उसमें स्त्रियों के प्रेमपात्र कुबड़े, अन्धे तथा लँगड़े हैं। अलिफलैला की एक कहानी में स्त्री एक कुरूप हबशी गुलाम के पास जाया करती है, यह गुलाम नगर के

घूरे से घिरी एक गुफा में रहा करता था[१]।

दूसरा अभिप्राय हाथी द्वारा वर-निर्वाचन का है। हाथी द्वारा वर तो नहीं राजा के निर्वाचन की घटना हमें टाड राजस्थान में ऐतिहासिक वृत्त के रूप में मिलती है। राजा निर्वाचित करने के लिए तीन बार हाथी माला लेकर छोड़ा गया, तीनों बार उसने वाप्पारावल के गले में माला पहिनायी। बाप्पारावल ही राजा बनाया गया। कथा-सरित्सागर में तथा जैन कहानियों में इस प्रकार राजा के निर्वाचन का उल्लेख हुआ है। काश्मीरी कहानी 'यूसुफ जुलेखा' में हाथी ने ही यूसुफ को राजा निर्वाचित किया[२]।

इन कहानियों में अनेकों देवी-देवताओं का उल्लेख हुआ है पर एक बात अत्यन्त उभर कर आती है कि किसी भी कहानी में 'कृष्ण' नहीं आये।

यहाँ कुछ गाथायें ही दी गई हैं। गीत-गाथाओं का साधारण विवेचन तीसरे अध्याय में हो चुका है। 'पूरनमल', 'नरसी का भात' विविध पँवारे गाथायें ही हैं। इनमें किसी न किसी नैतिक वृत्ति को प्रधानता दी गई है।

बुझौअल-कहानियाँ—

'बुझौअल' का एक रूप पहेली होता है, वह लोक-साहित्य का एक पृथक अङ्ग है। किन्तु 'बुझौअल' का उपयोग कहानियों में भी होता है। हमें यहाँ बुझौअल-कहानियों पर ही विचार करना है। 'बुझौअल' का प्रयोग अनुष्ठानों में भी होता था इसका हम यहाँ उल्लेख नहीं करेंगे। विदेशी कहानियों में रानी शेबा की कहानी में कठिन प्रश्नों द्वारा सोलोमन की बुद्धि की परीक्षा ली गई है। सेमसन और उसकी पहेली, स्फिक्स की पहेली पाश्चात्य साहित्य में प्रसिद्ध हैं। भारतीय पौराणिक साहित्य में युधिष्ठिर और सारस-यक्ष की कहानी भी पहेली से सम्बन्धित है। पहेली न बता सकने पर युधिष्ठिर के अन्य भाई काल-कवलित हुए। युधिष्ठिर ने पहेली बता कर सबको पुनरुज्जीवित किया और जल भी ग्रहण किया। कथा सरित्सागर में

[१] देखिए:—सर औरिल स्टीन तथा सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा लिखित 'हातिम'स सोंग्स एण्ड स्टोरीज' में कहानी तीसरी।

[२] देखिए:—वही। कहानी छठी 'दी स्टोरी आव युसुफ ऐण्ड जुलेखा'।

विनीतमति ने एक विद्योतमा राजकुमारी को हराया था। यह वाणी-चातुर्य की कहानी है। विनीतमति को एक बौद्ध भिक्षु ने हराया। तोते के रूप में विक्रम के पराक्रम की कहानी में प्रसिद्ध बुझौअलों का समावेश हुआ है। इस प्रकार बुझौअल की कहानियों का एक लम्बा इतिहास है। ये कहानियाँ संसार भर में मिलती हैं। ब्रज में हम बुझौअल की कहानियों को निम्न रूपों का पाते हैं :— [पृष्ठ ४३१ पर देखिए।]

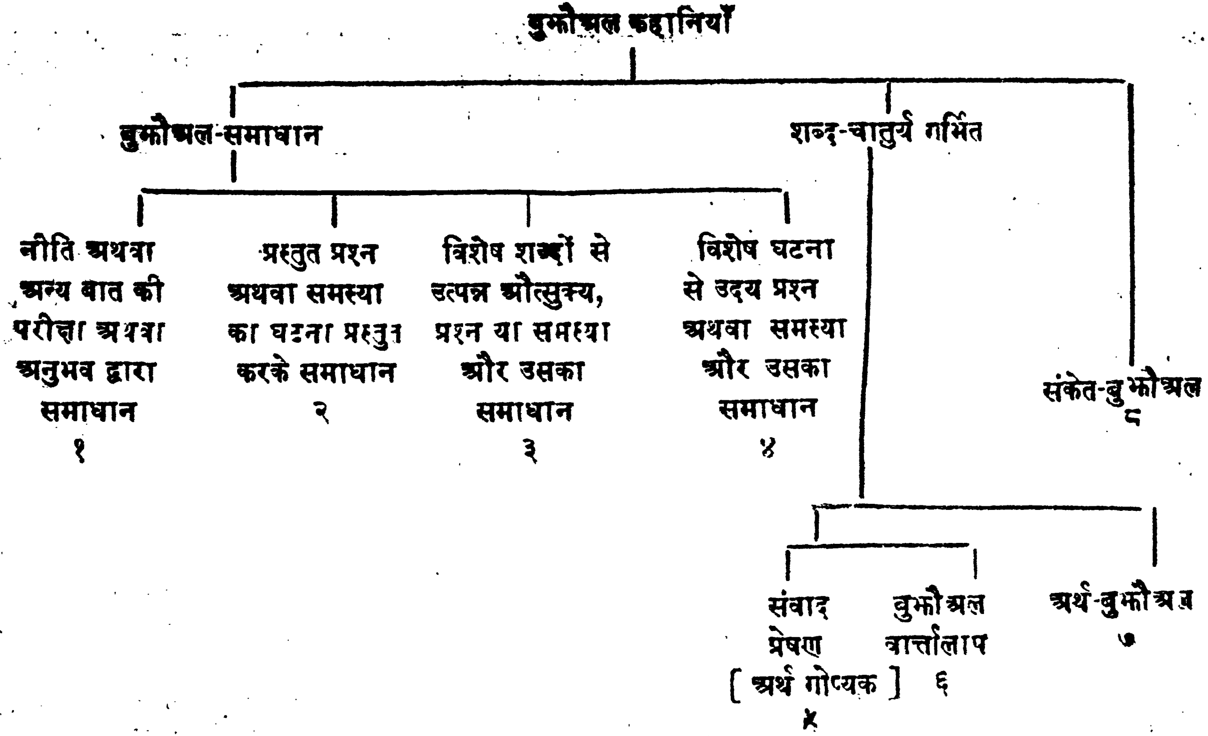
पहली संख्या की एक कहानी है 'कंजूस साहूकार'। इस कहानी को हमने ब्रज-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित अपने ग्रन्थ 'ब्रज की लोक-कहानियाँ' में दिया है। इसमें आठ बातें दी गई हैं, जिनकी परीक्षा एक साहूकार के पुत्र ने की है। वे आठ बातें ये हैं:—

१—पिता लोभी।
२—माँ ममता की।
३—होते की बहिन।
४—अनहोते कौ भइया।
५—पैसा पास का।
६—जोरू साथ की।
७—झुनझुनी शहर, सोवे सो खोवे, जागै सो पावे।

ठीक ऐसी ही कहानी काश्मीर में 'राजा विक्रमादित्य की कहानी' के नाम से प्रचलित है।[१] इस काश्मीरी कहानी में प्रथम दो बातें नहीं हैं। 'पिता लोभी' और 'माँ ममता की'। इन दो बातों की परीक्षा ब्रज की इस कहानी में आरम्भ में ही हो गयी है। सेठ का पुत्र जब इन सात बातों वाले पुर्जे को पच्चीस रुपये में खरीद कर लाया तो इस दरिद्र-व्यवसाय के दंड में सेठ ने पुत्र का घर से निष्कासन कर दिया। पिता लोभी सिद्ध हुआ। माँ को पुत्र के निष्कासन की सूचना मिली तो वह छिपा कर पुत्र को धन दे गयी। माँ की ममता भी इस प्रकार सिद्ध हुई। प्रथम दो सत्य चलते-चलते ही सिद्ध हो गये। अब सेठ पुत्र आगे चला। दोनों कहानियों में ही पहले वह बहिन के यहाँ गया। बहिन उससे मिलने नहीं आयी। उसने काश्मीरी कहानी में

[१] देखिये सर ऑरील स्टीन तथा सर जार्ज ए० ग्रियर्सन सम्पादित 'हातिम्स सोंग्स एण्ड स्टोरीज' नामक पुस्तक में 'दसवीं कहानी' 'दी टेल आव राजा विक्रमादित्य।'

एक कटोरे में थोड़े चावल भेजे हैं, ब्रज की कहानी में रोटियाँ भेजी हैं। दोनों ही कहानियों में यह बहिन से आयी हुई भोजन-सामग्री जमीन में गाड़ दी गयी है। इस प्रकार एक और बात परीक्षा में खरी निकली। ब्रज की कहानी अब हमें सेठ के पुत्र की ससुराल में पहुँचा देती है। निश्चय ही यह कहानी कहने वाला सेठ के पुत्र को भाई अथवा मित्र के पास ले जाना भूल गया है। बातों में तो उसका उल्लेख है ही, 'अनहोते की भइया'। पर तत्सम्बन्धी कहानी यहाँ नहीं आ पायी। काश्मीरी कहानी में भी इस सम्बन्धी कहानी साधारण ही है। उसमें कुछ भी उल्लेखनीय बात नहीं। फिर काश्मीरी कहानी भी राजकुमार को ससुराल पहुँचा देती है। ससुराल की कहानी का वृत्त दोनों में कुछ भिन्न है। काश्मीरी कहानी में राजकुमार एक वृद्धा के पास ठहरा, यह राजा के चारागाह से घास काटने लगा तो पकड़ कर जेल में डाल दिया गया। वहाँ अश्वपति के पास उसकी स्त्री आती थी। वे दोनों खाना खाते थे, बचाखुचा उसको देते थे। दोनों की केलि में पलंग टूट गया। वह उन्होंने इसी राजकुमार घसखुदा कैदी से बनवाया। रानी ने राजकुमार को पहिचान लिया। अश्वपति ने उसे भी फाँसी की आज्ञा देदी। राजकुमार बधिकों को लाल देकर बच गया। इस प्रकार इस काश्मीरी कहानी में 'पइसा पास का' संबंधी वार्त्ता की परीक्षा करादी गयी है। ब्रज से प्राप्त कहानी में कहानीकार इसे भी भूल गया है, यद्यपि कहानी की भूमिका में वह इसकी तय्यारी कर चुका है। माँ ने उसे चलते समय चार लाल दिये थे। इन लालों का क्या उपयोग हुआ, इसका कहानी में पता नहीं चलता। ब्रज की कहानी में कोतवाल सेठ-पुत्र की वधू के पास जाया करता था। वह सेठ-पुत्र को मजदूर बना कर उसके सिर पर कुछ सामान रखवाकर उस लड़की के पास ले गया है। सेठ-पुत्र ने मजदूरी का रुक्का लिखवा लिया। वहीं उसने अपनी स्त्री के चरित्र को देखा। अन्तिम कहानी दोनों में एक ही है, केवल नामों का अन्तर है। ब्रज की कहानी में झुनझुनी शहर की राजकुमारी है जिसके मुख से रात्रि को सर्प निकलता है; काश्मीरी कहानी में विक्रमादित्य की पुत्री है, जिसके मुख से सर्प निकलता है। सेठ अथवा राजकुमार रात में जगता रहता है, और सर्प को मार डालता है। उसका राजकुमारी से विवाह हो जाता है। ब्रज में एक और कहानी इसी ढङ्ग की है। एक ठग ने सौ रुपये में


बुझौअल कहानियाँ
बुझौअल-समाधान
शब्द-चातुर्य गर्भित
नीति अथवा अन्य बात की परीक्षा अथवा अनुभव द्वारा समाधान १
प्रस्तुत प्रश्न अथवा समस्या का घटना प्रस्तुत करके समाधान २
विशेष शब्दों से उत्पन्न औत्सुक्य, प्रश्न या समस्या और उसका समाधान ३
विशेष घटना से उदय प्रश्न अथवा समस्या और उसका समाधान ४
संकेत-बुझौअल ८
संवाद प्रेषण [अर्थ गोप्यक] ५
बुझौअल वार्त्तालाप ६
अर्थ-बुझौअल ७

एक बात बताई है।[1] व्यापारी पर चार सौ रुपये थे उसने व्यापार में रुपये न लगा कर ठग से चार बातें सुनने में वे रुपये लगा दिये। वे चार बातें ये थीं—

१—भलौ बुरौ एक संग में लीजै।
२—घाटन न्हैये औघट न्हैये।
३—सबु सबु करिये तिरिया भेद न दीजै।
४—सबु सबु करिये, सर्ति न बदिये।

व्यापारी ने पहली बात सिद्ध करने के लिए एक कछुए को साथ ले लिया। कछुए ने व्यापारी की सर्प से रक्षा की। सर्प और कौए में मैत्री थी। सर्प ने व्यापारी को काट लिया, तब कौआ आँखें खाने आया तो कछुए ने टाँग पकड़ली। कौए की टाँग उसने तब छोड़ी जब सर्प ने व्यापारी का विष खींच लिया। इस प्रकार एक बात सत्य सिद्ध हुई। उसी कछुए ने अपने व्यापारी मित्र से विदा लेते समय एक तालाब में से दो लाल निकाल कर दिये। व्यापारी औघट न्हाया, लाल वहीं पड़े भूल गया। फिर स्मरण आने पर लौटा और लाल जहाँ के तहाँ मिल गये। इस प्रकार दूसरी बात भी सिद्ध होगयी। शेष दो बातें सिद्ध करने के लिए इस कहानी में दूसरी शैली ग्रहण की गई है। वह शेष दो बातों को भूल गया। उसने एक कुए में तरबूज की बेल देखी; उसका भेद अपनी स्त्री को बता दिया। स्त्री ने अपने प्रेमी को बता दिया। वह प्रेमी उस बेल को काट लाया और व्यापारी से तरबूज की 'चर्चा' चलाई। व्यापारी ने कुँए की बेल का उल्लेख किया। दोनों में इसी बात पर शर्त्त बद गई। व्यापारी दूसरी बात भी भूल गया कि शर्त न बदनी चाहिए। शर्त्त यह बदी गई कि जो जीते वही हारने वाले के घर में जाकर जो वस्तु दोनों हाथों में आ जाय ले आवे। शर्त बदने में दूसरे मनुष्य का भाव यह था कि वह व्यापारी की स्त्री को उठा लायेगा। व्यापारी ने जब कुंए में देखा तो बेल गायब। तब उसे यथार्थता का ज्ञान होगया। अब इस षडयन्त्र से बचने के लिए उसने फिर उसी ठग से युक्ति पूछी।

[1] देखिये 'इन्डियन ऐंटिक्वरी' सन् १८९० पृ० १२६ नंटेसन महोदय का प्रेषण:—'फोकलोर इन साउथ इन्डिया': ३२ वीं कहानी, 'दी फोर गुड मैक्जिमम्स (सेकैन्ड वरजन)" तथा ३३ वीं कहानी पृ० २७५ "दी सिक्स गुड मैक्जिम्स"

उसके अनुसार उसने अपनी स्त्री को छत पर बैठा दिया। उस मनुष्य ने जब ऊपर चढ़ने के लिए दोनों हाथों से नसेनी पकड़ी तभी उस व्यापारी ने उसे नसेनी देकर वचन पूरा किया।

'बीरबल की हुस्यारी' नाम की कहानी में एक राजा ने दूसरे राजा के पास कुछ बातें अर्थ स्पष्ट करने के लिए भेजी हैं। वे बातें चार हैं :—

१—असल ते कम असल
२—कम असल ते असल
३—सराइ कौ कुत्ता बे-मुरब्बत
४—समाज कौ बन्दर बे सोचे समझे काम करै।

बीरबल मन्त्री ने ये चारों बातें प्रश्नकर्त्ता राजा के यहाँ जाकर सिद्ध करदीं। उसने उसी राज्य की श्रेष्ठि-कुमारी से विवाह किया था, उसे तो 'असल से कम असल' सिद्ध किया। उस स्त्री ने वह बात फैलादी, जिसे न कहने का वह आदेश दे गया था, और जिसके फैल जाने से उसे प्राण-दण्ड मिल सकता था। वेश्या को उसने 'कम असल ते असल' सिद्ध किया। वेश्या ने उसको प्राण-दण्ड से बचाया था। कोतवाल को उसने 'सराय का कुत्ता बे-मुरब्बत' ठहराया। वह कोतवाल की खूब भेंट-पूजा करता था, फिर भी उसने उसे बन्दी बनाया। राजा को उसके समाज का बन्दर बताया, जो बे-सोचे समझे कार्य करता है, क्योंकि राजा ने यह जाँच-पड़ताल तक न की कि यथार्थ में बात क्या है ? वस्तुतः उसने किसी की हत्या न की थी। एक तरबूज चीर कर घर में रख दिया था और स्त्री से कह दिया था कि मैं एक मनुष्य का सिर काट लाया हूँ। इस प्रकार ये चार बातें सिद्ध की गई हैं। इस कहानी में जो बातें सिद्ध की गई हैं उन्हें सिद्ध करने के लिए परिस्थितियाँ पैदा की गईं हैं।

३—'धर्म की जड़ हरी' तथा 'दीन और दोजख' ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें कोई व्यक्ति कुछ कहता है और उसके मर्म को समझने की उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है। 'धर्म की जड़ हरी' ये शब्द एक ब्राह्मण प्रतिदिन राजा को सुनाया करता था। राजा इसका मर्म जानने के लिए उत्सुक हुआ। वह ब्राह्मण उसे एक ऐसे मन्दिर में ले गया जहाँ से वह स्वर्ग और नरक में जा सकता था वहाँ एक बार उसे नरक बन्द मिला। स्वर्ग खुला मिला क्योंकि उसने दान करना आरम्भ

कर दिया था। अब आगे स्वर्ग का द्वार उसके लिए तभी खुलेगा जब वह निश्चित अवधि तक विष्ठा खायगा। उसकी स्त्री अनजाने उसके भोजन को विष्ठा से स्पर्श कराके उसे खिलाती। उसका प्रायश्चित पूरा हो गया। यह साभिप्राय कहानी है, दान-धर्म की महत्ता सिद्ध करने के लिए ही यह गढ़ी गई है। 'दीन और दोजख' में दीन और दोजख की कसौटी बताई गई है। जब कभी मुर्दा जाता था तभी एक रण्डी अपनी दासी से यह पूछती कि यह दीन को गया या दोजख को। दासी देखकर समुचित उत्तर दे देती थी। सुनने वाले को आश्चर्य होना स्वाभाविक था। उसने पूछा यह कैसे जाना कि यह दीन में गया कि दोजख में। वेश्या का उत्तर था जिसके साथ दस आदमी यह कहते जायँ कि भला हुआ मर गया, वह 'दोजख' को गया, और जिसके साथ शोक मनाते हुए मनुष्य जायँ वह दीन को गया। ये दोनों कहानियाँ छोटे चुटकुलों के समान मर्मस्पर्शिणी हैं।

४—जैसे उपरोक्त कहानियों में कुछ शब्द सुनकर प्रश्न प्रस्तुत हुआ है, वैसे ही कुछ कहानियों में घटनायें देख कर भी प्रश्न उठ सकते हैं, और उनके समाधान की इच्छा हो सकती है। 'गङ्गाराम पटेल और बुलाखी नाई' की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं और प्रकाशित हो चुकी हैं। उसमें बुलाखी नाई यह शर्त करके घर से गङ्गाराम पटेल के साथ गङ्गा यात्रा को गया है कि वह जो बात पूछे उसका उत्तर उन्हें देना होगा—उसका समाधान करना होगा। बुलाखी नाई नगर में जिस अद्भुत घटना को देखता उसी का समाधान चाहता। गंगाराम पटेल को उस घटना की एक रोचक कहानी सुनानी पड़ती। इस प्रकार कितनी ही कहानियाँ इस प्रकार के समाधान में प्रस्तुत हुईं। पर ये तो कुछ कृत्रिम समस्यायें थी। ब्रज की मौखिक कहानियों में 'जि कौन की बहू होगी' नाम की एक कहानी है। उसकी कल्पना अद्भुत है। चार मित्र थे—बढ़ई, सुनार, दर्जी और ब्राह्मण। बढ़ई के लड़के ने रात बिताने के लिये एक काठ की पुतली गढ़ी। दर्जी ने अपने अवसर पर उसे वस्त्र पहना दिये। सुनार ने अपने अवसर पर उसे आभूषण पहनाये। ब्राह्मण का अवसर आया, ब्राह्मण ने अपनी अँगुली से अमृत डालकर पुतली को सजीव कर दिया। यहाँ तक तो सारा कार्य यों ही मन बहलाव के बहाने होगया। अब उस जीवित पुतली को अपनी स्त्री बनाने के लिए चारों झगड़ने

लगे। यह कठिन समस्या खड़ी हो गयी कि यह किसकी बहू होगी? तब राजा ने न्याय किया। बढ़ई और ब्राह्मण तो उसके पिता तुल्य हुए, उन्होंने ने ही उसे बनाया और प्राण दिये। दर्जी भाई हुआ, उसने कपड़े पहनाये। वह सुनार की बहू है—आभूषण पहिनाना का काम पति का है। इसमें प्रसंगवश पिता, भाई तथा पति के साधारण कर्त्तव्य का उल्लेख हो गया है। एक दूसरी कहानी 'जि तौ बु चौं, बु तौ जि चौं' एक और समस्या प्रस्तुत करती है। एक स्त्री ने अपने पुत्र, प्रेमी और पति को मार डाला। पुत्र को इसलिए मार डाला कि वह प्रेमी से मिलने में बाधा देता था। प्रेमी को इसलिए कि वह पुत्र के भेद को न जान ले। पति को इसलिए मार डाला कि वह पुत्र और प्रेमी का हाल जान गया था। तब वह पति के शव के साथ सती होने चली। यहीं इस समस्त काण्ड के द्रष्टा ब्राह्मण के मन में समस्या खड़ी हुई कि जब सती होना था, पति-प्रेम था तो पर-पुरुष से प्रेम क्यों, और लड़के को क्यों मारा, और यदि परकीयत्व था तो यह सतीत्व क्यों? सती होने वाली स्त्री ने उसे किसी मालिन के पास भेजा कि वह वहाँ से भेद जान सकेगा। उस मालिन ने उसे स्वप्न में लेजाकर एक अप्सरा को दिखाया। वह अप्सरा पर मुग्ध हो गया। मालिन ने कहा वह अप्सरा आपको अपने पुत्र की चामुण्डा पर बलि चढ़ाने से मिल सकती है। वह अपने पुत्र की बलि चढ़ाने को प्रस्तुत हो गया—इस विधि से मालिन ने उस स्त्री के व्यापार का समाधान कर दिया। यही कहानी साधारण रूपान्तर के साथ काश्मीर में भी मिल जाती है[1]।

५—इन बुझौअलों का एक रूप शब्द-चातुर्य पर निर्भर करता है। शब्द-चातुर्य कभी तो अर्थ-गोपन के लिए काम में आता है: जैसे, मियाँ-मौअटी की कहानी में मौअटी ने अपनी दुर्दशा का रूपक बना कर पत्र में लिखा, जिसमें मूल अभिप्राय तो यह था कि अब घर में कुछ नहीं रह गया—पर अन्य सुनने वालों ने समझा कि यह कोई बड़ा गढ़पति है, फलतः उसका सम्मान और बढ़ गया। वह श्लेषार्थी पत्र इस प्रकार था—"घासीरा[2] ने घर घेर लिया है, डिब्बन[3] साहब

[1] देखिये 'हातिमस् सॉंग्स एण्ड स्टोरीज' में तीसरी कहानी। एक सौदागर की कहानी। इसमें द्रष्टा राजा है।

[2] घास, [3] लोटा।

डूब गये, रूम-साहब[1] टूट गये, बिलाव[2] साहब मर गये, नमक हरामी कोतवाल[3] साहब भाग गये। फटकर[4] साहब बाकी रहे सो घड़िया की लड़ाई इधर से उधर और उधर से इधर दोनों ओर से ले रहे हैं।"

ऐसी ही अर्थगोपक एक अन्य बुझौअल कहानी है। इसमें जाटिनी ने अपनी सहेली के यहाँ नाँइन के हाथों 'वायना' भेजा, सोलह पूरी, खीर पर भरपूर बूरा। उसने नाँइन से यह भी कहला दिया—

"चन्दा की चाँदनी घटाटोप छाई है।
मेरें तौ ही सोलह तारईं तेरे कै आई हैं॥"[5]

वहाँ सहेली ने उत्तर दिया—

चन्दा की चाँदनी तारौ कोई कोई है।
तेरें तौ ही सौलह तारईं, ह्याँ चार आई हैं॥

बात यह थी कि नांइन ने कुछ खीर और बूरा तथा बारह पूरियाँ मार्ग में चुराली थीं। इसका भेद इस प्रकार भेजने वाली के पास खुल गया। नांइन इनके अर्थों को न समझ सकी और पकड़ी गयी।

६—वार्तालाप-बुझौअल की कहानियों का रूप चुटकुलों जैसा है। दो व्यक्ति पहेलियों में बातें करते हैं—एक सुनने वाला समझ नहीं पाता अर्थ पूछता है, इस प्रकार समाधान का मार्ग खुल जाता है। इनका तो पहेलियों के जैसा ही रूप है। एक कहानी में यह वार्त्तालाप इस प्रकार है:—

भटियारी—'लोहे पीटी चक्की फार' दे देउ [दाल दे दो]
बनियाँ—'छटाँक भर दूँगा' [पैसे की छटाँक भर]
भटियारी—तुम छटाँक भर दोगे, मैं अकरकरा कर लूँगी।
[मैं फटक कर लूँगी]
बनियाँ—तुम अकरकरा कर लोगी तो मैं गुलाब घूँसा-घूँस दूँगा [पाव छटाँक कम दूँगा]

दूसरी में यों है—

मनुष्य—रुपये की 'सूआ पंखी' लेते हैं, [मूँग की दाल लेते हैं]
स्त्री—रामण के सिर देते हैं [दस सेर के भाव देते हैं]

---

[1] डोरा, [2] बिल्ली, [3] कुत्ता, [4] सूप।
[5] ऐसा ही अभिप्राय काश्मीर की एक कहानी में पाया है।

मनुष्य—गदापदम कर लेते हैं [छाँट फटक कर लेंगे]
स्त्री—सीस मन्दोदरि देते हैं [नौ सेर की देंगे]

इनको यथार्थ में कहानी भी नहीं कह सकते। कितने ही व्यवसायों में सांकेतिक भाषा का प्रचार है, विशेषकर सुनारों और कँसेरों में। अन्य मनुष्यों को वह पहेली जैसी लगती हैं। यह भी ऐसे ही सांकेतिक शब्दावली में वार्त्तालाप है। वार्त्तालाप व्यावसायिक है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

७—ऐसी भी बुझौअल की कहानी मिल जाती है जिसमें सीधी प्रहेलिका ही पूछ डाली गई है। ब्रज में ऐसी मौखिक कहानी वही संस्कृत की यक्ष और वररुचि की कहानी है। यह यथार्थ में पुस्तक के द्वारा पढ़े-लिखे व्यक्तियों ने सीख कर कहीं-कहीं प्रचलित करदी है। इसमें ब्राह्मण-माँस पाने के लिए यक्ष ने यह प्रहेलिका पूछी है, "पाँचमी और पाँचमी और पाँचमी न सी। इसका अर्थ रात्रि में वररुचि ही दैवयोग से यक्ष के मुख से सुनकर ही बता सका।

८—ऐसी कहानियाँ भी बुझौअल कहानियाँ कही जायँगी जिनमें किसी संकेत का उल्लेख हुआ हो। उस संकेत का अर्थ समझ लेने पर और उसके अनुसार आचरण करने से ही अभीप्सित अर्थ की प्राप्ति हो पाती है। ऐसी एक कहानी 'यार की यारई' है। इसमें बादशाह की लड़की ने यह संकेत राजकुमार से किया है:—

"एक फूल लेकर दाँतों से लगाया, फिर छाती से लगाया, फिर पैरों से लगाकर ऊपर होकर पीछे फेंक दिया"—इस संकेत का अर्थ मन्त्री-पुत्र ने बताया—वह दन्तवक्र राजा की बेटी है, वह तुझे खूब चाहती है, उसका नाम पद्मावती है, तुम्हें पिछवाड़े से बुलाया है। लोक-कहानियों में ऐसे सांकेतिक अभिप्राय बहुधा उपयोग में आते हैं। काश्मीर में एक सुनार की कहानी में राजकुमारी ने एक सुनार को ये संकेत दिए हैं १—उसकी तरफ से पीठ फेरली। २—शीशा दिखाया। ३—बाहर कुछ पानी फेंका, कुछ फूल फेंके, और कुछ बाल फेंके, लोहे की शलाका से खिड़की की चौखट खुर्ची। इसका रहस्य सुनार की स्त्री ने बतलाया—१-शीशा दिखाना=कोई उसके पास है। २-पानी =मोरी के मार्ग से आना, ३-फूल=एक फुलझाड़ी मिलेगी, ४-लोहे की शलाका=एक लोहे की शलाका खिड़की काटने को लाना आदि[१]।

---

[१] देखिए 'हातिम्स सांग्स एण्ड स्टोरीज' पाँचवीं कहानी। तथा

पञ्चतन्त्रीय कहानियाँ—

पञ्च-तन्त्र एक कहानी की पुस्तक है। ये कहानियाँ राजकुमारों को राजनीति की शिक्षा देने के उपयोग में लाई गई थीं। इन कहानियों के पात्र पशु-पक्षी थे। पञ्च-तन्त्र की कहानियाँ बहुत प्रचलित हुईं, और देश-विदेशों में फैलीं। इन कहानियों की विश्व-यात्रा एक मनोरञ्जक विषय है, जिस पर अनेकों पाश्चात्य विद्वानों ने परिश्रम किया है।[२] पञ्च-तन्त्र की पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ साभिप्राय कहानियाँ हैं। वे एक विशेष उद्देश्य से लिखी गई हैं। हमने पशु-पक्षियों की ऐसी सभी कहानियों को जो साभिप्राय हैं पञ्च-तन्त्रीय कहानी कहा है। ऐसी कहानियाँ हैं सभी पशु-पक्षी सम्बन्धी। पशु-पक्षियों से सम्बन्धित ऐसी कहानियाँ भी होती हैं, जिनमें उपदेशवृत्ति प्रधान नहीं होती। इस प्रकार के वर्गीकरण पर हम दूसरे अध्याय में विचार कर चुके हैं।

ब्रज की पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियों में जिन पशु-पक्षियों का उल्लेख है वे ये हैं—१ गीदड़, २ मगर, ३ ऊँट, ४ शेर, ५ न्यौला ६ बिल्ला, ७ कुत्ता, ८ लोमड़ी, ९ रीछ, १० बकरी, ११ चूहा, १२ साँप।

पक्षियों में—१ मोर, २ चिड़िया, ३ कौआ, ४ हंस, ५ तोता, ६ पिड़ूकिया।

गीदड़—गीदड़ की कहानियाँ सबसे अधिक हैं। गीदड़, सियार अथवा सिरकटे को ही कहते हैं। पुराणों में शिवजी के शृगाल का रूप धारण कर गङ्गा से विवाह करने की कहानी प्रसिद्ध है। शिवजी के कारण शृगाल का महत्त्व बढ़ना ही चाहिए। ब्रज की लोक-कहानियों में से एक में गीदड़ कुत्तों से भोला दिखाया गया है। कहानी ने बतलाया है कि किसी युग में नगरों में पहले गीदड़ रहा करते थे, जैसे आजकल कुत्ते रहते हैं। कुत्ते ऐसे रहते थे जैसे आजकल गीदड़। गाँव से बाहर दोनों थे भाई भाई। किसी परिस्थितिवश कुत्तों

स्विनर्टन की 'इण्डियन नाइट्स एण्टरटेनमेण्ट' में संग्रहीत कहानी "दी प्रिंस एण्ड वजीरस् सन्"

[२] देखिए मैकडानल लिखित "इण्डिया'ज पास्ट एण्ड प्रजेण्ट"। गौरांगनाथ बनर्जी की 'हैलेनिज्म इन ऐन्शिएन्ट इण्डिया' में १४ वाँ अध्याय 'फेबिल्स ऐण्ड फोक-लोर' तथा ऐच० ऐच० विल्सन कृत "ऐसेज आन सबजैक्ट्स कनेक्टेण्ड विद संस्कृत लिटरेचर, भाग प्रथम तथा द्वितीय"।

ने गीदड़ों से कहा, भाई अब तुम बहुत दिन शहरों में रह चुके हो, अब हमें भी वहाँ रहने का अवसर दिया जाय। उन्होंने सम्भवतः कारण यह बताया कि हमारे यहाँ लड़की का विवाह है, वह नगर से अच्छी प्रकार समाप्त हो सकता है। विवाह हो जाने पर हम गाँव या नगर छोड़ जायँगे। गीदड़ों ने कहा क्या हानि है, आजाओ। गीदड़ जंगलों में चले गये, कुत्ते बस्ती में आगए। कुत्ते बस्ती में आगए सो फिर लौट कर जंगल नहीं गये। गीदड़ों ने उद्योग भी किया, पर कुत्तों ने एक गीदड़ को नगर में प्रवेश न पाने दिया। अब प्रत्येक रात्रि को अपने खोये अधिकार की घोषणा करने गीदड़ों का दल बस्ती की सीमा के निकट जाता है। वहाँ जाकर नायक ऊँचे स्वर में कहता है, हमऊँ कबउँ राजा हते' अनन्तर सब शेष साथी उसका समर्थन करते हैं, 'हते जी हते', 'हते जी हते', 'हते जी हते'। गीदड़ों की ऊकरी का यही अभिप्राय है। गीदड़ों की ऊकरी का बस्ती के कुत्ते भी बड़ी उग्रता से विरोध करते हैं। यह कहानी कारण-निर्देशक (Acteological) कहानी के जैसा स्वभाव रखती है। इसमें गीदड़ कुत्तों से कम चतुर दिखाये गये हैं। अन्य कहानियों में हमें गीदड़ शेष पशुओं से चतुर प्रतीत होता है। एक कहानी में गीदड़ ने मगर को खूब छकाया है। गीदड़ और गीदड़ी नदी की दूसरी पार पर जाना चाहते हैं। क्या युक्ति करें ? गीदड़ी ने मगर से जेठ का रिश्ता स्थापित किया, और उसे इस शर्त्त पर उन्हें परली पार उतार देने पर तय्यार कर लिया कि वे उसके लिए दुलहिन ढूँढ़ लायेंगे। दुलहिन के लालच में मगर ने दोनों को उस पार उतार दिया। वहाँ जब वे अपना पेट खूब भर चुके और लौटने का विचार हुआ तब फिर उन्होंने मगर से काम लेने का उपाय सोचा। दुलहिन तो थी नहीं, उन्होंने काँटे की एक झाड़ी को एक चादर ओढ़ा दी। मगर के मुँह में पानी भर आया। उसने उन दोनों को शर्त्त के अनुसार पहले पार उतार दिया, और लौट कर जब दुलहिन के पास आया तो वहाँ झाड़ी मिली। पर यह कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। मगर ने इसका बदला लेने का विचार किया। गीदड़ जब पानी पीने आया तो उसका पैर पकड़ लिया, गीदड़ ने कहा—वाह भाई, पीपल की जड़ पकड़ली है। मगर ने पैर छोड़ कर पीपल की जड़ पकड़ ली। गीदड़ भाग आया। अब मगर उनके घर में ही जा घुसा। गीदड़-द्वय ने मगर के घिसटने के

चिह्न देख कर भाँप लिया। बोला "घर मामा राम राम" और गीदड़ी से कहा "क्या बात है? आज घर बोलता क्यों नहीं?" मगर ने समझा घर अवश्य बोलता होगा, मेरे डर से नहीं बोलता। मगर ने ही उसका प्रत्युत्तर दे दिया। गीदड़ ने कहा कहीं घर बोला नहीं करते। मगर फिर हारा। एक तीसरा उद्योग उसने फिर किया, रेती में मृतवत् पड़ रहा। गीदड़-गीदड़ी ने आपस में कहा कि यह मरा नहीं है, मरे हुए तो पादा करते हैं। मगर फिर बातों में आगया और जोर का पाद छोड़ा। गीदड़-गीदड़ी अपने घर आये। लोक-कहानीकार ने मगर को बुद्धू बनाया है, यह तो ठीक है, पर एक कहानी में तो उसने सभी पशुओं को हीन-बुद्धि दिखाया है। बात यह हुई कि घर की खोज में गीदड़-दम्पति अपने बच्चों सहित एक सिंह की भाट में जा ठहरे। अब सिंह से कैसे रक्षा हो। उन्होंने एक नाटक रचा। जब सिंह आया गीदड़ी ने अपने बच्चों को नोंचा और गीदड़ से कहा—सिंह पछाड़जी आपके बच्छे शेर का माँस चाहते हैं। इसीसे शेर भयभीत होकर भागा। एक और शेर ने ढाढ़स बँधाया। दोनों पहुँचे। पहली युक्ति से ये दोनों भी भगाये गये। फिर समस्त पशु चढ़कर चले। सबने एक-दूसरे से कसकर पूँछें बाँध लीं; कहीं कोई धोखा न दे जाय। लोमड़ी नायक बनी। गीदड़ों ने फिर वही युक्ति की, लोमड़ी का नाम लेते ही वह बेतहाशा भागी। पशुओं में भाग-दौड़ मच गयी। एक-दूसरे की पूँछें खिच रही थीं। वे समझ रहे थे कि शेर पहाड़ खींच रहा है। इस प्रकार गीदड़ों ने सब पर विजय प्राप्त की और सुख पूर्वक रहने लगे। लोमड़ी को भी चतुर समझा जाता है पर इस कहानी में वह गीदड़ से परास्त हुई है। रंगे सियार की संस्कृत की कहानी से ही हिन्दी में यह मुहावरा आया है। उसमें भी शृगाल की चतुराई का उल्लेख है, पर वहाँ कहानीकार ने नैतिक दृष्टि से उस रँगे सियार का भण्डाफोड़ कर दिया है। कुछ भी हो, लोक-विश्वास ही कहानियों में प्रकट हुआ है। इसमें गीदड़ साधारणतः चतुर दिखाया गया है। कथासरित्सागर की एक कहानी में भी गीदड़ ने अपनी चतुराई से अपने प्राणों की रक्षा की है। वह एक मृतक भैंसे के पेट में एक छिद्र में से घुस गया। सूर्यातप से वह छिद्र सिकुड़ गया, वह शृगाल उसमें बन्द हो गया। गाँव वाले जब उसे फेंकने आये तो गीदड़ उन्हीं की भाषा में उनसे बोला—मैं ग्राम देवता हूँ, तुमसे नाराज

हूँ। मेरी पूजा करो। पूजा के विधान में बहुत-सा पानी उस पर डाला गया। चर्म ढीला पड़ा, गीदड़ अवसर ढूँढ़ कर उसमें से निकल भागा। यह शृगाल की चतुराई इस प्रकार पर्याप्त प्राचीन काल से मानी जाती रही है।

बिल्ली—कुछ कहानियों में ऊँट, बिल्ली, बकरी, तथा लोमड़ी ने गीदड़ से या तो सफलतापूर्वक बदला लिया है या छकाया है। गीदड़ और ऊँट की कहानी प्रसिद्ध है। गीदड़ ऊँट की पीठ पर नदी के दूसरी पार गया। जब उसका पेट भर चुका तो उसने ऊकरी लगायी। खेत वाला जगा, ऊँट को उसने पीटा। लौटते समय गीदड़ फिर ऊँट की पीठ पर बैठा, बीच धार में आकर ऊँट लोट गया, गीदड़ से ऊँट ने बदला ले लिया। ब्रज में यह कहानी आगे गीदड़ की मगर से मैत्री करा देती है। मगर ने उसकी प्राण-रक्षा की। वह मगर के यहाँ जंगल के कुछ स्वादिष्ट पदार्थ ले गया। मगर की स्त्री ने गीदड़ के कलेजा खाने की इच्छा प्रकट की। गीदड़ चौकन्ना हुआ। उसने कहा, कलेजा मैं घर रख आया हूँ, ले आऊँ। इस प्रकार धोखा देकर मगर से उसने प्राण बचाये। तब गीदड़ और मगर के दाव-घात वैसे ही हुए जैसे ऊपर बताये जा चुके हैं। यह कहानी निश्चय ही पञ्च-तन्त्र की कहानी के आधार पर है। पञ्चतन्त्र की कहानी में गीदड़ के स्थान पर बन्दर है। इसी प्रकार बकरी ने गीदड़ से बदला लिया। गीदड़ ने बकरी के 'चैंऊँ मैंऊँ आले बाले' ये चार बच्चे खा लिये। बकरी ने अपने सींग पैने कराये, तेल चुपड़वाया और गीदड़ के पेट में भौंक दिये। बच्चे निकल आये। इस कहानी में गीदड़ के स्थान पर भेड़िया होना अधिक उचित है। बिल्ली ने गीदड़ को छकाने और अपने प्राण बचाने का बड़ा कौतूहलवर्द्धक उद्योग किया। एक कुत्ते ने बिल्ली का पीछा किया, वह भाग कर एक भिटे में घुस गयी। उसे क्या विदित था कि उसमें गीदड़ होगा। पर अब तो आमने-सामने थे। उसने गीदड़ से तुरन्त जेठ का रिश्ता जोड़ लिया और कहा कि महाजन आया है, रुपये माँगता है, तुम्हारे छोटे भाई हैं नहीं; तुम उन्हें समझा आओ। गीदड़ जैसे ही भिटे से बाहर निकला कुत्ते ने उसकी थूथड़ी पकड़ ली। बड़ी खींचातानी हुई। आखिर जैसे-तैसे गीदड़ मुँह छुटा कर भीतर भागा और बिल्ली से कहा—भला ऐसे आदमी से व्यवहार किया जाता है जो 'न बोले न बोलन दे'। ऐसे ही लोमड़ी ने गीदड़

को नीचा दिखाया।

लोमड़ी—लोमड़ी के लिए ब्रज में बहुधा 'लोखटी' शब्द आता है। रूपान्तर से यही 'लोखा' या 'लोका' हो जाता है। ब्रज में हमें खट्टे अंगूर वाली लोमड़ी नहीं मिली, न वही लोमड़ी मिली है जो जानवरों को शान्ति का सन्देश सुनाती है। एक लोमड़ी तो हमें गीदड़ को चकमा देती मिलती है। गीदड़ ने एक मिट्टी का मटूलना बना लिया है, गोबर से उसे लीप लिया है। कानों में फटे जूते के तले (लीतरे) लटका लिए हैं[1]। एक तालाब के पास इस प्रकार बड़े रौब से गीदड़ महोदय बैठ गये हैं। जो पशु वहाँ पानी पीने आते हैं, उनसे वे आग्रह करते हैं कि उनकी प्रशंसा में वे कुछ शब्द कहें। आग्रह क्या आज्ञा है, अन्यथा पानी नहीं पीने दिया जायगा। वह प्रशस्ति यह है:

सोने को चबूतरा
कोई चन्दन लीपौ है
कानों में दो कुण्डल पहिरे
कोई राजा बैठौ है।

अन्य पशु तो ऐसे कह कये। लोमड़ी आई, उसने कहा—गला चटक रहा है, बोला जाता नहीं; पहले कैसे कहा जाय। पानी पीकर कहेगी। बड़ी कठिनाई से पानी पीने की आज्ञा उसने ली, पानी पिया और कुछ दूर पहुँच कर उसने गीदड़ को सुनाया—

माटी कौ मटूलना
कोई गोबर लीपौ है
कानों में दो लीतरे
कोई गीदड़ बैठौ है।

और भाग गयी।

कुत्ता—कुत्ता गीदड़ और बिल्ली का शत्रु है, यह हम ऊपर देख चुके हैं। गीदड़ को उसने नगर से खदेड़ दिया, गीदड़ जब बिल्ली की ओर से कुछ कहने आया तो उसकी थूथड़ी पकड़ ली, जैसे-तैसे गीदड़ ने अपनी रक्षा की। गीदड़ी ने जब चूड़ियों के लिये जिद की और गीदड़ को विवश होकर बस्ती की ओर जाना पड़ा तो वहाँ उसे कुत्तों के हाथों अच्छा सत्कार प्राप्त हुआ। वह भयभीत अपने भिटे की ओर भागा। कुत्ते उसके पीछे ही लगे चले गये। उसने भिटे में

[1] एक रूपान्तर में मेंढकियाँ लटकाली हैं।

घुसकर प्राण बचाये और हठी गीदड़ी को मनिहार-कुत्तों के पास भेज दिया जो उसे फाड़ कर खा गये[1]। किन्तु कुत्ता अपनी 'स्वामि-भक्ति' के लिए विख्यात है। इसीलिए धर्म कुत्ते का रूप धारण कर युधिष्ठिर के साथ गया था। यह हमें महाभारत से विदित है। पर लोक-कहानी में कुत्ते की स्वामिभक्ति की कहानी साधारणतः दृष्टान्त के रूप में आयी है। ब्रज की एक कहानी में कुत्ते की इस स्वामिभक्ति की कहानी एक राजा के पुत्र ने ठग की बेटी को सुनाई है कि उस ठगिनी को उसी प्रकार पछताना पड़ेगा जैसे कुत्ते को मार के लाखा बंजारा पछताया था[2]। काश्मीर की कहानियों में यही कहानी तीसरे पहरे पर पहरे वाले भाई ने राजा को सुनाई है कि कहीं वह बिना यथार्थ बात समझे कोई कार्य न कर डाल, जिससे पीछे पछ-ताना पड़े[3]। कहानी संक्षेप में यह है कि एक व्यक्ति के पास एक पालतू स्वामिभक्त कुत्ता था। उसे कुछ रुपयों की आवश्यकता पड़ी तो उसने कुत्ते को गहने रख कर एक अन्य व्यक्ति से रुपये ले लिये। वहाँ चोरी हुई। इस कुत्ते ने इस चोरी का भेद बता दिया और समस्त सम्पत्ति जो चोरी हुई थी उसकी खोज लगा दी। उस व्यक्ति ने कृतज्ञ होकर कुत्ते के गले में ऋण की भरपाई[4] का रुक्का लिख कर लटका दिया और कुत्ते को लौटा दिया। कुत्ता जब अपने स्वामी के पास लौटा तो उसने समझा यह उस व्यक्ति के यहाँ से भाग आया है। उसने बिना सोचे-समझे उसे मार डाला। पीछे रुक्का पढ़ कर वह बहुत पछताया। यह कहानी पश्चिम आयरलैंड तक और पूर्व में चीन तक जा पहुँची है। भारत में किरथार पहाड़ियों में, मध्यप्रान्त के दुग जिले मण्डला में, काठियावाड़ के रालूसा स्थान में कुत्ते के मन्दिर या मठ तक बने हुए हैं जो पूजे जाते हैं। इन कुत्तों की कहानी भी ऐसी

[1] देखिए श्री रमेश वर्मा की 'गाँव की कहानियाँ' मे 'भारत की बिद पति की नासमझी' नामक कहानी पृ० २२।

[2] देखिये 'ब्रज की लोक-कहानियाँ' पृष्ठ ५५। ठगों को ठगने वाला।

[3] देखिए 'हातिम'स सान्स एण्ड स्टोरीज' आठवीं कहानी—'दी टल आव ए किंग।'

[4] काश्मीरी कहानी में उसने इस कुत्ते का मूल्य और अधिक आँका और उसका रुक्का लिखकर कुत्ते के स्वामी के पास भेजा।

हैं, जैसी ऊपर कही गयी है।[1] पञ्चतन्त्र में स्वामिभक्ति की कहानी में न्यौले का उल्लेख है। न्यौले ने सर्प से बच्चे की रक्षा की थी। ब्राह्मणी ने समझा न्यौले ने उसका बच्चा खा लिया और भरा घड़ा उस पर पटक कर उसे मार डाला। पीछे उसे पछताना पड़ा।

न्यौला—न्यौला सर्प का शत्रु है। यही कारण है कि संस्कृत के कहानीकार ने उक्त कहानी के लिए, न्यौले को चुना है। पर व्रज की एक कहानी में बिना ऐसी किसी स्थिति के भी एक कहानी का प्रधान पात्र न्यौला बनाया गया है। यह न्यौला रानी के पेट से पैदा हुआ है। राजा की अन्य छः रानियों से छः राजकुमार हुए। न्यौला इन राजकुमारों से चतुर निकला। वह अपनी माँ के लिए चतुराई से बहुत सा धन ले आया। वह एक कुम्हार के यहाँ रहा। उसकी सारी सम्पत्ति उसने जान ली और खोद कर कानी गदहिया को खिला दी। घर जाते समय पुरस्कार में उसने वही गदहिया माँग ली। घर जाकर मौंगरी मार-मार कर उससे लीद करायी और उसमें से रुपये निकाल लिये। न्यौले का यह काम पाश्चात्य कहानी 'पस इन दी बूटस' की बिल्ली के काम के समकक्ष माना जा सकता है। इस बिल्ली ने अपने स्वामी को राजा के समान वैभवशाली बनवा दिया था।

साँप—साँप का कुछ उल्लेख व्रत की कहानियों में हो चुका है। व्रत की कहानियों में साँप उदार प्राणी के रूप में आया है। जिसने उसका उपकार किया उसी को उसने अपनी बहिन अथवा मित्र माना और उसकी पूर्ण रूपेण सहायता की। ये सर्प लोक वार्ता में पाताल निवासी हैं। भूमि-गर्भ में मणि-माणिक्य जड़ित इनके विशाल भवन हैं। मणि प्रकाश भी देती है और जल को फाड़ कर उसमें मार्ग भी बना देती है। सर्पों के राजा 'वासुकि' का बहुत उल्लेख कहानियों में है। ये काट खाते हैं और विष चूस कर मनुष्य को चंगा भी कर सकते हैं। इनमें रूप बदलने की शक्ति भी मानी गयी है। चाहे जब ये मनुष्य का रूप धारण कर सकते हैं, चाहे जब सर्प का। एक व्रज की कहानी में सर्प स्वयमेव एक दुखिया रानी का पुत्र बन गया था। रानी बाँझ थी, राजा ने दूसरा विवाह करने का विचार किया तभी उसकी दासी ने यह झूँठा संवाद भिजवाया कि रानी गर्भवती है। दासी इस झूँठ को १६ वर्ष तक निबाह ले गयी, यहाँ तक कि राज-

[1] देखिए 'हातिम'स सांग्स एण्ड स्टोरीज'।

कुमार के विवाह का निश्चय हो गया और बारात चल पड़ी। क्योंकि राजकुमार अभी किसी को दिखाया नहीं जा सकता था, अतः पालकी में माता और दासी भी बारात को चलीं। ये दोनों भावी भय से दुखी और कातर थीं। तभी एक सर्प दया से दयार्द्र होकर सोलह वर्ष का कुमर बनकर पालकी में आ बैठा। उसने अपनी स्त्री से वचन ले लिया कि वह उसकी जाति नहीं पूछेगी। किन्तु वह दूसरों की भड़काहट में आकर जाति पूछने की हठ करने लगी। उसने पानी में जाकर अपना वास्तविक रूप प्रकट करके जाति बता दी, और लुप्त हो गया। सर्पों को दूध प्रिय है, यह व्रत की कहानियों में आ चुका है। सर्प का अस्तित्व हमें वेदों तक में मिलता है। वृत्र और अहि सर्प हैं। महाभारत में परीक्षित का नागयज्ञ एक प्रसिद्ध वार्ता है। कृष्ण का कालिया नाग का नाथना भी उतना ही ज्ञात है। शेष भी सर्प हैं जो भगवान विष्णु की शय्या है।

चूहा—ब्रज की कहानियों में चूहा भी आया है। 'चल मेरे चरखे चरख चूँ' नाम से एक कहानी कही जाती है। कहानी बालकों के लिए ही है। इसमें चूहा एक बुढ़िया पर दया करके लकड़ी दे देता है। उसके यहाँ से कुछ सामग्री लेकर आगे चलता है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु बदलता हुआ वह अन्त में एक से स्त्री लेता है और उस स्त्री को वह चर्खे से बदल लेता है। फिर बैठ कर चरखा चलाता है, कहता जाता है 'चल मेरे चरखे चरख चूँ, बहू के बदले आया तू'। यह कहानी 'क्रम सम्बद्ध कहानी' है। एक ऐसी ही अन्य 'क्रम सम्बद्ध कहानी' में चूहे का उल्लेख और हुआ है। इसमें कौवे ने चूहे से प्रार्थना की है कि वह रानी के वस्त्र काट डाले क्योंकि रानी राजा से रूठ कर बढ़ई को दण्ड नहीं दिलाती। बढ़ई ठूँठ में से उसका चने का दौल निकाल कर नहीं देता।

बन्दर—जैसे चूहे की 'चरख चूँ' की 'क्रम सम्बन्ध कहानी' है, वैसी ही एक बन्दर की है। बन्दर की कहानी नाई से आरम्भ होती है। वह नाई से हजामत बनवाने बैठता है। नाई उसके सोने का बाल काट देता है, अब तो बन्दर हठ पकड़ गया। सोने का बाल दो या उस्तरा दो। वह उस्तरा देकर पिण्ड छुड़ाता है। वह बन्दर उस्तरे से घसियारे का पछौरा, उससे तेल, उससे गुलगुले, उससे भैंस, उससे औरत, उससे दूकान बदलता है, अन्त में दुकानदार बन जाता है।

एक अन्य कहानी में ऐसा ही विनियम करता हुआ बत्तं, पुर, दही, शूकर के घेंटे को साथ लेता हुआ वह एक दाने के घर जा पहुँचता है। वहाँ दाने का नगड़दादा बनता है। वतं को कौंधनी, पुर को टोपी, घेंटे को जूँ प्रकट करके वह दाने को भयभीत कर देता है। बन्दर अमरफल लाकर भी देने वाला है। इस अमरफल वाली कहानी में तो बन्दर को संयोग-मात्र से ही यह कार्य सौंपा गया है। एक कहानी में बन्दर को लोमड़ी की जैसी चतुराई का रूपक भरने वाला भी बताया गया है। 'हमेंन्देउ' की कहानी में कुठीला में बन्द बाप-बेटे में से बेटा 'हमें न देउगे का? कहता है तो शेर 'हमन्देउ' समझ कर भयभीत भाग खड़ा होता है। बन्दर उसे आश्वासन देकर उसका उपाय करने उसके साथ आता है। उसको पूंछ कुठाले पर जा पड़ती है, बेटा उसे पकड़ कर पिता से कहता है—'काका खैंचे'—बन्दर भड़भड़ा कर भागता है। वह हमेन्देउ का उपाय जानता है 'काका खैंच' का नहीं।

बन्दर भी भारतीय साहित्य और चित्रकला में एक विशिष्ट स्थान रखता है। बानर लोकवार्त्ता में बन्दर हो गया है, और हनुमान, सुग्रीव, बालि आदि प्रसिद्ध बन्दर ही है। बौद्ध साहित्य में बन्दरों का कम आदर नहीं। भगवान बुद्ध ने पूर्व जन्म की कहानियों में से कुछ में उन्होंने अपने बन्दर होने का उल्लेख किया है। ब्रज की साधारण लोक-कहानी में भी बन्दर की नटखट प्रवृत्ति का वर्णन नहीं हुआ मिलता।

शेर—शेर जंगल का राजा और हिंस्र पशु है, उसके भय से पशु थर्राते हैं। पर लोक-कहानी में हमें शेर का ऐसा रूप नहीं मिलता। शेर को गीदड़ और आदमी ने विशेषतः छकाया है। गीदड़ तो सिंह-पछाड़ बनकर उसके घर में ही घुस बैठा। आदमी उसकी खीर खा जाता था और अन्त में उससे भयभीत होकर वह मैदान छोड़कर, परसी थाली छोड़कर भी भाग गया। ऐसी कुछ कहानियों में शेर को खीर खाने वाला बताया गया है। उसके घर में कोठा-कुठाले हैं। खीर ठण्डी करके वह बाजार बूरा लेने जाया करता है। 'शेर' यहाँ केवल नाम का शेर है, यों वह किसी गाँव का रहने वाला किसान लगता है। शेर का भयभीत होना 'टपके' की कहानी में भी मिलता है। बरसात में शेर अपनी रक्षा के लिये एक कुम्हार के घर में घुस गया। वहाँ उसे सुन पड़ा कि इतना शेर का भी डर नहीं जितना

टपके का। दैवयोग से टपके से बचने के लिए कुम्हार शेर को गदहा समझ कर चढ़ बैठा। शेर उसे टपका समझ कर भयभीत होकर भागा। पंचतन्त्र की कहानी में भी गीदड़ ने शेर को कुए में गिराकर मार डाला है। गीदड़ ने युक्ति से शक्ति पर विजय पायी है। पर यहाँ की लोक-कहानी में जितनी युक्तियाँ दुर्बल हुई हैं उनसे अधिक तेज शेरों ने खोया है।

रीछ—रीछ भी जंगल का एक खूंख्वार पशु है। इसे भी उपकार मानने वाला बताया गया है। कई ऐसी कहानियाँ मिलती हैं जिनमें रीछ ने अपने उपकारी नायक की संकट के समय सहायता की है। एक राजा ने अपनी लड़की से रुष्ट होकर उसका विवाह ही रीछ से कर दिया। उसका भाई कौशल से फिर अपनी बहिन को रीछ के यहाँ से छुड़ाकर ला सका है।

मेंढ़क—ये कुछ प्रमुख पशुओं का उल्लेख यहाँ कर दिया गया है। एक मेंढ़क की कहानी भी मिली है। एक बुढ़िया निस्सन्तान तुलसा की पूजा किया करती थी। तुलसा प्रसन्न हुई तो वरदान में बुढ़िया ने एक घर का रखवाला माँगा। बुढ़िया पति-विहीन भी थी। तुलसा ने आशीर्वाद दिया तो उसके हाथ में एक फफोला उठा। फफोला फूटा तो उसमें से एक मेढ़क निकला। मेढ़क कुछ बड़ा होने पर गंगा स्नान को गया। वहाँ उसने अपना मेढ़क का 'खलँगा' (चर्म) उतार दिया, वह एक सुन्दर राजकुमार हो गया। एक सुन्दरी राजकुमारी उस पर मोहित हो गयी। उसने स्वयंवर में मेढ़क का ही वरण किया। एक रात में उसने मेढ़क का खलँगा फाड़ फेंका। अब कुमार मेढ़क न बन सका। वे प्रसन्न अपने घर लौटे। मेढ़क की यह कहानी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अभिप्राय की कहानियाँ अनेकों देशों में प्रचलित हैं।[1]

चिड़िया-चिरौटा—पक्षियों में चिड़िया, चिरौटा, कौआ, पिड़कुलिया (पिंडकी), मोरनी, तोता तो साधारण वर्ग के पक्षी हैं, हंस विशेष वर्ग का। ये ही प्रधानतः हमारी लोक-कहानियों में आते हैं। चिड़िया-चिरौटा ब्रज में 'गोरैया' को करते हैं। ये बहुत ही घरेलू पक्षी हैं। घरों में ही घोंसले रखते हैं, और घरों के अन्न-दाने

[1] देखिये कॉक्स महोदय कृत 'दी माइथालाजी आव दी आर्यननेशन्स' पृष्ठ ६६, १६३, २१५, २७४, ४१२।

पर ये पलते हैं। हरेक घर में यह दृश्य देखने को मिल सकता है कि चिड़िया-चिरौटा दोनों मिलजुल कर घोंसला बनाने में व्यस्त हैं। अंडों से बच्चे निकल आने पर दोनों ही बारी-बारी से चुगा लेकर आते हैं और उत्कंठित बच्चों को खिलाते हैं। चिरैया-चिरौटा के ऐसे जोड़े को देखकर एक सद्गृहस्थी का भाव उत्पन्न हो ही जाता है। किसी-किसी कहानी में चिरैया-चिरौटा भूमिका रूप में आये हैं। इनसे राज दम्पत्ति को शिक्षा दिलायी गयी है। 'चिरैया' की मृत्यु हुई। उसने चिरौटा से कहा कि दूसरी शादी मत करना। मेरे बच्चों को कष्ट पहुँचेगा। ये बातें राजा और रानी ने सुनीं। रानी ने भी राजा से कहा—आप मेरी मृत्यु के उपरान्त दूसरा विवाह न कीजिएगा नहीं तो बच्चे दुखी होंगे। इस शिक्षा के अनन्तर भी राजा ने विवाह किया और कहानी आगे बढ़ती चली गयी, जिसमें विमाता की अकृपा और रोष का वर्णन हुआ।

पिड़ुकिया—चिरैया-चिरौटा की गृहस्थी है। दोनों ने खिचड़ी बनाई। चिरौटा नहाने गया, चिरैया खा-पीकर और हँडिया में छेद करके सो रही। चिरौटा ने यह कांड देखा तो क्रुद्ध होकर उसे कुएँ में डाल दिया। कौए ने उसे निकाला तो चिरैया ने कौए से कहा कि 'आली गीली खाहु, सो सुखइ चौं न खाउ'। कौआ मान गया। चिरैया के परामर्श से जब कौआ अपनी चोंच तेज कर रहा था, घिसघिस कर, चिड़िया उड़ गयी। जहाँ इस कहानी से कुछ स्त्री-चरित्र पर किंचित प्रकाश मिलता है, वहाँ प्राण-रक्षा के लिए चतुराई का उपयोग करने का उपदेश भी अत्यन्त स्पष्ट है। एक चिड़िया का साहस अत्यंत अद्भुत है। उसने अनेकों कष्टों में भी अपने साहस, धैर्य और तत्पर बुद्धि नहीं छोड़ी, फलतः राजा को भी उसके सामने तुच्छ होना पड़ा। यह एक क्रम-सम्बद्ध कहानी है, बच्चों के योग्य अत्यन्त हलके अभिप्रायों से पूर्ण, साथ ही सतुक वाक्यावली के प्रभाव से परिपूर्ण। इस चिड़िया ने कौए के साथ खेती भी की है। कौए ने चतुराई और धोखे से काम लिया। जब तक परिश्रम का काम रहा, कौआ बहाने से टालता रहा। जैसे ही बाँटने का अवसर आया तुरन्त साथ चल दिया, और भुस चिड़िया को दे दिया, अन्न स्वयं ले लिया। शोषण की ऐसी कहानी आज का उर्वर मस्तिष्क भी नहीं गढ़ सका है। पर लोक-कहानी यहीं नहीं रुकती। कौए ने अन्न खा-पीकर समाप्त कर

दिया । जाड़े में ठिठुरता फिरा, उधर चिरैया भुस में घौंसला बना कर आराम से रहने लगी । किसी-किसी कहानी में चिड़िया के स्थान पर पिडुकिया का उल्लेख हुआ है । पिडुकिया भी साधारण पक्षी है, पर यह इतनी घरों में नहीं रहती । घरों से बाहर ही यह अपना घोंसला बनाती है । पिडुकिया (पिंडकी) भी भोली होती है ।

कौआ—पक्षियों में कौआ लोक और साहित्य दोनों में अपना स्थान रखता है । यह घरेलू पक्षी तो नहीं है, पर घरों की ओर आकर्षित अवश्य रहता है । दाना-पानी के लिए यह बहुधा घरों की ओर ही जाता है । इसके एक ही गोलक होती है, जो आँखों के दोनों छिद्रों में यथा आवश्यकता आती-जाती रहती है । एक गोलक के कारण 'काने' और 'कौए' का सम्बन्ध जुड़ जाता है[1] । प्रातःकाल ही यदि कौआ घर में आकर बोले तो यह माना जाता है कि कोई प्रिय व्यक्ति आयेगा । कौए को बड़ा चतुर भी माना जाता है, कौआ अमर है[2] । हमारी ब्रज की कहानियों में से एक में तो कौए को चिड़ियों ने मूर्ख बना दिया है । ऊपर उसका उल्लेख हो चुका है । एक में कौए को चतुर और स्वार्थी तथा शोषक दिखाया गया है । एक में कौए ने साहस और धैर्य से काम लिया है । उसका दौल खूँटे में समा गया, वह अनेकों व्यक्तियों और पशुओं तथा वस्तुओं के पास सहायता-याचना के लिए गया और जब तक काम नहीं हो गया उसने उद्योग नहीं छोड़ा, अन्त में सफल हुआ ।

साहित्य में तुलसी ने 'कागभुसुण्डजी' को बहुत सम्मान दिया है । वे ज्ञानागार हैं । अन्त में यह लिख दिया है 'काग को भाग कहा कहिए हरि हाथ तें लै गयौ माखन रोटी' । काग के सम्बन्ध में अनेकों कविताएँ लिखी गयी हैं ।

मोरनी और हंस—मोरनी और हंस ये कहानी के उस

[1] कौए के काने होने की एक कारण निर्देशक कहानी है । इन्द्र पुत्र जयन्त कौआ बन कर बनवास में सीताजी पर झपटा । सीताजी ने एक तिनका फेंका, वह जयन्त का पीछा करता गया । उसने आंख फोड़ दी । तभी से कौआ काना हो गया ।

[2] अमर होने की कारण निर्देशकवार्त्ता में कहा गया है कि कौए को अमरौती मिल गयी थी । वह अमरौती उसने एक बेल पर बैठ कर खायी । कौआ भी अमर हो गया, और बेल भी अमरबेल होगयी ।

रूप में नायक नहीं हैं जिस रूप में अन्य पक्षी। मोरनी को तो एक कहानी में राजपुत्री का सम्मान मिला है। उसका विवाह एक राज-पुत्र से कर दिया गया है। राजपुत्र ने भी उसे स्वीकार कर लिया है। वह अपनी दुलहिन को किसी को दिखाता नहीं, पर रात्रि में वह सारे कार्य कर देती है जो उसे दिये जाते हैं। वह चौका लगा देती है। वह आवश्यकता पड़ने पर अन्न आदि बीन देती है। यह मोरनी जब अन्त में एक बार अकेली रह जाती है, और पीने का पानी समाप्त हो जाता है तो दुखी होती है, उस समय शिव-पार्वती की कृपा से वह सुन्दरी स्त्री बन जाती है।

हंस-हंसनी का उल्लेख उपकार मानने वाले प्राणियों की भाँति हुआ है। ये अपने उपकारी को अपनी पीठ पर बैठा कर उसके अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देते हैं। हंस का ऐसा रूप हमें नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कहानी में भी मिल जाता है। हंस दूत का कार्य भी करता मिलता है, ब्रज-लोकवार्त्ता में तोता उतना प्रिय नहीं हुआ। साधा-रणतः तोता भी दूत का कार्य करता है। तोता मैना का साथ है। बाद के कहानीकार ने तोता-मैना को पुरुष-स्त्री के चरित्रों के उद्घाटन का माध्यम बनाया है।

इस प्रकार पक्षियों के वृत्त कहानी में आये हैं। यहाँ हमने पक्षियों के सभी वृत्तों को सम्मिलित कर लिया है—वे पक्षी चाहे किसी कहानी में भूमिका के लिये हों, अथवा प्रासङ्गिक हों, अथवा यथार्थ कहानी के विषय हों। पशु-पक्षियों की कहानियों में बहुधा किसी न किसी प्रकार का अभिप्राय और उद्देश्य अवश्य मिलता है। जैसा ऊपर दूसरे अध्याय में बताया जा चुका है, ऐसी भी कहानियाँ होती हैं जो मात्र मनोरञ्जन के लिए ही होती हैं। पक्षियों का विशेष उल्लेख अधिकांशतः क्रमसम्बद्ध कहानियों में हुआ है। क्रम-सम्बद्ध कहानियों पर कुछ विशेष पृथक भी लिखा जायगा। पशु-पक्षियों की ये कहानियाँ स्पष्ट ही दो कोटि के पाठकों के लिए हैं, एक तो बहुत छोटे बालकों के लिए। इन कहानियों में अभिप्रायों का रूप बहुत ही स्थूल है, कहानी बहुत ही विनोदमय रहती है। छन्द-बद्धता, क्रमसम्बद्ध दुहरावट ये इन्हीं कहानियों में विशेष मिलती हैं। शेष कहानियाँ गम्भीर और बड़ी होती हैं।

ब्रज की अन्य कहानियाँ—यहाँ तक साभिप्राय उद्देश्ययुक्त कहानियों का परिचय दिया गया है। इनके अतिरिक्त कहानियाँ अनेक और विविध हैं, यह हम ऊपर निर्देश कर चुके हैं। उन पर पृथक-पृथक विचार करना समुचित नहीं होगा। अतः पहले तो हम उन कहानियों के रूपों पर विचार करेंगे। लोक-कहानियों के रूपों पर विद्वान पहले विचार कर चुके हैं। श्री बर्न महोदया ने लोक-कहानियों पर विशेष परिश्रम करके उनके ऐसे सत्तर (७०) रूप निश्चित किये हैं जो भारोपीय परिवार की कहानियाँ हैं। दूसरे शब्दों में ये रूप भारत में भी मिलते हैं और यूरोप में भी मिलते हैं। इन कहानियों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि ये आर्य-जाति से सम्बन्धित हो सकते हैं और इनका मूल निर्माण उस समय हुआ होगा जब समस्त आर्य परिवार एक स्थान पर रहते होंगे। हम यहाँ उन कहानियों के रूपों का उल्लेख करेंगे जो हमें ब्रज में अपने अनुसन्धान से प्राप्त हो चुके हैं। इसके उपरान्त इन कहानियों के अभिप्रायों पर कुछ विचार कर सकेंगे।

ब्रज की कहानियों के मान्य रूप—

श्री० बर्न महोदया ने ऐसे ७० रूप दिये हैं।[1] ये भारोपीय परिवार के रूप माने जा सकते हैं। ब्रज के इन रूपों में से १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ६, १०, ११, १२, १३, १६, १८, २४, २५, ३२, ३७, ४२, ४३, ४५, ४६, ४७, ४८, ६६, ६६, संख्या के रूप स्पष्टतः मिल जाते हैं। इनमें नाम और स्थान अवश्य ही भारतीय संस्कृति के अनुकूल हैं। यथार्थ में नाम और स्थान लोक कहानीकार के लिए कोई महत्व नहीं रखते। वह 'कोई' से भी काम चला लेता है। किन्तु कहानियों के अभिप्रायों को वह अक्षुण्ण रखने की चेष्टा करता है।

कहानियों में विविध अभिप्राय—

अब हमें ब्रज की कहानियों में प्राप्त विविध अभिप्रायों[2] पर कुछ विचार करना है। ब्रज की कहानियों में हमें निम्नलिखित

[1] देखिये बर्न लिखितः 'हैंडबुक आव फोकलोर'

[2] 'अभिप्राय' से तात्पर्य मोटिफ (Matif) से है।

अभिप्राय तत्व प्रमुख रूप से मिलते हैं—

१—प्राण-प्रवेश—एक शरीर से प्राण छोड़ कर दूसरे में प्रवेश करना। 'प्राण प्रवेश' करना एक विद्या मानी गयी है। इस विद्या को मूलतः जानने वाले नट माने गये हैं। एक नट ने कच्चे सूत की अँड़िया आकाश में फेंकी। उसका सूत सीधा आकाश में दूर तक खड़ा चला गया। नट उस पर चढ़ कर ऊपर गया। वहाँ से उसके हाथ पैर तथा अन्य अङ्ग कट कर गिरे। नटिनी सती हो गयी। नट भी जीवित आकाश से लौट आया। बुलाये जाने पर नटिनी राजा के महलों में से निकली। (आ) राजा ने विद्या सीखी—उसके साथ जाने वाले नौकर या नाई ने भी सीख ली। राजा ने जब परीक्षार्थ अपना शरीर छोड़ कर मृत तोते में प्रवेश किया तभी नौकर ने अपना शरीर छोड़, राजा के शरीर में प्रवेश किमा। यह घटना 'कथा सरित्सागर' में 'योगानन्द' के सम्बन्ध में भी दी हुई है। योगानन्द मृत नन्द के शरीर में प्रवेश कर गया था।

२—प्राणों की अन्यत्र स्थिति—प्राण-प्रवेश में भी शरीर को प्राणों से एक भिन्न वस्तु माना गया है। शरीर से प्राणों की पृथकता की कल्पना पर प्राणों की अन्यत्र स्थिति मानी गयी है। प्राणों की यह पृथक स्थिति दानवों (दानों) में मिलती है। उनके प्राण किसी बगुले में, किसी तोते में रहते हैं। यह बगुला या तोता कहीं किसी जल से घिरे स्थान में साँप-बिच्छुओं से लदे किसी वृक्ष पर टँगा होता है। पिंजड़े पर हाथ लगते ही प्राणाधिकारी व्यक्ति के सिर में दर्द होने लगता है। नायक उसे मार ही डालता है। ढोला में राजा नल ने भौमासुर दाने को इसी प्रकार मारा था। प्राणों की स्थिति की एक कहानी में एक राजकुमार के प्राणों को हार में माना गया है। उसकी विमाता जब हार पहन लेती है, राजकुमार मृत रहता है। उतार के रख देती है, जीवित हो जाता है।

३—विद्या से रूप परिवर्त्तन—प्राण-प्रवेश में तो शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। वह दूसरा

शरीर मृत अवस्था में शव-रूप में पास ही विद्यमान होता है। पर ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनमें शरीर का ही रूप परिवर्तित हो जाता है। साधारण लोक-वार्त्ता और विश्वास में कामरूप और बंगाले के जादू का बहुत उल्लेख होता है। यहाँ ऐसी जदूगरनियाँ मानी गयी हैं जो मनुष्य को तोता, बकरा या मेंढ़ा बना लेती हैं। वे इच्छानुरूप उसे मनुष्य भी बना सकती हैं। तोता, बकरा और मेंढ़ा बनाकर तो बन्धन में रखने की बात होती है। इस प्रकार कितने ही पुरुषों को बन्धन में डाल लेने का उल्लेख ढोला के उस भाग में हुआ है जहाँ नल के पिता राजा प्रथम और मंझा गंगास्नान के लिए जाते हैं। यहाँ फूलसिंह पंजाबी से झगड़ा हो जाता है। वह इन दोनों का रूप बदलकर अपने साथ ले जाता है। किसुना के विवाह के प्रसंग में भी यही है। दो जादूगरनियाँ किसुना और ढोला दोनों पर मुग्ध हो जाती हैं और उन्हें मेंढ़ा बना लेती हैं। आल्हा की प्रसिद्ध लोक-गाथा में विशेषतः 'इन्दल के विवाह' में इस विद्या की चोटों का पूरा उल्लेख है। यह रूप परिवर्त्तन साधारणतः तो यों ही इच्छा पर होता प्रतीत होता है। पर कहानियों में कभी-कभी दो विधियों का विशेष उल्लेख है—एक है गले में रस्सी बाँधना। कथासरित्सागर में भाव शर्मा की कहानी में सोमदा ने भावशर्मा को बनारस (वाराणसी) में गले में रस्सी बाँध कर ही बैल बनाया है। बन्धमोचनिका ने उसी रस्सी को खोल कर उसे पुनः मनुष्य कर लिया है। दूसरी विधि कील ठोकने की है—सिर में कील ठोक देने से पक्षी बन जाने की बात कहानियों में आई है। ब्रज की 'फूलनदेई-कोलनदेई' कहानी में विमाता ने अपनी पत्नी की पुत्री को कील ठोक कर ही चिड़िया बना दिया है। प्रेम-गाथाओं में भी एक गाथा में कील ठोक कर एक बालिका चिड़िया बना दी गयी है। विद्या से स्वयं ही पक्षी बन जाने की कहानी हम 'प्रबन्ध-गीतों' के अध्याय में 'बन्द की कहानी' में भी पढ़ चुके हैं। जादू से पत्थर बन

जाने की बात भी प्रसिद्ध है और लोक-कहानियों में आती है। ब्रज की प्रचलित कहानियों में एक कहानी में कितने ही व्यक्ति एक विशेष स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही पत्थर बन गये हैं, क्योंकि उन्होंने पीछे से सुनाई पड़ने वाली ध्वनियों से आकर्षित होकर पीछे देख लिया है। मन्त्रों के जोर से या आन लगा कर पत्थर बनाने की चर्चा ढोला में उक्त स्थल पर पद्मावी के प्रसङ्ग में हुई है। अभिशाप से पत्थर होने की बात 'यारु होइ तो ऐसो होइ' जैसी कहानी में है। राजकुमार से भेद खोलते-खोलते वजीर-पुत्र पत्थर का होता चला गया। इसी प्रकार 'तमोली की छोरी' उस वृत्तान्त को सुनते-सुनते पत्थर की होती चली गयी। 'गुरु-चेला' कहानी में तो 'जादुई चोटें' हुई; उसमें बैल, घोड़ा, मच्छी, मगर, चील, बाज, हार, नट, अनार का दाना, मुर्ग और बिल्ली बनकर एक ने दूसरे पर अधिकार करने और बचने की युक्ति की है। अन्त में चेले ने गुरु पर विजय पायी और मुर्गा बने गुरू को उसने बिल्ली बन कर समाप्त कर दिया।

रूप-परिवर्तन का साधारण गुण इन कहानियों में सर्पों में मिलता है। वे इच्छा से मनुष्य का रूप धारण कर सकते हैं।

एक कहानी में यह रूप-परिवर्तन किसी विद्या के कारण नहीं हुआ। एक रानी के साथ एक मालिन ने धोखा किया। उसे तो कुए में डाल दिया, स्वयं रानी बन गयी। वह रानी अनार, साग, आम आदि बनी और अन्त में एक बड़े आम में भीतर गुठली की जगह वह स्वयं प्रस्तुत हुई। जो उस आम को लेगया था उसने आम में से निकलने वाली उस सुन्दरी का पालन-पोषण किया। अन्त में राजा ने उसे पहचाना और मालिन को दण्ड दिया।

४—धोखे से स्थान ग्रहण जिस प्रकार ऊपर मालिन की पुत्री ने रानी का स्थान धोखे से ग्रहण कर लिया है, इसी प्रकार स्थान ग्रहण करने की और भी कई कहानियाँ हैं।

मृत-पति से जिस रानी का विवाह हुआ है, वह अपने पति के शव में गड़ी कीलें धीरे-धीरे निकाल रही है, केवल एक दो कीलें रह गयी हैं। तभी उसे बड़ी जोर की नींद आती है, वह दासी को उसका भार सौंप कर सो जाती है। दासी उन कीलों को उखाड़ लेती है, तभी वह राजा जीवित हो उठता है। दासी अपने को रानी बनाती है। भैया दौज की एक कहानी में कीलों के स्थान पर घास उखाड़ने का उल्लेख है। केवल भौंहों की घास रह गयी है, तभी उक्त स्थिति उपस्थित हो जाती है। विमाता द्वारा अपनी पुत्री को सपत्नी-पुत्री के वर के साथ धोखे से भेजने की बात भी ऐसी ही है। इसमें विमाता ने सपत्नी-पुत्री को कील ठोककर चिड़िया बना दिया है। मनुष्यों को भी इस प्रकार बदलने की बात कहानियों में है। इन कहानियों में पहला दूल्हा काना और कुरूप है। कहीं विवाह में इससे अड़चन न हो इसलिए मार्ग में कोई दरिद्र सुन्दर पुरुष मिल जाता है, उसे विवाह में स्थानापन्न वर बन जाने के लिए सन्नद्ध कर लिया जाता है। 'राजा-चन्द' की कहानी में भी इसका उल्लेख है। एक कहानी में एक ब्राह्मण को शिव की कृपा से केवल बारह वर्ष के लिए ही एक बालक मिला है। बालक अपने मामा के साथ बनारस पढ़ने जा रहा है। तब मार्ग में उसे पकड़ कर कुरूप वर के स्थान पर कर दिया जाता है।

५—चीर पर लेख—ऐसी सभी कहानियों में जिनमें कुरूप वर के स्थान में कोई सुन्दर वर आपन्न किया गया है, बहुधा यह उल्लेख रहता है कि उन वरों ने उस सुन्दरी के चीर के एक छोर पर अपनी आँख के काजल से अपना वृत्त लिख दिया है। वह सुन्दरी तब उसी अज्ञात राजकुमार अथवा पुरुष को अपना वास्तविक पति मानती है।

६—संकेत—कहानियों में संकेत का उपयोग रोचक होता है। एक कहानी में रानी ने अपने पति के शरीर में प्रविष्ट नाई का भेद संकेत से ही जाना। राजा का संकेत था कि वह पानी पीते समय उसमें उँगली डालता था। किन्तु

ऐसे संकेत जो पहेली का कार्य करते हैं, वे कई कहानियों में मिलते हैं। ऐसे संकेतों की चर्चा इस अध्याय के 'बुझौअल' वाले अंश में पहले हो चुकी है[1]। ऐसे संकेतों में बहुधा पुष्प का उपयोग होता है। कथासरित्सागर में 'मंत्र स्वामी' के शिष्य देवदत्त को भी सुशर्मा राजा की पुत्री श्री ने ऐसा ही संकेत किया है। उसने फूल दाँतों से तोड़ कर नीचे गिरा दिया। गुरू ने इसका अर्थ यह बताया कि उसने तुम्हें 'पुष्प दन्त' नाम की वाटिका में बुलाया है। ब्रज की कहानियों में भी पुष्प का उपयोग हुआ है।

७—पहेली सुलझाना—पहेली सुलझाने अथवा पहेली बुझाने से कहानियों में कहीं तो प्राण रक्षा का उल्लेख हुआ है, कहीं राज्य-रक्षा हुई है, कहीं अभीप्सित वस्तु अथवा प्रेमिका मिली है। कथासरित्सागर में वररुचि ने ऐसी ही एक पहेली बुझाकर राक्षस को अपना ऐसा मित्र बना लिया कि स्मरण करते ही वह उपस्थित हो जाता है। ब्रज की पहेली संबंधी कहानियों पर ऊपर विचार हो चुका है[2]।

८—छः महीने की आन—स्त्रियाँ कभी छल बल से ऐसे व्यक्तियों के हाथ में पड़ गयी हैं जो उनके पति नहीं। वे उन स्त्रियों से विवाह करने के लिए उत्सुक रहते हैं। ऐसी स्त्रियाँ ऐसे व्यक्ति से छः महीने की अवधि के लिए यह आन कर लेती हैं कि वह उनकी बहिन और वह भाई। इस आन में प्रायः छः महीने ही रह जाते हैं। ढोला में मोतिनी ने नल के समुद्र में गिरा दिये जाने पर और सेठ के पुत्रों द्वारा राजा के यहाँ पहुँचा दिये जाने पर यही आन रखी है।

९—बिछुड़े पति से मिलने के उपाय—बिछुड़े पति से मिलने के उपायों में से सदावर्त्त का उपाय तो बहुत काम में आता है। ऐसी बिछुड़ी रानी स्वयं अपने हाथों से सदावर्त्त बाँटती है, इस आशा में कि उसका पति उदर

[1] देखो इसी पुस्तक का पृष्ठ ४२८।

[2] देखो वही, पृष्ठ ४२८।

पोषणार्थ कभी वहाँ आ ही निकलेगा। ढोला में मोतिनी ने 'नल-पुराण' सुनने का उपाय निकाला है। दुनिया भर में से पंडितों की खोज की जा रही है जो नल-पुराण सुना सके। कहीं रोज चूड़ी मौरने और नई चूड़ी पहनने का संकल्प है। पति के अथवा पति के मित्र मनिहार बन कर आने की सम्भावना है। कहीं पक्षियों को नियमित चुगा देने की विधि है। कोई पति का मित्र पक्षी (हंस आदि) उधर आ ही जाय। तमोली की छोरी ने अपनी पुत्तलिकाएँ बनवा कर खड़ी कर दी हैं। उनसे बात करने वाला पकड़कर उसके सामने ले जाया जाता है।

१०—सत की रक्षा—ऊपर अवधि माँगने का उपाय भी सत की रक्षा का ही एक उपाय है। सत की रक्षा की अद्‌भुत युक्ति कथासरित्सागर की 'उपकोषा' की कहानी में मिलती है। ब्रज में ठाकुर रामप्रसाद की कहानी में उसी का एक ग्रामीण रूपान्तर मिलता है।

११—सत की तोल—कहानियों में पुष्पों को सत की तोल माना गया है। यह पुरुष संसर्ग में आने से पूर्व का 'सत' है। जब तक कुमारी का किसी पुरुष से स्पर्श नहीं होता वह फूलों से तुल जाती है। स्पर्श हो जाने पर वह फूलों से नहीं तुल पाती। यह सत की तोल केवल 'सत' की परीक्षा के लिए ही नहीं है, गुप्त रूप से कोई पुरुष सम्बन्ध कुमारी से हुआ है, इसका भी भेद खोलने वाली है। कथासरित्सागर में सत की परीक्षा के लिए शिवजी ने पति-पत्नी को एक-एक कमल दे दिया है। सत डिगने पर यह कमल मुर्झा जायगा।

१२—आपत्ति सूचना के साधन—जैसे कथासरित्सागर में 'सत' की सूचना कमल से मिलती है। वैसे ही सङ्कट अथवा आपत्ति की सूचना देने की भी कई विधियाँ मिलती हैं। एक कहानी में दूध का कटोरा माँ को दिया गया है, दूध का रक्त हो जाय तो पुत्र सङ्कट में है। मित्रों ने परस्पर फूल दिये हैं। मुर्झाने पर मित्र पर सङ्कट आने की सूचना मिलती है। एक कहानी में आम का पौधा

दिया गया है। पौधा मुर्झा जाय तो समझना होगा कि नायक मर गया।

१३—भावी आपत्ति की सूचना—कई विलक्षण कहानियों में भावी आपत्ति की सूचना और उसके निवारण का उपाय भी दिया गया है। यह सूचना तोतों के द्वारा पक्षियों के जोड़ों के द्वारा हमें ब्रज की एक लोक-कहानी में मिलती है। भैयादूज की कहानी में आगामी संकट की सूचना ग्वारिया ने दी है। एक डेनमार्क की और जर्मनी की कहानी में कौए बताते हैं[१]। एक दूसरी कहानी में अभिशाप के रूप में वृक्ष-स्थित देवताओं की वाणियाँ यह सूचना देती हैं। ब्रज की एक कहानी में यह सूचना घोड़े द्वारा भी दी जाती रही है। दक्षिण की एक कहानी में राम-लक्ष्मण नाम की कहानी है सङ्कट या आपदाओं की सूचना उल्लुओं के जोड़े ने दी है।

१४—भावी सङ्कट—बहुधा ये भावी सङ्कट तीन अथवा चार होते हैं।

ब्रज की कहानियों में ये सङ्कट हैं—

१. वृक्ष या उसकी शाखा टूट कर गिरना।
२. द्वार का गिरना।
३. सर्प का काटना।

ढोला में द्वार के गिरने का कारण भी कल्पित कर लिया गया है। नल ने कजरी बन के दाने को मार कर द्वार पर चिनवा दिया था। उसी दाने का संकल्प था कि ढोला जब गौने को आयेगा तो उस पर गिरेगा। अन्य कहानियों में इसका अथवा अन्य किसी का कारण नहीं दिया हुआ है। कथासरित्सागर वाली कहानी में दिये संकट ये हैं:—१—हार, यदि राजा उसे पहन लेगा तो वह गला घोंट कर मार डालेगा। २—आम्र-वृक्ष—इसका फल खाने से मर जायगा, ३—विवाहार्थ जिस मकान में प्रवेश करेगा वह गिर कर मार देगा, ४—अपने शयनागार में जाकर वह सौ बार

[१] कथासरित्सागर पृष्ठ २५।

छींकेगा और यदि कोई प्रत्येक बार यह नहीं कह देगा 'ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे'[1] तो वह मर जायगा। ब्रज की भैयादूज की कहानी में उक्त संकटों के साथ बारात के घर पहुँचने पर पानी न मिलने का भी संकट है। भैयादूज की कहानी धार्मिक महत्त्व रखती है। उसमें इन संकटों की भविष्यवाणी बहिन ने सुनी है, और बहिन ने ही भाई की रक्षा की है। अन्य कहानियों में यह कार्य साधारणतः मित्र ने किया है। घोड़े द्वारा दी गयी भावी संकटों की सूचना में विषाक्त भोजन और मंत्र-कीलित भस्मक पोशाक है। उस भस्मक पोशाक का वर्णन जर्मनी की 'फेथफुल जोह्न' नाम की कहानी में भी मिलता है।

१५—पशु पक्षियों की अभिभावकता—जिस कहानी में घोड़े ने राजकुमार को भावी आपदाओं की सूचना दी है, उसमें उस घोड़े का रूप अभिभावक जैसा ही हो गया है। माँ उसके विरुद्ध हो ही गयी है, षडयन्त्र उसी का है। पिता माँ के वश में है। घोड़ा ही उसकी रक्षा करता है। एक अन्य कहानी में धोखा देकर सौतों ने एक राजरानी के पुत्र को घूरे पर फेंक दिया है। उसका पालन अबलक कुतिया तथा उसके बाद कट्टर घोड़े ने किया। घोड़ा तो उसका अभिभावक ही बन गया।

१६—खोये-बिछुटों के अभिभावक—कहानियों में ऐसे धर्म-पिता और धर्म-माताओं का बहुधा उल्लेख हुआ है। 'ढोला' में राजा नल की परित्यक्ता माँ को एक सेठ ने अपनी पुत्री माना, और उसी प्रकार पालन-पोषण किया। नल नानाजी के यहाँ ही पला। जगद्देव के पँवारे में राज-पुत्री के ग्रह पिता-माता के लिए घातक होने के कारण उसे फेंक दिया गया। उसका पालन कुम्हार ने किया। किसी-किसी कहानी में धोबी ने पालन किया है। 'देवी'

[1] भारत में आज भी छींक होते ही ये शब्द कहना आवश्यक सा समझा जाता है: 'छींक छत्रपती घटे पाप, बढ़े रती'।

के पुजारी बहुधा कोली या कुम्हार होते हैं। महाभारत में कर्ण का पालन सूत ने किया था।

१७—भाइयों का विश्वासघात—राजा नल की कहानी में मामाओं ने विश्वासघात किया है। मोतिनी को अधिकार में करने की दृष्टि से उन्होंने नल को समुद्र में फेंक दिया है किन्तु यह विश्वासघात सौतेले भाइयों में बहुधा दिखाया गया है। 'न्यौला भइया की कहानी' में भी इसी का एक रूप है। एक दूसरी रोचक कहानी में पिता की आज्ञा से सभी भाई पिता द्वारा चाही हुई वस्तु की खोज में चलते हैं। सबसे छोटा और विमाता का पुत्र ही उसमें सफल होता है, पर वे उससे धोखा देकर छीन लेते हैं। उसके प्राण जैसे-तैसे बचते हैं। उनका भेद तब खुलता है जब प्राप्त वस्तु का भेद वे नहीं जानते। छोटा भाई ही आकर उस रहस्य को प्रकट करता है और भाई दंडित होते हैं।

१८—माता का पुत्र-विरोधी होना—कहानियों में माता को भी पुत्र के विरुद्ध कार्य करने और उसके जीवन को नष्ट करने में व्यस्त दिखाया गया है। एक कहानी में तो माँ अपने छोटे बच्चे को इसलिए मार डालती है कि वह प्रेमी से मिलने में बाधक होता है। एक कहानी में एक दाने के वश में पड़ कर माँ अपने बालक को उन कठिन स्थानों में भेजती है जिनका परामर्श वह दाना देता है, और जहाँ से जीवित आना दाने की दृष्टि में असम्भव है। एक अन्य कहानी में ऐसा ही कार्य राक्षसी-विमाता करती है। एक कहानी में माता केवल इसलिए पुत्र को मार डालना चाहती है कि उसने एक घोड़ा खरीदने में ही सब धन व्यय कर दिया है। उसे भय है कि ऐसे तो बस समस्त राज्य का नाश कर डालेगा।

१९—सङ्कटाकीर्ण कार्य सौंपना—इन लोक कहानियों में बहुधा नायक को सङ्कटों से परिपूर्ण असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य सौंपे जाते हैं। ऐसे कार्य प्रायः ये हैं—शेरनी का दूध लाना, अखैबर की पत्तियाँ या दूध लाना, अमरफल लाना, काले गांड़े (गन्ने) लाना, पुहुप गन्धा के फूल

लाना। स्वर्ग से समाचार लाना—आदि।

२०—दूखती आँखों का बहाना—लोक कहानियों में दूखती आँखों का बहाना बहुत साधारण है। दूती से लाल अथवा मणि हथियाने के लिए वजीर अथवा मित्र को आँख दूखने का बहाना करना पड़ता है। उसकी औषधि मणि है। बदकार माता अपनी दूखती आँखों के लिए शेरनी का दूध और अखैबर का दूध लेने अपने पुत्र को भेजती है। दूखती आँखों की औषधि के लिए ही ऊँट का रक्त माँगती हुई दूती घूमती है और ऊँट के मारे जाने का भेद लगाती है।

इसी प्रकार इन कहानियों में अन्य अभिप्राय ये मिलते हैं:—

२१—जादू की पुड़िया—एक से धूल का तूफान, एक से जङ्गल, एक से आग पैदा होना, एक से पानी ही पानी।

२२—उँगली में अमृत—शिवजी तो यों भी प्राण दे सकते हैं, फिर भी उनकी छोटी उँगली में अमृत की कल्पना है। करवा चौथ की कहानी में छोटी भावज की छोटी उँगली में अमृत है।

२३—खून से लाल बनना—एक-एक बूँद खून नदी में गिरता है और लाल बनता जाता है। एक कहानी में बालक उत्पन्न होने के समय से ही दो लाल प्रति दिन मुख से डालता है।

२४—सिर तथा धड़ अलग—दानों के यहाँ बन्दी राजकुमारी इसी रूप में मिलती है। उसका सिर अलग धड़ अलग। दोनों को मिला देने से वह जीवित हो उठती है।

२५—बाँसुरी से नाच—ऐसी बाँसुरी साधू अथवा जिन्न अथवा प्रेत से प्राप्त होती है जिसके बजाने से सुनने वाले नाच उठें। एक ऐसी बाँसुरी भी मिलती है जिसके बजाने से इन्द्र-सभा और अप्सराओं का नृत्य प्रस्तुत हो जाता है।

२६—आकाश में उड़ने के साधन—लोक कहानियों में आकाश में उड़ने की बातें भी आयी हैं। उड़न खटोला कोई भी बढ़ई या खाती बना लेता है। यह खाती उड़न खटोला न बना कर काठ का उड़ना घोड़ा भी बना सकता है।

किसी-किसी कहानी में तपस्वी से ऐसे खड़ाऊँ मिलते हैं। जिन पर चढ़ कर आकाश मार्ग से उड़ा जा सकता है। उड़ने वाला कालीन भी किसी-किसी कहानी में आया है। हंस-हंसिनी और गरुड़पत्ती का भी इसी निमित्त उल्लेख हुआ है। केवल मन्त्र-शक्ति से भी उड़ने की विद्या का वर्णन कथासरित्सागर की एक कहानी में मिलता है। मुख में गुटका रखकर भी यही कार्य सम्पन्न होता है।

२७—मुँह माँगे भोजन देने वाली कड़ाही, देगची, लड्डू देने वाली थैली, सोना देने वाली थैली।

२८—ऐसा टोपा अथवा वस्त्र जिसे धारण करने से मनुष्य आँखों से ओझल हो जाय। ऐसे गुटके का भी उल्लेख मिलता है।

२९—रस्सी और सोटा—जो आज्ञा मिलने पर मनुष्यों को बाँधे और पीटे

३०—स्त्रियों का हीन व्यक्तियों से प्रेम—लोक-कहानियों में फकीरों से साधुओं से प्रेम की बात बहुधा मिलती है। लुञ्ज पुञ्ज से प्रेम की बात भी कहानियों में है। कोढ़ी भी प्रेम का पात्र बनाया गया है।

३१—कढ़ाह में मनुष्य का पकना—दानवों के यहाँ कढ़ाह में मनुष्यों के पकने की बात तो मिलती ही है, देवी के लिए भी कढ़ाह में मनुष्य स्वयं पकता रहा है। देवी के लिए इस प्रकार कढ़ाह में पकने वाला देवी द्वारा पुनरुज्जीवित कर दिया जाता रहा है।

३२—मनुष्य की बलि—लोक-कहानियों में मनुष्य की बलि का उल्लेख बहुधा मिलता है। यह बलि यथार्थ में कहानी में संकट की पराकाष्ठा से रोमहर्ष उत्पन्न करने के लिए एक साधन है।

३३—हँसने पर फूल—स्त्रियों के हँसने पर फूल और लाल झड़ने का उल्लेख भी कितनी ही कहानियों में है।

३४—मुख से सर्प—मुख से सर्प निकलने की बात भी कई कहानियों में है।

३५—फाँसी से बचने का उपाय—फाँसी अथवा बध से बचाने

की साधारणतः एक युक्ति का विशेष प्रयोग होता है। बकरी अथवा हिरन को मार कर उसके खून में कपड़े रँग कर भेज देना। कभी-कभी ऐसे व्यक्ति की आँखें भी साक्षी में माँगी गयी हैं। हिरन की आँखें ही उनके स्थान पर भेजी गयी हैं।

३६—एक को कुछ दूसरे को कुछ—कहानियों में कभी-कभी दो व्यक्तियों का अन्तर स्पष्ट करने और एक पर भाग्य की कृपा दिखाने के लिये इस उपाय से भी काम लिया गया है। उसी वृक्ष से एक मनुष्य को पके बेर मिलते हैं, दूसरे को कच्चे। एक आले में से एक को पेड़े मिलते हैं, दूसरे को ढेल। एक के पहुँचने पर घर में सोना बरसता है, दूसरे के पहुँचने पर बीछू-साँप बरसते हैं। एक को तालाब में हाथ डालने पर लाल मिलते हैं, दूसरे को सीप घोंघे।

३७—आयु बाँटना—ऐसी कहानी भी हैं, जिनमें पति की आयु कम है, किन्तु उसकी आयु शिव ने उसकी पत्नी की आयु में से काट कर बढ़ा दी है।

३८—शिव-पार्वती—शिव और पार्वती कहानियों में बहुधा रात्रि प्रदक्षिणा को निकलते हैं। वे दुखियों की समस्या को हल करते मिलते हैं। पार्वती हठ करती हैं तो शिवजी को मानना पड़ता है।

३९—दक्षिण दिशा का निषेध।

४०—हाथी द्वारा वर-निर्वाचन।

४१—राजा के मरने पर जो प्रातः सबसे पहला व्यक्ति फाटक पर मिले वही राजा।

ये कुछ प्रधान अभिप्राय यहाँ दे दिये गये हैं। यों तो कहानियों का भण्डार अखण्ड है, उनके अभिप्राय भी अगणित हैं। उन सब पर यहाँ विचार करना आवश्यक भी प्रतीत नहीं होता। न यही सम्भव प्रतीत होता है कि समस्त कहानियों का अध्ययन भी विस्तारपूर्वक यहाँ दिया जा सकता है। फलतः एक कहानी पर यहाँ कुछ विस्तार से लिखा जा रहा है। इसमें आवश्यक महत्वपूर्ण बातों पर विचार हो जायगा। वह कहानी है 'यारु होइ तौ ऐसौ होइ'।[1]

[1] कहानी के लिए देखिये 'ब्रज की लोक-कहानियाँ' पृष्ठ १३१।

पहली दृष्टि में यह कहानी हमें तीन छोटी मौलिक कहानियों का मिश्रण प्रतीत होता है। एक तो साँप को मारने और रानी को पाने की, दूसरी दूती और मनिहार की, तीसरी तोते की भविष्य-वाणी और बढ़ई के कुमार के पत्थर होने की। ग्रामीण कथाकार अपने कौशल से विविध कहानियों को एक में मिलाकर नई गढ़ लेता है। पर आश्चर्य होता है बंगाल की एक कहानी को देख कर जो थोड़े से अन्तर के साथ बिल्कुल इस कहानी से मिलती-जुलती है। बंगाली कहानी में राजकुमार और मन्त्रीकुमार की मैत्री का वर्णन है। वे यात्रा को निकले और तालाब के किनारे डेरा डाला। उस कहानी में प्यास लगने, उस तालाब पर पहुँचने, और रानी का चित्र देखने तथा बढ़ई-पुत्र का मनिहार बनकर खोजने निकल जाने का उल्लेख नहीं। उसमें तो राजकुमार और मन्त्रीकुमार रात हो जाने पर तालाब के किनारे वृक्ष पर ठहरते हैं तभी उन्हें मणिधर सर्प पानी में से निकलता दीखता है। मन्त्रीकुमार उसी मणि पर गोबर डालकर उसे ढक देता है। साँप आकर फन मार-मार कर मर जाता है। ढाल की कल्पना इस कहानी में नहीं। मणि लेकर तालाब में जाते हैं तो रानी मिलती है और विवाह हो जाता है। मन्त्रीकुमार नगर को लौट जाता है कि वह वहाँ से राजकुमारी और राजकुमार को धूमधाम से राजधानी में ले जाय। रानी अकेली तालाब के बाहर आती है तो एक दूसरे राजकुमार की नजर उस पर पड़ जाती है। वह प्रेम में विक्षिप्त हो जाता है। एक बुढ़िया दूती सम्पूर्ण रहस्य जानती है। वह राजा से कई शर्तें कराके तालाब के किनारे जाती है। वहाँ रानी को एक दिन तालाब के किनारे बाहर देखकर उसके पास चली जाती है और स्नान कराने के बहाने मणि को अपने कब्जे में कर लेती है। तब रानी को पकड़ कर नगर में ले जाती है। राजकुमार उसे देखते ही ठीक हो जाता है। विवाह एक साल के लिए स्थगित किया जाता है। तब मन्त्रीकुमार लौटता है। उसे पता चलता है कि रानी का अपहरण हो गया। वह उस राजा के नगर में जाता है जहाँ रानी गई है और जिसके विवाह का आयोजन हो रहा है। वह उस वृद्धा दूती का पुत्र बन जाता है। वृद्धा लाड़ में उसे वह मणि दे देती है और नई रानी के पास भी ले जाती है। तब रात में वह मन्त्रीपुत्र रानी को भगा लाता है। राजकुमार से मिलते हैं और तीनों पैदल ही अपने नगर को

चल देते हैं। रास्ते में एक पेड़ के नीचे विहंग और विहंगिनी की बातें मन्त्रीकुमार सुन लेता है। बंगाली कहानी में वृक्ष के स्थान पर हाथी है। राजकुमार हाथी पर चढ़ेगा तो मर जावेगा। दूसरे दरवाजा है पर बंगाली कहानी में दरवाजा तुड़वाया जाता है, तब वह भीतर प्रवेश करता है। तीसरा घातक-स्थल भोजन में पकी मछली का सिर है जिसे मन्त्री राजकुमार की थाली में से फेंक देता है। तब चौथा सर्प का है।

ब्रज की कहानी में बढ़ई पुत्र सर्प को मार कर सो जाता है, पर बंगाली कहानी में मंत्री कुमार देखता है कि सांप के मारने पर खून की एक बूंद रानी की छाती पर गिर पड़ी है। वह आँख में पट्टी बाँधकर उस खून को चाटने लगता है तभी पकड़ा जाता है और उसे सारी कथा कहनी पड़ती है। जिससे वह पत्थर का हो जाता है। हाल के बच्चे का खून मलने से (ब्रज की कहानी में छः महिने के पुत्र का उल्लेख है) वह मंत्रीपुत्र पुनरुज्जीवित हो उठता है। बंगाली कहानी तब आगे बढ़ती हैं, ब्रज की कहानी यहीं रुक जाती है। मंत्रीपुत्र इस मृतक पुत्र को लेकर अपनी स्त्री के पास जाता है। वह काली की उपासिका है। काली उस बालक को जिन्दा कर देती है[1]।

इस बँगला कहानी से यह सिद्ध होता है कि ब्रज की कहानी ब्रज के कथाकार ने विविध कहानियों को जोड़ कर नहीं बनाई, वरन् वह इसी मिश्रित रूप में और स्थानों पर भी प्रचलित है। फिर भी यह मानना होगा कि यह कहानी तीन विविध ऐतिहासिक मानवीय समाज के अलग अलग विश्वासों के आधार पर बनी है। साँप, मणि और जलपरी की कहानी जिस मानवीय वर्ग ने पैदा की है वह तोते की भविष्यवाणी वाली कहानी से पूर्व की और भिन्न है।[2]

[1] देखिये: फॉक टेल्स ऑफ बेंगाल, रेवरेंड लालबिहारी दे की में 'फकीरचन्द' शीर्षक कहानी।

[2] 'साँप' अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य के प्रकृति-धर्म से सम्बन्ध रखते आए हैं। यूनान में तो ये साधारणतः आत्मा के वाहक माने जाते थे मोहन-जोदड़ों में भी कितनी ही सर्पाकृतियां मिली हैं। निम्न-हिमालय में आज भी सर्पों की पूजा होती है। वेदों में सर्प को अहि और वृत्र कहा गया है। यह देवताओं का शत्रु था। यूनानी पुराणकारों ने सर्प को टाईफून नाम दिया

तोते की अथवा विहग और विहंगिनी की कहानी तो बौद्ध-जातकों के समय की हो सकती है, जब पशु पक्षियों में भी कल्याण कामी आत्माओं के शरीर लेने का विश्वास प्रबल हो उठा था। यह भावना विशेषतः भारतीय हैं। गौरांगनाथ बनर्जी ने बताया है कि "भारत अवतार का घर है और इसीलिए भारतीयों के लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि वे पशुओं को भी मनुष्य की भाँति व्यापार करते चित्रित करें.......।"

किसी शाप से पत्थर होने की बात तो बाल्मिकि रामायण के समय से भी पुरानी विदित होती है। वहाँ साहित्यकार बाल्मिकि ने बालक राम की चरण रज से पाषाणी अहिल्या के पुनरुज्जीवित होने की बात कही है पर रक्त के लेपन से पुनरुज्जीवित कराने में आदिम मानवीय काल के प्राण-पदार्थ के विश्वास को यह कहानी आज तक सुरक्षित किए हुए है। एक के रक्त से दूसरे में प्राण आ जाते हैं, अथवा बन्ध्या उर्वरा हो जाती है यह आदिम मानव के विश्वासों की चीज है जो भारत के आदिवासियों में आज तक प्रथा के रूप में है। बच्चे के रक्त से स्नान कराने पर बढ़ई-पुत्र अथवा मन्त्री-पुत्र जीवित हो उठा बच्चे का प्राण-पदार्थ मन्त्री में प्रवेश कर गया। इस प्रकार कहानी का यह अंश कभी अत्यन्त प्राचीन काल में निर्मित हुआ होगा।

बंगाली कहानी में 'काली' की कृपा से बालक में प्राण आना बहुत बाद का अंश माना जायगा, यद्यपि सिद्धान्त वही आदिम प्राण-पदार्थ का वहाँ भी है। काली देवी भी उत्पादिका शक्ति से सम्बन्धित है।

किन्तु यथार्थ में यह कहानी बहुत पुरानी है। कुछ का तो

है। मिश्र में सर्प माबू, अपौप, नाक आदि नामों से विदित था। ड्रैगन पैरों वाला साँप है, यह जाड़ों में तालाब में रहता है। बाइबिल की ओल्ड टेस्टामेण्ट का तनिन भी पानी में रहता था। शैतान की रूप-कल्पना भी सांप के रूप में है। साँप का पानी में रहना और देवताओं से उसकी शत्रुता यह प्राचीन काल से मान्यता रही है। इस साँप-पूजा का सम्बन्ध उत्पादक धर्म-विधियों से रहा है।

देखिये बनर्जी की "हैलेनिज्म इन एनशिएण्ट इण्डिया", द्वितीय संस्करण पृ० ३२७।

कहना है कि यह कहानी भारतीय और यूरोपीय आर्यों के एक दूसरे से पृथक होने से पहले की है, और इसके विविध तत्वों ने कितने ही अलग अलग कहानियों के वर्गों को जन्म दिया है।

रेवरेण्ड सर जी० डबल्यू० कॉक्स ने 'दी माइथालॉजी आव दी एर्यन नेशन्स' में यह कहा है कि सम्भवतः जर्मन अवदान "फैथफुल जौह" और दक्षिण भारत की कहानी राम और लक्ष्मण, जिनके नाम पुराण गाथा के राम लक्ष्मण की प्रतिच्छाया हैं, इन दो कहानियों से बढ़कर अन्यत्र कहीं इतना विश्वासोत्पादक प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए नहीं मिल सकता कि आर्य लोग जब एक ही जाति की भाँति रहते थे, उस समय तक ही उनकी लोक-वार्त्ता किस सीमा तक विकसित हो चुकी थी। इन दोनों अवदानों की तुलना से सिद्ध होता है कि हिन्दू और जर्मन पृथक होकर गंगा और सिंध के प्रदेश तथा राइन और एल्ब से सिंचित प्रदेश में जाकर बसे उससे पूर्व ही इस कहानी का यह ढाचा अवश्य निर्मित हो चुका होगा।

जर्मन कहानी की रूपरेखा देखने से ब्रज की कहानी में तालाब के पास चित्र के रहस्य का भी यह पता चल जाता है कि कहानी में चित्र का इस रूप में उपयोग ब्रज की ही विशेषता नहीं है, यह चित्र का प्रदर्शन अत्यन्त प्राचीन काल से इसी कहानी से सम्बन्धित है। जर्मन कहानी का संक्षेप यह है। राजकुमार के पिता ने उसके मित्र जौह को आदेश दिया है कि वह राजकुमार को अमुक चित्रशाला में न जाने दे, जो उसी के महलों में है, पर राजकुमार उसमें जाता है और वहाँ उस सुन्दरी का चित्र देखकर एकदम आसक्त हो जाता है। दोनों मित्र उस सुन्दरी की खोज में निकलते हैं। एक जहाज तैयार किया जाता है, जिसमें सौदागरी के विविध सामान सजाये हुए हैं। वह सुन्दरी उस जहाज में सामान खरीदने आती है, तभी जहाज ढील दिया जाता है। सुन्दरी को राजकुमार के साथ रहना पड़ता है।

कॉक्स महोदय लिखते हैं कि इस नाटक का आगामी दृश्य तीन कौओं का वह वार्त्तालाप है जिसे स्वामिभक्त जौह सुन लेता है। ये कौए राजकुमार पर आने वाले तीन संकटों की भविष्यवाणी करते हैं। इन संकटों से रक्षा करने में रक्षा करने वालों के प्राणों पर आ बनेगी। किनारे पर पहुँचने पर एक लोमड़ी के रंग का घोड़ा उसकी ओर झपटेगा। वह उस पर चढ़ेगा तो घोड़ा उसे ले भागेगा औ

उसकी दुलहिन से पृथक कर देगा। घोड़े को मार डालने पर ही कुमार की रक्षा हो सकती है। किन्तु ऐसा करने वाला यदि इसका भेद राजा को बता देगा तो सिर से पैर तक पत्थर का हो जायगा। घोड़े से बच जाने पर भी राजकुमार दुलहिन को नहीं अपना सकेगा क्योंकि एक तश्तरी में एक वैवाहिक कमीज़ रखी मिलेगी। यह कमीज देखने में तो सोने-चाँदी से बुनी होगी पर वस्तुतः गन्धक और शोरे से बनी है और यदि वह इसे पहन लेगा तो उसकी हड्डी-चर्बी तक जल कर भस्म हो जायगी। दस्ताने पहन कर जो व्यक्ति इस कमीज को उठा कर आग में फेंक देगा वह राजकुमार को बचा तो लेगा, पर भेद बता देने पर स्वयं घुटने से हृदय तक पत्थर का हो जायगा। अब भी राजकुमार को सुरक्षित न समझना होगा......क्योंकि विवाहोपरान्त नृत्य में रानी अनायास ही पीली पड़ जायगी और मृतवत गिर पड़ेगी। यदि कोई उसके सीधे स्तन में से खून की तीन बूँदें निकाल लेगा तो वह न मरेगी। किन्तु जो इसे जानेगा और इसे बता देगा वह पत्थर का हो जायगा। कौआ की बताई सभी बातें ठीक उतरीं। स्तन के रक्त निकालने के कार्य से राजकुमार भ्रम में पड़ गया और उसे कैदखाने भेजने की आज्ञा दे दी। फाँसी पर चढ़ते समय वह अपने अभिप्राय का अर्थ बतलाता है किन्तु स्वयं पत्थर का हो जाता है। राजकुमार शोकाकुल हो उस मूर्ति को अपनी शैया के पास रख लेता है। वर्षों बीत गये। राजा के दो जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए। राजकुमार दुखी होकर चाहता है कि उसका मित्र किसी प्रकार पुनरुज्जीवित हो उठे, तो मूर्ति कहती है कि यदि जुड़वाँ बच्चों का सिर काट कर रक्त उस पर छिड़क दिया जाय तो वह जी उठेगा। इसी विधि से वह जीवित हो उठता है, वह जब दोनों बच्चों का सिर धड़ से लगा देता है, वे जीवित हो जाते हैं।

इस लेखक ने इस जर्मन कहानी से जिस भारतीय कहानी की तुलना की है वह ब्रज अथवा बङ्गाल से नहीं मिली, वह दक्षिण की कहानी है और राम-लक्ष्मण की कहानी कही जाती है। इसमें राम ने स्वप्न में वह सुन्दरी देखी है और उस पर विमोहित हो गये हैं। वे अपने मित्र लक्ष्मण को इसकी सूचना देते हैं। लक्ष्मण राम को बताते हैं कि वह सुन्दरी बहुत दूर एक काँच के महल में रहती है। इस महल के चारों ओर एक बड़ी नदी बहती है। उसके चारों ओर फूलों का

बाग है। बाग के चारों ओर पेड़ों के चार घने कुञ्ज हैं। कुमारी चौबीस वर्ष की है। वह उसी से विवाह करेगी जो नदी को फलाँग कर उससे शीश-महल में मिलेगा। राम उसे प्राप्त कर लेते हैं, बहुत दिन बीतने पर जब उन्हें घर की याद सताती है, वे लौटते हैं। मार्ग में लक्ष्मण दो उल्लुओं की बातें सुनकर यह जान लेते हैं कि राम और उनकी पत्नी पर तीन सङ्कट आने वाले हैं।

१—एक बड़ के पेड़ की पुरानी शाखा टूट कर गिरेगी जिससे लक्ष्मण उन्हें खींच कर बचा लेगा।

२—दूसरा संकट है मकान की महराब के गिरने से।

३—तीसरा सङ्कट सर्प के कारण है। सर्प को लक्ष्मण अपनी तलवार से मार डालेगा, किन्तु साँप के खून की एक बूँद उस सुन्दरी के मस्तक पर जा पड़ेगी। मित्र उसे हाथ से साफ नहीं करेगा, वरन् एक कपड़े से अपना मुँह ढक कर जीभ से चाट कर साफ करेगा, इस पर राजा क्रुद्ध होकर उसकी कटु भर्त्सना करेंगे, जिससे वह पत्थर का हो जायगा। उल्लुओं ने यह भी प्रकट कर दिया है कि इस अवस्था में वह आठ वर्ष तक रहेगा, तब राजा रानी का बालक खेलते-खेलते इस मूर्ति को पकड़ लेगा, उसके स्पर्श से वजीर फिर जी उठेगा। ऐसा ही होता है। लक्ष्मण जब सर्प को आता देखते हैं तो वे सारा वृतान्त लिख कर राजा की शय्या पर रख देते हैं और स्वयं होनहार के लिए तत्पर हो जाते हैं।

इन सब कहानियों के देखने से विदित होता है कि ब्रज की कहानी के अतिरिक्त सभी कहानियाँ सुखान्त हैं, बंगाली कहानी में बालक काली की कृपा से जीवित होता है, जर्मनी कहानी में (फेथफुल जोन) पुनरुज्जीवित होकर बालकों के कटे सिरों को उनके धड़ पर रख देता है, और वे जीवित हो उठते हैं। दाक्षिण वाली कहानी में केवल 'स्पर्श' को साधन बनाया गया है। उस कहानीकार ने बालकों को मारकर उनके रक्त के स्पर्श को बचा दिया है। कहानी की दृष्टि से ब्रज की कहानी अधूरी ही प्रतीत होती है, क्योंकि प्रत्येक कहानी में बालक पात्र के साथ 'न्याय' किया गया है, पर ब्रज वाली कहानी में बालक के मार डालने का तो उल्लेख है, उसे पुनरुज्जीवित कराने का नहीं।

कहानियों के इस विवेचन के उपरान्त अब कुछ ऐसे चुटकुलों

पर विचार करना समीचीन होगा जिनमें जाति-स्वभाव का चित्रण मिलता है।

चुटकुले जाति सम्बन्धी—इन कहानियों के अतिरिक्त विविध जातियों से सम्बन्ध रखने वाली कितनी ही कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ साधारणतः चुटकुलों के स्वभाव की हैं। इन कहानियों, में ब्राह्मण, बनियाँ, ठाकुर जाट, कोली, नाई, सुनार, कुम्हार, माली, धोबी, गड़रिया, बहेलिया, बढ़ई, गूजर का वर्णन है।

ब्राह्मण—साधारणतः ब्राह्मणों का आदरपूर्वक ही उल्लेख हुआ है। निपट गँवार ब्राह्मणों को भी राजा के यहाँ से कुछ न कुछ मिलता है। उनकी उलटी-सीधी साधारण बातों का भी गंभीर अर्थ करके राजा के मन्त्री ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बनाये रखते हैं। ब्राह्मण को सुख पहुँचने के लिए राजा स्वयं ब्राह्मण का शनिश्चर अपने ऊपर लेने को तय्यार है। ब्राह्मण में दया और ममता भी दिखायी गयी है। जाति-च्युत हो जाने का भय रहते हुए भी वह मार्ग में पड़े शिशु को उठा ही ले जाता है। एक कहानी में ब्राह्मण को पशुओं को चराने वाला भी बताया है। इसमें गड़रिया के स्थान पर ब्राह्मण नाम आ गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार एक ब्राह्मण को लकड़ी काटकर बेचने का कार्य करते हुए भी बताया गया है। ऐसे उल्लेख साधारणतः ब्राह्मण की अत्यन्त दरिद्रता दिखाने के लिए ही हुए हैं। ब्राह्मण को जानने वाला भी कहानियों में प्रकट किया गया है। एक कहानी में मिश्र जी को गपोड़ेबाज बताया गया है। पर ऐसे उल्लेख उनके स्वभाव विशेष पर प्रकाश नहीं डालते। कहानी के लिए किसी वर्ग का कोई पात्र होना चाहिए; कहानीकार ने अनायास ही ब्राह्मण या मिश्र का नाम ले दिया है।

बनियाँ—कहानियों में बनियाँ धनी, लोभी, कंजूस और डरपोक दिखाया गया है। वह दुकानदार अथवा साहूकार व्यवसायी के रूप में आया है। डरपोक होने के कारण उसे ठाकुर ने खूब मूँड़ा है। एक ठाकुर तीन चार मनुष्यों के साथ रात को बनियाँ की दुकान पर रहा। दुकान से खूब भोजन किये, पर पसे न थे। प्रातः उन्होंने बीमारी का बहाना दिखाया। बनियाँ ने भयभीत होकर उन्हें उलटे और रुपये दिये। इसी प्रकार उस बनिये की कहानी है जिसने एक

वृक्ष पर से उतरते उतरते सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने के संकल्प से एक ही ब्राह्मण को नौता देने का संकल्प रखा। ब्राह्मण भी कम से कम खाने वाला खोजा। पर वह बहुत खाने वाला था। उसने भी बनिये को ठगने के लिए घर जाकर अपनी मरणासन्न स्थिति बनाली। यहाँ भी बनिये को भय से बहुत से रुपये और देने पड़े। भेड़ों से संगठित लड़ाई की कहानी में तो बनियों की कायरता कार्टून की भाँति हास्यास्पद बन कर उभरी है।

ठाकुर—ठाकुर के जो चित्र कहानियों में आये हैं, वे उसकी दरिद्रावस्था तो प्रकट करते हैं, साथ ही उसे चतुर भी बताते हैं। उसकी चतुराई ठगई तक पहुँचती है। एक ठाकुर को नादेहन्द समझकर जब बनिये ने कुछ देना-लेना बन्द कर दिया तो ठाकुर उसकी बनैनी के मरने पर उसके साथ सत्ता होने चला। बनियाँ के लड़कों ने माँ की बदनामी के भय से उसे रुपये देकर सत्ता होने से विरत किया। ठाकुर की माँ की मृत्यु पर ऐसा ही बदला लेने का अभिनय जब बनियाँ करने लगा, तो ठाकुर ने कहा ठीक है। तुम जरूर सत्ता हो। अपना कौल पूरा करो, और वे उसे चिता पर बिठाने चले। वहाँ भी बनियाँ के प्राणों की रक्षा कुछ ले देकर ही हुई। ऊपर बनियाँ को ठगने की एक और कहानी का उल्लेख अभी हो ही चुका है। बिचारे बनिये को ठाकुर के जाल से निकलने के लिए रुपये ही देते बने। ठाकुर में तत्पर बुद्धि भी मिलती है। जब ठाकुर रात को बनिये की दूकान में घुस गया और नाई ने उसे ऊपर नहीं निकाला तो 'खैंचि' का अभिनय करके उसने 'खैंचि' को निकालने वाले की तो दुर्दशा करायी स्वयं बच निकला। जाट से भी ठाकुर चतुर दिखाया गया है। ठाकुर जाट के यहाँ जाकर तो खूब सत्कार पाता था। जब जाट उसी के निमन्त्रण पर उसके यहाँ पहुँचा तो उसने ऐसी चाल चलाई कि बिचारा अपने प्राण लेकर भागा, और उलटा ठाकुर का कृतज्ञ हुआ।

जाट—जाट को ठाकुर की तुलना में तो कहानी ने कम चतुर बताया है, पर औरों की अपेक्षा जाट चतुर है। वह चतुराई ठाकुर की चतुराई से फिर भी कम ही बैठती है। दो मियों से जाट ने बात के फेर से सौ-सौ रुपये ऐंठ लिए। मियाँ जाट से रुपये ठग लेना चाहते थे। जाट उन्हें ताड़ गया और उन्हें ठग लिया। एक अन्धा

जाट को भी ठगने को तय्यार हो गया।

"आँधरे की अन्ध धुन्ध जो पड़ जायगी आड़ी।"
"तौ बेटा सुंआ बहू मिलेगी, बर्धन सुंआ गाड़ी।"

जाट में भोलापन दिखाया गया है। कहानियों से साधारणत: ऐसा प्रकट होता है कि साधारणत: तो जाट स्वभाव का भोला है पर जब उसे चेत हो जाय कि उसे मूर्ख बनाया जा रहा है तो वह भी प्रतिघात करने के लिए अपनी चतुराई से काम लेता है।

कोली——कोली को कहानियों में मूर्ख ही दिखलाया गया है। वह एक ठाकुर की रीस करता है, तो मूर्खता पूर्वक। ठाकुर की ससुराल में ठाकुर का जो सत्कार गर्मी के दिनों में हुआ था कोरी वैसा ही अपना सत्कार जाड़ों में कराता है, दुःख पाता है। यह दूसरी बात है कि 'मूर्खता' को भी किसी कहानीकार ने कोरी की प्रतिष्ठा और भाग्योदय का कारण बता दिया हो। सगुनियाँ कोरी की कहानी में यही बात है। उसकी माँ ने कह दिया था कि जहाँ रात हो जाय वहीं ठहर जाना। अपनी ससुराल के पीछे पहुँचते पहुँचते रात होगयी, वह वहीं ठहर गया, एक कदम भी आगे बढ़ना ठीक नहीं समझा। ऐसे मूर्ख के बलवान भाग्य ने ऐसे दैवसंयोग उपस्थित किए कि राजा ने भी उसका सत्कार किया। यह केवल संयोग ही तो था कि उसने कुम्हार का खोया गधा बता दिया, राजा की खोई वस्तु बता दी।

नाई——नाई की कहानियों में छत्तीसा—अत्यन्त चतुर—बताया गया है। ठाकुर को उसने मूर्ख बनाया—स्वयं तो पहले दूकान में घुसकर खूब भोजन कर आया, ठाकुर ने उसे निकाल लिया। किन्तु जब ठाकुर खाने के लिए दुकान में उतरा तो सोने का बहाना कर गया। ठाकुर विचारा जैसे-तैसे चतुराई से बचा। वह भी नाई ही था, जिसे उसका एक जिजमान अनिच्छा से ससुराल को साथ ले गया था। वहाँ नाई ने उनकी दुर्दशा करायी। स्वयं अच्छे भोजन किए उनके लिए मोंठ की दाल का पानी दिलवाया। वह भी नाई ही है जिसने लखटकिया की सुन्दर स्त्रियों को ले लेने का राजा को परामर्श दिया था, और वे उपाय बताते थे जिनसे लखटकिया कठिनाई से अपने प्राण बचा सका। यद्यपि अन्त में अपनी चतुराई का वह स्वयं शिकार बन गया। लखटकिया तो युक्ति से स्वर्ग जाने के लिए लगायी गयी जलती चिता में से बचकर निकल आया पर नाई को तो उस

चिता में जलकर भस्म हो ही जाना पड़ा। अति की चतुराई का यह परिणाम दिखाया गया।

सुनार—सुनार सम्बन्धी जो कहानी है उसमें सुनार को कृतघ्न और धोखेबाज दिखाया गया है। पशु तो कृतज्ञ दिखाये गये हैं, उनकी तुलना में सुनार को कृतघ्न और धोखेबाज प्रकट किया गया है।

कुम्हार—कुम्हार का उल्लेख जहाँ हुआ है, वहाँ वह दयालु और बालकों का पोषण करने वाला मिलता है।

माली—माली राजाओं के यहाँ मालायें देने जाते हैं। इनका राजमहलों में प्रवेश है। राजकुमारियों से सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम माली ही हो सकता है। अतः जहाँ एक राजकुमार को किसी राजकुमारी से प्रेम में आबद्ध करने की आवश्यकता कहानीकार को हुई है वहाँ उसने राजकुमार को वाटिका में पहुँचा दिया है, और माली के यहाँ आश्रय दिलाया है। माली में आश्रय देने की उदारता मिलती है, वह अथवा उसकी स्त्री उस राजकुमार के कार्य में सहयोगी भी हो जाते हैं। माली की अपेक्षा कहानियों में मालिन का विशेष उल्लेख मिलता है।

धोबी—धोबी को भी उदार दिखाया गया है, बालकों का पालन-पोषण करने के लिए वह भी तय्यार है। एक कहानी में यह उल्लेख कुछ विशेषता रखता है कि सङ्कट से बचने के लिए एक स्त्री धोबी के गदहों की लीद साफ करती थी। इसी कहानी में धोबी की लड़की अथवा स्त्री की उँगली में अमृत बताया गया है।

गड़रिया, बहेलिया—इनका कोई विशेष उल्लेख नहीं, अतः जाति-गत अध्ययन की सामग्री इन कहानियों में नहीं मिलती। गड़रिया भेड़ पालने वाला है। बहेलिया या अहेरिया शिकार करके पेट पालने वाला है। दया बहेलिया में भी है। वह तोते की प्राण-रक्षा करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है।

बढ़ई या खाती—बढ़ई या खाती राजकुमारों के मित्र के रूप में मिलता है। यह उड़न खटोला बनाने में अथवा मूर्ति बनाने में चतुर है और मित्र के साथ सदा मित्र-भक्ति का निर्वाह करता है। इसी के कारण नायक कितने ही संकटों से बचता है।

गूजर—गूजर को सिपाही बताया गया है। उसमें नयी सभ्यता की नकल का भाव भी मिलता है।

अन्य चुटकुले—इन जाति-सम्बन्धी चुटकुलों के अतिरिक्त अन्य चुटकुले भी अगणित हैं। ये चुटकुले केवल मनोरञ्जन के लिए नहीं लिखे गये। समय के अनुसार जब जैसी युक्ति और उक्ति की आवश्यकता हुई है तब वैसा ही चुटकुला प्रस्तुत किया गया है। फलतः इनमें विविध अवसरोपयोगी विविध उपदेश मिलते हैं। कहीं ये दृष्टान्त का कार्य करते हैं, कहीं नीति की शिक्षा देते हैं, कहीं मनोरञ्जन करते हैं, कहीं किसी पर फब्ती कसते हैं; कहीं हास्य प्रस्तुत करते हैं।

ब्रज की लोक कहानियों पर इतना विचार पर्याप्त है।

अध्याय पांचवाँ

लघु छंद कहानी

[Drolls and accumulative drolls]

ऊपर के अध्याय में जिन कहानियों का वर्णन किया गया है, वे छोटी-बड़ी सभी प्रकार की हैं। उन कहानियों की शैली में कथा-विधान का एक विस्तृत तारतम्य रहता है। इसमें दुहरावट नहीं रहती। किन्तु कुछ ऐसी भी कहानियाँ होती हैं, जो कहानियाँ तो हैं, पर अपनी कुछ विशेषता रखती हैं। इन कहानियों का वृत्त लघु होता है। उसमें दुहरावट भी होती है। बहुधा कहानी का प्रभावपूर्ण अंश छंद-बद्ध होता है। इन कहानियों में एक सहज सरलता रहती है, जिससे ये बाल-मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने वाली हो जाती हैं। कौतूहल का भाव इतना प्रबल नहीं रहता, जितना एक बात को छोटे प्रभविष्णु शब्दों में कहने का। इन लघु-छंद-कहानियों (Drolls) के दो भेद होते हैं एक साधारण, दूसरा क्रम-सम्वर्द्धित।

साधारण प्रकार में हमें प्राय: आठ लघु-छंद-कहानियाँ मिली हैं।

एक 'चम्पा और नीबरी' की कहानी है। चम्पा की नीबरी से मित्रता थी। चम्पा के पांच भाई थे। वे जब आते थे तो यह कहते थे :

"चम्पा चम्पा खोल किवार
पाँचों सेल खड़े पिछवार"

यह सुनकर चम्पा किवाड़ खोल देती थी। चम्पा पर एक नाहर की दृष्टि पड़ी। वह भी पीछे आकर पाँचों भाइयों की भाँति ही उन सांकेतिक शब्दों को दुहराता। चम्पा किवाड़ खोलने चलती, पर नीबरी उसे वास्तविक बात बताकर रोक देती थी। नाहर पहले उसे तोड़ गया। टूटी नीबरी भी बोली। उसे जला गया। जली हुई राख बोली। उसे कुएँ में डाल गया। कुछ खा गया, तो उसका मल ही बोला। उसे भी कुंए में डाल गया। अब तो चम्पा नाहर के धोखे में फँस ही

गयी। वह उसे लेगया और पेड़पर बैठा दिया। पाँचों भाइयों ने ढूंढ़ कर शेर मार डाला, और बहिन को घर ले आये।

ऐसी ही एक कहानी बकरी की है। उसके चार बालक थे चैंऊँ मैंऊं आले और बाले। जब वह चर कर आती तो यह कहती थी :

चैंऊं खोल टटिया
मैंऊं खोल टटिया
आले खोल टटिया
बाले खोल टटिया

बच्चे टटिया खोल देते। एक सिरकटे अथवा भेड़िये ने यह भेद जान लिया। पीछे आकर टटिया खुलवाली और बच्चों को खा गया। तब बकरी लुहार या बढ़ई के पास जाकर सींग पैने करा आयी, तेली से तेल चुपड़वा आयी—जाकर सरकटे या भेड़िये का पेट फाड़ दिया, बच्चे निकल आये।

कहीं-कहीं इस अन्तिम कहानी के आरम्भ में एक और स्वतन्त्र कहानी जोड़कर दो को एक कहानी बना दी जाती है। वह कहानी गीदड़ की है।

एक पानी के तालाब के किनारे एक मिट्टी के मटूलने को अच्छी प्रकार लीप कर गीदड़ राजा बैठ गये। कानों में मेंढ़की या लीतरे (फटे जूते) पहन लिये। जो पानी पीने आये उसी से यह कहने को विवश करते—

सोने कौ चबूतरा
चन्दन लीपौ है
कान में द्वै कुंण्डल पहिरें
राजा बैठौ है

तब पानी पीने दे। लोमड़ी आयी। लोमड़ी ने पहिले पानी पी लिया, और तब कुछ दूर जाकर कहा :—

माटी कौ मटूलना
गोबर लीपौ है
कानन में द्वै मेंढ़की (लीतरे)
गीदड़ बैठौ है।

जहाँ इस कहानी को ऊपर की कहानी के साथ मिलाया गया है, वहाँ यह गीदड़ स्पष्ट कथन की धृष्टता से रुष्ट होकर गीदड़ बकरी के भेद

को जान कर चारों बच्चों को खा गया ।

'पिल्ला और राजा' की कहानी में गल्प का आनंद है । पिल्ला राजा की बेटी से विवाह करने चला । "राजा की बेटी ब्याहिबे" ।

घ्यौ बूरौ खाइबे—

मार्ग में नदी, बघेर, लिरिया, चींटी मिले । उन सबको पिल्ले ने अपने कान में बैठा लिया । राजा के यहाँ पहुँचे । पिल्ले के प्रस्ताव से रुष्ट होकर राजा ने उसे आग में डलवाया—नदी ने आग बुझा दी, मारने आदमी भेजा उसे बघेर ने मारा । मेंढ़ा भेजा, लिरिया ने मारा । हाथी भेजा चींटी ने मारा । अन्ततः राजा हारा, पिल्ले से राजकुमारी का विवाह हुआ ।

'धंतूरा और चिरैया' की कहानी में धंतूरा ने ज्वार बोई, चिड़िया आती और उसे खा जाती । उसे पकड़ कर ज्वार से बांध दिया । अब घोड़े वाला आया, चिड़िया ने उससे कहा :—

घोड़ा के घुड़मानियाँ रंग चूं चूं चूं
परवत पै मेरौ चीगुला रंग चूं चूं चूं
प्यासे ही मरि जायँगे रंग चूँ चूँ चूँ
मेह परे वहि जायँगे रंग चूँ चूँ चूँ

जब घोड़े वाला सहायता करने के लिए चलता तो धंतूरा कहता

चल चल्ले गमार
मेरी सिगरी ज्वार खाइ लई

इसी प्रकार ऊँट वाले से और हाथी वाले से कहा :

'झिगुली टोपी वाली चिड़िया' की कहानी कुछ लम्बी है । चिड़िया को एक कपास का टैंट मिल गया । उसे लेकर ओटने वाले के पास गयी

ओटा ओटी कर दै, जाकी ओटा ओटी करदै ।

धुनियाँ के पास गयी

"धुना धुनी करदै, जाकी धुना धुनी कर दै ।

कातने वाले के पास गयी

"काता कूती कर] दै, जाकी काताकूती करदै

कोरिया के पास गयी

"बुना बुनी करदै, जाकी बुनाबुनी करदै ।

दरजी के पास गयी
"मेरी झिगुली टोपी सीं दै रे मेरी झिगुली टोपी सीं दै"
रंगरेज के पास गयी
"मेरी लाल टोपी रँग दै रे मेरी लाल टोपी रँग दै
टोपी पहनकर सड़क पर आ बैठी। राजा की सवारी निकली। चिड़िया ने कहा—

जो हम पै सौ राजा हू पै नायँ
जो हम पै सौ राजा हू पै नायँ

राजा ने टोपी छीन ली तो कहा—

हम पै हती तौ राजा ने छीनी
राजा ऐसो कंजूस मेरी टोपी छीन ली

टोपी दे दी गयी, कहा—

राजा ऐसौ डरपोक मेरी टोपी दै दई

चिड़िया हाथी के नीचे डाली गयी तो कहा—

आजु तौ खूबुई देह दबाई
आजु तौ खूबुई देह दबाई

काँटों में फेंक दी गयी तो कहा—

हमारे कुच कुच कान छिदाये

कुँए में फेंक दिया गया तो कहा—

राजा ने खूबुई गंगा न्हवाये

किनारे पर डाल दिया गया। सूख जाने पर उड़ गयी

'पिड़कुलिया और कौए की साझे की खेती' भी कुछ लम्बी है। जिस प्रकार ऊपर की कहानी में कपड़े तैयार करने की विविध अवस्थाओं और क्रियाओं का उल्लेख हुआ है, उसी प्रकार इस कहानी में 'खेती' की प्रत्येक विधि का उल्लेख हुआ है। पिड़कुलिया खेती का प्रत्येक काम करती जाती है, हर बात के लिए वह कौए को साथ लेने आती है, हर बार कौआ उसे यह कहकर टाल देता है :

अदुली गदावता हूँ
पदुली गदावता हूँ
सोने चौंच मढ़ावता हूँ
चिलम तमाखू पीता हूँ
तू चल तौजू मैं आता हूँ

इस प्रकार अकेली पिड्कुलिया ने खेती के सब कार्य कर डाले। बाँट के समय कौआ तुरंत चला गया। अन्न स्वयं लिया, भुस पिड्कुलिया को दिया। पिड्कुलिया को भुस में भी आराम मिला। कौआ अन्न पाकर भी सुखी नहीं हुआ।

ये 'लघु-छंद-कहानियाँ' उन ड्रालों (Drolls) से भिन्न हैं जो बर्न महोदया ने भारोपीय लोक-कहानियों के मूल रूपों में दी हैं। बर्न महोदया ने साधारण ड्रालों में केवल एक यह रूप दिया है :

१—सज्जन की एक लड़की से सगाई हो गई, वह लड़की कोई मूर्खता का काम कर बैठी

२—सज्जन ने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक उसे इतनी ही कुछ और मूर्खाएं नहीं मिल जातीं वह विवाह नहीं करेगा

३—उसे तीन महामूर्खाएं (noodles) मिल गयीं, वह लौटा और विवाह कर लिया।

बर्न महोदया ने क्रम संवृद्ध[१] कहानी के कई रूप दिए हैं। हमें ब्रज में क्रम संबद्ध कहानियाँ मिलती हैं।

एक कहानी 'दौल वाले कौए' की है। कहानी का आरंभ तो सीधी-सादी भाषा में होता है, पर तुरंत ही वह पद्य का रूप धारण कर लेती है। उसके रूप को ठीक-ठीक 'पद्य' भी नहीं कहा जा सकता। पद्य के कितने ही गुण इसमें नहीं मिलेंगे। मात्रा और अक्षरों का संतुलन उतना नपा-तुला नहीं; पद की तुलना में पद भी एक से वजन के नहीं, चरणों की सीमा कुछ है ही नहीं। प्रति पद पर कम से कम

[१] क्रम-संवृद्ध कहानी की परिभाषा श्री शरतचन्द्र मित्र ने यह की है :

"क्रम संवृद्ध लघु-छंद कहानियाँ हैं जिनमें कथावृत्त लघु और संतुलित वाक्यों से आगे बढ़ता है, और जिसके प्रत्येक चरण पर तत्सम्बन्धी पूर्व के सभी चरण दुहराये जाते हैं, यहाँ तक कि अन्त तक पहुँचने पर समस्त चरणों की पुनरावृत्ति हो जाती है।" देखिए इस लेखक का "आन द सिहालीज एक्यूमुलेशन ड्राल्स" [एक्यूमुलेशन ड्राल्स और क्यूमुलेटिव फोक-टेल्स और स्टोरीज़ इन विच द नैरेटिव गोज़ आन बाई मीन्स आव शार्ट एण्ड पिथी सेण्टैन्सेज, एण्ड एट ऐवरी स्टेप आव विच ऑल द प्रीवियस स्टेप्स देअर आव आर रिपीटेड, टिल एट लास्ट दी होल सीरीज आव स्टेप्स देअर आव आर रिकैपीच्युलेटेड"]

एक चरण बढ़ता जाता है। पद्य नहीं तो, 'गीत' उससे भी कम है। संगीतात्मकता उसमें कथा के ढङ्ग की विलक्षणता के कारण बिलकुल ही नहीं मानी जा सकती। हर बार कहानी का पूर्व कथित अंश दुहराया जाता है और तब उसी प्रवाह में उसमें आरंभ में कुछ चरण जोड़ दिये जाते हैं—कुछ क्या, एक ही। इस प्रकार परंपरा बनाती हुई क्रमशः कहानी अपने अन्तिम चरण पर पहुंचती है। वहाँ तक पद्यात्मकता रहती है, फिर उलटे क्रम से लौट पड़ती है। यह सब लौट साधारण भाषा में—गद्य में होती है।

वह कहानी यों है:—

एक कौआ कँऊँ ते एक दौल लै आओ। एक ठूँठ पै बैठिकैं जैसेंई वानें खाइबे कौ मनु करौ, कै बु दौल बाकी चौंच में ते निकरि कें ठूँठ में समाइ गयौ। बानें भौतु कोसिस करी, बड़ौ मूँड़ मारौ, परि बु दौल न निकरयौ। तब बु बढ़ई पै गयौ और कही कै—

बढ़ई बढ़ई, ठूँठ उखारि। ठूँठ चन्ना देइ ना। मैं चब्बूँ का ?

बढ़ई नें कही चल हट, मैं जरूर तेरे एक चना के लें वा ठूँठ ऐ उखारिबे जांगो। कौआ तब राजा पै गऔ, और कही कै—

राजा राजा, बढ़ई डाँड़। बढ़ई ठूँठ उखारै नायँ। मैं चब्बूँ का

राजाऊ नें कौआ भजाय दऔ। तब बु रानी पै गयौ—

रानी रानी, राजा रूठि। राजा बढ़ई डाँड़ै नायँ, बढ़ई ठूँठ उखारै नायँ, ठूँठ चन्ना देइ नायँ। मैं चब्बूँ का ?

रानी कौआ के एक दौल के लैं राजा ते चौं रूठै। तब कौआ ने चूहेन ते फरियाद करी—

मूसे-मूसे कपड़े फाड़। रानी राजा रूठै नायँ, राजा बढ़ई डाँड़ै नायँ, बढ़ई ठूँठ उखारै नायँ, ठूँठ चन्ना देइ नायँ। मैं चब्बूँ का

मूंसेन्नैंऊ रानी के व्या माल-टाल मिलतए, वे चौं कपड़ा फारते। कौआ बिल्ली पै गऔ—

बिल्ली, बिल्ली, मूसे मारि। मूसे कपड़ा फारैं नाँय, रानी राजा रूठैं नाँय, राजा बढ़ई डांड़ै नाँय, बढ़ई ठूँठ उखारै नाँय, ठूँठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूँ का ?

बिल्ली ई ऐ कहा परी, कि चूहेन्नुनें मारती। कौआ ने कुत्ता ते कही—

कुत्ता-कुत्ता बिलई मारि। बिलई मूसे मारै नाँय, मूसे कपड़ा

फारैं नाँय, रानी राजा रूठै नाँय, राजा बढ़ई डांड़ै नाँय, बढ़ई ठूँठ उखारैं नाँय, ठूँट चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बू का ?

कुत्तऊ जि गश्रौ, बु गश्रौ। तब कौश्रा ने लठिया ते कही कि—

लठिश्रा-लठिश्रा, कुत्ता मारि। कुत्ता बिलई मारै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपड़ा फारैं नाँय, रानी राजा रूठैं नाँय, राजा बढ़ई डांड़ै नाँय, बढ़ई ठूँठ उखारै नाँय, ठूँठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूँ का ?

जब लठिश्राऊ टस से मस न भई, तौ बु श्राँच पै गश्रौ—

श्राँच-श्राँच, लठिश्रा बारि। लठिश्रा कुत्ता मारै नाँय, कुत्ता बिलई दौरै नाँय, बिलई मूसे खावै नाँय, मूसे कपड़ा फारैं नाँय, रानी राजा रूठैं नाँय, राजा बढ़ई डांड़ै नाँय, बढ़ई ठूँठ उखारै नाँय, ठूँठ चन्ना देइ नाँय। मैं चब्बूँ का ?

जब श्राँचऊ मठिश्राइ रही, तौ नदी पै गश्रौ—

नदिया-नदिया, श्राँच बुझाइ : श्राँछ लाठी जारै नांय, लाठी कुत्ता मारै नांय, कुत्ता बिलई दौरै नांय, बिलई मूसे खावै नांय, मूसे कपड़ा फारै नांय, रानी राजा रूठै नांय, राजा बढ़ई डांड़ै नांय, बढ़ई ठूँठ उखारै नांय, ठूँठ चन्ना देइ नांय। मैं चब्बू का ?

नदी तौ बही जाइ रही, सो बहती ही गई। कौश्रा की नेंकऊ कान न दई। तब कौश्रा हाथी पै पहौंचौ—

हाथी-हाथी नदिया सोख। नदिया श्राँच बुझावै नांय, श्राँच लाठी जारै नांय, लाठी कुत्ता मारै नांय, कुत्ता बिलई दौरै नांय, बिलई मूसे खावै नांय, मूसे कपड़ा फारैं नांय, रानी राजा रूठैं नांय, राजा बढ़ई डांड़ै नां, बढ़ई ठूँठ उखारै नांय, ठूँट चन्ना देइ नांय। मैं चब्बू का ?

हाथीऊ चुप्प। हारि कैं कौश्रा चैंटी पै श्राश्रौ—

चैंटी-चैंटी हाथी पछारि। हाथी नदी सोखै नांय, नदी श्राँच बुझावै नांय, श्राँच लाठी जारै नांय, लाठी कुत्ता मारै नांय, कुत्ता बिलई दौरै नांय, बिलई मूसे खावै नांय, मूसे कपड़ा कुतरै नांय, रानी राजा रूठैं नांय राजा बढ़ई डाँड़ैं नांय, बढ़ई ठूँठ उखारै नांय, ठूँठ चन्ना देइ नांय। मैं चब्बूँ का ?

चैंटी झट्ट तय्यार है गई। चलि, मेरौ का बिगत्तु ऐ, तेरौ काम बनौ चहिऐं। बु हाथी पै श्राइ कै बोली घुसत्यूँ सूँड़ि में। हाथी नें

कही–नांय, मैं अभाल नदिआऐ सोखतूँ । नदिआ नें कही, मोइ चौं सोखतुऐ, मैं अभाल आंचै बुझाऐं देतऊँ। आंच ने कही, मोइ चौं बुझावतुऐ, मैं लाठीऐ जराऐं डात्तिऊँ । लाठी नें कही, मैंने का बिगारौऐ, कुत्ताऐ मारिबे में मोइ का लगतु ऐ । कुत्ता नें कही, रहैन देउ, मैंने जि बिल्ली खाई । बिल्ली ने कही, मैं जि चली चूहेन्तुऐं खात्यूँ । चूहेन्नें कही, हमें चौं खाति औ, हम रानी के सब कपड़ा कुतरैं डारतें । रानी ने कही, कपड़ा मति कुतरौ, मैं राजा ते रूठी जातिऊँ । राजा नें कही, रूठिबे ते कहा होइगौ, मैं बढ़ईऐ डांड़े देतुऊँ । बढ़ई नें कही, नहीं महाराज, ठूँठ उखारिबे में का लगतु ऐ । बु चलौ, और एक बसूला में ठूँठ के द्वै टूक कदए । दौल निकरि आऔ, कौआ वाइ लै कैं उड़ि गऔ ।

इस कहानी के निर्माण तत्वों पर ध्यान देने से निम्नलिखित बातों का पता चलता है:—

१—नायक इसका कौआ है। उसको विविध उद्योग करने पड़ते हैं ।

२—नायक किसी प्राप्त वस्तु को खो देता है, और उसी को प्राप्त करने के लिए वे उद्योग करने पड़ते हैं ।

३—पाई हुई वस्तु जो खो दी गई है कोई भोजनीय पदार्थ है।

४—उसे पाने के लिए उसके उद्योगों का रूप प्रार्थना करना, या फरियाद करना है ।

५—यह फरियाद वह मनुष्य, पशु तथा पदार्थों तक से करता है । सभी बोलते हैं ।

६—फरियाद में वह एक के बाद एक असफल होता चला जाता है । निराश हताश, फिर भी हारता नहीं, और अंत में एक बहुत क्षुद्र प्राणी उसकी सहायता को तैयार होता है । यहीं से क्रम पलट जाता है। यह स्थल कहानी का चरम है ।

७—फरियाद में भय-प्रतिहिंसा का आश्रय है । एक के मना करने पर वह ऐसे व्यक्ति के पास प्रार्थना करने पहुँचता है, जो, उस पहले मना करनेवाले को किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की क्षमता रखता है ।

८—कहानी सुखांत है। नायक अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ।

कहानी की निर्माण-भूमि गाँव है, क्योंकि कौआ चने की दाल लाता है और खूँटे पर बैठ कर खाता है। हमने यहाँ पाठ में ठूँठ दिया है, ठूँठ गेहूँ, जौ आदि के उस हिस्से को कहते हैं जो खेत कट जाने पर जमीन में चार-पाँच अंगुल ऊपर उठा हुआ रह जाता है। यह पोला होता है, पर इससे गिरे हुए दाल के लिए किसान की खुरपी ही पर्याप्त होती; बढ़ई और उसके बसूले की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए ठूँठ का अर्थ पशुओं को बाँधने का 'खूँटा', जमीन में गाड़ा हुआ डंडा होगा।

कहानीकार ने जितने भी पात्रों का समावेश किया है वे प्रायः सभी अतिज्ञात हैं। बढ़ई, राजा, रानी, चूहे, बिल्ली, कुत्ता, लाठी, आँच, नदी, हाथी और चींटी, में से बढ़ई गाँव का प्रधान कारीगर है। गाँव निवासी के प्रायः सभी व्यवसाय और उद्योगों के साधनों में बढ़ई की अपेक्षा होती है। राजा और रानी, यों तो सबके प्रत्यक्षज्ञान में नहीं आते, पर उनकी सत्ता प्रत्यक्ष से भी अधिक साधारण कहानियों आदि के द्वारा ग्रामवासियों के अनुभव में आती है। चूहे, बिल्ली, कुत्ता, लाठी, आँच और चींटी प्रतिदिन ही सबके देखने में आते हैं। नदी और हाथी ये दो पात्र ऐसे हैं, जो साधारण अनुभव में नहीं आते। इनका समावेश पात्रों की पारस्परिक शत्रुता के भाव से हुआ है, फिर भी ग्रामीण प्रतिभा इस प्रकार की बाल-कहानियों में ऐसे पदार्थों को नहीं लायेगी, जो उसके सुकुमार मति श्रोताओं के अनुभव में न आई हो। इससे यह कहानी अवश्य ही किसी ऐसे प्रदेश में निर्मित हुई है जिसमें पास ही नदी और हाथी हो, किन्तु इतने उल्लेखमात्र से ही निश्चयपूर्वक कहानी के निर्माण स्थल की कल्पना नहीं की जा सकती।

इस कहानी में मनुष्य-पशु सभी का सहायता देने से इन्कार करते जाना और अन्त में चींटी जैसे क्षुद्र जीव की सहायता के लिए तैयार होना, एक ऐसा वृत्त है, जो बुद्ध की जातक कथाओं के आन्तरिक उद्देश्य से मिलता है। उन कथाओं में पशु-पक्षियों का उल्लेख तो होता ही है, उनमें से शेष सबकी अनुदारता चित्रित होती है, और भगवान् बुद्ध जिस रूप में वहाँ होते हैं वह उदार और परोपकारी होता है। यदि यह मान लिया जाय कि किसी जन्म में भगवान बुद्ध चींटी थे, एक अच्छा 'चींटी जातक' बन जाय। हो सकता है, यह

कहानी बौद्ध-जातकों के आदर्श पर ही बनाई गई हो।

पर इस अनुमान से भी कुछ अधिक प्रबल अनुमान यह विदित होता है कि इसी प्रकार की अन्य प्रचलित कहानियों में कहानीकार ने अपनी रुचि के अनुसार संशोधन कर लिया है, अतः कहानी का निर्माण-बीज तो बहुत पुराना है, पर यह रूप अपेक्षाकृत नया है।

इस कहानी की तुलना यदि बंगाल से प्राप्त दूसरी श्रेणी की 'परम्परा-क्रमवृद्ध ग्रामकहानी' से करें तो कई बातें देखने को मिलें। शरच्चन्द्र मित्र ने इस दूसरी श्रेणी की ग्राम-कहानियों के आधार-तत्व ये माने हैं—

१—नायक किसी पशु, पदार्थ अथवा मनुष्य से सहायता की याचना करता है। वह सहायता देने को तत्पर हो जाता है, पर साथ ही एक शर्त लगा देता है, जिसके पूरा हो जाने पर ही वह सहायता देगा।

[हम देखते हैं हमारी कहानी में इस नियम का पहला भाग तो प्रस्तुत है, सहायता-याचना। पर यहाँ शर्त कुछ भी नहीं लगाई जाती, साफ इन्कार है।]

२—इस शर्त को पूरा करने के लिए वह दूसरे पशु, मनुष्य या पदार्थ की शरण जाता है, जहाँ सहायता देने के लिए एक और शर्त लगादी जाती है।

[अपनी कहानी में शर्त को पूरा करने के लिए नहीं, वरन् एक से सहायता न मिलने के कारण दूसरे पर जाता है।]

३—सहायता माँगना और शर्त रखना, उस शर्त के लिए दूसरे से सहायता माँगना, उसकी शर्त के लिए दूसरे के पास जाना⋯यही क्रम चलता चला जाता है।

[क्रम यहाँ भी चलता चला जाता है, पर शर्त के लिए नहीं, सहायता न मिलने के कारण।]

४—अन्त में या तो अपना अभीष्ट पा जाता है, या मर जाता है।

[इस कहानी में अन्त में उसको अपना अभीष्ट मिल गया है]

इस वर्णन से एक तो यह बात स्पष्ट होती है कि शैली में समानता होते हुए कहानियों के स्वभाव में अन्तर है। एक कहानी शर्त के आधार पर आगे बढ़ती है, ब्रज की यह कहानी सहायता देने की

अस्वीकृति पर आगे बढ़ती है। अतः इन दो प्रदेशों की कहानियों में दो भिन्न मनोस्थितियों का पता चलता है। ब्रज की कहानी में सभी पात्रों में अनुदार वृत्ति है। सभी निस्सङ्कोच रूखा दो टूँक जवाब दे देते हैं। इससे भी आगे, जब वे अपने लिए किसी हानि की आशङ्का देखते हैं, खुशामदी की भाँति उसी काम को करने के लिए तुरन्त सन्नद्ध हो जाते हैं।

इस मनोवृत्ति के कारण पर दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि जब बहुत अधिक शासन का आतङ्क कहीं होता है, और प्रति पद पर शक्ति का संभ्रम मनुष्य को घेरे रहता है, तभी ऐसी संकुचित मनोवृत्ति हो सकती है। दरिद्रता की अधिकता से भी संकोच आता है, और बिना लाभ के प्रलोभन या हानि के भय के किसी कार्य के लिए प्रवृत्ति शेष नहीं रह जाती। यथार्थतः शासन-भय और दरिद्रता एक साथ चलते हैं। समस्त गीत असमृद्धि का चित्र उपस्थित करता है। राजा-रानी को जिस रूप में लाया गया है, वह भी विशेष द्रष्टव्य है। यह कहानी उस युग में लिखी गई प्रतीत होती है, जिसमें राजा के न्याय में साधारण जन में विश्वास नहीं रह गया होगा, राजा और रानी को केवल अपनो स्वार्थ-दृष्टि का ही प्रधान मानने वाला दिखाया है। जब बढ़ई ने कौआ की उचित फरियाद नहीं सुनी तो कौआ सीधा ही राजा के पास पहुँचा। राजा ने उसको कोई महत्व ही नहीं दिया।

ऐसी मनोवृत्ति का किञ्चित भी आभास बंगाल की इस दूसरी श्रेणी की तीनों कहानियों में नहीं मिलता। उन तीनों कहानियों की साधारण रूप-रेखा इस प्रकार है—

पहली—

१—तालाब के किनारे एक गौरैया[1] धूप खा रही थी

२—एक भूखे कौए ने उसे खाने का विचार किया तो गौरैया ने कहा कि चोंच गंगाजल में धो आओ तो खा लेना।

३—कौए ने गंगा से जल माँगा। गंगा ने कहा बर्तन लाओ।

४—वह कुम्हार के पास गया। कुम्हार ने कहा हिरन का सींग लाओ, मिट्टी खोद कर बर्तन बना दूँ।

५—वह हिरन के पास गया। उसने खाने को घास माँगी।

[1] गौरैया और कौआ—यह एक अलग ही रूप श्री मित्र महोदय ने माना है। यह 'दी ओल्डवोमन एण्ड दी पिग टाइप' से भिन्न है।

तभी वह सींग देगा।

६—वह घसियारे पर गया, उसने हँसिया माँगा।

७—वह लुहार पर हँसिया लेने गया। उसने आग माँगी जिससे लोहा गरम कर हँसिया बनाये।

८—आग पर गया, वह तैयार हो गई। जब कौआ आग लेकर चला तो जल कर मर गया।

दूसरी—

१—गृहस्थ भाई, आग दो।

२—आग से हँसिया बनाऊँगा, उससे घास काटूँगा।

३—गाय खायेगी, दूध देगी।

४—दूध हिरन पियेगा, तो युद्ध कर सकेगा।

५—तभी उसका सींग टूटेगा, उससे मिट्टी खोदूँगा।

६—मिट्टी का बर्तन बनाऊँगा, उसमें जल लाऊँगा।

७—उससे हाथ धोऊँगा।

८—तब भात चढ़ाऊँगा।

तीसरी—

१—एक बार एक चिड़िया और एक कौआ साथ रहते थे। दोनों ने शर्त बदी कि आँगन में मिर्च और धान में से यदि कौआ मिर्च चिड़िया से जल्दी खाले तो वह चिड़िया की छाती का खून पीले। यदि चिड़िया धान कौआ से जल्दी खाले तो चिड़िया कौए की छाती का खून पीले। कौए ने मिर्च चिड़िया से जल्दी खालीं। चिड़िया ने कहा तुम मेरा खून पीओ, पर अपनी चोंच गंगाजी में धोलो।

२—कौआ गंगाजी पर गया। गंगाजी ने कहा बर्तन लाओ।

३—वह कुम्हार पर गया, कुम्हार ने कहा मिट्टी लाओ।

४—वह भैंस पर गया, अपना सींग दो, मिट्टी खोदूँ। भैंस ने कौए को भगा दिया।

५—वह कुत्ते पर गया कि भैंस को मारो।

६—कुत्ते ने कहा कि दूध लाओ, जिससे मारने लायक बनूँ।

७—वह गाय के पास गया। गाय ने घास माँगी।

८—वह चरागाह पर गया, चरागाह ने कहा हँसिया ले आओ।

६—कौआ लुहार पर गया, लुहार ने कहा आग लाओ तो बनादूँ।

१०—कौआ गृहस्थ के गया, गृहस्थ आग ले आया। गृहस्थ ने पूछा—आग कहाँ दूँ कौए ने पंख फैलाकर कहा कि इस पर रख दो। कौआ जल गया।

इनमें सबसे पहली बात तो यह मिलती है कि केवल तीसरी कहानी में एक भैंस आयी है, जो कौए पर क्रोध करती है, और उसे भगा देती है। इसमें भी कहानी के पूर्वापर प्रसंग से भैंस का क्रोध अनुदारता और संकोच के कारण नहीं माना जा सकता, वरन् वास्तविक सहानुभूति के कारण ही माना जायगा। वह अपना सींग इसलिए दे कि धूर्त्त कौआ एक निरीह पक्षी का खून पीए! फिर भी यही तीसरी कहानी है जिसमें दो चरण ऐसे हैं जिनकी टेकनीक ठीक ब्रजभाषा की उपरोक्त कहानी के जैसी है। भैंस से निराश होने पर वह कुत्ते के पास इसलिए जाता है कि वह भैंस को मार डाले, जिससे वह भैंस का सींग ले सके।

श्री मित्र महोदय ने यह सिद्ध किया है कि पहली और तीसरी कहानी दूसरी से पुरानी है और उसमें मिट्टी खोदने के लिए हिरन के सींग का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि कहानी का जन्म उस युग में हुआ जब कि (१) मनुष्य लोहे का उपयोग आरम्भ ही कर रहे होंगे, और (२) जब पृथ्वी को माँ, प्रत्यक्ष माँ माना जाता होगा, जिसमें लोहे से मिट्टी का खोदना, हृदय को चोट पहुँचाता होगा। अतः ये कहानियाँ पाषाण युग में बनी होंगी।

इसके अतिरिक्त तीसरी कहानी में हृदय चीर कर रक्त पीने की बात भी साधारण कहानी के लिए आवश्यक नहीं। इसमें भी नृ-विज्ञान के इतिहास की संभावना है।

पहली दृष्टि में ब्रज की यह कहानी उपरोक्त बंगाली प्रकार की कहानियों से बनी हुई प्रतीत होती है, जिसमें ब्रज के वैष्णव ने रक्त-पीने के लिये समस्त उद्योग को उचित न समझ कर उसे एक दौल के लिये कर दिया है। पर समस्त कहानी-विधान अवैष्णव है।

पर, बंगाली की तीसरी कहानी में भैंस और कुत्ते का एक विशेष रूप में—ब्रज की कहानी की शैली रूप में उल्लेख यह प्रकट करता है कि ब्रज की कहानी की शैली भी उस समय प्रचलित रही

होगी। इसी शैली का प्रभाव बंगाली कहानी में मिलता है। कारण स्पष्ट है। कुत्ते के द्वारा भैंस को मारने की कल्पना में दुर्बलता है, वह इतनी स्वाभाविक नहीं, जितनी कुत्ते के द्वारा बिल्ली को मारने की कल्पना। अतः स्वाभाविक स्थल से बंगाली कहानी में इस शैली को लिया गया होगा।

बङ्गाली कहानियाँ जितना ग्राम-जीवन का विस्तृत वातावरण देती हैं, उतना ब्रज की कहानी नहीं। ब्रज की कहानी की भूमि तो गाँव है, पर शेष कहानी का घटना-क्रम उतना ग्रामीण तत्वों को लिये हुए नहीं है।

बर्न[1] ने भारोपीय कहानियों के जो विविध प्रकार दिये हैं, उनमें उनहत्तरवाँ प्रकार 'ओल्ड वोमन एण्ड पिग टाइप' है। उसकी रूपरेखा यह है—

(१) एक बुढ़िया के कहने पर भी घेंटा (शूकर-शावक) सीढ़ी चढ़ने को तय्यार नहीं होता। वह कुत्ते, डंडे, आग, पानी, बैल, कसाई, रस्सी, चूहे, बिल्ली से सहायता के लिए अभ्यर्थना करती है।

(२) एक शर्त लगाकर बिल्ली सहायता के लिए सन्नद्ध होती है और सभी को बाध्य कर देती है, यहाँ तक कि अंत में घेंटा (सीढ़ी) पर कूद ही जाती है। यह कहानी भी परंपराक्रमवृद्ध गीति-कहानी है। इससे सिद्ध है कि इस कहानी का प्रयोग बड़ा व्यापक है।

बर्न द्वारा दी गयी कहानी में नायक का कार्य स्त्री को सौंपा गया है। यह कहानी के शेष संविधान से मेल नहीं खाता। जिन जिनके पास वह बुढ़िया गयी है, वे प्रायः सभी पशु तथा जड़ पदार्थ हैं। मनुष्य तो एक कसाई ही है, जैसे ब्रज कहानी में भी एक मनुष्य 'बढ़ई', और दो राजा रानी आये हैं। फलतः बुढ़िया के स्थान पर कोई पक्षी या पशु होना अधिक उचित प्रतीत होता है। बुढ़िया होते हुए भी उसमें इतनी असामर्थ्य नहीं पायी जा सकती कि वह लकड़ी या पानी की भी खुशामद करती फिरे या उन जैसा भी काम स्वयं न कर सके।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थतः क्रम-संबृद्ध

[1] देखिए—The Hand book of Folklore'—Burne.

कहानी के दो प्रकार हैं—इनमें से पहले वर्ग या प्रकार के कथा-तन्तु ये हैं :—

१ नायक सहायता याचना करने व किसी मनुष्य, किसी पशु या पदार्थ के पास जाता है। ये स्पष्ट मना कर देते हैं।

२ वह क्रमशः दूसरों के पास जाता है कि पहले को दण्ड दिया जाय, वह भी मना कर देते हैं।

३ अन्त में कोई दण्ड देने को सन्नद्ध होता है, और तभी, एक के बाद दूसरा सन्नद्ध होते जाते हैं। और नायक का काम पूरा हो जाता है।

इस प्रकार के रूप में श्री मित्र महोदय ने ये कहानियाँ और बढ़ाई हैं।

१—तोता और मुर्गी के बच्चे की कहानी (बिहार से)

२—तुनतुनी पक्षी और नाई की कहानी (पूर्वी बंगाल से)

३—बटेरी की कहानी (उत्तर पश्चिमी सीलोन से)

बिहारी कहानी यह है :—

१—तोते ने छोटी मुर्गी के लिये रानी से कहा। रानी ने मना किया तो वह—

२—सांप के पास गया, रानी को काटे, सांप ने स्वीकार नहीं किया।

३—लाठी के पास गया कि सांप को मारे, उसने भी मना कर दिया।

४—आग के पास गया लाठी को जला दे—उसने भी मना कर दिया।

५—नदी के पास गया, आग को बुझा दे—उसने भी मना कर दिया।

६—समुद्र के पास गया, नदी को सोखले—समुद्र तैयार हो गया तो फिर एक के बाद दूसरा तैयार होता गया।

पूर्व बंगाल की कहानी में तुनतुनी पक्षी याचना के लिए राजा के पास गया है। फिर चूहे के पास कि राजा के पेट की चर्बी में छेद करदे, तब बिल्ली के पास, फिर लाठी के पास, फिर आग के पास, फिर समुद्र के पास, फिर हाथी के पास, अन्त में मच्छर के पास गया कि वह हाथी के डंक मारे। मच्छर तैयार हो गया। फिर सभी तैयार होने लगे।

सिंहली कहानी में एक बटेरी के अंडे एक चट्टान में बन्द हो गये। वह राज (मकान बनाने का काम करने वाले) के पास गयी, गाँव के मुखिया के पास गयी, सूकर-शावक के पास गयी कि मुखिया के धान के खेत खा जाय, वेद्द शिकारी के पास गयी, तिबूल की बेल के

पास गयी कि काँटों से शिकारी को बेध दे, आग के पास गयी, जलपात्र के पास गयी, हाथी के पास गयी, चूहे के पास गयी कि हाथी के कान में घुस जाय, बिल्ली के पास गयी कि पानी को गँदला करदे। बिल्ली तैयार हो गयी, फिर सब तैयार होते गये। इसी के जैसी एक और कहानी में वह राज, शूकर, शिकारी, हाथी, छिपकली (हाथी की सूंड़ में होकर मस्तिष्क में घुस जाय) जंगली मुर्ग, और एक गीदड़ के पास गयी है। गीदड़ तैयार हुआ है, तब क्रम पलटा है।

ब्रज की ऊपर दी हुई कहानी प्रथम श्रेणी की है इस कहानी का रूप भी दक्षिण से उत्तर तक प्रचलित रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह ब्रज की कहानी पूर्वी बंगाल की 'तुनतुनी पक्षी' की कहानी से बहुत मिलती है। बंगाली कहानी में अन्त में मच्छड़ आया है, निश्चय ही हाथी को भयभीत करने का चींटी मच्छड़ से अधिक उपयुक्त साधन है।

दूसरी श्रेणी के रूपों के तन्तुओं का उल्लेख हो चुका है। दूसरी श्रेणी की कहानी में शर्त का प्राधान्य रहता है और बहुधा नायक मर जाता है। यह दूसरी श्रेणी मथुरा में तो प्रायः हमें उद्योग करने पर भी नहीं मिली, पर वह ब्रज में प्रचलित अवश्य है, क्योंकि ब्रज में, मथुरा से अतिरिक्त प्रदेश में, यह अवश्य मिल जाती है, और उसका रूप यह है—

"एक चिड़िया के बच्चे को देखकर कौए का मन चला कि वह उसे खाये। कौए ने चिड़िया से प्रस्ताव रखा। चिड़िया ने कहा—खा लेना, पर मुँह धो आओ!

कौआ कुम्हार के पास गया और उससे कहा—

"कुम्हार! कुम्हार! तुम कुम्हारराज
हम कागराज।
तुम देव घड़ुआ। धोवें मढ़ुआ।
मटकामें चिड़ी कौ चेंटुआ।

कुम्हार ने कहा मिट्टी ले आ।

मिट्टी ने कहा, हिरन का सींग ले आ।

हिरन ने कहा कुत्ते को बुला ला, वह मुझे मार डाले। तब सींग ले जाना।

कुत्ते ने कहा, भूखा हूँ, दूध ला। जिसे पीकर हिरन से लड़ने

योग्य बनूं ।

गाय के पास गया दूध दो
गाय ने कहा, घास ला ।
घास के पास गया दूब दो
दूब ने कहा—खुरपी ले आ, खोद ले जा ।
लुहार के पास गया खुरपी दो ।

लुहार ने कहा अभी बनाये देता हूँ। उसने बनादी। कौआ गरम खुरपी लेकर उड़ा, और जल कर मर गया !

अन्तिम व्यक्ति लुहार है। लुहार से उसने जो कहा है उसमें सम्पूर्ण कथन आ जाता है। वह इस प्रकार है :—

लुहार ! लुहार ! तुम लुहार राज
हम कागराज !
देउ खुरपिया, खोदें दुबकिया ।
चरें गवल्ला, देय दुधिल्ला ।
पियें कुतिल्ला, मारें हिरनल्ला ।
देय सिंगुल्ला, खोदें मटुल्ला ।
बनें घड़ुल्ला, धोवें मढ़ुल्ला ।
मटकामें चिड़ी कौ चैंटुल्ला ।

बंगाल की दूसरी श्रेणी की तीनों कहानियों से इस कहानी का मूल रूप तैयार हो जाता है। इस कहानी में 'गंगाजल' का उल्लेख नहीं। बंगाल की दूसरी कहानी में भी गंगाजल का उल्लेख नहीं। हिरन को मारने के लिए, इसमें कुत्ते के पास पहुँचा गया है। बंगाल की तीसरी कहानी में भैंस को मारने के लिए भी ऐसा किया गया है। बंगाल की तीसरी कहानी में हिरन के स्थान पर भैंस का सींग माँगा है। कौए का समस्त उद्योग चिड़िया के बच्चों को खाने के लिए हुआ है। यही बात बंगाल की पहली कहानी में मिल जाती है। वहाँ चिड़िया के बच्चे के स्थान पर स्वयं चिड़िया है। बंगाल की कहानियों में 'आग लाने या मँगाने' का उल्लेख अवश्य है। ब्रज की कहानी में कौए से आग नहीं मँगायी जाती। वह गर्म खुरपी लेकर चल पड़ा है और जल कर मर गया है।

इस दूसरी श्रेणी की कहानी से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि

एक श्रेणी दूसरी से नितान्त पृथक है। और ब्रज में भी इसके दोनों रूप प्रचलित हैं।

इन लघु कहानियों में मनोरंजन के साथ किसी न किसी वस्तु या व्यवसाय की सभी अवस्थाओं का ज्ञान कराने का उद्देश्य भी निहित मिलता है। ऊपर हमने जो कहानियाँ दी हैं उनमें वस्त्र बनने और खेती करने की विविध क्रियाओं का स्थूल परिचय दे दिया गया है। 'कौए और ढोल' वाली कहानी में विविध पशु और वस्तुओं के स्वभाव और धर्म का ज्ञान हो जाता है। ये कहानियाँ आज भी बालकों के लिए बहुत उपयोगी हो सकती हैं। इनमें बाल मनोवृत्ति के अनुकूल कथावस्तु को उपस्थित किया गया है। स्मरणशक्ति के लिए सुविधार्थ इसमें पद्यबद्ध चरणों का समावेश है। क्रम-संवर्द्धन से और भी स्मरणशक्ति को सहायता मिलती है, और कुछ काल तक एक ही विधि के संतुलित वाक्य प्रभाव को अधिक करते हैं।

छठा अध्याय

लोकोक्ति-साहित्य

पूर्व पीठिका

मौखिक लोक-साहित्य में लोकोक्ति-साहित्य का बहुत महत्व है। अभी तक हमने जिस प्रकार के लोक-साहित्य का अध्ययन किया है, उसमें विस्तार की भावना रहती है, उसमें एक दीर्घ चित्र, एक व्यापक भावना, एक जटिल वृत्त रहता है। लोकोक्ति उस साहित्य से स्वभाव और प्रयोग में भिन्नता रखती है। लोकोक्ति में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं[1]। यह ग्रामीण जनता का नीति-शास्त्र होता है। ये मानवी-ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनसे बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुलिंगी (रेडियो-ऐक्टिव) तत्वों की भाँति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाती रहती हैं। लोकोक्ति साहित्य संसार के नीति-साहित्य (विज़डम लिट-रेचर) का प्रमुख अंग है[2]। सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है[3]। लोकोक्ति के विषय में इस चर्चा से प्रकट होगा कि यहाँ तक लोकोक्ति का संकुचित अर्थ लिया गया है। लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को, दृष्टि में रख कर लोकोक्ति के दो प्रकार माने जा सकते हैं; एक पहेली,

---

[1] लोकवार्ता पत्रक सं० ३ लेखक कृष्णानन्द गुप्त पृष्ठ १

[2] लोकोक्ति-साहित्य का महत्व—लेखक श्री वासुदेवशरण अग्रवाल (मधुकर में प्रकाशित)

[3] राजस्थानी कहावतें—कन्हैयालाल सहल

दूसरा कहावतें। "पहेली" भी लोकोक्ति है। लोक-मानस इसके द्वारा अर्थगौरव की रक्षा करता है, और मनोरंजन प्राप्त करता है। यह बुद्धि-परीक्षा का भी साधन है। यद्यपि पहेलियाँ स्वभाव से कहावतों की प्रवृत्ति से विपरीत प्रणाली पर रची जाती हैं, क्योंकि पहेलियों में एक वस्तु के लिये बहुत से शब्द प्रयोग में आते हैं, भाव से इसका सम्बन्ध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा रहती है, बुद्धि-कौशल पर निर्भर करती है, जब कि कहावत में सूत्र-प्रणाली होती है, भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है, लघु प्रयत्न से विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति रहती है, फिर भी पहेलियाँ भी उतनी ही उक्तियाँ हैं जितनी कहावतें। ब्रज में इन उक्तियों के कुछ रूप और मिलते हैं। वे हैं—अनमिल्ला, भेरि, अचका, औठपाव, खुंसि, गहगड्ड, ओलना। ये पद्यात्मक होते हैं, और निरर्थक और सार्थक दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। निरर्थक इनमें से अनमिल्ला होता है, वस्तुतः अनमिल्ला में अर्थ—अभिधार्थ तो होता है, पर वह अर्थ किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं देता, अतः वह अर्थ जो शब्द के पृथक-पृथक अर्थ से भिन्न संपूर्ण वाक्य से मिलता है, जिससे वाक्य सार्थक होता है, वह अर्थ नहीं होता, किन्तु 'प्रभावार्थ' अवश्य होता है। वह प्रभावार्थ वैलक्षण्य और अनमिल सम्बन्ध से प्रकट किया जाता है। शेष प्रकार सार्थक हैं। इन्हें हम कहावत के अन्तर्गत रखते हैं। इन पर कहावतों पर विचार करते समय ही चर्चा करना समीचीन होगा।

पहेलियाँ

पहेलियों को संस्कृत में ब्रह्मोद्य भी कहा गया है। पहेलियाँ केवल बच्चों के मनोरंजन की वस्तुएँ नहीं, ये समाज-विशेष की मनोज्ञता को प्रकट करती हैं, और उसकी रुचि पर प्रकाश डालती हैं। ये बुद्धि-मापक भी हैं, और मनोरंजन भी हैं। ये सभ्य और असभ्य सभी कोटि के मनुष्यों और जातियों में प्रचलित हैं। भारतवर्ष में तो वैदिक काल से ब्रह्मोद्य का चलन मिलता है। अश्वमेध यज्ञ में तो ब्रह्मोद्य अनुष्ठान का ही एक भाग था। अश्व की वास्तविक बलि से पूर्व होता और ब्राह्मण ब्रह्मोद्य पूछते थे। इन्हें पूछने का केवल इन दो को ही अधिकार था। इस प्रकार पहेलियों का आनुष्ठानिक प्रयोग भारत में ही नहीं संसार के अन्य देशों में भी मिलता है। फ्रेजर महोदय ने बताया है कि पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा,

जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।[१] भारत के मूल निवासियों में से मंडला के गौंड़ और प्रधान तथा बिरहौर जातियों के विवाह के अनुष्ठानों में पहेली बुझाना भी एक आवश्यक बात मानी गई है।[२] ब्रज में पहेलियों का ऐसा आनुष्ठानिक प्रयोग अब नहीं मिलता। अब तो ब्रज पहेलियाँ साधारणतः मनोरञ्जन का माध्यम हैं। अथवा ठाले-बैठे 'बुद्धि-विलास' अथवा 'बुद्धि-परीक्षा' का काम देती हैं। ब्रज से प्राप्त पहेलियों के विषयों को हम साधारणतः सात वर्गों में बाँट सकते हैं; एक खेती सम्बन्धी, इसमें आते हैं—कूआ, फुलसन, पटसन, मक्का की भुटिया, मक्का का पेड़, हल जोतना, चर्स, बर्न, चाक, खुरपा, अटेला, पुर।

दूसरा—भोजन सम्बन्धी : इसमें आते हैं तरबूज, लाल मिर्च, पूआ, कचौड़ी, बड़ी, सिंघाड़ा, खीर, पूरी, घी, मूली, अरहर, गेहूँ, ज्वार का भुट्टा, आम, ज्वार का दाना, टेंटी, कढ़ी, तिल, बेर, खिरनी, अनार, कचरिया, गाजर, जलेबी।

तीसरा—घरेलू वस्तु सम्बन्धी—इसमें आते हैं, दीपक, मूसल, हुक्का, जूती, लाठी, जीरा, कैंची, पान, चक्की, ईंट, अशर्फी, हँसली, पंसेरी, तवा, ढेंकली, कढ़ाही, चर्खा, कठौती, आटा, खाट, सुई, डोरा, चलामनों, परिया, किवाड़, इंडुरी, कागज, जेवरा, छींका, फावड़ा, शंख, दाँतुन, कुर्ता, पाजामा, कुटी, पत्तल, चूल्हे में आग, आग, तराजू, रुपया, रई, चलनी, काजल, मोरी, छप्पर, दीवाल, अँगिया, कलम, महँदी, ताला।

चौथा—प्राणी-सम्बन्धी—इसमें आते हैं जूँ, बर्र, चिरौटा, दीमक, खरगोश, ऊँट, मधुमक्खी, भैंस, हाथी, भौंरा।

पाँचवाँ—प्रकृति-सम्बन्धी—इसमें आते हैं दिन रात, ओस, तारे, चन्दा सूरज, दीमक का घर, ओला, छाँह, जवासा, छेर, ढाक का फूल, काई, बया का घोंसला, करील, आकाश, फरास, चिरमिटी, बीजुरी।

---

[१] देखिये फ्रेजर द्वारा लिखित 'दी गोल्डन बाउ' नवाँ भाग, पृष्ठ १२१

[२] 'मैन इन इण्डिया' का 'ऐन इण्डियन रिडिल बुक' अङ्क—भाग १३ संख्या ४, दिसम्बर १९४३ में बेरियर ऐलविन तथा डबल्यू० जी० आर्चर लिखित, 'नोट आन दी यूज आव रिडिल्स इन इण्डिया' पृ० ३१६।

छठा—अंग-प्रत्यङ्ग सम्बन्धी—इसमें आते हैं : दाढ़ी, नाक, शरीर, जीभ, दाँत, आँख, सींग, कान।

सातवाँ—अन्य इसमें आते हैं : उस्तरा, बन्दूक, चाकू, कढ़ी, आरी, रेल, सड़क, तबला, कुम्हार का अवा, मुशक।

इस विश्लेषण से विदित होता है कि पहेलियाँ उन्हीं विषयों पर हैं, जो ग्रामीण वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। सबसे अधिक विषय घरेलू वस्तुओं से सम्बन्धित हैं। भोजन सम्बन्धी वस्तुओं को भी घरेलू समझा जाय तो पहेलियों के विषयों में से दो तिहाई इसी वर्ग के ठहरते हैं। व्यवसाय सम्बन्धी विषय विशेष नहीं है। खेती के भी कुछ ही गिने-चुने विषय हैं, अन्य व्यवसायों में कुम्हार और कोरी की कुछ वस्तुओं को पहेलियों का विषय बनाया गया है। प्राणियों में भी बहुत कम जीवों का उल्लेख हुआ है। 'जूँ' पर कई पहेलियाँ मिलती हैं। भोजनों में से रोटी पर पहेलियाँ नहीं मिलीं, पशुओं में 'गाय' पर भी पहेलियाँ नहीं हैं।

पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन है। यह ऐसा वर्णन है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा वस्तु-उपमान के रूप में आता है। यह स्वाभाविक ही है कि गाँव की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिए गये हैं। इन उपमानों को हम यहाँ दिये देते हैं:—

१—**घरेलू वस्तुयें भोजन संबंधी**—रोटी, दारि, बतासे, घी, अन्न, बेसन, दूध, अंगा, चामर, सुपाड़ी, हलदी।

पात्र—दुहामनी, डलिया, कुलिहया, थारी, काँसे का बेला, डिब्बी, घड़ा, कोथरा।

भोजन-साधन—आग, ईंधन, अङ्गार, बेलन।

शय्या—पाये, खाट, गूदरा, गद्दी।

वस्त्राभूषण-शृङ्गार—झूमका, काजर, घंघरिया, टोपी, झंगा, पन्हा, रूमाल, दुशाला, चादर, लहँगा।

अन्य—ईंधन, सूतरी, इँडुरी, लगाम, पैसा।

२—**स्थल भूमि**—तबेला, कोठरी, किवाड़, सराय, घाट, कोना, बरंडा, घर, द्वार, ईंट, किनारा, मढ़ी, भीत, बाग, मोरी, महल, खन, गौख, छज्जे, गारा, छान, मुँडेली, किला।

३—प्रकृति-सम्बन्धी—घासफूँस, मोती, पानी, दरिया, जमुना, रूख, छोरा छोरी, पत्थर, भूकटा, कजलीबन, बीट, बांबी, मटर का फूल, जल, नाग, पीपल, खजूर, नीम, ललिया, वर्षा, रात, बनराय, साँझ, आधीरात, धौंतारा, दुपहर, हरियाली, चन्दा, सूरज, पोखर, भिल, पानी, दिन, जंगल, अंडा, बच्चा, बिल, समुद्र, बैसाख, कातिक, धूप, धरती, माता, लकड़ियाँ, माँटी, गुठिली, छाछ, सामन, चैत, केशर, पेवरी, हींस, नदिया, पेड़, पात, फूल, घड़ी, भूड़, मंगल, मूँगा।

४—खेती—भुस, खेत, ढेल, घास, चना, तोरई, उर्द, ढेंकली।

५—रंग—हरा, लाल, काला, सफेद, धौरा, झिलमिल, पीला

६—वाद्य—बाँसुरी।

७—नगर—चाँदपुर, कानपुर, पोटपुर, हाथरस, नौहझील, दिल्ली।

८—जाति—जाट, ठाकुर।

९—व्यवसाय—चोर, बंजारे, माली, ग्वारिया, लुहार।

१०—रूप—गोलमोल, लम्बी, ऍचकबेंची, झावर, ल्हौरी, नेंकसी, थामकथैया, चिपटा, भौंड़ा।

११—पशु-कीड़े—बोक, बर्द, टिल्लो, भैंसा, मन्नीगाय, गाय, ऊँट, घोड़ी, कुतिया, साँप, बीछू, नाहर, चील्ह।

१२—पक्षी—गलगलिया, मैना, पंछी, चिरैया, तोता, कौवा।

१३—व्यक्ति—वीरबल, अकबर, कल्यानसिंह, सालिगराम, रामदेई, रमचन्दा।

१४—रिश्ते—परनारी, मामा, माँई, बीबी, बहन, साली, बेटी, जमाई, चाची, चाचा, देवर, जेठ, मैया, सखी।

१५—शरीर—चरण, शिर, गाँड, हाथ, पाँव, हाड़, गोड़, खाल, पूँछ, भुजा, आँख, हड्डी, नारि, मुँहड़ो, कान, कमर, गला, चोटी, थन, दन्त, टाँग, बोटी, गौंछ, सींग, पाँख, चूतर, पीठ।

१६—तौल तथा गिनती—नौ पासी, बत्तीस, नौ, छै, नौलाख, आठ, दस, छः, हजार, अस्सी, बीस, पांच, एक, बारह, चार, चोंसठ, सोलह, नौ हजार, पचीस, मन, धौन, सेर, पंसेरी।

१७—अन्य—बेगम, तपस्वी, सदावर्त, अक्ल, बक्कल, रस,

प्यास, छप्पकबेनी, डुम्मकली, बाबाजी, जरैलिया, अऊती के लला, पाम की पंजीरी, गाना, सप्पकली, सप्पकला, जाली, स्वाद, मीठा, गोता, कटारौ, गरीब, गैल, गिरारौ, बाबू, मरखना, राजा, खुरखुरिया, कबड्डी, डहर, दचोका, अग्गर, बग्गर, गाँठ, फांस, अठंगर, बगर, चक्क, इन्द्र, सिपाही, पैठ, बात।

भोजनीय वस्तुओं में गाम के काम में आने वाली अत्यन्त साधारण वस्तुओं को उपमान के लिए चुना गया है। रोटी है, अंगा है; पर पूड़ियाँ और मिठाइयाँ नहीं, बतासों का उल्लेख है। आभूषणों में केवल 'झूमके' ने ही स्थान पाया है, शृङ्गार की वस्तुओं में काजर ने। रूमाल और दुशाला उतने ग्रामीण नहीं। स्थापत्य और भूमि संबंधी शब्दों में कुछ विशेष विस्तार मिलता है। प्रकृति-सम्बन्धी शब्दों में हमने ऋतु, मास, दिवस, वृक्ष, खगोल आदि सम्बन्धी शब्दों को संम्मिलित कर लिया है, अतः यह सूची सबसे बड़ी है। खेती सम्बन्धी विशेष शब्द नहीं आये। हरे और लाल रंग का प्रयोग विशेष हुआ है, अन्य रंगों का कभी-कभी प्रयोग हो गया है। यह द्रष्टव्य है कि वाद्य में केवल 'बाँसुरी' ही आयी है। नगरों के नाम अधिकांशतः श्लेपार्थक हैं—'चाँदपुर' नगर का नाम तो है ही, 'चाँद' शब्द से शिर का भी संकेत हो जाता है। केवल 'दिल्ली' नगर मान्य नगर के अर्थ में आया है। जातियों में से 'जाट' का उल्लेख कई बार हुआ है। यह उल्लेख किसी विशेष अभिप्राय का द्योतक नहीं केवल इसीलिए इस शब्द का प्रयोग हुआ विदित होता है कि स्थानपूर्त्ति हो सके। 'जाट' लोकवार्त्ता में अपना विशेष स्थान रखता है, वह अपनी ओर ध्यान आकर्षित कराये बिना नहीं रह सकता अतः स्थानपूर्ति के लिए इसका प्रयोग हो गया। उदाहरणार्थः

लम्बी छोरी जाट की जल में गोता खाय,
हाड़ गोड़ बाके परे रहि गये खाल बिकन कूं जाय।

यह 'पटसन' की पहेली है जाट का उपयोग लम्बाई के भाव के कारण भी हो सकता है और प्रभावार्थ की दृष्टि से जाट पर यह व्यङ्ग भी हो सकता है। 'ठाकुर' शब्द में श्लेष है। यह जाति का द्योतक तो है ही, 'भगवान' के लिए भी आया है। 'आठपहर चौंसठघड़ी, ठाकुर पर ठकुरानी चढ़ी।' स्पष्ट है कि ठाकुर 'सालिगराम' के लिए है, उसी प्रकार ठकुरानी 'तुलसी' के लिए है। माली ग्वारिया, लोहार, बंजारे

जाति से अधिक व्यवसाय से सम्बन्धित है। पशुओं और कीटों में सभी साधारण नाम हैं, केवल एक को छोड़कर। 'टिओ' कोई विशेष पशु अथवा कृमि-कीट नहीं—लोकमेधा ने अद्भुत-भाव के लिए एक विशेष शब्द प्रस्तुत कर दिया है। जिससे किसी जन्तु का भाव शब्द-ध्वनि के प्रभाव से मिलता है, उससे जन्तु की कल्पना उत्पन्न नहीं होती। यही प्रणाली व्यक्तिवाचक नामों में मिलती है। व्यक्तिवाचक नामों में अकबर, बीरवल, राजाभोज तो पदपूर्ति के लिये आये हैं, पर कल्यानसिंह, सालिगराम, मनीराम, रामदेई, रामचन्द आदि किसी वस्तु के लिये स्थानापन्न की भाँति प्रयोग में आए हैं। इनका अर्थ नहीं, प्रसङ्ग से इनमें वह अर्थ प्रतिष्ठित होता है, जो अभिप्रेत है। उदाहरण के लिए—'धौरी घोड़ी लाल लगाम। बापै बैठ्यौ सालिग-राम ॥'

इसी प्रकार "ल्हौरी सी छोरी रामदेई नाम। चढ़ि गई अटरिया फूँकि दियौ गाँम"—रामदेई यहाँ 'आग' के लिए है।

इन शब्दों में कुछ और शब्द निरर्थक होते हुए भी अर्थ द्योतक की भाँति प्रस्तुत किये गये हैं। ये शब्द किसी वस्तु के भाव मात्र की ओर संकेत करते हैं, इन्हें पहेलियों के बीजगणतीय संकेत कह सकते हैं। ऐसे ही शब्दों में छप्पकबैंनी, सप्पकली, सप्पकला, छतकरी आदि हैं। खुरखुरिया में तो शब्द-ध्वनि से 'खुर-खुर' करने के शब्द का बोध-तत्व फिर भी है, अतः "खुरपी" का पर्याय हो सकता है। पर ऊपर जो शब्द बताये गये हैं उनमें ऐसा भी बोध-तत्व नहीं है।

पहेलियाँ एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाली उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली हैं; जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किस का चित्र है। पर इससे यह न समझना चाहिये कि उपमानों के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है वह अस्पष्ट होता है, उससे अभिप्रेत वस्तु का बहुत अधूरा संकेत मिलता है, पर वह संकेत इतना निश्चित होता है कि यथा सम्भव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता। यह एक चित्र है।

"ओर पास घास-फूँस, बीच में तबेली।
दिन में तौ भीर-भार, राति में अकेली ॥"

इससे जो चित्र प्रस्तुत होता है, उसमें कुँए का भाव स्पष्ट संकेत से नहीं आता। अतः पहेलियों में जहाँ वस्तु की व्याख्या और चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, वहाँ उन चित्रों में अभिप्रेत वस्तु की ओर से ध्यान दूसरी ओर ले जाने वाले शब्दों का भी संयोजन होता है। इसमें 'तबेली' शब्द ध्यान-विकर्षण का कार्य करता है। इन शब्द-चित्रों के लिये उपमानों का संयोजन इसी ध्यान-विकर्षण की प्रणाली पर किया जाता है—

नदी की पारि पै बोक चरै। नदिया सूखै बोक मरै॥

दीपक के मृत-पात्र और उसमें भरे तेल को 'नदी' के उपमान से अभिहित करने में दीपक की ओर ध्यान आकर्षित करने की अपेक्षा उसकी ओर से ध्यान विकसित करने की प्रवृत्ति ही मिलती है। दीपक की बत्ती और लौ को, किसी भी शास्त्र-विहित अलङ्कार-प्रणाली से 'चरता हुआ बोक'—बकरा नहीं माना जा सकता। आर्चर महोदय ने एक स्थान पर कहा है कि अन्तिम विश्लेषण में पहेली का मूल्य काव्य का मूल्य है।[१] भारतीय साहित्य में प्रहेलिका को शब्दालङ्कार का एक भेद बताया गया है। पर ये ग्रामीण पहेलियाँ अर्थ-शक्तियों की चरम परीक्षा कर लेती हैं। इसमें शब्दालङ्कारिक चमत्कार उतना नहीं जितना ध्वनि[२] का चमत्कार है।

ध्वनि का यह संकेत इन उपमानों से उत्सृष्ट मूर्त कल्पनाओं के द्वारा ही नहीं मिलता, क्रियाओं के उल्लेख से भी यह अभिप्राय साधा जाता है। "तू चलि में आई" का अर्थ "किवाड़" है। लो चलते समय साथ चले पर रुक जाय, जैसे हम से कह रही हो कि "तू चल मैं आई।"

दृष्टिकूट प्रणाली पर रची पहेलियाँ भी कुछ पढ़े-लिखे लोगों में प्रचलित मिलती हैं, पर ये पहेलियाँ लोक-मानस की अपनी अभिव्यक्ति नहीं। ये संस्कृत-मानस से उधार ली गई है, जैसे यह पहेली है—

अजापुत्र को शब्द। लै। गज कौ पिछलौ अंक।
सो तरकारी लाय दें चातुर मेरे कंथ॥

"मैंथी" के लिये ये शब्द गाँव में खड़े नहीं हो सकते।

---

[१] दिसम्बर १९४३ के 'मैन इन इण्डिया' में दी हुई "कमेण्ट" पृष्ठ २९६।

[२] 'ध्वनि' से अभिप्राय साहित्य-शास्त्र में प्रयुक्त "ध्वनि" से है।

इन पहेलियों में केवल मानसिक कौशल की प्रधानता नहीं रहती, भाव भी विद्यमान रहता है। प्रधान भाव तो 'अद्भुत' आश्चर्य का रहता है। कहीं-कहीं तो पहेलीकार स्वयं भी इस भाव को व्यक्त कर देता है—

पोखरि की पारि पै अचम्भौ बीतौ,
भरि दियौ खूब उठाय लियौ रीतौ—

कच्ची ईंट थापने के लिए यह आश्चर्य भाव को व्यक्त करने वाली पहेली है। यह आश्चर्य-भाव-बहुधा रहता है। इसी के साथ कहीं-कहीं हास्य भी प्रस्तुत हो जाता है। कभी-कभी इन पहेलियों में लोक-मानस-यौन-वृत्ति परिचायक शब्द-चित्र अथवा क्रियाओं को उपस्थित करने में नहीं हिचकता। यौन-वृत्ति की अभिव्यक्ति में एकसुख की भावना फ्रायड के मत से ही अवचेतन मानस से संबन्धित नहीं है, यह आदिम-मानव के दाय का अवशेष है। यौन-संकेत फिर भी बहुत कम पहेलियों में मिलते हैं, और बहुत-संयमित हैं, केवल बहुत ही कम स्थलों में यह यौन-भाव बहुत ही स्पष्ट हुआ है, यद्यपि ब्रज में ऐसे भावों के प्रति कोई सङ्कोच नहीं मिलता। जूतों के लिए एक पहेली ऐसी है:—"आधौ घुस्यौ घुसायैं ते, आधौ हाथ लगायें ते।" इस शब्दावली में जो 'घुसाने' अथवा 'घुसने' का लौकिक और रूढ़ श्लेषार्थ नहीं जानता, उसे इसमें यौन-संकेत नहीं विदित होगा।

इस विवचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रज की पहेलियों में बुद्धि-विलास के साथ भाव-संसर्ग भी रहता है। यह भाव-संसर्ग इन पहेलियों में से मनोरञ्जन के तत्त्व को कम नहीं होने देता, बुद्धि-विलास प्रधान होते हुए भी इसे मनोरञ्जन के तत्त्व को पराभूत नहीं कर पाता।

कुछ विशेष प्रकार की पहेलियाँ भी होती हैं जिनमें किसी घटना विशेष को लक्षित करके पहेली रची जाती है।

चार पाम की चापड़ चुप्पो, बापै बैठी लुप्पो,
आई सप्पो लैगई लुप्पो रह गई चापड़चुप्पो।

यह पहेली एक विशेष दृश्य देखकर रची गयी है। भैंस पर मेंढ़की बैठ गयी, मेंढ़की को चील लेकर उड़ गयी। चापड़ चुप्पो भैंस के लिए, लुप्पो मेंढ़की के लिए, सप्पो चील के लिए संकेत करते हैं।

नीचे धरती ऊपर अम्बर बीच में मण्डल छायौ है,
नाज तौ आयौ कुनबा के खाने को, नाज ने कुनबा खायौ है।

चील अपने घौंसले में अपने बच्चों को खिलाने के लिए एक साँप ले आयी। साँप जीवित निकला। वह उल्टा बच्चों को खा गया।

ऐसी पहेलियों की गिनती विशेष नहीं है, और न ये साधारण समुदाय से सम्बन्ध रखती हैं।

पौराणिक तथा अन्य विशेष व्यक्ति अथवा घटना से सम्बन्धित पहेलियाँ भी होती हैं और वे इसी विशेष शैली के अन्तर्गत आती हैं।

कहावतें--

कहावतों के सम्बन्ध में द्वितीय अध्याय में कुछ लिखा जा चुका है। वहीं कहावतों के मूल अभिप्राय: के जन्म के समय की सम्भावना पर भी कुछ विचार हुआ है। इस अध्याय के आरम्भ में यह बताया जा चुका है कि कहावतें लोकोक्ति का एक अङ्ग हैं। ये निश्चय ही विशेष अभिप्राय से प्रचलित होती हैं। ब्रज की कहावतों में हमें कहावतों के उपयोग में साधारणतः चार दृष्टियाँ मिलती हैं।

एक दृष्टि है पोषण की। यदि किसी व्यक्ति ने कोई बात देखी या सुनी है वह उनकी पुष्टि में कोई कहावत कह कर अपने निरीक्षण पर प्रमाण की छाप लगा देता है। इस प्रकार वह विशेष की सामान्य से पुष्टि करता है। विशेष वह घटना अथवा बात है जो उसने देखी सुनी है। सामान्य वह कहावत है, जिसका वह उपयोग करता है। 'लाख जाट पिंगुल पढ़ै एक भुख लागी रहै' ऐसी कहावत हो सकती है। किसी समझदार और चतुर व्यक्ति से भी यदि कोई एक अनुचित कार्य हो जाय तो उसके पोषण में यह उक्ति कह दी जाती है। इसी प्रकार 'करि लेइ सो काम, भजि लेइ सो राम' किसी किए हुए अच्छे कार्य की पुष्टि की भावना है। तथ्य-कथन इसी दृष्टि में आता है। जैसे 'गाय न बाछी नींद आवे आछी' में।

दूसरी दृष्टि है 'शिक्षण' की। शिक्षण सम्बन्धी कहावतों में कोई न कोई सीख, नीति आदि का उपदेश रहता है। जैसे—"जहाँ की गैल नाँय चलनी, वहाँ के कोस गिनिबे कौ कहा काम?" "आरकस नींद किसानें खोवै, चोरै खोवै खाँसी; टका ब्याज बैरागिऐ खोवै, राँड़ै खोवै हाँसी।" "गुन घटि गए गाजर खाएं ते, बल बढ़ि गयौ

बाल चबाए ते।" इसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा है।

तीसरी दृष्टि है 'आलोचन' की। 'गैल में हँसे और आँख नटेरै' में ऐसा ही भाव है, जैसे 'उलटा चोर कोतवालै डाटै', 'मारै और रोमन न दे' में। 'घर में बैदु मरी मइया' में उद्योग में विश्वास रखने की भावना की तीखी आलोचना है। 'गदहाए दयौ नोंन गदहा ने जानी मेरी आँख फोड़ी,' 'गदहा कहा जानें गुलकन्द कौ सवाद' अथवा 'बन्दर का जानै अदरक कौ सवाद' ये मूर्ख की आलोचनाएँ हैं।

चौथी दृष्टि है 'सूचन' की। ऐसी कहावतों में ऋतु, खेत, व्यवसाय, व्यवहार आदि की सूचना रहती है। ये ज्ञान-वर्द्धक कहावतें होती हैं। जो बातें यों ही याद नहीं रह सकतीं, वे कहावतों के रूपमें याद बनी रहती हैं। 'बुद्ध वामनी शुक्र लामनी' में ऐसा ही ज्ञान-गर्भित है। खेत-क्यार सम्बन्धी अनेकों कहावतों में यही दृष्टि रहती है।

इन दृष्टियों से बनी कहावतों में पोषण के अन्तर्गत तथ्यकथन वाली कहावतें आती हैं। जो वस्तु जैसी है उसे इन कहावतों के द्वारा प्रकट किया जाता है। स्वभाव, बल, चरित्र, आचार आदि का इनमें समावेश होता है।

नीति और सीख की कहावतें शिक्षण की दृष्टि से होती हैं। कब और क्या करना चाहिये, इसके अन्तर्गत आता है। अशुभ-अपशकुन और अकल्याणकर की सूचना सूचन-सम्बन्धी कहावतों में होती है। जातिविषयक कहावतों में जाति के स्वभाव का उल्लेख होता है। जिन कहावतों में उपहास, व्यंग, कटाक्ष अथवा आक्षेप मिलता है वे आलोचन-दृष्टि के अन्तर्गत आती हैं।

इस प्रकार ब्रज की कहावतों में ज्ञान, शिक्षा, कर्तव्याकर्तव्य, उपदेश, आलोचना, उपहास, व्यंग, दृष्टान्त, समाज, जाति जीवन के विविध क्षेत्रों पर मार्मिक कथन और चुभने वाली उक्तियाँ मिल जातीं हैं। इन सब पर विचार करना असम्भव है, और न वे सभी यहाँ दी ही जा सकती हैं। हिन्दी के कोशों में इनका वर्णन मिल जाता है। आज हिन्दी में लोकोक्ति कोष का अभाव नहीं। इन लोकोक्तियों का ब्रजभाषा रूपान्तर ब्रज में प्रयोग में आता है।

यहाँ तो हम इन लोकोक्तियों की कुछ विशेषताओं पर ही प्रकाश डालेंगे। लोकोक्ति साधारणतः 'लघु' होती है। 'अगायौ सो सवायौ'

यह तीन ही शब्दों की उक्ति है, जो 'पहिले मारै सो मीर' के भाव को ही प्रकट करती है। किन्तु 'लघु' होना ही इसका नियम नहीं है। कभी-कभी किसी कहावत में लम्बे पूरे वाक्य तक होते हैं, जैसे 'गेंहुन के सहारे खसआ में पानी लगि जातु है'। 'घर की खाँड़ किसकिसी लागै बाहिर कौ गुड़ मीठौ'। किसी-किसी में एक नहीं अनेक भाव एक साथ साम्य अथवा वैषम्य के आधार पर एकत्र कर दिये जाते हैं। जिससे कहावत बहुत लम्बी हो जाती है। यथा 'साँप कौ मन्त्र और खाट कौ बान, अपनी छीजन और कौ काम' 'राँड़ कढ़ी ते दारि भली, घरे खसम से राँड़ भली'। कभी-कभी ऐसी कहावतों में पद्य के चार चरण से आठ तक हो जाते हैं यथा—

सौ पर फुली सहस पर कानौं १
ताके ऊपर ऐंचक तानौं २
ऐंचक ताने ने करी पुकार ३
मैं मानी कंजा ते हार ४
कंजा विचारौ कहा करै ५
जब कोथ नारि[1] के पाले परै ६
जाके नाँयें छाती बार ७
बाते हारि गयौ करतार ८

यद्यपि ऐसी कहावतें संख्या में कम ही मिलेंगी।

कहावतों में गद्य तो होती ही है, पद्य भी होती है, सतुक; पर अधिकांशतः कहावतों के निर्माण का मूलतन्त्र होता है वह मुख-सुख का तत्व जिसमें पूर्ण 'लय' का संगीत नहीं होता पर उसका एक लयांश' रहता है, जिसे अंग्रेजी में 'रिदम' कहते हैं। इस 'लय' को 'तुक' और सुविधामय बना देती है; 'न्यारी बाप ही ते न्यारी' न्यारी और न्यारी की तुक से इस कहावत का 'लयांश' खिल उठा है। किन्तु वह तुक भी 'लयांश' के लिए अनिवार्य नहीं। 'ज्यारि कमेरी, मेंह किसान' इसमें 'लयांश' 'शब्द-ध्वनि' की सन्तुलित-आवृत्ति के कारण है, यह किसी छन्द का एक अच्छा चरण बन सकता है। इसी प्रकार यह है : 'घर की खाँड़ किसकिसी लागै, बाहर कौ गुड़ मीठौ'। यह कहावतों के रूप-निर्माण की बात है।

कहावतें अधिकांशतः अन्योक्तियाँ होती हैं। इनमें जिनका प्रकृत

[1] कोल नारि, कोलगर्दन।

उल्लेख होता है, उनसे अतिरिक्त सामान्य-विशेष में इनका उपयोग होता है। 'अपने अपने औसरे कुआ भरें पनिहारि' यह 'पनिहारियों' के सम्बन्ध में उक्ति है, पर इसका उपयोग पनिहारियों के लिये नहीं होता। कहावत का अभिप्राय: विस्तृत हो जाता है; उस उक्ति में वर्णित विशेष में जो सामान्य रहता है, उसी सामान्य के अर्थ में उसका चाहे जहाँ उपयोग हो सकता है। 'आगे नाथ न पीछे पगहा' किसी बैल से सम्बन्धित हो सकती है, पर प्रयोग में यह किसी भी अनाथ तथा आवारे के लिए ठीक बैठेगी। किन्तु 'अन्योक्ति' से अतिरिक्त भी कितनी ही प्रकार की उक्तियाँ कहावतों का रूप ग्रहण कर लेती हैं। पर वे सभी उक्तियाँ ऐसी ही होती हैं, जिनमें 'विशेष' को छोड़कर विशेष में गर्भित सामान्य का अर्थ ही सर्वत्र लिया जाता है। विशेष तो उक्ति को वैचित्र्य से युक्त करने के लिए आता है: 'ऊँट के गरे में बकरिया बँधी होना', 'ऊँट के मुँह में जीरा' ऐसी कहावतों में विशेष के प्रयोग से वैचित्र्य उत्पन्न होता है। 'कौमरी न पापरी गद्द बहू आइ परी' में बिभावना जैसा चमत्कार मिलता है। लोकाचार में बहू के आने से पूर्व जो संस्कार होते हैं उनमें कौमरी बाँटना और पापड़ी बाँटना भी होता है। ये आचार अनिवार्य हैं। इनके अभाव में भी बहू आगयी। इस कहावत का 'गद्द' शब्द जहाँ त्वरा प्रकट करता है, वहाँ किंचित हास्य का भाव भी देता है। इसमें 'प्रकृत' विषय में अन्तर्व्याप्त सामान्य भाव को ही इस कहावत का उपयोग करने वाले तथा अन्य ग्रहण करते हैं। इसमें सामान्य भाव यही है, बिना किसी तय्यारी के कार्य हो जाना।

इन कहावतों में विशेष का संयोजन और उसके द्वारा वैचित्र्य का विकास साधारणत: तो सम्भव कल्पना के आधार पर हुआ है, पर 'छदाम की बुढ़िया, टका मुँड़ाई' जैसी कहावत का विशेष किसी संभावना पर निर्भर नहीं करता। बुढ़िया कैसे छदाम की हो सकती है? ऐसे स्थलों पर कहावतकार कल्पना की संभावना असंभावना का ध्यान नहीं रखता, वैचित्र्य के साथ, यदि संभव हो सके तो किंचित हास्य के पुट के साथ, वह अपने अभीष्ट अर्थ को हृदयङ्गम करा देना चाहता है; भले ही उसके लिए उसे असंभव से असंभव कल्पनाओं का गठजोड़ा करना पड़े। फिर भी यह कहना होगा कि ऐसी प्रकृति ब्रज की लोक कहावतों में साधारणत: बहुत कम है, अपवाद स्वरूप है।

ब्रज की अनेकों कहावतों में प्रकृति का गम्भीर निरीक्षण और तत्सम्बन्धी अनुभव संचित मिलता है। ये कहावतें ग्रामीणों के ज्ञान-कोष की भाँति उन्हें अपने खेत-क्यार वाणिज्य-व्यापार आदि में सहायक होती हैं। ऐसी कहावतों में या तो किसी कार्य के करने का शुभ समय दिया होता है, अथवा किसी वस्तु के अशुभ परिणाम का संकेत होता है। इन्हीं कहावतों में प्रकृति का विशेष अवस्था में क्या घटित होगा इसकी भी सूचना रहती है।

"एक पाख द्वै गहना, राजा मरे कि सैना।"

इसमें एक ही पक्ष में दो "ग्रहण" पड़ने के परिणाम की सूचना है।

सावन शुक्ला सप्तमी चन्दा चटक करै।
कै जल दीखै कूप में, कै कामिनि कलस भरै॥

अथवा

पूनौ परवा गाजै तौ दिनां बहत्तर बाजै।

जैसी वर्षा सम्बन्धी कहावतें कितनी ही हैं और इसी कोटि की हैं।

खेती के सम्बन्ध में एक सूचना देने वाली कहावत यों है:—

सन घनेरौ बन बेगरौ, मेंढ़क फुद्दी ज्वार।
पेंड़ पेंड़ पै बाजरौ, जा मैं आवैं सोटा सी बाल।

कुछ कहावतों में पशुओं के सम्बन्ध में शुभाशुभ का उल्लेख मिलता है। एक कहावत यों है:—

सावन घोड़ी, भादों गाय,
जौ कहूँ भैंस माह में ब्याय,
धनी छोड़ परौसीये खाँय।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भी ऐसी ज्ञानवर्द्धक कहावतों का अभाव नहीं है।

"सामन ब्यारू जब तब कीजै, भादौं ब्यारू नाम न लीजै।"

एक कहावत में "गाजर" को स्वास्थ्य के लिये हानिकर कहा गया है, और धान्य की बालों को स्वास्थ्य वर्द्धक।

गुन घटिगयौ गाजर खायें ते,
बल बाढ़िगौ बालि चबायें ते।

ब्रज की प्रचलित कहावतों में से कितनी ही कहावतें ऐसी भी हैं,

जिनका सम्बन्ध किसी घटना विशेष से अथवा कहानी से है। दूसरे अध्याय में हमने इसकी ओर कुछ संकेत कर दिया है। वहाँ केवल कुछ ही कहावतों की कहानियों की ओर संकेत है। ऐसी ही कहानियाँ एकानेक कहावतों की हो सकती हैं। स्वर्गीय पं० बद्रीनाथ भट्ट जी ने ऐसी कहावतों की कहानियाँ संकलित करने का उद्योग किया था। वह उद्योग पूरा नहीं हो सका। हम भी अपनी सीमाओं में घिरे हुये हैं, फलतः इस दिशा में विशेष प्रयत्न नहीं कर सकते।

यथार्थ बात यह है कि अधिकाँश कहावतें ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध किसी न किसी घटना अथवा कहानी से है। आज इन कहावतों की कहानियाँ अधिकांशतः विस्मृत हो गयी हैं।

जिस प्रकार इन कहावतों में खेत, वर्षा, शकुन आदि का वर्णन रहता है, वैसे ही विविधि जातियों के सम्बन्ध में भी इसमें रोचक उक्तियाँ मिल जाती हैं।

ब्राह्मण

क्वार महीने में कनागत लगते ही आशा से अनुप्राणित हो ब्राह्मण नौ-नौ हाथ उछलता है। कनागत बीतने पर वह चूल्हे के पास रोता है। पांडेजी पछताओगे और वही चना की खाओगे। चौबेजी छब्बे होने गये दुबे रह गये। पंडितजी के जो मौखादी सो पोथी में। तीन कनौजिया तेरह चूल्हे। बामन, कुत्ता, नाऊ; जाति देखि घुर्राऊ। मरी बछिया बामन के सिर। देवी दिन काटै, पंडा परचौ माँगै। बुही पांडे के पत्रा में बुही मौखादी। पांडे तोहि द्वारिका जानौं। जौ लौं गोकुल में गोसाँई, तौ लौं कलजुग नाहीं।

कायस्थ

कायस्थ-कौआ; इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कायस्थ बच्चा पढ़ा भला या मरा भला। भांड़ों में बड़ा, कायस्थों में छोटा। (इन्हें ही सब का कार्य करना पड़ता है)। कायस्थ बच्चा कभी न सच्चा, जो सच्चा तौ गधे का बच्चा।

जाट

जाट कहै सुन जाटिनी, याही गाम में रहनौं,
ऊँट बिलाई लै गयी तौ हाँजी हाँजी कहनौं।

मढ विद्या जानी, पर जट विद्या नाहिं जानी। लाख जाट पिंगुल

पढ़ै, एक भुख लागी रहै; खानों खाइकैं न्हानों, जिही जाट कौ बानौं। जाटै लागी ऊब, भैंस बेचि घोड़ी लई, खोदन लाग्यौ दूब। जाट भिखारी और भेड़ हरिहा, बार देखे न कुवार। जाट रे जाट तेरे सिर पै खाट, तेली रे तेली तेरे सिर पै कोल्हू। तुक तौ मिलीई ना, बोझन तौ मरौ। जाट कौ म्हौं हूदा ते बचौऐ।

बनियाँ

बनिया मित्र न वेश्या सती। जानि मारै बानियाँ पहचान मारै चोर। जाकौ बनियाँ यार; ताकूँ नहिं वैरी दरकार। ठलुआ बनियां सेर बाँट तौलै। बामन बनियाँ कूकरा, जाति देखि घुरोंय। बनियाँ डेली न दे, भेली दे। मियाँन मरनौं, बनियन[1] गोर खोदनौं। बनियाँ यार दबे कौ। नीबू, बनियाँ, आमियाँ, मसके ही रस देंइ। भूले बनियाँ भेड़ खाई, अब खाऊँ तौ राम दुहाई।

नाई

बामन, कुत्ता, नाई, जाति देखि घुर्राई। ठाकुरन की बरात में सब ठाकुर ही ठाकुर (नाऊ ठाकुर)। नई नांइन बाँस कौ नहन्ना। गोला नाऊ, सब से अगाऊ। नाऊ छत्तीसा। नाई नाई बाल कितने, जिजमान अगारी आये जात एं।

सुनार

सौ सुनार की एक लुहार की।

कुम्हार

कहूं ते कुम्हार गधा पै नाँय चढ़ै।

माटी कहै कुम्हार ते, तू क्या रूँदै मोय,
एक दिन ऐसा होइगौ मैं रूँधूँगी तोय।

सामन भादों के से कुम्हार बैठे हैं। अबा नाँय बिगर्‌यौ, खदानों ही बिगर्‌यौ ऐ।

---

[1] मथुरा मे यही कहावत चौबों के सम्बन्ध में है। यह कहा जाता है कि मुगलों के समय में इन्हें कब्र खोदने का काम सौंपा गया था। शाहंशाह के आने के समय इन्होंने कितनी ही कब्रें खोद दीं। शाहंशाह के पूछने पर उक्त कहावत उन्होंने कह दी। उसी क्षण से उन्हें कब्र खोदने से मुक्ति मिल गयी।

लुहार

सौ चोट सुनार की, एक चोट लुहार की। लोह जानें, लुहार जानें, धोंकन हारे की बलाय जानें।

माली

मालिन अपने बेरन खट्टे नायँ बतावै।

तेली

तेली के बैल होना। तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हू। तुक नायँ मिली तो बोझन तौ मरौ। तेल देखौ तेल की धार देखौ। तेली के तीनों मरौ, ऊपर ते टूटौ लाठ। तेली ते का धोबी घाटि, बापै मोंगरा, बापै लाठ। तेरो कहा खरि में तेलु जातु है। तेलिया खसम करिकें का पानी ते हाथ धौवै। तेली कौ तेल जरै, मसालची की छाती फटै।

अहीर गोला

गोला नाऊ, सबते अगाऊ।

गड़रिया

एक तो जाति की गड़री बाऊ पै लहसन खाइ आई। दिन फूल्यौ, गड़रिया ऊल्यौ।

धोबी

धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।

कोरी

सूत न पौंनी, कोरिया ते लठमलठा।

अन्य लोकोक्तियाँ

अब तक लोकोक्तियों के उन रूपों पर विचार किया गया है जो अत्यधिक प्रचलित और एक प्रकार से बहुदेश व्यापिनी हैं। किन्तु ब्रज में कुछ लोकोक्तियों के अन्य प्रकार भी प्रचलित हैं। वे ये हैं—

१ अनमिल्ला, २ भेरि, ३ अचका, ४ औठपाव, ५ गहगड्ड, ६ ओलना, ७ खुंसि।

ये सभी पद्यबद्ध होते हैं।

अनमिल्ला—इसमें नाम के अनुरूप अनमिल बातों का एक साथ उल्लेख रहता है। इनके प्रथम चरण में पद्यानुकूल गति रहती है, किन्तु दूसरे चरण में प्रायः वह गति पंगु करदी जाती है। इससे जहाँ

अनमिल और असंगत बातों से अद्भुत की आश्चर्य भावना का उदय होता है, वहाँ अन्तिम चरण की पंगु गति उसके छन्द सौन्दर्य का घात करके एक तिक्त भावमयी प्रतिक्रिया प्रस्तुत कर देती है। ऐसे कथनों में ध्यान आकर्षित करने की सामग्री रहती है। उदाहरणार्थ—

"भैंस बिटौरा चढ़ि गई, टपटप पैंचू खाय।
उठाय पूंछ देखन लगे, दिवाली के तीन दिना॥"

× × ×

"भार भुँजावन हम गये, पल्ले बाँधी ऊन।
कुत्ता चरखा लै गयौ मैं काए ते फटकूँगी चून॥"

× × ×

"गोरी के नैंना बने, जैसे बरध कौ सींग।
उठाय भीति में धूंस दिये, मरि मेरे ससुर कुम्हार॥"

इनमें आश्चर्य के साथ हास्य का भी संयोग है। ब्रज के गाँवों में इनका प्रयोग मनोरञ्जन के लिए तो होता ही है, ऐसे अवसरों पर भी कहा जाता है जबकि कोई असंगत और असंभव बात कही जा रही हो अथवा की जा रही हो। कभी-कभी इनमें ऐसे चित्रों का समावेश मिल जाता है जो वर्णन में ही असंभव लगते हैं पर विशेष परिस्थिति में ठीक होते हैं और उनकी व्याख्या भी हो सकती है। ऐसा एक अनमिल्ला ये है—

पीपर बैठी भैंसि उगारै, ऊँट खाट पै सोवै
पीछें फिरि कें देखि लुगाई अँगियाऐ कुत्ता धोवै

एक स्त्री एक कुँए पर पानी लेने गई। कुआ हाल ही चला था। और पहला ही पुरहा आया था। ब्रज में यह विश्वास किया जाता है कि यदि पहले पुरहे के पानी को कोई ले जाय तो सिंचाई कड़ी होती है। पुरहे लेने वाले ने उस स्त्री का ध्यान ऊपर के अनमिल्ले से दूसरी ओर कर दिया। पहला पुरहा ठीक निकल गया। उक्त अनमिल्ला में जो बातें कही गई थीं वे सब वहाँ थीं। पीपर की एक शाखा कटी पड़ी थी, उस पर भैंस बैठ कर जुगाली कर रही थी; हाल ही एक ऊटनी के बच्चा हुआ था। उसका बच्चा खाट पर रख कर ऊँटवाले ले जा रहे थे। उधर एक कुत्ता चाकी का झाड़न कहीं से ले आया था। वह झाड़न पुरानी फटी अँगिया का था। उसे वह कुत्ता नाली में बैठ कर झकझोर रहा था। इन विविध दृश्यों को उसने एक में मिला दिया

और समासोक्ति से उसे अद्भुत कर दिया। किन्तु सभी अनमिल्लों की इस प्रकार व्याख्या नहीं हो सकती। पारिभाषिक दृष्टि से तो यह व्याख्याशील अनमिल्ला कथा-गर्भित पहेली के अन्तर्गत आयेगा।

अचका—अचका में भी अद्भुत की प्रधानता रहती है, पर यह अद्भुत भाव में सुकुमारता की अति के कारण होता है। नजाकत जब कल्पना के पुट से अद्भुत प्रतीत करायी जाय तब 'अचका' का निर्माण होता है।

पीपर पैते उड़ी पतंग, जौ कहुँ लगि जाय मेरे अंग
मैंने दै दई बजुर किवार, नहिं उड़ि जाती कोस हजार।

ऐसे 'अचकों' का प्रयोग 'डंडा चौथ' के गीतों में बहुत होता है। उनमें सुकुमारता की ही अति नहीं, फूहड़पन की भी अति दिखाई गई है। इन अचकों में साधारणतः स्त्रियों की आत्मोक्तियाँ ही हैं, जो सुकुमारता के दम्भ जैसी लगती हैं।

मेरी परौसिन कूटै धान, भनक परि गई मेरे कान,
बाइ परयौ धानन को लालौ, मेरे हाथनु परि गयौ छालौ।

'अनमिल्ला' और 'अचका' में आश्चर्य और हास्य के भाव मिलते हैं। इन उक्तियों में उपयोगिता से मनोरञ्जन अधिक मिलता है।

'भेरि', 'औठपाव' और 'खुंसि' इन तीनों में एक समान्य-भाव यह मिलता है कि ये तीनों प्रकार ऐसी बातों का दिग्दर्शन कराते हैं जो अवांछनीय होती है।

भेरि—में अन्तिम अर्द्धाली एकसी होती है—वह है 'गड़आ गढ़त भेरि है गई।'

कुछ 'भेरि' उदाहरणार्थ यहाँ दी जाती हैं—

—१—

कबौ मतौ ग्वा दिनाँ कीयौ
आधौ घर खाती कूं दीयौ
अब लीयौ घर लकड़ीनु घेरि
गड़ुआ गढ़त है गई भेरि

—२—

ठीक दुपहरी कातिक वारौ
संग लियौ भैया कौ सारौ

एक पटक महुरा तर दई
गड़ुआ गढ़त भेरि है गई

—३—

राँड़ नारि ने पहरयौ कांचु
अब मति जानौ वाकौ सांचु
सालू पहरि पैंठ कू गई
गड़ुआ गढ़त भेरि है गई

—४—

जब तौ हो दामन कौ चाहु
अस्सी बरस के ने करि लयौ ब्याहु
चोंटू पकरि उठतुऐ दई
गड़ुआ गढ़त भेरि है गई

—५—

गीधी गाय गिलौंदे खाय
दौरि दौरि महुआ तर जाय
लपकि ग्वारिया ने लौठी दई
गड़ुआ गढ़त भेरि है गई।

खुंसि—ऐसी ही बातों के कहने का दूसरा ढंग है। खुंसि में तीन दोष की बातें बताई जाती हैं, और अन्तिम अर्द्धाली का यह बँधा रूप होता है: "खुंसि ऊपर खुंसि तीन"—

एक तौ लँगड़ी घोड़ी,
दूजी जामें चाल थोड़ी
तीजै जाकौ फाट्यौ जीन
खुंसि ऊपर खुंसि तीन,

× ×

एक तौ बूढ़ी गाय,
दूसरां कूँ खेत खाय
तीसरां कूँ दूध हीन
खुंसि ऊपर खुंसि तीन

× ×

एक तौ बो लम्बी जोय
दूसरां कूँ बांझ होय

तीसरौ कूँ बुद्धिहीन
खुंसि ऊपर खुंसि तीन

× ×

एक तौ वह बूढ़ा नाहु
दूसरौ कूँ बहुत खाय
तीसरौ कूँ बुद्धिहीन
खुंसि ऊपर खुंसि तीन

औठपाय—जिस प्रकार 'खुंसि' में स्वाभाविक दोषों की गणना होती है। उसी प्रकार 'औठपाय' में जानबूझ कर किये गये कुछ कामों का परिणाम दिखाया जाता है। इसकी अन्तिम अर्द्धाली होती है "जिद्दी मरिबे के औठपाय।"

एक आँखि तौ कूआ कानी दूसरी लई मिचकाइ
भीति पै चढ़ि कैं दौरन लाग्यौ जेई मरिबे के औठपाय

× × × ×

कूआ पनघट जाइकैं, पाँय दिये ललराय
पीठि मिड़ावै सौति पै जेई मरिबे के औठपाय

ओलना—कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें लोकोक्तिकार सुखदायक वस्तुओं की संयोजना कर देता है। इनमें वह यह बताना चाहता है कि किस प्रकार की स्थितियाँ मनुष्य को आनन्द दे सकती हैं। ऐसी लोकोक्तियाँ 'लोलना' कहलाती हैं।

रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी
कामिन करै सिंगार कि पहरैं पामटी
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना

एक अन्य लोकोक्तिकार सुख की यह कल्पना करता है—

बर पीपर की छाँह कि संगति चनों की
भाँग तमाखू मिर्च कि मुट्ठी चनों की
भूरी भैंस कौ दूध बतासे घोलना
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना

गहगड्ड—में 'सुख' की भावना को 'मचै गहगड्ड' द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इस लोकोक्ति में दो व्यक्तियों की उक्तियाँ रहती हैं। एक व्यक्ति सुझाव रखता है कि क्या ऐसा-ऐसा हो

तो गहगड्ड मचै, आनन्द आये; दूसरा उन सुझावों को अस्वीकार करता जाता है जब तक कि उसकी रुचि का सुझाव न आ जाय।

एक सुझाव मानो यह रखा गया—

किनक कटोरा घ्यौ घना, गुर बनिये की हट्ट
तपूँ रसोई जैंऔ मुसाफिर यौं माँचे गहगड्ड
—नहीं गहगड्ड, नहीं गहगड्ड

इसमें भोजन का उल्लेख है, फिर जल का सुझाव, तब शयन का पर मुसाफिर, 'नहीं गहगड्ड' ही कहता रहा। जब अन्त में उसने कहा—

सेत फूल हरियाई डंडी और मिरचौं के ठट्ट
हम घोंटें तुम पियौ मुसाफिर यों माँचै गहगड्ड
मचै गहगड्ड मचै गहगड्ड

यह है ब्रज की लोकोक्तियों की रूपरेखा। लोकोक्तियों में ज्ञान, नीति और मनोरञ्जन की त्रिवेणी बहती मिलती है।

सातवां अध्याय

उपसंहार

'कला' और उसका स्वरूप—लोक-साहित्य के विविध प्रकारों का यहाँ तक जो परिचय दिया गया है, उसके अध्ययन से स्वभावतः यह प्रश्न प्रस्तुत हो जाता है कि इस सबका क्या मूल्य है ? दूसरे शब्दों में इस लोक-अभिव्यक्ति में कला का क्या स्वरूप है ?

'कला' का कोई सुनिश्चित और स्थिर रूप नहीं। इसकी विविध परिभाषायें की गयी हैं।[1] परिभाषाकार की दृष्टि में कला की कोई न कोई अभिव्यक्ति सामने होती है, वह उस जैसी अभिव्यक्तियों को ध्यान में रख कर कला के स्वरूप का साक्षात्कार करता है, और उस साक्षात्कार के आधार पर परिभाषा का निर्माण करता है। फिर भी एक बात निर्विवाद प्रतीत होती है कि प्रत्येक अभिव्यक्ति के दो पहलू देखे जाते हैं। एक वस्तु-विषयगत, दूसरा रूप-गत। कला की परिभाषा में परिभाषाकार वस्तु और रूप दोनों को अलग अलग महत्व देकर भी परिभाषा खड़ी कर सकता है; दोनों के मेल से भी उसकी परिभाषा कर सकता है। किन्तु वस्तु और रूप का स्थूल-पक्ष ही नहीं लिया जाता, उसकी आध्यात्मिक व्याख्या भी की जाती है। इन प्रयत्नों में कला का कहीं विशद और व्यापक रूप दिया जाता है, कहीं संकुचित। हम यहाँ कला की स्वरूप परीक्षा में इन समस्याओं पर विचार नहीं कर सकते। हम तो यह मानते हैं कि अभिव्यक्ति के पूर्वोक्त दो पहलुओं में से कला का संबंध 'रूप' से है। 'रूप' सौन्दर्य ही कला का प्रधान विषय है। 'रूप' के आधार और रूप-प्रेरणा के साधन की दृष्टि से 'वस्तु-विषय' पर जितना विचार होना चाहिए उतना ही कला में

[1] देखिये 'साहित्य-सन्देश' में प्रो० कन्हैयालाल सहल का लेख।

उसका विचार अपेक्षित है। रूप का सौन्दर्य-विधान से अनिवार्य संबंध है। सौन्दर्य की प्रतिष्ठा रूप में ही होती है। 'सौन्दर्य' के साथ भी कठिनाई यह है कि स्थूल-व्याख्या के द्वारा यह हृदयङ्गम नहीं होता। प्रधानतः सौन्दर्य अनुभूति का विषय है। व्यक्ति के संस्कारों से अनुभूति प्रभावित होती है, तभी रूप-सौन्दर्य के विविध विधान विश्व के विविध लोकों में मिलते हैं। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि यह वैविध्य मानव के साधारण ज्ञान के धरातल पर नहीं होता। साधारण धरातल पर सौन्दर्य के रूप में एक साम्य होता है। यह साम्य नियम और मर्यादाओं से सुनिश्चित होता है।

साहित्य में रूप का यह साम्य अथवा साधारणीकरण शैली, रुचि, अलङ्कार, रस, ध्वनि, रीति के शास्त्रीय विधान से सिद्ध होता है। शास्त्र ने रूप की इस साधारण अवस्था के लिए एक कसौटी प्रस्तुत कर दी है। वह कसौटी 'रुचि' सौष्ठव का एक परिमार्जित और निर्भ्रम धरातल बना देती है। वहाँ तक रुचि-विभिन्नता का कोई अर्थ नहीं रहता। इसमें काव्य में ह्रास आने पर भी वह अनादर का पात्र नहीं बन पाता अतः सुरुचि के मध्यम-विधान से शास्त्रानुशासित अभिव्यक्तियों में 'रुचि' के आदर्शों और प्रकारों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक नहीं रहता। ऐसी अभिव्यक्तियों में कला में प्रेरणा का मूल व्यवस्थित होकर ही उदय होता है। ऐसी बात 'लोक-साहित्य' में नहीं होती। 'लोक-साहित्य' का कवि सहज स्रष्टा होता है। शास्त्र की वह कभी अपेक्षा नहीं रखता। उसकी प्रेरणा का प्रत्येक पद स्वोद्भूत होता है। संस्कार और लोक-जीवन की भाव-भूमि तथा इन सबकी दीर्घ परम्परा अवश्य उसकी प्रेरणा के प्राण की भाँति व्याप्त होती है। फलतः लोक की मर्यादायें ही इस लोक कला की मर्यादायें होती हैं। जन-मानस अन्य मर्यादाओं की किंचित भी चिंता नहीं करता।

लोक-कला की मर्यादायें—

लोक-कला की मर्यादाओं को समझ लेना लोक-कला के दर्शन के लिए अनिवार्य है, लोक-कला की ये मर्यादायें मानी जा सकती हैं—

१—लोक-मानस की युगीन-स्थिति का अद्यतन-रूप।

लोक-साहित्य विद्वानों, साहित्यकारों अथवा नगर के कला-विलासी व्यक्तियों को प्रसन्न करने के लिए नहीं लिखा जाता।

यह कलाकार के व्यक्तित्व को उभारने अथवा यश दिलाने के लिए नहीं होता।

मम्मट ने कवि के लिए जिन उद्देश्यों का उल्लेख किया है—यश से अर्थ कृते............

उनमें से एक भी लोक-कला-काव्य-कहानी में नहीं होता। लोक साहित्यकार का यहाँ किंचित भी महत्त्व नहीं रहता। इस साहित्य का मूलतः व्यवसाय से भी कोई सम्बन्ध नहीं। इस कारण अस्वाभाविक प्रभाव इस 'कला' पर नहीं पड़ते। लोक-मानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही यहाँ होती है। यह लोक-मानस दो अवस्थाओं से सदा सम्पन्न रहता है :

एक : लोक-जीवन की अपनी दीर्घ परम्परा की मनोभावना से। इसमें हमें उत्तराधिकृत मनोविज्ञान की सामग्री मिलती है। उत्तराधिकृत मनोविज्ञान से हमें निम्न बातें जानने को मिल सकती हैं :

अ—आदिम मानव के क्या विश्वास और अनुभूतियाँ थीं ?

आ—उन पर क्या ऐतिहासिक प्रभाव पड़े; उनसे कैसे विश्वासों और अनुभूतियों में विकार हुए ?

इ—उन समस्त विश्वासों और अनुभूतियों के अवशेषों अथवा संशोधित रूपों का आज क्या रूप है—उनका क्या महत्त्व है ? कौन कितना प्राणवान है ? वह आज के लोकमानस को क्या प्रेरणा दे रहा है ?

दो : लोक-जीवन में व्याप्त सामाजिक-सामूहिक भावना। पहली मनोवस्था युगीन स्थिति को प्रकट करती है; और इस दूसरी अवस्था का मूल-बिन्दु होती है। यह लोक-मानव की अद्यतन-स्थिति को प्रकट करती है।

इस मनोस्थिति से लोक-कला की दृढ़ मर्यादा बनती है। इस मनोस्थिति के कारण ही 'लोक-कला' की कसौटी आज के विद्वत्-विलास से निश्चित नहीं होती। इसी से लोक-कला में लोक-जीवन की ऐतिहासिक वार्त्ता या लोकवार्त्ता सन्निहित रहती है, और आदिम मानव से आज तक के मानव की दीर्घ सम्बद्धता प्रकट करती है। फलतः इस 'कला' में सुरुचि के व्यक्तिगत मानों की सीमा आन्तरिक नहीं रहती। वस्तु और विषय सम्बन्धी प्रेरणा परम्परागत होती है। अभिव्यक्ति के रूपों की मात्र रेखायें ही हाथ में रह जाती हैं। केवल

आवेगों की स्पन्दन-शीलता को अनुरूपता और अनुकूलता ही आज के लोक-अभिव्यक्तिकारों की विशेषता प्रकट करती है।

जहाँ परम्परागत प्रेरणाओं के शिथिल और निष्प्राण होने की आशङ्का किञ्चित् भी रहती है, वहाँ उन वस्तु और विषयों की परम्परा के प्रति एक धार्मिक भावना संपृक्त होने का आवरण लोक-मानस में स्वयं खड़ा हो जाता है। ऐसी अभिव्यक्तियों में रस आये या न आये, न करने से अनिष्ट भावना और करने से इष्ट प्राप्ति की भावना की आशङ्का और आशा, उन्हें करते रहने के लिए हमें उक्त आवरण के कारण विवश हो जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में हम लकीर के फकीर तो रह जाते हैं, पर परम्परागत मानस को इससे सन्तोष और आनन्द प्राप्त होता है। ऊपर के अध्यायों में जो गीत और कहानियाँ अनुष्ठान और व्रत के अङ्ग हैं, वे इस कथन की पुष्टि करते हैं। यह स्पष्ट है कि उनकी कला का रूप आज के कला के आदर्शों के आधार पर नहीं जाँचा जा सकता। हम तो केवल उनके कला-तत्त्वों का विश्लेषण भर कर सकते हैं, फिर यह पुरातत्त्व-विद् का कार्य रह जाता है कि वह उन तत्त्वों के कला-रूपों को स्पष्ट कर उनका मूल्य अङ्कित करे।

इसीसे लोक-कवि अथवा कलाकार की नवीन अभिव्यक्तियाँ भी प्रभावित होती हैं। उसे हेर-फेर कर सामग्री वही रखनी पड़ती है, केवल उसे अपने सामायिक स्पन्दनों के अनुकूल बना लेना पड़ता है। प्रबन्ध-विधान में लें तो एक प्रमुख कथा-रूप यह है :—

'सु' एक सुन्दरी है
'रा' एक राजपुत्र है
दोनों एक दूसरे से अपरिचित हैं।

'प' एक व्यक्ति, बहुधा शुक-पक्षी, दोनों में से किसी एक के अथवा दोनों के अनुग्रह से कृतज्ञ-भाव-बाधित होकर 'रा' से 'सु' की सुन्दरता का वर्णन करता है। 'रा' 'सु' पर मोहित हो जाता है। 'रा' का 'सु' पर मोहित होना अन्य किसी कारण से, चित्र-दर्शन द्वारा भी हो सकता है। 'प' 'रा' को 'सु' के प्रदेश में ले जाता है। वहाँ 'सु' भी 'रा' पर विमोहित हो जाती है। 'रा' को पराक्रम से अथवा स्वयंवर में 'सु' प्राप्त हो जाती है। इस प्राप्ति से किसी को असन्तोष होता है और 'रा' और 'सु' को अनेकों कष्ट उठाने पड़ते हैं;

अन्त में वे मिलते हैं।

यही कथा रूप हमें अनेकों रूपों में मिलती है। इसे हम निम्न-विधि से स्पष्ट समझ सकते हैं : [देखिए पृष्ठ ५२१ पर]

२—हृदय-तत्व प्रधान रहता है। लोक-व्यवहार में बुद्धि-वृत्त की अपेक्षा हृदय के स्पन्दन बहुत स्पष्ट होते हैं। और इन्हीं से उनकी कला का रूप खड़ा होता है। किन्तु इस तल की अभिव्यक्ति भावात्मक शब्दों द्वारा नहीं होती, संकेत-चित्रों की भाषा का उपयोग होता है। इसे समझने के लिए 'प्रेम-निवेदन' की प्रणालियों पर दृष्टिपात किया जा सकता है। 'पूरनमल' में पूरनमल की मौसी कह रही है :

"सो नई नई गेंद किन्नें मारी।
सुनि लाला रे! झटपट भोजन करि लेउ
अँचरा ते ढोरी तिहारी ब्यारि
सो नई-नई गेंद किन्नें मारी
सुनि बाँदी री क: अन्दर सेज बिछाइ
करूँ जाकी मन राजी।"

एक ढोले में—

अरे छोरा तू अति कौ बड़ौ मलूक
इतनौ बड़ौ तौ कारौ चौं रहौ
अरे छोरी तू अति की बड़ी मलूक
इतनी बड़ी तौ कारी चौं रही।

'मोरा' नाम के गीत में—

जोइ जोइ भरै मोरा देइ लुढ़काइ
हटि हटि रे मोरा मेरी छोंड़ि दै गैल
मो घर सासु रिसायँगी जी
तिहारी सासु मेरी लगति हैं माय
आजु बसेरौ चम्पा बाग में जी।

स्थानाभाव से ये तीन ही उदाहरण पर्याप्त हैं। इनमें शब्दों द्वारा हृदय के भावों को व्यक्त करने का उद्योग नहीं। एक चित्र दिया गया है, उसमें से प्रेम की याचना सङ्कलित होती है। इस विधान में निश्चय ही लोक-कवि ने 'सुरुचि' का परिचय दिया है। इसी प्रकार सभी भावमय स्थितियों में यह लोक-कवि ऐसी ही युक्तियों से काम

लेता है। इन युक्तियों में सरलता और सुरुचि दोनों ही मिलती हैं।

३—जीवन की आवश्यकता की अनुकूलता—यह तत्त्व लोक-कला की यथार्थ मर्यादा निश्चित करता है। इसी के कारण इस कला में श्लील और अश्लील का मूल्य नहीं रह जाता। लोक-अभिव्यक्ति के रूपों की विभिन्नता इसी तत्त्व पर निर्भर करती है। इस अभिव्यक्ति में शास्त्रीय बन्धन इसी कारण नहीं रह सकता कि वह जीवन से अलग होकर अभिव्यक्ति को नियन्त्रित करता है। इस तत्त्व के कारण रूप में भिन्नता ही नहीं होती 'गीत' और कथन में 'लय' और शैली भी नियन्त्रित होती है। उसके अलङ्कारों की प्रेरणा मिलती है।

पहले और इस तीसरे तत्त्व के कारण ही लोक-साहित्य मूलतः तथाकथित साहित्य से कला में भिन्न हो जाता है।

लोक-कलाकार अपनी अपनी अभिव्यक्ति को जीवन की अभिव्यक्ति के समान सहज और सरल रखता है। वह उसमें उपयोगिता-अनुपयोगिता का भाव नहीं आने देता। कला के रूप अथवा धर्म के सम्बन्ध में यहाँ कोई उत्साह अथवा विवाद नहीं। अभिव्यक्ति की प्रेरणा जीवन के स्पन्दनों से मिलती है। उस अभिव्यक्ति में उक्त-तत्त्वों से कला की मर्यादा प्रतिष्ठित होती है और लोक-मानस रुचि और शैली को अपनी उसी सहज मर्यादा से निश्चित कर प्रकट कर देता है।

लोक-साहित्य में शैली और सुरुचि—जीवन का मार्ग विस्तृत, युग-युग से प्रवाहित, वैविध्यपूर्ण रहा है। उसी प्रकार लोक-साहित्य है। इसकी विविध शैलियों का न वर्गीकरण सम्भव है न यथार्थ परिचय ही। गीतों की शैली लें तो प्रतिपल पर और प्रति व्यक्ति के द्वारा उसमें भिन्नता प्रतिपादित दीखती है। फिर भी उन शैलियों में से कुछ प्रमुख शैलियों का उल्लेख यहाँ करना उचित होगा। यह हम देख चुके हैं कि जहाँ तक गीतों का सम्बन्ध है उनमें चार वर्ग होते हैं: १—अनुष्ठानिक, २—विशेष अवसरोपयोगी, ३—साधारण, ४—दीर्घ कथा युक्त। इन चारों वर्गों की शैलियों में स्वाभाविक अन्तर मिलता है। अनुष्ठान-सम्बन्धी गीतों की शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह 'यथातथ्य शैली' में होती है अनुष्ठान और तत्सम्बन्धी बातों और नेगों का उल्लेख इनमें रहता है। कुछ गीतों का निर्माण तो सम्भवतः इसीलिए हुआ है कि संस्कार की व्याख्या करदी जाय, जिससे उस संस्कार में किसका क्या कार्य और नेग है, और कौन-कौन से

	'रा' १	'सु' २	प (माध्यम) ३	पराक्रम ४	असन्तुष्ट ५	आपत्तियां ६
१ कथा	नल	१ मोतिनी २ दमयन्ती ३ हंस	१ गोट २ वैमाता	दाने का वध स्वयंवर वरण	सेठ पुत्र शनिः	समुद्र में गिरना बनवास दमयन्ती-त्याग
२ कथा	राम	सीता	विश्वामित्र	धनुष-भंग	परशुराम रावण	राज्य-त्याग सीता-हरण
३ कथा	अनिरुद्ध	ऊषा	स्वप्न-दर्शन	उषा के पिता का संहार		
४ कथा	ढोला	मारू	शुकः लाखा बंजारा करहा	राजा बुध के विरोध का निराकरण	रवा	१—सम्मोहन २—द्वार का गिरना
५ कथा	पृथ्वीराज	पद्मावती	शुक			
६ कथा	रत्नसेन	पद्मिनी	शुक	अनेकों आपत्तियाँ, पद्मिनी के पिता से युद्ध	राघव चेतन	१ अलाउद्दीन का आक्रमण २ रत्नसेन की कैद

[७ सहायक — वासुकि : कर्कोटक दूत सुग्रीव, लक्ष्मण गुरु, १ शुक गोरा-बादल

[८ मिलन — अन्त, मिलन, २ करहा

अनुष्ठान होंगे इनका स्मरण गीत द्वारा बना रहे। ऐसे गीतों में सीधे-सादे शब्दों में उन बातों का वर्णन कर दिया जाता है। अन्य अनुष्ठानिक गीतों में अनुष्ठान सम्पन्न कराये जाने का विवरण रहता है और प्रत्येक नई पंक्ति में किसी नये नाम को लेकर उसके द्वारा उस कार्य के सम्पादित होने का उल्लेख होता चलता है। अभिप्राय यह है कि इन गीतों में प्रकृत विषय को स्थूल शब्दों में बहुधा दुहरा-दुहरा कर प्रकट कर दिया जाता है।

विशेष अवसरोपयोगी गीतों में त्यौहार, व्रत और सामन के गीत जैसे गीत आते हैं। इनमें यथातथ्य प्रकृत विषय का वर्णन नहीं किया जाता, शैली का अंश उनमें आ जाता है। ऐसे गीतों में बहुधा यह बात तो आवश्यक रूप से मिलनी ही है कि उस अवसर सम्बन्धी चर्चा उसमें हो; प्रत्येक अवसर के अनुसार गीत की लय में भी अन्तर हो जाता है। लघु कथानकों का भी उपयोग होता है। व्रत आदि के गीतों में महात्म्य का उल्लेख भी मिल जाता है। जो गीत किसी देवी-देवता से सम्बन्ध रखते हैं, उनमें उनके प्रति भक्तों की मनोभावना, उनके चढ़ावे-पूजा और इष्ट के वैभव और कृपा का और उसके परिकर का उल्लेख रहता है। इन प्रकृत-विषयों का वर्णन करने के लिए वह शैली में गरिमा लाता है। शब्दों की खिलवाड़ तो नहीं रहती पर वर्णन में विशदता की ओर चेष्टा अवश्य रहती है। वह विशदता पूर्ण नहीं हो पाती, विशदता की ओर चल कर गीत रुक जाता है, और आगे की बात कहने लगता है। युक्ति का समावेश भी होता है। सामन के गीतों में ऋतु का भव्य वातावरण चित्रित रहता है। मन की उमंग इन गीतों की लहरियों में स्पन्दित रहती है। उन उमंगों में मन की भावना के सुन्दर चित्र रहते हैं।

साधारण गीतों में प्रायः यह टेकनीक काम में लायी जाती है:—प्रथम पंक्ति या टेक विषय से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। उसमें प्रकृति के किसी व्यापार का वर्णन रहता है; उसके बाद का विषय प्रकृत विषय होता है। इन साधारण गीतों में किसी स्फुट-भाव का कथन रहता है।

प्रबन्ध-गीतों में, जो महागीत होते हैं, उनमें पहले 'सरस्वती' और गुरु वन्दना का नियम रहता है। महाकाव्य की भाँति इन गीतों में कवि स्थल-स्थल पर विशद वर्णन प्रस्तुत करता है। ये वर्णन

बहुधा वस्तुओं की गणना के रूप में ही विशद नहीं होते, गति, रूप, स्थान, स्थिति का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं और स्थूल शब्दावली से सांकेतिक चित्रों द्वारा उन्हें भाव संपृक्त भी कर देते हैं। ऐसे वर्णनों के लिए वे लोकवार्त्ता, लोक विश्वासों का कोष विशेष प्रस्तुत करते हैं, उतना वैज्ञानिक आधार उनका नहीं होता। इन गीतों में जिन बातों का विशेष विशद चित्र दिया जाता है, वे बहुधा यों हैं—

१. राजा की सभा का
२. उपवन-बाटिका का
३. सेना का
४. यात्रा के समय शकुनों का
५. आपत्ति के समय की स्थितियों और मनोदशा का कठिनाइयों पर कठिनाइयों का
६. इष्ट से सहायता के लिए प्रार्थना का, और इष्ट की तय्यारियों और सहायता का।
७. विवाह के पूर्व के प्रेम और चौसर खेलने का—(नये प्रेमियों को सार-फाँसे अवश्य ही खेलने पड़ते हैं।)
८. ज्यौंनार और गालियों का।
९. कष्ट में किसी पुत्र के जन्म लेने का।

इन गीतों के लोक-कवि को मन-संभ्रम विशेष प्रिय है। वह 'कार्य' होने अथवा 'फलागम' प्राप्त होने के अवसर को बाल-बाल आगे हटाता चला जाता है। सुखान्त-भावना उसमें सदा रहती है। यही दशा कहानियों की रही है।

शैली का संविधान—जहाँ तक 'यथातथ्य शैली' का सम्बन्ध है, उसका संविधान अत्यन्त स्वाभाविक और सहज है। वस्तु के पूर्ण उल्लेख के लिए भी इसकी शब्दावली संकुचित रहती है। अन्य गीतों के शैली-संविधान में ये उपादान मिलते हैं :

१—वर्णन की प्रमुखता।
२—आरम्भिक पूर्ण पंक्ति शेष विषय से असम्बद्ध।
३—टेक में एक पुच्छवत् आधार।
४—एक ही भाव का नये-नये नामों के साथ दुहराना।
५—गीतों में एक कल्पित पूर्वापर सम्बन्ध की शृंखला।

६—स्थूल शब्द-संकेत-चित्रों से भावाभिव्यक्ति।

७—एक सम्बन्धी नातेदार अथवा प्रिय से कोई कार्य कराने या न कराने के उल्लेख के अवसर पर कुछ अन्य सम्बन्धियों पर भी पहुँचना और उनकी असमर्थता व्यक्त करना।

८—विविध वस्तुओं की गिनती कराना।

९—वनों के वर्णन के समय प्रायः तीन वनों का उल्लेख। एक बन और दो बन लांघ लिये जाते हैं, तीसरे में कोई घटना घटती है।

१०—कपड़ों में पाँचों कपड़ों का वर्णन होता है।

११—भोजन में लपझपी पूरियाँ, चावल आदि का विशेष उल्लेख।

१२—मोती के चौक पूरे जाते हैं।

१३—सुवरन थार और सोने की झारी रहती है।

१४—ताते-सीरे पानी का प्रबन्ध रहता है, उलटा पटा रखा जाता है।

१५—चम्पा अथवा लौंगों के बाग रहते हैं।

१६—कठिन कार्य के लिए बीड़ा डाला जाता है।

१७—मकानों पर चार बुर्ज बहुधा मिलेंगे।

१८—झँझँन किवाड़ होंगे।

१९—दीपक समस्त रात्रि जलेगा, (दिवल जरै सारी राति)

२०—पूजा में 'घी-गुरु' रहेगा।

२१—मैत्री के लिए पगड़ी पलटी जाती है।

२२—देवी-देवताओं तथा प्रेतों की सहायता की कल्पना।

२३—कहानियों में कहानियों की शृङ्खला।

२४—प्रतीकों का प्रयोगः—विशेषतः प्रेम को अथवा यौन-संकेतों को प्रकट करने के लिए।

सुरुचि—लोक-साहित्य के सम्बन्ध में साधारण धारणा यह है कि उसमें गँवारूपन रहता है। गँवारूपन का अभिप्राय है 'सुरुचि' का अभाव किन्तु परम्परित लोक-साहित्य में इसका किंचित् भी कोई

प्रमाण नहीं मिलता। उलटे भावानुरूप सुरुचि के आदर्शों की प्रतिष्ठा मिलती है। बड़े काव्यों में तो यह सब प्रचुरमात्रा में है। ढोला, हीररॉंझा, जाहरपीर आदि सब में यह बात मिलती है। 'जाहरपीर' में कहीं-कहीं केवल अक्खड़ शब्दों और अप-शब्दों का प्रयोग हो गया है। यह भी गीत के सौन्दर्य-विधान से पृथक प्रयोग हुआ है, इस प्रकार के प्रयोग में साधारणतः विशिष्ट गायक की अपनी प्रवृत्ति ही झलकती है। 'मोरा' नाम के गीत में जिस कला की अभिव्यक्ति हुई है, वह किसी भी ऊँचे साहित्य की शोभा की वस्तु हो सकती है। यही कला की उन्नत-पवित्र श्रेणी अन्य अनेकों लघु-गीतों में विशेषतः ढोलों में प्रकट हुई है।

अरे चंदा तेरी निरमल कहिए चाँदनी रे चंदा
राजा की रानी पानी नीकरी
अरे कुअटा तेरे ऊँचे नीचे घाट रे अरे कुअटा
छोरा कौ धोवै अपनी धोवती
अरे छोरा द्वै मारू बैंगन तोरिला, अरे छोरा
तौ जू मैं धोऊँ तेरी धोवती
अरे छोरी, तेरे गोबर सनि रहे हाथरी, अरी छोरी
दागु लगैगौ मेरी धोवती
अरे छोरा मेरे महँदी रचि रहे हाथ रे, अरे छोरा
रंग चुऐगी तेरी धोवती।

इस गीत में क्रमशः चंद्रमा की चाँदनी से, कुए पर दृष्टि पहुँचायी गयी है, फिर धोते धोते लड़का सामने आया है, तब छोरी और उसका प्रस्ताव। बैंगन तोड़ने, गोबर में हाथ सने होने, महँदी से धोती रँगने में अत्यन्त साधारण प्रतीकों के द्वारा प्रेम और पवित्र-चरित्र की अभिव्यक्ति है। यह कौशल अन्य साहित्यिक रचनाओं में कहाँ मिलेगा! यह सुरुचि का एक अच्छा उदाहरण है, और कला के विकास का स्वाभाविक रूप यहाँ मिलता है।

लोक-साहित्य में प्रतीक-प्रयोग—सुरुचि का संबंध सौन्दर्य की अनुभूति से भी है। लोक-साहित्य में सौन्दर्य की अनुभूति का कल्पना द्वारा विकसित रूप कम ही मिलता है। जीवन की मूर्त अभिव्यक्तियों के विधान में जो सहज-सौन्दर्य और पुष्ट सुषमा है, वह लोक साहित्य में प्रबलता से अभिव्यक्त हुई है। वह प्रबलता जीवनावेग की

द्योतक है और छन्द, गति, गीति, शब्द-साधन और वस्तु-वर्णन सबमें व्याप्त मिलती है। इन आवेगों को इतना प्रबल करके भी नग्न नहीं होने दिया गया। आवेगों को भव्य बना दिया गया है। यह भव्यता ही लोक अभिव्यक्ति की कला का मूर्धन्य है। यही सुरुचि और सौन्दर्य का यहाँ पर्याय है। यह भव्यता प्रतीकों का आश्रय अवश्य लेती है। लोक-साहित्य में यौन-भावों को प्रकट करते समय प्रतीकों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। 'चिड़ी तोड़ बामरिया भावे', 'नल को पानी व्हौत बुरौ मेरी तबियत घबरावे', 'मेरे पीहर में जलेबी लच्छेदार चना के लड़ुआ चों लायौ' 'सबज कबूतर', 'मटर पर अधर चलै चाकी' ये रसियों में आने वाले कुछ प्रतीक-रूप 'मुहावरे' हैं। रसियों में प्रबल आवेग के साथ ये 'प्रतीक' भव्यता भी देते हैं, और उद्दीपन भी बढ़ाते हैं। यह सुरुचि और सुषमा की पर्याप्त भव्यता लोक-साहित्य में सर्वत्र मिल जायगी। 'प्रतीक'—प्रयोग इस प्रकार भव्यता का एक महत्वपूर्ण साधन है। ऐसा प्रयोग शास्त्र का शुद्ध प्रतीक' प्रयोग नहीं माना जा सकता। सांकेतिक भाषा का समास-रूप प्रयोग ही यहाँ मिलता है। ऐसा प्रयोग लोक-साहित्य में किसी भी वस्तु में देखा जा सकता है। आध्यात्मिक भावों वाले गीतों में तो बड़े बड़े पूरे रूपक तक मिल जाते हैं। शरीर को महल का रूपक देकर उसम आत्मा की स्थिति का परिज्ञान कराने वाला गीत इसके लिए एक उदाहरण है।

लोक-साहित्य में अलङ्कार—इस विवेचन से यह ज्ञात होता है कि लोक-साहित्य में भव्यता के लिए 'प्रतीक'—प्रयोग 'समास' अभिव्यक्ति' में परिणत होता हुआ; साधारण अलङ्कार की स्थिति तक पहुँच जाता है। 'रूपक' एक अलङ्कार ही तो है। ये रूपक लोक-साहित्य में मिलते हैं पर अधिक नहीं। 'अन्य के द्वारा' प्रस्तुत को व्यक्त करने की उक्ति का विशेष प्रयोग हुआ मिलेगा। मोरा नामक गीत में 'मोरा' जैसे प्रतीक हैं वैसे ही 'अन्योक्ति' का भी माध्यम है। वह 'मोरा' क्या केवल वन का मोर है? वन के मोर के बहाने, 'अन्योक्ति' से किसी 'पुरुष'—विशेष को ही लक्ष्य बनाया गया है। पर 'मोरा' में 'श्लेष से 'मोरा' अर्थात 'मेरा अपना' यह अर्थ भी है, और इस दृष्टि से आध्यात्मिक-पक्ष में भी, 'अपनी-आत्मा की' अनुभूति का अर्थ देने में भी यह गीत दुर्बल नहीं है। 'मोरा' को,

'अहंकार' को मारा जा सकता है, पर 'आत्म-ग्लानि' 'मोरा की कुहक' तो मन में बस गयी है, वह अब नष्ट नहीं हो सकती। योगी के 'अनहद नाद' से भी प्रबल यह 'आत्म-ध्वनि' है। इस 'मोर' से और इसकी कुहक से परिचित होने पर कुछ भी नहीं सुहाता, और न इस की मूर्त-योजना ही आकर्षित करके मन-तोष कर सकती है, 'अनित्य' से प्रेम नहीं रहता। 'मोरा' में जो कला-विकास है, अलङ्कार-विधान है, वह कम बढ़ रूप में लोक की समस्त अभिव्यक्तियों में मिल जाता है। यह विधान निश्चय ही लोक-साहित्यकार की चेतन-वृत्ति से उतना नहीं हुआ जितना 'जीवन, प्रकृति, शब्द और अर्थ के यथार्थ 'एकीकरण' 'अपार्थक्य' के कारण सम्भव हुआ है। 'जीवन' की अभिव्यक्ति जीवन की निजी स्थिति के अनुरूप कभी 'एकांगी' रह सकती है! इसी दृष्टि से लोक-साहित्य में उपमा का प्रयोग भी बहुत मिलता है। समस्त अलङ्कारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा ही सबसे स्वाभाविक अलङ्कार है। वस्तुओं को हृदयङ्गम करने में इनसे पूरी सहायता मिलती है। ये वस्तुओं के रूप, आकार-प्रकार, गति, स्थिति सभी का पूरा चित्र प्रस्तुत कर देते हैं—उक्ति-वैचित्र्य और सादृश्य इन दोनों से संबंधित अलङ्कार ही इस स्वाभाविक साहित्य में विशेष मिलते हैं।

रस—'रस' की प्रतिष्ठा लोक-साहित्य में सबसे अधिक मिलती है। पर इस लोक-साहित्य में 'रस-प्रतिष्ठा' की स्थिति मनीषी-साहित्य से भिन्न प्रकार की होती है। यहाँ पर 'रस' उतना 'वस्तु-सामग्री' में शास्त्रीय उपादानों से परिपक्व नहीं होता, जितना 'अभिप्रेत' रहता है, और गीत की लहरियों की उद्दाम गति से परिपुष्ट रहता है। रस की स्थिति 'मूर्त-वर्णन' में गर्भित संकेतों से होती है। प्रबंध गीतों में सभी रसों का प्रवाह स्थान-स्थान पर होता है। 'वीभत्स रस' चट्टा के गीतों में फूहड़ की के चित्रण में विशेष हुआ है। 'अद्भुत' का प्राधान्य टेसू के गीतों में है। भ्रातृ-वात्सल्य और शृङ्गार श्रावण के गीतों में वेग से प्रवाहित मिलता है। फाल्गुण के गीतों में भी शृङ्गार ही प्रधान है। श्रावण में कोमलता सरसती है, फाल्गुण में ओज रहता है। संस्कारों के गीतों में वस्तु में रस का परिपाक अथवा उसके संकेत भी नहीं रहते। एक विशेष प्रकार की वर्णनात्मकता रहती है, हाँ उल्लास रहता है, वह भी गीतों की कण्ठ-स्वर लहरी में ही विशेष रहता है। कहीं-कहीं हलके भय का संचार मिल जाता है, और कहीं-कहीं ऐसे ही

हास्य का। हाँ, जन्ति के गीतों में रस मिलता है पर वह रस जटिल होता है, जिसमें वात्सल्य, भगिनि-भ्रातृ-प्रेम, ननद-भावज का झगड़ा विशेष रहते हैं। इस रस की स्थायी भावना 'स्नेह' की भावना मानी जा सकती है, जो दाम्पत्य-रति और वात्सल्य-भाव दोनों से पृथक है। यह सब होते हुए भी यह यथार्थ है कि 'साहित्याचार्यों' के 'नवरस' विधान से लोक-साहित्य के रस-विधान का प्रश्न सुलझता नहीं। लोक-साहित्य में इतना 'भाव' का परिपाक नहीं होता जितना हृदय की वृत्ति का उद्गार। भाव और वृत्ति में हमें अन्तर करना होगा। भाव तो 'नौ' और अधिक से अधिक ग्यारह-बारह तक शास्त्रियों ने स्वीकार किए हैं। ये मन की अन्तरंग-स्थिति के द्योतक हैं। ये मन के भावों के सूक्ष्म विश्लेषण के द्वारा निश्चित किये गये हैं। ये विविध भाव-लहरियों से परिपुष्ट होते हैं। ये भाव-लहरियाँ सूक्ष्म और अत्यन्त गम्भीर होती हैं, ये प्राणों से सम्बन्धित मानी जा सकती हैं। किन्तु लोक-कवि के यहाँ इनका इतना सूक्ष्म महत्त्व नहीं। उसकी अभिव्यक्ति में ऐसे सूक्ष्म-भाव जहाँ तहाँ क्षणिक संचार कर जाते हैं, स्थायी नहीं हो पाते। इन भावों से ऊपर और स्थूल है हृदय और मन की विशेष अवस्था, यह विशेष अवस्था वृत्ति है। यह स्थूलता तीन प्रकार की ही होती है। उल्लासावस्था, ओजावस्था, क्षोभावस्था। उल्लास में प्रेम, हास-परिहास, वात्सल्य, भगिनि-भ्रातृ-स्नेह, ननद-भावज का प्रेम, रति, ऐश्वर्य-वैभव से उत्पन्न मनोस्थिति आदि का समावेश होता है। ओज में वीरता, उत्साह, अद्भुत, रौद्र आदि भावों का संचार होता है। ओज में आवेग की उद्दामता रहती है, उल्लास में आवेग की उदात्तता; क्षोभ में भय, व्रीड़ा, करुणा, निराशा आदि संचार करते हैं। इसमें आवेग में अवरोध रहता है। लोक-साहित्य में उल्लास, ओज और क्षोभ ही हृदय की तीन-वृत्तियों के रूप में विविध सूक्ष्म स्थूल भावों के सञ्चार से पुष्ट होते हुए 'रस' का आनन्द प्रस्तुत करते हैं लोक-रस में एक विस्मय सर्वत्र अन्तर्व्याप्त मिलता है।

लोक-साहित्य में चरित्र—यहाँ तक हमने लोक-साहित्य के रूप और रस की समीक्षा की है। रूप से भी महत्त्वपूर्ण है 'वस्तु'। वस्तु हमें जीवन की सीमाओं का ज्ञान कराती है। वस्तु में पात्र और परिस्थिति—पुरुष और प्रकृति का समावेश होता है। 'पुरुष' लोक-साहित्य तथा अन्य साहित्य में पात्रों का रूप ग्रहण करता है, और

उसके विवेचन का अर्थ है 'चरित्रों को हृदयंगत करना। लोक-साहित्य में चरित्रों के जो प्रकार मिलते हैं उन्हें हम यहाँ नीचे देते हैं—

१—साधारण स्फुट गीतों में, जो स्त्रियों में गाये जाते हैं, 'ननद' मिलती है। यह 'ननद' भावज के पुत्र होने की कामना करती है। पुत्र होने पर भावज से अपना नेग माँगती है। भावज जब नहीं देती तो रूठती है, यहाँ तक कि कभी-कभी शाप भी देती है। भावज जब उसे मनचाही वस्तु दे देती है, वह प्रसन्न हो जाती है, आशीर्वाद देती है। 'ननद' नेगों के लिए लड़ने वाली है पर उदार-हृदया है। वे भावज को सोने की कौंमरी लौटा देने को प्रस्तुत है। कहीं कहीं 'ननद' भाई से भावज की चुगली खाने का काम करती भी दीखती है। भावी के पुत्र-जन्म की सूचना मिलते ही, निमन्त्रण न होने पर भी 'ननद' भावज के घर जा धमकती है।

२—भावज को लोक-गीत में बहुधा संकुचित हृदय वाली बताया है। वह ननद को उससे बढ़ी हुई वस्तु नहीं देती। 'ननद' घर आती है तो उसे भाई से मिलने तक नहीं देती। भाई बाहर गया हुआ है, तो घर में पैर नहीं रखने देती। ननद अपने अधिकार का बल दिखाकर रहना भी चाहती है, पर क्या यह उसके लिये यथार्थ में संभव है ? इस भय से कि 'ननद' कुछ मांगेगी, भावज यह चेष्टा करती है कि 'ननद' को पुत्र-जन्म की सूचना न मिले, उसे निमन्त्रण न दिया जाय। किन्तु बिना निमन्त्रण जब 'ननद' आ पहुँचती है तो भावज को यह कहने में लज्जा नहीं आती कि तुम बिना बुलाये क्यों चली आयीं ? भावज के संकुचित हृदय की पराकाष्ठा यहाँ देखने को मिलती है जहाँ वह 'ननद' के यहाँ भेजी हुईं कौंमरी लौटा देती है। हाँ छोटी 'ननदुलि' भावज के साथ उसके खेल में हाथ बँटाने वाली होने से प्रेम की पात्रा हो सकती है, पर वहाँ भी लड़ने-भिड़ने या धमकाने का भय दिखाया गया है।

३—भाई-बहन—ब्रज के समस्त लोक-साहित्य में भाई-बहन के प्रेम का अपूर्व रूप मिलता है। बहिन भाई का पूरा सत्कार करती है, बड़े यत्न से उसके लिए भोजन-सामग्री प्रस्तुत करती है। वह उसके लिए तरसती है। एक कहानी में तो बहिन को भाई की रक्षा के लिए हम सब कुछ त्यागकर तत्पर पाते हैं। वह घर-बार छोड़कर पागलों की भाँति व्यवहार करती हुई भाई को कितनी ही आपत्तियों से बचाती

है। बहिन के प्रेम से गीत परिपूर्ण हैं। भाई भी बहिन का उतना ही ध्यान रखता है। वह बहिन के लिए अपनी हठीली स्त्री तक को त्याग देने को तत्पर है। बहिन जो माँगती है उसे वह दिलाता है। प्रेत योनि में होने पर भी बहिन को भात देने पहुँचता है। यह सब होते हुए भी बहिन के प्रेम में विशेष त्याग और भाव सम्पन्नता है। भाई के नाते की पवित्रता और दृढ़ता को पशु-पक्षी भी पुष्ट ही करते हैं।

४—स्त्री-चरित्र—स्त्री-चरित्रों का एक प्रकार 'चन्द्रावली' के रूप का माना जा सकता है। यह स्त्री कुल-मर्यादा और प्रतिष्ठा को प्राणों से बढ़कर समझती है। मुगल के हाथ में पड़ जाने पर स्वयमेव जलकर भस्म हो जाती है। चन्द्रावली का चरित्र असहाय स्त्री के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है। चन्द्रावली गृहस्थ बाला है, उसके चरित्र का मूलाधार गृहस्थ-धर्म है, प्रेम नहीं। उसमें 'पातिव्रत्य' है, पर वह 'पातिव्रत्य' घर की मर्यादा का एक अङ्ग है।

लोक-साहित्य द्वारा प्रस्तुत किये स्त्री-चरित्रों में से उस स्त्री का चरित्र विशेष आकर्षक है जिसने पति को देखा नहीं। पानी भरते समय कुँए पर एक व्यक्ति आ जाता है। वह उससे कहता है तुम्हारी सब सखियाँ प्रसन्न हैं, तुम क्यों उदास हो, तुम्हारा पुरुष नहीं है, चलो मैं तुम्हें ले चलूँ। वह उसे पर-पुरुष समझ कर उसे भला-बुरा कह कर घर आती है। माँ से उसे पता चलता है कि वही उसका पति है। 'पति' में उसे भक्ति है, यह पति उसके लिये भगवान की भाँति है। अप्रत्यक्ष है पर पूजा का भाजन है। अनजाने वह अपने पति की भर्त्सना कर बैठती है, पर वह पति को 'पर-पुरुष' समझ कर ही ऐसा करती है। उसका पातिव्रत्य अखण्ड रहता है। यह बाल-विवाह के परिणाम का एक चित्र है। ढोला में 'मारू' का भी विवाह बाल-विवाह है।

'मारू' ने ढोला को नहीं देखा। ढोला ने मारू को नहीं देखा। 'मारू' अपने सती-धर्म को किञ्चित भी लांच्छित नहीं होने देना चाहती। ढोला की पूरी परीक्षा करने के उपरान्त आश्वस्त हो जाने पर ही वह उसके समक्ष उपस्थित होती है। उसका 'सत्' सीता के 'सत्' की भाँति जाग्रत है।

सतियों की विविध कल्पनाएँ लोक-साहित्य में की गयी हैं। इन सतियों को बहुधा अपने सत की परीक्षा देनी पड़ी है। 'सत्' की

परीक्षा के लिए 'सीता' को एक बार अग्नि में प्रविष्ट होना पड़ा, दूसरी बार उसी परीक्षा में वे पृथ्वी में समा गयीं। सीता के पृथ्वी में समाने में 'सत्' की परीक्षा से अधिक क्षोभ की मात्रा थी। ब्रज के स्फुट गीतों में क्षोभ को ही प्रधानता दी है, 'सत' को नहीं। राम को देखते ही वे पृथ्वी में समा जाती हैं, राम दौड़ते हैं तो उनके हाथ में केवल बाल पड़ते हैं। मारू को अपने सत की परीक्षा देने के लिए कच्चे सूत से कच्चे घट में कुएँ से पानी खींच कर ढोला को पिलाना पड़ा है, फिर कुएँ के पानी को ही सत से उसने उमँगा दिया है। 'हीर' और 'मारू' का रूप प्रायः एक सा है। 'हीर' में अलौकिक व्यक्ति-परक प्रेम की प्रबल अभिव्यक्ति है। मारू में इसी व्यक्ति-परक प्रेम को सम्भ्रान्त और अधिक गम्भीर बना दिया गया है। सारङ्गा-सदावृक्ष में 'सत' प्रेम में घुल गया है; इस कहानीकार ने प्रेम का जन्म-जन्मान्तर का रूप प्रस्तुत कर दिया है। 'सत' में शक्ति भी है। सती के स्पर्श से दलदल में फँसा जहाज चल देता है, सूखे तालाब में जल आ जाता है, सती पर सिद्ध पुरुष के शाप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता सती अपने मृत पति को 'सत' के बल से और सुश्रूषा से पुनरुज्जीवित कर लेती है।

सत की रक्षा के लिए स्त्री को हम कौशल का उपयोग करते भी पाते हैं। कथासरित्सागर की उपकोशा की भाँति ही 'ठाकुर रामपरसाद' नामक कहानी की नायिका है। हीरे की कनी, तथा आग के द्वारा प्राण गँवाकर रक्षा करने में भी लोक-साहित्य की स्त्रियाँ नहीं चूकीं। 'सत' की रक्षा के लिए एक विधान छः महीने अथवा एक वर्ष की अवधि का रहा है। इस बीच में सती अपने पति की खोज का प्रबन्ध करती है, अथवा अपने यहाँ ऐसा आयोजन करती है कि वह पति आकर मिल जाय। सदावर्त बाँटना, अपनी मूर्ति खड़ी करना, विशेष कहानी सुनाने वाले को पुरस्कार देना, चूड़ियाँ पहनना और फोड़ना आदि कितने ही आयोजन इसी निमित्त आये हैं।

'सत' और 'प्रेम' दो पृथक तत्व हैं, उसे लोक-साहित्य में स्त्री-चरित्र से स्पष्ट किया गया है। "यह तो वह क्यों?" में स्त्री अपने प्रेमी के लिए तो पुत्रों को मार डालती है। प्रेमी की भर्त्सना पर उसे भी मार कर गाड़ देती है। रहस्य खुलते देख पति को मार कर सती हो जाती है, पति के साथ भस्म हो जाती है। एक पुरुष इस भेद को

जान कर आश्चर्य करता है, और उसे जिज्ञासा होती है। उस जिज्ञासा के समाधान में वह स्वयं प्रेम में ग्रस्त हो अपने बालकों को बलि दे देने को प्रस्तुत हो जाता है। वहीं वह प्रेम की अनुभूति पाता है।

'मोतिनी' भी स्त्री-चरित्र में महत्त्व रखती है। वह पतिव्रता है, पर आनवाली है। उसका पति जिस समय अपने वचन को भङ्ग कर दूसरे विवाहार्थ सिर पर मौर रखता है, उसी समय वह प्राण त्याग देती है। मृत्यु के उपरान्त भी वह पति की सहायता निरन्तर करती है।

'स्त्री-चरित्र' शब्द के अभिधार्थ से अतिरिक्त मुहाविरे के अर्थ में 'स्त्री-चरित्र' से स्त्री के छल प्रपञ्चमय व्यवहार का ज्ञान होता है। 'स्त्री-चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवं न जानाति कुतः मनुष्यः'। तथा त्रिया चरित जाने नहिं कोई, खसम मारि कैं सत्ती होई' आदि कथनों में स्त्री-चरित्र अथवा त्रिया-चरित्र की जिस अगम्यता की ओर संकेत किया गया है, वह उसके प्रेम सम्बन्धी-चरित्र की ही अगम्यता है। लोक-साहित्य में ऐसे कितने ही स्त्री-चरित्र हैं जो पर-पुरुषों से प्रेम करते हैं। इन पर-पुरुषों में साधू, कोढ़ी तथा अपाहिज भी हो सकते हैं। स्त्रियाँ इस प्रेम के लिए अपने पति को अपने हाथ से मारती हुई भी मिलती हैं। किस्सा तोता-मैना में तो तोता और मैना में यह स्पर्धा है कि एक स्त्री के चरित्र-दोष अधिक सिद्ध करे, दूसरी पुरुष की चरित्र-हीनता दिखाये। इन किस्सों में अश्लीलता की मात्रा विशेष है, और सुरुचि का लोक-वार्त्तानुरूप भाव नहीं। ये किस्से फलतः विलासी नागरिक लोक का साहित्य है।

५—पुरुष-चरित्र—पुरुष-चरित्रों में हमें ऐसे राजकुमार मिलते हैं, जो घर से केवल साहस-पूर्ण कार्य करने के लिए निकल पड़े हैं। ये एकानेक कठिनाइयाँ झेलते है, अनेकों का कष्ट दूर करते हैं। ये भाग्य-वादी भी होते हैं, पर अपना उद्योग भी करते हैं। विशेष सङ्कट में अपनी शक्ति से काम न लेकर किसी देवी-देवता या प्रेत को पुकारते हैं और उसकी सहायता प्राप्त करते हैं। मित्र भी यहाँ ऐसे हैं जो विशेष कौशलों के जाननेवाले हैं, और एक दूसरे के कष्ट में सहायक होते हैं। कठिन परिश्रम करके ये विविध कार्य सम्पादित करते हैं। ऐसे ठग मिलते हैं जो चतुराई में बड़े-बड़े चतुरों के कान काटते हैं, ऐसे सेवक मिलते हैं, जो स्वामी के हित असम्भव कार्यों को ही पूरा नहीं करते, स्वामी

की प्राण रक्षा के लिए प्रसन्न-चित्त अपने समस्त कुटुम्ब को बलि चढ़ा देते हैं। ऐसे राजा मिलते हैं जो रात में छिपकर प्रजा के दुःख सुख को प्रत्यक्ष देखते हैं और सहायता पहुँचाते हैं। ऐसे सिद्ध और सन्त मिलते हैं जो चमत्कार दिखाते हैं, भक्तों पर अपना आतङ्क जमाते हैं, सेवा-सुश्रूषा से प्रसन्न होकर सन्तान का वर, अथवा मनचाही वस्तु को प्राप्त करने की युक्ति बता देते हैं। ऐसे प्रेमी मिलते हैं जो स्वर्ग तक से प्रमिका को प्राप्त कर लाते हैं, ऐसे प्रेम-पात्र मिलते हैं, जिन्हें एक से अधिक स्त्रियाँ प्रेम करती हैं, और अपने अधिकार में रखना चाहती हैं।

६—देव तथा दानव-चरित्र—लोक-साहित्य में देवों तथा दानवों (दानों) का भी बाहुल्य रहता है। शिव-पार्वती, देवी, दर्शराय, विष्णु, वैमाता, नारद, भगमान, इन्द्र, अप्सरायें, तो देवयोनि से सम्बन्धित पात्र हैं। दाने तो अनेकों हैं। ये नायक के हाथों मारे जाते हैं। इनके प्राण बहुधा किसी अन्य वस्तु में रहते हैं।

इनमें आदर्श-प्रतिष्ठा—चरित्रों के इस परिचय से स्पष्ट है कि लोक-साहित्यकार ने सहज रूप में अपनी कला में आदर्शों की प्रतिष्ठा कर दी है। घटना-वैचित्र्य में से हमें कहानियों में आदर्श की प्रतिष्ठा होती मिलती है। स्त्रियों में सतीत्व, कुल-मर्यादा, प्रेम पर बलि होने की भावना, भाई के लिए अपूर्व त्याग, पति-भक्ति, वात्सल्य के आदर्श रूप बिखरे मिलते हैं। पुरुषों में पितृ-भक्ति, मित्र-प्रेम, पर दुःख कातरता, उपकार-भावना, साहस, आपत्ति में धैर्य, अवसर पर तत्पर-बुद्धि, तप की प्रतिष्ठा, स्वामि-भक्ति, के श्लाघनीय रूप मिलते हैं। इन आदर्शों में चरित्र की सूक्ष्मता भी दिखायी गयी है। क्या प्रेम, क्या पातिव्रत्य, क्या स्वामि-भक्ति क्या पितृ-भक्ति सभी में इन भावों के स्थूल-रूप ही नहीं मिलते, इनके सूक्ष्म-तत्त्व भी प्रकट हुए हैं। हरिश्चन्द्र की सत्य-परीक्षा में, भारू की सत्य-परीक्षा में, मारू की सत-परीक्षा में, मोरा के द्वारा प्रेमाभिव्यक्ति में यह तथ्य सिद्ध हुआ मिलता है।

मनोवैज्ञानिक तत्त्व—लोक-साहित्य साधारण जनता का साहित्य है और यह साहित्य उन्हें अति प्रिय भी है। कोई भी अभि-व्यक्ति उस समय तक ग्राह्य नहीं हो पाती, जब तक कि वह किसी न किसी रूप में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को सन्तुष्ट न करती हो। लोक-साहित्य की लोक-प्रियता यह सिद्ध करती है कि इस साहित्य में

स्वभावतः कोई मनोवैज्ञानिक तत्त्व विद्यमान है। मनोविज्ञान के हमें दो रूप मिलते हैं : एक व्यक्ति-मनोविज्ञान, दूसरा सामूहिक मनोविज्ञान। व्यक्ति मनोविज्ञान में व्यक्ति के मानस की प्रक्रियाओं पर विचार किया जाता है। लोक-साहित्य में इस व्यक्ति के मनोविज्ञान के आधार पर तीन स्तर मिलते हैं :

एक वह मनोवैज्ञानिक स्तर है जिसे आदिम-मानव के मानस का अवशेष कह सकते हैं। आदिम मानव के भावों की भाँति इस साहित्य में हमें ऐसा साहित्य मिलता है जिसमें कार्य-कारण परम्परा से रहित विश्वासों का समावेश है। ऐसे विश्वासों में ही वह समावेश है जो अपने चारों ओर के पदार्थों में ऐसी शक्तियों के दर्शन करता है जो उसे हानि पहुँचा सकती है। इस विश्वास के साथ उसके मन के भय बँधे हुये हैं। इन शक्तियों को वह मनतः प्रसन्न कर देना चाहता है अथवा अनुष्ठान से उन्हें कीलित कर देना चाहता है। यह तान्त्रिक स्थिति ऐसे साहित्य को अत्यन्त रूखे-सूखे इतिवृत्तात्मक पुनरुक्तियों से युक्त बना देती है। किसी वस्तु के स्पर्श करने, किसी वस्तु के खाने, किसी वरदान से सन्तान उत्पन्न होने का विश्वास भी इसी कोटि का है। किसी के स्पर्श से, अथवा रक्त-बूँद से प्राण-प्रतिष्ठा भी ऐसे ही विश्वासों के अन्तर्गत है।

लोक-साहित्य में इन बातों की प्रचुरता है और वे आज भी लुप्त नहीं हो पायीं। यही बात यह सिद्ध करती है कि मनुष्य के मन में आदिम-संस्कारों का कोष विद्यमान है, और वे उसकी बौद्धिक उन्नति के पीछे ठोस भित्ति की भाँति खड़े हुए हैं। भय की जड़ें बहुत गहरी हैं, जीवन-विज्ञान में बौद्धिक आस्था भी इस भय की जड़ों को नहीं उखाड़ सकी है और न वह उन टोटकों को ही मिटा सकी है जो इस भय के समाधान के लिए अनिवार्य रहे हैं।

दूसरा मनोवैज्ञानिक स्तर वह है जिसमें प्रथम बौद्धिक उन्मेष की झाँकी है। इसमें 'कार्य-कारण' की व्यवस्था 'कल्पना' से हुई है। 'अद्भुत' का तत्त्व अत्यन्त प्रबल हुआ है। यही मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति कथा-कहानियों के रूप में प्रतिफलित हुई है; इसी से असम्भव सम्भावनाएँ और विषम स्थितियों का समीकरण कहानियों में हो जाता है। इस स्तर की वस्तुओं में 'भावमयता' का पुट कम रहता है।

तीसरा मनोवैज्ञानिक स्तर है 'भावमय' अभिव्यक्ति का। इस

स्तर पर मनोवेगों का उद्दाम उद्वेग लोक-साहित्य में होता है। भाव-प्राबल्य और गति इसके विशेष लक्षण हैं। 'काम' इन समस्त मनोवेगों के मूल में रहता है। यह प्रकृति की भूमि के दर्शन में पुरुषों का चित्रण प्रस्तुत करता है।

सामूहिक मनोविज्ञान की दृष्टि से लोक-साहित्य में वे गीत विशेषतः आयेंगे जो समूह के द्वारा गाये जाते हैं। सामूहिक मन मन्थरता नहीं चाहता, अधिक उतार-चढ़ाव भी उसे नहीं रुचता। यह तो गीतों की रूप-सृष्टि से सम्बन्धित तत्त्व हैं। इसी तत्त्व के फल-स्वरूप स्त्रियों के ढोले, पुरुषों के रसिये, होलियाँ तथा भजन हैं। सामूहिक मन व्यक्ति-मन से निश्चय ही भिन्न होता है। जो बातें व्यक्ति अपनी मर्यादा के अनुकूल नहीं समझता, जिन्हें व्यक्त करते अकेले उसे लज्जा प्रतीत होती है, उन्हीं बातों को समूह में मिलकर कहने-करने में उसे संकोच नहीं रहता। गालियाँ तथा अश्लील यौन वर्णन सामूहिक अभिव्यक्ति में ही सम्भव हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सभी सामूहिक अभिव्यक्तियाँ ऐसी ही होती हैं। कोई गीत अपनी लय के रूप के कारण सामूहिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है, कोई गीत उद्दाम भावों के कारण समूह-मन को भाता है, कोई उद्दीपक भावना के कारण। केवल कुछ गीत अश्लील होते हैं। सामूहिक गीतों में वस्तु की दृष्टि से कोई कथा-भाग भी ले लिया जाता है। लोक-गीत अधिकांशतः सामूहिक होते हैं। पर उनमें व्यक्ति-मनोविज्ञान के उपरोक्त तीनों स्तर मिल जाते हैं। यथार्थतः व्यक्ति समूह के अन्तर्गत ही उक्त तीनों स्तर प्राप्त करता है। अकेला 'व्यक्ति' बौद्धिक विशेष रहता है और उसे सामूहिक मनोवृत्ति से घृणा होती है। पर समूह में वह उस बौद्धिकता को त्याग देता है।

पुरुष स्त्री तथा बालक—गीतों तथा कहानियों के विवेचन में हमने देखा है कि गीतों का एक वर्ग पुरुषों से सम्बन्ध रखता है, पुरुष उन्हें गाता है। पुरुष के गीतों में दीर्घवृत्त, विशेष उद्दाम आवेग, अति ओज, तथा स्वर का उग्र आरोह होता है। स्त्रियों के गीत लघु-काय होते हैं, आवेग दृढ़ होता है, पर तीव्र नहीं होता, ओज प्रायः नहीं होता, स्वर में आरोहण की गति मन्थर होती है। यह भी हमने देखा है कि बालक-बालिकाओं के गीत भी होते हैं। पुरुष और स्त्रियों के गीतों के चरण लम्बे होते हैं, बालक-बालिकाओं के गीतों के चरण

लघु-लघु होते हैं, वृत्त भी लघु होता, और लघुकाय होता है। उतार-चढ़ाव आरोह-अवरोह का अभाव रहता है। गति चञ्चल पर दृढ़ रहती है। स्त्रियों के गीतों में उनके लोक की ही सामग्री रहती है, अधिकांशतः इन गीतों में नाते-रिश्तों का उल्लेख, नेगाचार, आभूषणों तथा भोजनों का वर्णन, टोटकों का अनुष्ठान, छोटी-छोटी प्रेमकथायें, परिपाटी से प्राप्त स्मृति का समावेश रहता है। इनमें कम से कम परिवर्तन होता है, पुनरावृत्तियाँ भी रहती हैं। जो नये गीत स्त्रियों में गाये जाते हैं वे या तो भक्ति-प्रधान होते हैं या किसी भी सामयिक विषय पर हो सकते हैं। पुरुष के गीतों में विस्तृत भूमि रहती है, कथायें बहुत बड़ी हो सकती हैं; उनमें प्रेम-कथा की मुख्य वस्तु रहती है, पर वह वस्तु विविध घटनाओं और रसों की स्थिति में से जाती है, अद्भुत कर्मों से यह परिपूर्ण रहती है। स्त्रियों की प्रेम-कथाओं में प्रधानता अत्यन्त साधारण पात्रों की रहती है, धोबिन, बनजारा आदि की। पुरुषों के गीतों में यह बात नहीं होती। स्त्रियों के गीतों के प्रधान भाग में राम-सीता, कृष्ण और राधिका तथा गोपियों का उल्लेख नहीं होता। पुरुषों के आवेगमय गीतों में 'राधा-कृष्ण' का प्राधान्य हो जाता है। पुरुष अन्य पौराणिक वृत्तों को भी स्थान देता है। स्त्रियों के समस्त आनुष्ठानिक तथा साधारण साहित्य में भी पौराणिक वस्तु नहीं दिखाई पड़ती। जो थोड़ी बहुत ऐसी वस्तु मिलती है, वह स्त्रियों के उन गीतों में मिलती है जो खेल के गीत कहलाते हैं और जिनकी स्त्री-गीत-संविधान में कोई अनिवार्यता नहीं, और जो मनोरञ्जनार्थ बाहर से लिए गये माने जा सकते हैं।

बालक-बालिकाओं के गीतों में कल्पनाओं की अद्भुत विडम्बना दिखायी पड़ती है। वृत्त लघु होते हैं। और बिल्कुल कल्पना से गढ़े हुए होते हैं। इनमें कोई भी पौराणिक वृत्त नहीं मिलता। पशु पक्षियों को अच्छा स्थान मिल जाता है। पक्षियों की फुदकन और उड़ान के समकक्ष ही इन गीतों में फुदकन और उड़ान रहती है। बाल-मनोवृत्ति के अनुकूल इनके साहित्य में त्रिविध वस्तुओं का परिचय रहता है, स्मरण और आकर्षण की सुविधा के लिए चरणों की पुनरावृत्ति रहती है। पुरुष-स्त्री और बालकों की मनोवृत्तियों की स्थूल अनुरूपता इनमें मिलती है।

यौन-तत्त्व—स्त्री और पुरुषों के विविध सम्बन्धों का वर्णन

लोक-साहित्य में निरन्तर मिलता है। इनमें यौन-संकेत आते हैं। पर संयम और सुरुचि के साथ ही आते हैं। अत्यन्त उद्दाम उद्दीप्ति की अवस्था में ही लोक-साहित्य नग्न यौन-वर्णन में प्रवृत्त होता है, और इस वर्णन में प्रवृत्त होने पर फिर उसके लिए कोई आवरण नहीं रह जाता। इस अवस्था में भी वह यौन अङ्गों का उल्लेख मात्र करके रह जाता है। यौन-संपर्क की चाह अथवा यथार्थ सम्पर्क को वह संकेतों से ही प्रकट करता है। वह पंतजी की भाँति अथवा प्रसादजी की भाँति रति की गति-विधि में नही फँसता। उसकी अधिकांश स्थिति उद्दीपक वर्णनों तक ही रहती है। वह उद्दीपक-साहित्य भी लोक-साहित्य-सागर में एक बहुत छोटा अंश है। और ऋतु-अनुकूल ही उद्भासित होता है। स्त्रियों में यह उद्दीपक-साहित्य बहुधा श्रावण में अथवा विवाह के अवसरों पर, पुरुषों में बहुधा होली के अवसर पर बसंत ऋतु में।

जाति विज्ञान तथा नृ-विज्ञान के तत्व—ब्रज में प्राप्त लोक-साहित्य में नृ-विज्ञान और जाति-विज्ञान की सामग्री उस परिमाण में नहीं मिलती, जिस परिमाण में यह किसी जङ्गली जाति में मिल सकती है। ब्रज-क्षेत्र भारत की अत्यन्त प्राचीन-कालीन संस्कृति का प्रदेश है, और मनीषियों का गढ़ रहा है। एकानेक संस्कृतियों का यहाँ संघर्ष हुआ है। अतः समस्त सामग्री मिली-जुली हो सकती है। फिर भी कहीं कहीं कुछ संकेत इस विषय में मिल जाते हैं। इस सामग्री को भी हम कई स्तरों में बाँट सकते हैं।

पहला स्तर—१—वर्द्ध मूत्र के स्पर्श मात्र से गर्भाधान। संतान के लिए पुरुष और स्त्री संयोग में किसी कार्य-कारण-परम्परा की मान्यता न होना।

२—अपने चतुर्दिक आंधी, पानी, भूमि, आकाशीय व्यापार में सजीव मानवीय अपने जैसे कर्त्तृत्व का परिज्ञान और उनसे हानि की आशङ्का और भय, पशु-पक्षियों के बोलने का विश्वास यहीं से।

दूसरा स्तर—१—रक्त में प्राण-तत्व का विश्वास। पत्थर रक्त से छू दिया जाय तो प्राण-वान हो जाय। पुतले में रक्त की बूँद डाल दी जाय तो पुतला सजीव हो जाय, मृत पुरुष के मुख में रक्त बूँद डाल दी जाय तो वह जी पड़े।

२—समान-धर्मी अथवा सहजात, अथवा अंगागी में अनिवार्य सम्बन्ध : मा के दूध से भरा कटोरा पुत्र पर सङ्कट के समय खून बन जायगा; मित्र का दिया हुआ फूल कुम्हिला जायगा, आदि।

३—प्रकृति में दिव्यता का भाव।

तीसरा स्तर—१—प्राण-तत्व की पृथक प्रतिष्ठा। किसी चिड़िया में, किसी पदार्थ में, तलवार की मूठ आदि में।

२—'प्राण-तत्व' की शरीर से पृथकता। सत्यवान के शरीर से यम 'प्राण' निकाल कर ले गया, फिर लौटा दिये।

३—दिव्य-शक्तियों में भी प्राण-प्रतिष्ठा।

चौथा स्तर—१—'प्राण-तत्व' का चाहे जहाँ प्रवेश; एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में। यह चमत्कार विद्या से प्राप्य। इससे अनेकों अद्भुत कहानियों का जन्म,

२—विविध योनियों में जन्म का चक्र। बौद्धों और जैन कहानियों के कथा-विधान में।

३—प्रकृति में मातृत्व का भाव-बीज : पृथ्वी को खोदने के लिए लोहा न चाहकर, हिरन का सींग चाहना।

४—पृथ्वी के लिये बलि का आयोजन।

पाँचवा स्तर-१—प्रकृति का बहुदेव वाद : सूर्य, इन्द्र, वरुण।

२—'आत्मा' का आविष्कार : य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते, प्रसिशं यस्य देवा यस्यच्छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मैदेवाय हविषा विधेमः।

३—पुनर्जन्म तथा आवागमन।

छठा स्तर—१—प्रकृति देवों पर लौकिक-प्रभाव : देवताओं के रूप में संशोधन।

२—ब्रह्म की अनुभूति। अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा।

३—प्रतीकात्मकता और रहस्य-भावना।

सप्तम स्तर— १—सौर-परिवार के देवों के साथ भौम देवों अथवा पार्थिवों की कल्पना : गणेश का आविर्भाव। देवताओं की नये रूपों और नामों में परिणति।

२—देवों के साथ देवियों की कल्पना।

अष्टम स्तर— १—देवताओं का भूमि से सम्बन्ध।
२—अवतार का अवतरण : राम तथा कृष्ण।
३—पौराणिक गाथाओं का पल्लवन : वीर-पूजा।
नवम स्तर— १—वीरों में देव-भाव : ऐतिहासिक व्यक्तित्वों का दिव्यत्व प्राप्त करना।

यह बात ध्यान देने की है कि ब्रज के लोक-साहित्य में राधा-कृष्ण का वर्णन बहुत ऊपर के धरातल पर और बहुत कम मिलता है। इसे दसवें स्तर की चीज मानना होगा, और यह अवश्य ही 'साहित्य' के प्रभाव से ब्रज में प्रचलित हुआ है।

जाति-विज्ञान की दृष्टि से विविध जातियों की कहानियाँ तथा लोकोक्तियाँ मिलती हैं। उन पर ऊपर कुछ विचार हो चुका है।[1]

साधारण संस्कृति के मूल—ऊपर जो विवेचन हुआ है उससे और जो जहाँ-तहाँ तुलना की गयी है, उससे एक बात अत्यन्त स्पष्ट विदित होती है। वह यह है कि 'लोक-साहित्य' के अधिकांश भाव, उनकी अधिकांश वस्तु विश्व में व्याप्त है। भारोपीय परिवार की साधारण सांस्कृतिक समानता तो इनसे निश्चय ही प्रकट होती है। पर आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों का इतना गहन मेल-जोल हुआ है कि पिछड़ी जातियों और पिछड़े प्रदेश के निवासियों में भी वही कहानियाँ और अनुष्ठान नाम और रूप बदल कर मिल जाते हैं, इससे साधारण संस्कृति की व्यापकता सिद्ध होती है। यहाँ हमने ब्रज के लोक साहित्य का कुछ परिचय और मूल्याङ्कन कराया है। यह साहित्य भी विश्व लोक-साहित्य का एक अंश है। इसमें भी वे सांस्कृतिक तत्त्व मिलते ही हैं जो विश्व में सामान्यतः मिलते हैं।

लोक-साहित्य का प्रभाव—लोक-साहित्य की प्रबलता हम देख चुके हैं। यह जीवन के साथ बहने वाला साहित्य है, फलतः प्रभावशाली है। इस लोक-साहित्य ने वैदिक-काल से आज तक साहित्य को प्रभावित किया है। हिन्दी-साहित्य तो लोक-साहित्य का बहुत ऋणी है। कारण यह है कि हिन्दी-भाषा जन्म से लोक-भाषा रही है, और 'संस्कृत' भाषा के साहित्यिक उत्तराधिकार से भी अधिक उसे लोक-मेधा का अधिकार मिला रहा है। तुलसीदासजी के ये चरण विशेष ध्यान देने योग्य हैं—"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।"

---
[1] देखिये चौथा और छठा अध्याय।

हिन्दी ने इसीलिए अपने साहित्य के लिए जो प्रेरणाएँ प्राप्त की वे अधिकांशतः लोक-सम्पर्क से ही की हैं। तभी ऐसा कोई भी प्राचीन साहित्यकार हिन्दी में नहीं मिल सकेगा जिस पर लोक-साहित्य के ऋण का अभाव हो। हिन्दी-साहित्य के आरम्भिक युग में हमें स्वयंभू की रामायण का पता चलता है। स्वयंभू जैन थे। जैनियों में आरम्भ से ही राम-चरित के दो रूप प्रचलित रहे हैं। एक ही वृत्त के दो रूप क्यों हो गये ? कारण स्पष्ट है कि 'लोक-साहित्य' ने अपने प्रभाव से उस मूल वृत्त में संशोधन किया। फलतः रूप द्विविध हो गया। रासो-काल में पृथ्वीराज-रासो पर दृष्टि डालें तो 'पद्मावती समय' लोक-साहित्य के प्रभाव का एक उदाहरण है। पद्मावती का पद्मिनी से संबंध है। पद्मिनी नायिकाएँ नाथ-सम्प्रदाय के कारण सिद्धों के लिए प्राप्य हो गयी थीं। पद्मावती में तोते का उपयोग 'प्रेम-गाथा' की ओर संकेत करता है।[१] 'आल्हा' तो इतिहास के कुछ तन्तुओं पर लोक-साहित्य के ताने-बाने से बना हुआ है।[२] इस गीत में पद-पद पर लोक-वार्त्ता का उपयोग हुआ है। इसमें उड़ने घोड़े, जादू के चमत्कार, देवी-देवताओं की शक्ति का उपयोग, आश्चर्यकारक घटनाएँ, विविध लोक-विश्वास सभी समाविष्ट हैं। ज्ञानवादी कबीर की ज्ञान-गाथा में लोक-मानस सीधे अपना प्रभाव नहीं डाल सकता था, पर अप्रत्यक्ष रूपेण उसने उसे प्रभावित किया ही है। 'राम' का नाम लोक-वार्त्ता से लिया गया है। प्रसंग-वशात् कितने ही लोक-प्रचलित वृत्तों के संकेत कबीर में हुए हैं। कबीर तो लोक-विश्वासों के विरोधी थे। वे बौद्धिक दृष्टि से जिसे उपयुक्त समझते थे उसे ही स्वीकार करते थे, पर ब्रह्म के स्थान-निरूपण में बुद्धि से अधिक वार्ता का प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रेम-गाथाएँ तो लोक-वार्त्ता के ऊपर ही खड़ी हुई हैं। एक नहीं अनेकों ग्रन्थ प्रेम-मार्गियों ने रचे और सब में किसी न किसी लोक-प्रचलित कहानी को आधार बनाया गया है। चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में हमने शोध में प्राप्त लोक-साहित्य का विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर दिया है। सूर और

१ देखिये इसी लेखक की 'साहित्य की झाँकी'।

२ जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है "प्रसिद्ध बुन्देलखण्डी शूरवीर आल्हा और ऊदल के इतिहास के चारों ओर लोक-गाथाओं का एक बृहत चक्र सङ्कलित हो गया है।" ('दी इण्डियन एंटिक्वरी' अगस्त १८८५, पृ० २०९, निबन्ध : "दी सॉंग आव आल्हाज मैरिज, ए भोजपुरी महाकाव्य")।

तुलसी भी लोक-मानस के प्रभाव से नहीं बच सके हैं। सूर ने 'भागवत' के प्रसंगों से अतिरिक्त जो प्रसङ्ग अपने सूर-सागर में ग्रहण किये हैं, वे मात्र उनकी कल्पना से उद्‌भूत नहीं। लोक-वार्त्ता ने उन्हें उसके बीज दिये हैं। तुलसी का 'रामचरित' साहित्यिक परिमार्जन से युक्त लोक-प्रचलित वार्त्ता ही है। वाल्मीकि की रामायण से तुलना करने पर तुलसी की वस्तु में जो अन्तर प्रतीत होता है, वह लोक-प्रदत्त है। तुलसी ने तो लोक छंदों और गीतों को भी अपनाया। 'रामलला नहछू' छन्द का तुलसी ने आविष्कार नहीं किया था। 'नहछू' के अवसर पर इसी शैली का गीत गाया जाता था, तुलसी ने उसी गीत में रामचरित वर्णन करके उसे घर घर में पहुँचा दिया। 'पार्वती-मंगल' में भी ऐसा ही छन्द है। अतः तुलसी ने लोक से वस्तु ही ग्रहण नहीं की, रूप भी ग्रहण किया। 'भक्तमाल' और उस पर प्रियादास की टीका में भक्तों के चरित्र का जो वर्णन किया गया है वह वर्णन लोक-वार्त्ता से परिपूर्ण है। भक्तों के जीवन की चमत्कार पूर्ण झाँकियाँ और वृत्त लोक में प्रचलित विश्वासों के आधार पर खड़े होते हैं। वे लोक-वार्त्ता के अच्छे उदाहरण होते हैं। उनमें जीवन के प्रामाणिक वृत्त की तो भूमि-मात्र होती है, शेष समस्त लोक-वार्त्ता से पल्लवित तथा परिवर्द्धित होता है। इसी प्रकार का 'लोक-साहित्य' हमें 'चौरासी वैष्णवों और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में उपलब्ध होता है। इन्शा अल्ला खाँ, लल्लूलाल आदि के समय में लोक-वार्त्ता की ओर लेखकों का विशेष ध्यान था। 'रानी केतकी की कहानी' लोक-वार्त्ता है। लल्लूलालजी ने 'बैताल पचीसी' का अनुवाद किया। भारतेन्दु के समय में भी इस ओर दृष्टि थी। भारतेन्दुजी का 'अन्धेर नगरी' लोक-वार्त्ता का शुद्ध उदाहरण है। इसमें इन्होंने लोक-छन्दों को भी अपनाया। 'चूरन का लटका' उदाहरण के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार इस संक्षिप्त विवेचन से लोक-वार्त्ता के प्रभाव की एक झलक हमें मिल जाती है। यदि और गम्भीर विवेचन में प्रवृत्त हुआ जाय तो हिन्दी-साहित्य का विशेष भाग लोक-वार्त्ता से प्रभावित हुआ मिलेगा। पर इसके लिए यहाँ अवकाश का अभाव है।

साहित्य का प्रभाव—लोक-साहित्य ने ही साहित्य को प्रभावित किया है। साहित्य का प्रभाव निस्संदेह उतना अधिक और स्पष्ट नहीं। जैसा लोक-साहित्य का है। फिर भी हम देखते हैं कि

आज के जिकड़ी के भजनों में जो वृत्त आते हैं, वे लोक-भूमि से नहीं लिये जाते, महाभारत आदि पुराणों से लिये जाते हैं। तुलसी, मीरा, कबीर आदि लोक के इतने अपने हो गये हैं कि इनकी पदावलियाँ लोक में अन्य लोक-वार्ताओं की भाँति ग्रहण की जाती हैं। ये नाम तो लोक को इतने प्रिय हो गये हैं कि वह उन रचनाओं में भी जो इनकी नहीं हैं, इनके नाम रख देते हैं, और लोक यह भी अधिकार समझता है कि वस्तुतः जो इनकी रचनाएँ हैं, उनमें से इनका नाम उड़ादे। जहाँ कहीं लोक-साहित्य में हमें बड़े रूपक और कठिन अलङ्कार मिलते हैं, अथवा जो दार्शनिक वर्णन मिलते हैं, वे सभी साहित्य की देन हैं। फिर भी ऐसा साहित्य स्पष्ट ही लोक-साहित्य में विदेशी जैसा लगता है। यहाँ, राधा-कृष्ण की इस ख्यात-भूमि, ब्रज-भूमि में 'राधा-कृष्ण' भी साहित्यकार की देन है, स्वाभाविक लोक-वार्त्ता नहीं। उनके चरित्र के विविधवृत्त अवश्य ही लोक-वार्त्ता की सामग्री हैं। कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र कितनी ही पृथक पृथक वार्त्ताओं का संग्रह जैसा विदित होता है।

'लोक-साहित्य' के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी परम्परा किसी भी लिखित साहित्य की परम्परा से पुरानी है, और इसकी व्यापकता की समानता तो विश्व का कोई भी लिखित साहित्य नहीं कर सकता। हमने उसी लोक-साहित्य के एक छोटे अंश के रूप का विस्तृत वर्णन और वैज्ञानिक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया है। इससे साहित्य और लोक-वार्त्ता दोनों के प्रेमियों को सन्तोष होगा, ऐसा विश्वास है।

परिशिष्ट

[उपयोगी पुस्तकें]

हिन्दी

१—कविता-कौमुदी : ग्राम-गीत (भाग पाँचवाँ)—पं० रामनरेश त्रिपाठी
२—राजस्थान के लोक-गीत (दो खंड)—सूर्यकरण पारिक, ठाकुर रामसिंह, श्री नरोत्तम स्वामी
३—छत्तीस गढ़ी लोक-गीत—श्यामाचरण दुबे
४—मैथिली लोक-गीत—रामइकबालसिंह राकेश
५—राजपूताने के ऐतिहासिक प्रवाद—प्रो० कन्हैयालाल सहल
६—बुन्देलखण्ड की कहानियाँ—शिवसहाय चतुर्वेदी
७—ब्रज की लोक-कहानियाँ—प्रो० सत्येन्द्र
८—ईसुरी के फाग—लोकवार्ता परिषद्, टीकमगढ़
९—बेला फूले आधी रात—देवेन्द्र सत्यार्थी
१०—धरती गाती है— ,, ,,
११—चट्टान से पूछ लो— ,, ,,
१२—ब्रजलोक संस्कृति—प्रो० सत्येन्द्र
१३—ब्रजलोक साहित्य का विवरण—प्रो० सत्येन्द्र
१४—जीवन-साहित्य—काका कालेलकर
१५—हिन्दुओं के त्यौहार—कुँवर कन्हैयाजू
१६—प्राचीन वार्ता-रहस्य : प्रथम भाग
१७—राजस्थानी लोकोक्ति-संग्रह—प्रो० कन्हैयालाल सहल
१८—गाँव की कहानियाँ—रमेश वर्मा
१९—पृथिवी-पुत्र—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

पत्र-पत्रिकाएँ

१. Indian Antiquary
२. Folk-lore Journal
३. Indian Historical Quarterly
४. Man in India
५. The Modern Review
६. ब्रज-भारती
७. लोक-वार्ता
८. मधुकर
९. विशालभारत
१०. प्रतीक
११. हंस